

ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाका तेइसवौं ग्रन्थ ।

अन्ताराष्ट्रिय विधान ।

लेखक—

श्री सम्पूर्णानन्द जी, बी० एस्-सी०,
एल-टी०

ज्ञानमण्डल, काशी ।

प्रथम संस्करण }
१५००

१९८१

{ मूल्य
सशोधित मूल्य ४)

प्रकाशक—श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमण्डल कार्यालय, काशी ।

मुद्रक—श्री माधव विष्णु पराडकर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी ।

समर्पण

आनन्दी मातृदेवी निजयुगलकुलं या सदानन्दयित्री ।
शूलीपादाब्जभक्तो जयाति च विजयानन्दनामा पिताभे ॥
पित्रोः सवर्द्धयित्रोः सकलगुणयुते पूजनीये पुनीते ।
स्वस्येयं तुच्छसेवा पदरजसि तयोरर्पिता सादरेण ॥

लेखक

अन्तराष्ट्रिय विधान

ॐ तदस्य

भूमिका

यस्यानिर्वचनीय शक्तिमहिमा कार्य्यं निदानादृते,
कुर्वन् येष्वखिलेष्वहो प्रतिपलं राष्ट्रेषु संराजते ।
तेषां प्रेम परस्परं प्रकटयन् पापं प्रणश्यन् पति,
भूतानाम्भुवि वो भवतु भगवान् भूत्यै भवानीश्वरः ॥
अन्ताराष्ट्रिय विधान बड़ा ही जटिल विषय है ।

इसका सम्बन्ध साधारण विधान और विधानशास्त्रके साथ साथ राजनीतिशास्त्रसे है । इसके साथ ही यह भी उचित प्रतीत होता है कि इस विषयपर लिखनेका वही मनुष्य साहस करे जो स्वतंत्र देशोंकी व्यावहारिक राजनीतिसे प्रत्यक्ष परिचय रखता हो, जिसे युद्ध, वास्तविक शान्ति और सच्ची तटस्थताका अनुभव हो, जिसने दौत्य किया हो, जिसे किसी स्वतंत्र देशके परराज-विभागमें प्रवेशाधिकार प्राप्त हो, जो सन्धि-परिषदोंमें सम्मिलित हुआ हो । मुझमें इनमेसे एक गुण भी नहीं है—

तितीर्षुर्दस्तरम्मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।

मैं राजनीतिशास्त्र और अन्ताराष्ट्रिय विधानका विद्यार्थी हूँ और इन शास्त्रोंके प्रमुख आचार्योंके ग्रंथोंको यथासाध्य देखा करता हूँ—बस यही मेरी एतद्विषयक

योग्यता है। ऐसी दशामें पुस्तकमें बहुतसी त्रुटियोंका रह जाना स्वाभाविक है परन्तु मैंने यह प्रयत्न किया है कि निराधार और सन्दिग्ध बातें इसमें स्थान न पायें।

यह बहुत सम्भव है कि किसी किसी पाठकके हृदयमें इस पुस्तकके समयौचित्यपर सन्देह हो। यह सन्देह निःसार न होगा। भारत इस समय परतंत्र है। उसकी आत्मा इस समय मंत्रमुग्ध हो रही है। उसके निःशस्त्रीकरणको लगभग पचास वर्ष हो गये। भारतवासी आत्मसम्मान शून्यताको क्षमा, कायरताको अहिंसा और निर्वीर्यताको शान्ति समझने लगे हैं। तमोगुण सत्वगुणका नाट्य कर रहा है। जो अपनी मर्यादा और अपने स्वत्वोंकी रक्षामें असमर्थ होते हुए भी विदेशी स्वमियोंके सङ्केतपर अपने सहज हितैषियोंका गला काटनेके लिये प्रस्तुत हो जाते हैं वह क्या जानें कि स्वतन्त्र राष्ट्र एक दूसरेके साथ किस प्रकारका व्यवहार करते हैं? पुस्तकोंसे ऐसा ज्ञान प्राप्त करके भी क्या होगा? जब 'चेरि.छाँड़ि न कहाउबरानी' हमारे प्रारब्धमें ही लिख गया है तो हमें इन बातोंसे सरोकार ही क्या है? इस शास्त्रके तथ्य मस्तिष्कके विचित्रालयको भले ही सुशोभित करें पर उनकी व्यावहारिकता हमारे लिये किञ्चिन्मात्र भी नहीं है।

यह मर्मोत्पीड़क नैराश्य-जन्य विचार पहिले मेरे चित्तमें भी उठा था परन्तु देर तक ठहर न सका।

भारतका भविष्य उसके अतीतसे भी समुज्ज्वल होगा। उसके पैरोंकी आहट हमे श्रुतिगोचर होने लगी है। अभी स्वराज्यका सूर्य उदयाचलपर नहीं आया है परन्तु हमारे तृषित नेत्रोंको उषा देवीके दर्शन मिल गये हैं। हमें दृढ़ विश्वास हो गया है कि अब कोई भी शक्ति हमें दीर्घकाल तक परतंत्र नहीं रख सकती।

यही विश्वास इस पुस्तकके लिखनेमें प्रेरक हुआ है। स्वतंत्र भारत दुर्बलोंका रक्षक और शान्तिका अभिभावक होगा। वह परतंत्रोंको स्वतंत्र बनाना, मनुष्य-मात्रको एक बृहत् कुटुम्बकी परिधिमें लाना, और शान्तिको स्थापित कराना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझेगा। इसलिये यह परम आवश्यक है कि उसके भावी नागरिक अभीसे उन नियमोंसे परिचित हो जायँ जिन्हें उनको पहिले पहिल बर्तना होगा, और उन संस्थाओंका ज्ञान प्राप्त कर लें जिनको, समुचित संस्कारके उपरान्त, वह अपने उद्देश्यकी सिद्धिका साधन बनायेंगे।

पुस्तकके विषयके सम्बन्धमे मुझे विशेष नहीं कहना है। ऐसी पुस्तकोंमें सब नियमोपनियम नहीं दिये जा सकते। विस्तृत ज्ञानके लिये इस प्रकारकी पुस्तकोंके अतिरिक्त प्रायः सभी प्रधान प्रधान सन्धिपत्रों और सैनिक न्यायालयोंकी व्यवस्थाओंको पढ़ना होगा। प्रस्तुत पुस्तकका इतना ही उद्देश्य है कि मुख्य मुख्य सिद्धान्त-स्वरूपी नियमोंका दिग्दर्श कर दे। इतनेसे

इसके महत्त्व, इसका व्यापकता, और इसके गाम्भीर्यका पर्याप्त पता लग सकता है और यह बात स्पष्ट समझमें आजाती है कि सहस्र सहस्र विघ्नबाधाओंके आते रहने पर भी मानव-समाजमें क्रमशः भ्रातृभाव, सहिष्णुता और प्रेमकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

मैंने इस बातका प्रयत्न किया है कि पुस्तकको भारतीय पाठकोंके लिये रोचक बनाऊँ। इसलिए कई ध्योरेकी बातें, जिनका विशेष सैद्धान्तिक महत्त्व नहीं है, छोड़ दी गयी हैं। सभी आवश्यक स्थलोंपर उदाहरण दिये गये हैं। इनमेंसे कुछ तो महासमर प्रत्युत उसके भी पीछेके हैं। पाश्चात्य भाषाओंकी एतद्विषयक पुस्तकोंमें भी ऐसी पुस्तकें थोड़ी ही हैं जिनमें इन सबका समावेश हो गया हो।

पुस्तकमें कई जगह दार्शनिक विचार आये हैं। यह मेरी समझमें सर्वथा उचित है। प्रत्येक सभ्य राष्ट्रके वैधानिक, सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक आदि विचारोंपर उसके दार्शनिक विचारोंकी छाप रहती है। अन्तिम प्रश्नोंका अन्तिम उत्तर दर्शनमें ही मिलता है। अध्यात्म शास्त्र ही सब विद्याओंका मूल है। मैं स्वयं अद्वैतवादी हूँ और श्रुति सम्मत अद्वैतवादको ही मनुष्यके अभ्युदय और निःश्रेयस्का एकमात्र साधन समझता हूँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि मनुष्यके सभी व्यवहार, जिनमें अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारका स्थान

भी बहुत ऊँचा है, उसीके आधारपर स्थिर किये जाय तो जगत्में शाश्वत् शान्ति स्थापित हो सकती है ।

ऐसी पुस्तकोंके लिखनेमें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है वह छिपी नहीं हैं। देशी भाषाओंमें ऐसी पुस्तकें नहीं मिलती जिनसे सहायता ली जाय । सबसे बड़ी कठिनाई पारिभाषिक शब्दोंके सम्बन्धमें होती है । मैंने इस पुस्तकमें प्रायः जितने शब्दोंका प्रयोग किया है वह सब मेरे गढ़े हुए हैं । मैं नहीं कह सकता कि वह कहां तक ठीक हैं पर मैं उनसे अच्छे नाम न बना सका । दो एक शब्द पुराने भी हैं । 'राज' शब्द हमारी देशी रियासतोंमें प्रचलित है । 'मुल्कगीरी सेना' भी पुराना नाम है पर इस पुस्तकमें उसका वह अर्थ नहीं है जिस अर्थमें यह गुजरातकी रियासतोंमें, जहांसे मैंने इसे लिया है, प्रयुक्त होता है फिर भी मैं आशा करता हूं कि मेरे पीछे जो लोग इस विषयपर पुस्तक लिखेंगे उन्हें इससे कुछ न कुछ सहायता मिलेगी । दो शब्द पुस्तकके नामके विषयमें भी कहना है । आजकल हिन्दीमें 'अन्तर्राष्ट्रीय' शब्द प्रचलित है पर मुझे विश्वास दिलाया गया है कि संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'अन्ताराष्ट्रिय' ही साधु प्रयोग है । अशुद्ध प्रयोगमें कोई लाभ न देखकर मैंने अन्ताराष्ट्रिय लिखना ही उचित समझा ।

अभी हिन्दीमें ऐसी पुस्तकोंके पाठक बहुत कम हैं अतः ग्रन्थकार इन्हें लिखने और प्रकाशक इन्हें लेनेसे

बबराते हैं। मैं अपने मित्र श्री शिवप्रसादजी गुप्तका चिरऋणी हूँ। उन्हींके प्रोत्साहनसे यह पुस्तक लिखी गयी और उन्हींकी कृपासे आज पाठकोंके सामने रखी जा रही है।

पुस्तकके लिखनेमें मुझे अनेक प्रामाणिक ग्रंथोंसे सहायता लेनी पड़ी है। इनमेंसे कुछके नाम पुस्तकमें तत्तदुपयुक्त स्थलोंपर दिये गये हैं। परन्तु मुख्यतया मैंने निम्नलिखित पुस्तकोंसे काम लिया है। इनके रचयिताओंका मैं आभारी हूँ —

१. इण्टरनैशनल लॉ—हॉल-कृत (International Law by Hall)
२. प्रिंसिपल्स आव इण्टरनैशनल लॉ—लारेंसकृत (Principles of International Law by Lawrence)
३. इण्टरनैशनल लॉ—स्मिथकृत (International Law by Sir Frederick Smith)
४. डॉक्युमेण्ट्स इलस्ट्रेटिव आव इण्टरनैशनल लॉ—लारेंसकृत (Documents Illustrative of International Law by Lawrence)
५. इण्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आव इण्टरनैशनल आर्गनाइजेशन-पाँटर-कृत (Introduction to the Study of International Organization by Pitman B Potter)

अन्तिम पुस्तक अपने ढङ्गकी निराली ही है। इस प्रकारकी पुस्तकें पाश्चात्य भाषाओंमें भी बहुत कम हैं। मैंने अपना पञ्चम खण्ड मुख्यतः इसीके आधारपर लिखा है।

ईश्वर करे भारत शीघ्र ही स्वतंत्र हो और राज-समाजमें अपना समुचित स्थान ले ताकि भारतीय संस्कृति अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारको परिष्कृत करके पृथ्वीको अपवर्गकी अधिकारिणी मनुष्यजातिके लिये उपयुक्त निवास-स्थान बनाये।

जालिपादेवी, काशी }
३० मिथुन १९८१ }

सम्पूर्णानन्द

विषय-सूची

भूमिका

प्रथम खंड—प्रावेशिक

पृष्ठ

| | |
|---|----|
| पहिला अध्याय—अन्तराष्ट्रिय विधानकी परिभाषा और उसका स्वरूप | १ |
| दूसरा अध्याय—अन्तराष्ट्रिय विधानका इतिहास ... | १५ |
| तीसरा अध्याय—अन्तराष्ट्रिय विधानके पात्र ... | ३८ |
| चौथा अध्याय—अन्तराष्ट्रिय विधानके आधार ... | ८२ |
| पाँचवाँ अध्याय—दौत्य ... | ६४ |

द्वितीय खण्ड—सन्धिकालीन विधान

| | |
|---|-----|
| पहिला अध्याय—स्वातन्त्र्यसम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ... | ११३ |
| दूसरा अध्याय—समत्वसम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य .. | १३८ |
| तीसरा अध्याय—सम्पत्तिसम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ... | १५० |
| चौथा अध्याय—शासनाधिकार सम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य | १८५ |
| पाँचवाँ अध्याय—सन्धिया ... | २०२ |
| छठवाँ अध्याय—अन्तराष्ट्रिय पचायतें और न्यायालय | २१० |

तृतीय खण्ड—युद्धकालीन विधान

| | |
|--|-----|
| पहिला अध्याय—अन्तराष्ट्रिय जीवनमें युद्धका स्थान ... | २२१ |
| दूसरा अध्याय—असामरिक बलप्रयोग, और रणघोषणा | २२७ |
| तीसरा अध्याय—समरारम्भके तात्कालिक परिणाम .. | २३८ |

| | |
|---|---------|
| चौथा अध्याय—शत्रुवर्गीयोंके साथ बर्ताव—सैनिकोंके प्रति | २४५ |
| पाँचवाँ अध्याय—शत्रुवर्गीयोंके साथ बर्ताव—सैनिकोंके प्रति | २६१ |
| छठवाँ अध्याय—शत्रुसम्पत्तिके साथ व्यवहार—भूस्थित | |
| सम्पत्ति (युद्धारम्भके समय) | ... २७६ |
| सातवाँ अध्याय—शत्रुसम्पत्तिके साथ व्यवहार— | |
| भूस्थित सम्पत्ति (युद्धकालमें) | ... २८६ |
| आठवाँ अध्याय—शत्रु सम्पत्तिके साथ व्यवहार— | |
| जलस्थित सम्पत्ति | .. ३०६ |
| अध्याय—बलप्रयोगकी सीमा... | .. ३२० |
| दसवाँ अध्याय—युद्धके उपकरण | ... ३२७ |
| ग्यारहवाँ अध्याय—युद्धकालीन अहिंसात्मक व्यापार | ३३६ |

चतुर्थ खण्ड—तटस्थसम्बन्धी विधान

| | |
|--|---------|
| पहिला अध्याय—तटस्थताकी परिभाषा और उसका इतिहास | ३५१ |
| दूसरा अध्याय—तटस्थता और तटस्थीकरण | .. ३५७ |
| तीसरा अध्याय—तटस्थ राजोंके प्रति युद्धकारी राजोंके | |
| कर्तव्य | ... ३६४ |
| चौथा अध्याय—युद्धकारी राजोंके प्रति तटस्थ राजोंके | |
| कर्तव्य | .. ३७७ |
| पाँचवाँ अध्याय—युद्धकारी राज और तटस्थ व्यक्तियोंका | |
| साधारण वाणिज्य | ३८३ |
| छठवाँ अध्याय—निषिद्ध व्यापार | ... ३८६ |
| सातवाँ अध्याय—तटावरोध | ... ४१० |
| आठवाँ अध्याय—तटस्थाचरण | ... ४१८ |

पञ्चम खण्ड—अन्ताराष्ट्रिय संगठन

पहिला अध्याय—संगठनकी आवश्यकता और उसके

अनिवार्य साधन ... ४२५

दूसरा अध्याय—प्रांशिक अन्ताराष्ट्रिय संगठन ... ४३७

तीसरा अध्याय—अन्ताराष्ट्रिय पंचायत . ४४५

चौथा अध्याय—राष्ट्रसंघ और मानवसमाजका भविष्य ४५२

परिशिष्ट १-६ ४५७

अनुक्रमणिका ४८६

प्रथम खण्ड—प्रावेशिक !

अन्तराष्ट्रीय विधान ।

पहिला अध्याय ।

अन्तराष्ट्रीय विधानकी परिभाषा और उसका स्वरूप ।

कोई शास्त्र हो, उसके आरम्भमें उसके विषयका स्पष्टीकरण अत्यन्त आवश्यक है। यह स्पष्टीकरण तब ही हो सकता है जब विषयके पूरे पूरे लक्षण बतला दिये जायँ अर्थात् उसके सामान्य और विशेष गुण बतला दिये जायँ ताकि उसके परिभाषा स्थानमें किसी अन्य विषयका अम न हो जाय । इसीको सत्परिभाषा कहते हैं। इस दृष्टिसे अन्तराष्ट्रीय विधानकी परिभाषा इस प्रकार होगी--अन्तराष्ट्रीय विधान उन नियमोंके समूहको कहते हैं जिनके अनुसार सभ्य राज एक दूसरेके साथ प्रायः बर्ताव करते हैं ।

हमारे शास्त्रमें एक विचित्रता है। अन्तराष्ट्रीय विधानके विषयमें भिन्न भिन्न आचार्योंके भिन्न भिन्न मत हैं। इस मत-वैषम्यका कारण यह है कि कोई तो इसको विधानशास्त्र (जूरिसप्रूडेंस ❀) का अङ्ग मानता है अर्थात् इसको उसी दृष्टिसे देखता है जिस दृष्टिसे कि भिन्न भिन्न देशोंके साधारण फ़ौजदारी तथा दीवानीके विधानोंका विचार किया जाता है, और कोई इसको धर्मशास्त्रके उस विभागमें मिलाना चाहता है जिसे कर्तव्याकर्तव्य-शास्त्र (इथिक्स) कहते हैं ।

हमने अपनी परिभाषामें इन दोनों कठिन-इयोंसे बचनेका प्रयत्न किया है। हमने अन्ताराष्ट्रिय विधानको 'नियमों' का समूह बतलाया है, विधानोंका नहीं। विधान (या कानून) के इस परिभाषाकी भीतर दो पदार्थ निहित रहते हैं, स्वत्व और विशेषता कर्तव्य। 'क' को 'ख'के साथ एक निश्चित प्रकारका व्यवहार करना चाहिये। यह 'क' का कर्तव्य हुआ। इसके बदले, 'ख' को 'क' के साथ भी एक निश्चित प्रकारका ही व्यवहार करना चाहिये, यह 'क' का स्वत्व हुआ। यदि 'क' या 'ख' अपने निश्चित मार्गसे च्युत हो तो उसे 'दण्ड' मिलेगा। अतः विधान शब्दका प्रयोग करनेसे कर्तव्य, स्वत्व और दण्डकी ओर ध्यान जाता है। यह सब विवादास्पद प्रश्न हैं कि अन्ताराष्ट्रिय जगत्में किसी प्रकारके निश्चित कर्तव्य, स्वत्व और दण्ड हैं या नहीं। इसीलिये हमने इस शब्दका प्रयोग नहीं किया है। 'नियम' के सम्बन्धमें यह सब आपत्तियां नहीं हैं। जिस ढङ्गपर बहुधा व्यवहार किया जाता है वह नियम कहलाता है, चाहे वह व्यवहार अपनी इच्छासे हो, चाहे किसी दण्डके भयसे।

हमने इन नियमोंके लिये किसी विशेषणका प्रयोग नहीं किया है। तात्पर्य यह है कि हम यहांपर इन नियमोंके औचित्य या अनौचित्यपर नहीं विचार करना चाहते। और चाहे जो कुछ मतभेद हो, पर इसको सभी आचार्य्य मानते हैं कि राजोंके परस्पर व्यवहारमें कुछ नियमोंका पालन होता है। यह नितान्त पृथक् प्रश्न है कि यह नियम कैसे बने, अच्छे हैं या बुरे, और इनका पालन क्यों किया जाता है।

परिभाषाके दो और अशोंको स्पष्ट कर देना आवश्यक है। हमने कहा है कि अन्ताराष्ट्रिय विधान उन नियमोंका समूह है जिनके अनुसार सभ्य राज एक दूसरेके साथ प्रायः व्यवहार करते हैं। इस

परिभाषामे 'सभ्य' और 'प्रायः' के प्रयोगका कारण बतलाना आवश्यक है।

जहां मनुष्य रहते हैं वहां समाज बन जाते हैं और जहां समाज होता है वहां किसी न किसी प्रकारका राज भी स्थापित होता है। असभ्यसे असभ्य देशोंमें भी मनुष्य समाज बनाकर रहते हैं और किसी न किसी प्रकारके राज पाये जाते हैं। जहां पास पास कई राज होंगे वहां उनमें किसी न किसी प्रकारका सम्बन्ध भी होगा। सम्बन्ध स्थायी हो या न हो पर आपसके व्यवहारमें वह कुछ न कुछ नियम बतते ही होंगे। अतः जङ्गली देशोंमें भी किसी न किसी प्रकारका अन्ताराष्ट्रिय विधान पाया जायगा। यह बात अनुभवसिद्ध है। प्राचीनतम कालसे लेकर आजतक सभी देशोंमें अन्ताराष्ट्रिय विधान पाया गया है। परन्तु सभ्य और असभ्य राष्ट्रोंके व्यवहारमें बहुत अन्तर होता है। इस पुस्तकमें हम उन नियमोंपर विचार नहीं कर सकते जो भिन्न भिन्न असभ्य समाजोंमें प्रचलित हैं। कुछ बातें ऐसी हैं जिनको सभ्य असभ्य सभी मनुष्य स्वभावतः मानते हैं परन्तु असभ्य राष्ट्रोंके व्यवहारमें परस्परका वैषम्य बहुत है। इसके प्रतिकूल, सभ्य समाजका व्यवहार सर्वत्र एकसा है। जिन नियमोंका पालन आज सभ्य जगत्में हो रहा है उनका विकास यूरोपमें हुआ है पर यह देश, जाति, वर्ण, धर्म आदिकी अपेक्षा नहीं करते। सभी सभ्य राज इनके अनुसार चलते हैं।

परन्तु कोई विधान हो, उसका पालन सदैव नहीं होता, लोभादि कुप्रवृत्तियाँ मनुष्यको अन्धा कर देती हैं। उनके वशमें पडकर वह कभी कभी अपने देशके विधानोंकी अवहेलना कर बैठता है। परिणाम यह होता है कि उसे दण्ड मिलता है पर कभी कभी बच भी जाता है। इसी प्रकार कभी कभी कोई राज उन्मत्त होकर स्वेच्छाचार कर बैठता है। बहुधा ऐसे राजको दण्ड मिल जाता है

पर कभी कभी वह भी बच जाता है। इससे विधानका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता पर ऐसी अवस्थाओंको ध्यानमें रखकर ही 'प्राय' शब्द लिखा गया है।

अब हमको देखना है कि अन्तराष्ट्रिय विधानका क्षेत्र क्या है, कब कब और कहां कहां उससे काम लिया जा सकता है अर्थात् उसके क्षेत्रका देश और कालमें विस्तार क्या है। अन्तराष्ट्रिय एक और महत्वपूर्ण प्रश्न है—उससे कौन काम विधानका क्षेत्र ले सकता है, पर इसका विचार एक पृथक् अध्यायमें किया जायगा।

कालका प्रश्न सीधा है। विधानका उपयोग सब अवस्थाओंमें है। मनुष्योंके साधारण व्यवहारसे इसका उदाहरण मिलता है।

सभ्य जातियोंमें शान्तिकालीन व्यवहारके लिये तो (क) काल नियम हैं ही, लड़ाई तकके नियम होते हैं। शस्त्र-हीनको न मारना चाहिये, पेटमें या कमरके नीचे चोट न करना चाहिये, भागतेको न मारना चाहिये, यह सब सभ्य-समाजमें व्यक्तिगत लड़ाईके नियम हैं। इसी प्रकार राज्योंके भी नियम होते हैं। शान्तिकालीन व्यवहार तो नियमानुकूल होता ही है, युद्धके समय भी नियमोंका पालन होता है। शत्रुको कहांतक क्षति पहुंचानी चाहिये, आहतों और बन्दियोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, प्राणदान कब और कैसे देना चाहिये, इत्यादिके विषयमें भी नियम विद्यमान हैं। तात्पर्य यह है कि सदैव ही नियम बर्ते जाते हैं।

यों तो अन्तराष्ट्रिय विधानके लिये कोई देशगत रुकावट नहीं है, परन्तु दो एक बातें ध्यानमें रखने योग्य हैं। अन्तराष्ट्रिय विधान किसी देशके अन्तःशासनमें हस्तक्षेप नहीं करता। प्रत्येक सरकार अपने देशका शासन अपने ढङ्गपर करती है।

यह विधान राजोंके ही बीचमें बर्ता जाता है। पर कभी कभी एक असाधारण परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(ख) देश किसी राजविशेषको किसी अन्य राजकी प्रजामेंसे किसी व्यक्ति या समुदाय विशेषसे बर्तना पड़ जाता

है। यह अवस्था दो प्रकारसे उत्पन्न होती है। जिस समय दो देशोंमें युद्ध होता है उस समय तटस्थ देशोंके निवासी दोनों लड़नेवाली सरकारोंके हाथ युद्धसामग्री बेच बेच कर रुपया कमाते हैं। यह तो कोई सरकार चाहती ही नहीं कि मेरे शत्रुका बल बढ़े, इसलिये वह इस ताकमें रहती है कि जो जहाज शत्रुके हाथ युद्धसामग्री बेचने जाता हो वह पकड़ा जाय। इस प्रकार तटस्थ देशोंकी प्रजाके जहाजोंको पकड़ना अन्ताराष्ट्रिय विधानके विरुद्ध नहीं है। पकड़कर जहाजको अपने देशमें ले जाते हैं। वहा उसके स्वामीपर अभियोग चलाया जाता है और यदि वह अपराधी पाया जाय तो सारा माल ज़ब्त कर लिया जाता है। यह सब भी अन्ताराष्ट्रिय विधानके अनुकूल है। वह तटस्थ राज जिसकी किसी प्रजाका माल ज़ब्त किया जा रहा है कुछ भी आक्षेप नहीं कर सकता। पर यदि वह राज जिसके न्यायालयमें अभियोग हुआ है अर्थात् जिसने उस जहाजको गिरफ्तार किया है, किसी प्रकारकी अनुचित कार्यवाही कर बैठे तो तटस्थ राज अवश्य बीचमें पड़ेगा। यदि आपसमें शीघ्र समझौता न हो जाय तो लड़ाई छिड़ जानेकी सम्भावना है। अस्तु, यदि ऐसी कोई बात न हो तो अभियोगमें एक पक्षमें उस जहाज आर मालका मालिक होगा और दूसरी ओर वह विदेशी राज।

दूसरा उदाहरण इससे भिन्न है। एक मनुष्य जिसकी कुछ सम्पत्ति अपने देशमें भी है किसी पराये राजमें जाकर व्यापार करता है। वहां दैवात् उसका दिवाला निकल जाता है। अब उसपर इसी पराये राजके न्यायालयोंमें अभियोग चलेगा। यह सम्भव है कि

उसके देश और इस देशके विधानोंमें अन्तर हो। न्यायालयके सामने यह प्रश्न है कि किस विधानसे काम लिया जाय। उसे अधिकार है कि अपने देशका ही विधान बर्ते पर वह यह भी कर सकता है कि दोनोंको मिला जुलाकर काम चलाये। ऐसा करना कुछ बहुत कठिन नहीं है क्योंकि आजकल सभी सभ्य देशोंके विधान एक दूसरेके सदृश होते जाते हैं। जिन सिद्धान्तोंसे ऐसे अवसरोंपर काम लिया जाता है उनको कभी कभी 'वैयक्तिक अन्ताराष्ट्रिय विधान' (प्राइवेट इण्टरनैशनल ला *) कहते हैं, क्योंकि यद्यपि यह सिद्धान्त सामान्य व्यक्तियोंके साथ बर्ते जाते हैं, फिर भी यह सभी देशोंमें माने जाते हैं। आजकल तो अधिकांश सभ्य राजोंने आपसमें सन्धि करके कई विषयोंपर अपने यहाँ सर्वथा एकसे ही विधान बना लिये हैं।

अब यह देखना है कि हम अन्ताराष्ट्रिय विधानको कहाँतक विधान कह सकते हैं। हम ऊपर बतला चुके हैं कि 'विधान' नामके साथ ही तीन बातोंकी ओर ध्यान जाता है, कर्तव्य, क्या अन्ताराष्ट्रिय स्वत्व और दण्ड। पाश्चात्य धर्मशास्त्र या विधान-विधान सचमुच नशास्त्रके आचार्योंमें आस्टिनका स्थान बहुत ऊँचा विधान है? है। वह कहते हैं कि विधानके दो अङ्ग हैं, आज्ञा और दण्ड (कमाण्ड ऐण्ड सैङ्कशन†), जहाँ इनमें से एकका भी अभाव है वहाँ विधान नहीं है। ऐसा करो, यदि न करोगे तो अमुक दण्ड भुगतोगे, यही विधानका रूप है। यदि यह मत समीचीन है—इसमें सन्देह नहीं कि सभी देशोंके साधारण विधान इसी ढङ्गके होते हैं—तो अन्ताराष्ट्रिय विधानको विधान नहीं कह सकते। ऐसे विधानके लिये कोई विधाता अर्थात् आज्ञा और दण्ड देनेवाला चाहिये। परन्तु स्वतन्त्र राज्योंको न तो कोई आज्ञा

* Private International Law

† Command and Sanction

देनेवाला है, न दण्ड देनेवाला । यह उनकी इच्छा है कि वह कुछ नियमोंको बर्तते हैं । इसमें उनको सुविधा होती है क्योंकि यदि कुछ व्यवहार-साम्य न हो तो किसी प्रकारका सम्बन्ध हो ही न सके । फिर भी यदि कोई राजविशेष किसी नियमका उल्लङ्घन कर जाय तो उसका ऐसा करना अनधिकार चेष्टा न होगा । आजकल राष्ट्रसंघका नाम बहुत सुननेमें आता है । यदि आगे चलकर सब सभ्य राष्ट्र उसको अपने ऊपर वही स्थान दे दें जो प्रत्येक सभ्य समाजमें सरकारका प्रजापर होता है तो उसकी आज्ञाएँ 'विधान' कहला सकेंगी । अभी जबतक कोई एक अधिपति नहीं है, तबतक विधान शब्दका प्रयोग अनुचित है ।

यह आस्टिनके सिद्धान्तके अनुसार मीमांसा हुई । पर ऐसा भी हो सकता है कि कोई एक सरकार या अधिपति न हो, फिर भी व्यवहारसम्बन्धी सर्वमान्य नियम प्रचलित हों । ब्राइसने 'हिस्ट्री आव जूरिसप्रूडेंस' में दिखलाया है कि आइसलैण्डमें सैकड़ों वर्ष तक कोई एक सरकार न थी पर मुख्य मुख्य विषयोंपर विधान बने हुए थे । जनताके प्रतिनिधि सुनिश्चित समयोंपर एकत्र होकर इन नियमोंका निर्णय कर लेते थे । कोई आज्ञा देनेवाला न था, कोई नियत दण्ड देनेवाला भी न था । इन बातोंका भार लोकमतपर था । इतना निश्चय कर लिया जाता था कि अमुक अवसरपर अमुक व्यवहार होना चाहिये, पर निरीक्षण करनेवाला कोई न था । भिन्न भिन्न प्रदेशोंके लोग इन नियमोंका किसी न किसी प्रकार पालन कर लिया करते थे । यही दशा अन्ताराष्ट्रिय विधानकी है । कोई एक अधिपति नहीं है पर सभ्य राष्ट्रोंमें व्यवहार-साम्य है । अतः जिन नियमोंका सभी पालन करते हैं (या, कमसे कम, मान्य समझते हैं) उनको विधान कहनेमें कोई बड़ी आपत्ति नहीं है । व्यवहारमें उनका विधानवत् ही प्रयोग हो रहा है ।

यह ठीक है कि सभ्य राजोंने ही इन नियमोंका बीसों बार उल्लङ्घन किया है। संवत् १९१३ (सन् १८५६) में रूसने एक सन्धि-पत्र द्वारा यह वचन दिया कि कृष्णसागरमें रूसका जहाजी बेड़ा न रक्खा जायगा। इसके चौदह वर्ष पीछे फ्रांस और जर्मनीमें युद्ध छिड़ गया। रूसने इस अवसरपर यह घोषणा कर दी कि वत् १९१३ वाली सन्धि रूससर्कारको बाध्य नहीं कर सकती। तबसे रूसके बेड़े बराबर कृष्णसागरमें रहते हैं। इसके दूसरे साल लन्दनमें कई राजोंके प्रतिनिधियोंकी एक सभा की गयी। उसने यह घोषणा निकाली कि कोई राज अपने सन्धिपत्रोंसे इठात् मुकर नहीं सकता। इसको लन्दनकी घोषणा ☺ कहते हैं। रूसवालोंने भी इसपर हस्ताक्षर कर दिये पर उनको जो करना था वह तो कर ही चुके थे।

एक उदाहरण और ले लीजिये। संवत् १९३५ में बर्लिनमें एक सन्धि हुई जिसके अनुसार तुर्क साम्राज्यके दो प्रांत बोस्निया और हर्ज़ेगोवीना अस्थायी रूपसे आस्ट्रियाके अधीन रख दिये गये। यह निश्चय हुआ कि इनपर आधिपत्य तुर्कोंका ही रहे पर शासन आस्ट्रिया करे। संवत् १९६५ में अवसर पाकर आस्ट्रियाने इन प्रान्तोंको अपने राज्यमें मिला लिया। तीस वर्ष पहिलेका सन्धि-पत्र धरा रह गया। तुर्कोंने बहुत शोर मचाया पर उनकी सुनता कौन। अन्य राजोंने बीचमें पडकर उनको हर्जानेमें ३३० लाख रुपये दिला दिये। संवत् १९७१ में जर्मनीका बेल्जियमपर आक्रमण करना भी सन्धिपत्रके विरुद्ध था। इस प्रकारके और भी कई उदाहरण हैं पर इनसे अन्तराष्ट्रिय विधानका अनस्तित्व सिद्ध नहीं होता। चोर, डाकू, जुआरी नित्य ही अवैध कार्यवाही किया करते हैं पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि फौजदारीका क़ानून ही नहीं। सभ्य राजोंका व्यवहार ही आज्ञाका काम देता है।

अब रहा दण्डका प्रश्न । यह ठीक है कि कोई ऐसा सर्वप्रधान अधिपति नहीं है जो दण्ड दे, पर नियमोल्लङ्घन करनेवालोंको दण्ड भी मिलही रहता है । विरोधी लोकमत ही बड़ा भारी दण्ड है । अब वह समय नहीं है कि राजे महाराजे लोकमतकी परवाह न करके अपनी महत्त्वाकांक्षाको तृप्त करनेके लिये युद्ध ठान लें । अब तो प्रत्येक सरकारको अपनी जनताको सन्तुष्ट रखना पड़ता है । यदि प्रजा विरुद्ध हो तो रुपया मिल ही नहीं सकता । इसके अतिरिक्त परराष्ट्रोंके लोकमतका भी ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि युद्धके समयमें परराष्ट्रोंसे ही युद्धसामग्रि मील लेनी पड़ती है और ऋण लेना पड़ता है । इसी लिये जब आजकल कोई युद्ध होता है तो प्रत्येक पक्ष अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेका पूरा पूरा प्रयत्न करता है । अन्तराष्ट्रिय विधानकी अवहेलना करनेमें करोड़ों रुपयो और लाखों प्राणोंके खोनेकी आशङ्का रहती है । ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें या तो किसी दुर्बल राजके विरुद्ध अवैध कार्यवाही की गयी है या ऐसे समयमें काम किया गया है जब प्रबल राज ऐसे ऋणोंमें फँसे थे कि उनको प्रतिकार करनेका अवकाश न था । भविष्यत्में सम्भवतः ऐसा न हो सकेगा ।

यहाँपर हम इस प्रश्नपर भी विचार कर लेंगे कि अन्तराष्ट्रिय विधानका कर्तव्याकर्तव्य शास्त्रसे क्या सम्बन्ध है । कुछ आचार्योंका कहना है कि यह विधान इसी शास्त्रकी नींवपर अन्तराष्ट्रिय बना है । उनकी धारणा है कि न्याय और औचित्य विधानका सम्बन्धी कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जिनको सभी राष्ट्र कर्तव्याकर्तव्य स्वभावतः मानते हैं । इन्हीं सिद्धान्तोंके आधारपर शास्त्रसे सम्बन्ध पारस्परिक व्यवहारके नियम बनाये गये हैं । यह मत पूर्णतया समीचीन नहीं है । वस्तुतः अन्तराष्ट्रिय विधान अर्थात् व्यावहारिक नियमोंको किसीने बैठकर बनाया

नहीं है। उनकी दृशा ठीक व्याकरणके नियमोंकी सी है। लोग कहते हैं—रामने रावणको मारा, मैंने देखा, भूखने सताया, इत्यादि। वैयाकरण देखता है कि इन सब वाक्योंमें कर्त्तापदमें 'ने' वर्तमान है। बस, वह लिख लेता है कि अमुक प्रकारके वाक्योंमें प्रथमा विभक्तिका प्रत्यय 'ने' होता है। इस नियमको वह बनाता नहीं। बोलने वालोंकी परिपाटी देखकर जान लेता है। इसी प्रकार जो मनुष्य स्वतंत्र राजोंके पारस्परिक व्यवहारपर दृष्टि डालता है उसे ज्ञात हो जाता है कि यह राष्ट्र कुछ नियमोंका पालन करते आये है। न वैयाकरण इस बातके पीछे पड़ता है कि 'ने' कहाँसे आया, न अन्ताराष्ट्रिय विधानका विद्यार्थी इस बातकी जाँच करनेके लिये विवश है कि यह नियम कहाँसे आये। दोनों व्यावहारिक शास्त्र हैं और व्यवहार ही उनका मूल है। पारस्परिक व्यवहारके नियम अच्छे या बुरे जैसे भी हैं, उनके समुच्चयको अन्ताराष्ट्रिय विधान कहते हैं।

व्याकरणसे एक ओर भी समानता है। वैयाकरण नियमोंका कर्त्ता तो नहीं है पर वाक्परीक्षक अवश्य है। जो मनुष्य प्रचलित परिपाटीके प्रतिकूल बोलता है उसका वाक्प्रयोग असाधु कहलायगा। 'रावणको रामने मारा' साधु प्रयोग है, पर 'रावणको राम मारा' असाधु प्रयोग है। इसी प्रकार यद्यपि अन्ताराष्ट्रिय नियमोंका कोई रचयिता नहीं है तथापि जो राज प्रचलित पद्धतिके अनुसार व्यवहार नहीं करता उसकी वाक्यवाही 'अवैध' कहलाती है। जब दो राजोंमें मतभेद हो जाता है तो प्रत्येक यह दिखलानेका प्रयत्न करता है कि दूसरेने अन्ताराष्ट्रिय विधानकी अवहेलना की है। अतः इससे यही सिद्ध होता है कि अन्ताराष्ट्रिय विधानका कर्त्तव्याकर्तव्य शास्त्रसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

पर एक बात है। यदि इन प्रचलित नियमोंपर दृष्टि डाली जाय तो ऐसा देख पड़ेगा कि इनमेंसे अधिकांश न्याय्य और

युक्तिसङ्गत है। इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि किसीने धर्मशास्त्रको सामने रखकर इनकी सृष्टि नहीं की है पर मनुष्य प्रायः न्यायप्रिय है और उसका अनुभव उसे युक्तिसंगत और न्याय व्यवहारकी ओर झुकाता है। इसलिये व्यावहारिक नियम नैतिक सिद्धान्तोंके प्रायः अनुकूल होते हैं। इतना ही नहीं। आजकल लोगोंको इस बातका अनुभव हो गया है कि कोरी स्वार्थबुद्धि हानिकारक होती है। इस लिये यथासम्भव इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि न्याय और नीतिकी अवहेलना न की जाय। न्याय और नीतिकी परिभाषा सर्वथा निर्विवाद नहीं है, फिर भी सभ्य राष्ट्रोंमें इस विषयमें बहुत कुछ ऐकमत्य है। इसी लिये कुछ आचार्योंका कहना है कि अन्तराष्ट्रिय सदाचार (इण्टरनैशनल मोरैलिटी) कल्पित नहीं, प्रत्युत सत्य वस्तु है और हमको यह कहनेका अधिकार है कि अमुक काम सदाचारके अनुकूल है या प्रतिकूल।

वैयक्तिक जीवनसे इस बातका उदाहरण मिल सकता है। जाल फरेब करना या किसी लिखे इक्रारनामेसे मुकर जाना अपराध है। सरकारी न्यायालयोंमें इनके लिये दण्ड दिया जाता है। पर झूठ बोलना किसी क़ानूनमें मना नहीं है। झूठेको न कोई अपराधी कह सकता है, न दण्ड दिला सकता है। पर हम झूठेको अच्छा नहीं समझते। हम झूठ बोलनेको पाप कहते हैं और सदाचारविरुद्ध समझते हैं। इसी प्रकार लिखे सन्धिपत्रसे मुकर जाना तो अन्तराष्ट्रिय विधानकी दृष्टिमें अपराध है पर किसी राष्ट्रकी दुर्बलतासे अनुचित लाभ उठाना (जैसा कि बहुतसे राष्ट्र चीन, फारस, रूस आदिमें करनेका प्रयत्न कर रहे हैं) अवैध नहीं है। पर इसको, या इसके ऐसे दूसरे कामोंको, कोई अच्छा नहीं कहता। यह अपराध तो नहीं है पर अन्तराष्ट्रिय सदाचारके विरुद्ध है। कहनेका

तात्पर्य यह है कि कर्तव्याकर्तव्य शास्त्र अन्तराष्ट्रिय विधानका मूल तो नहीं है पर उसकी कसौटी नि सन्देह है। आजकल उसका प्रभाव बढ़ता ही जाता है। अन्तराष्ट्रिय शील (कामिटी आव नेशन्स^ॐ) का क्षेत्र भी इससे मिलता जुलता है। आपसके व्यवहारमें राष्ट्र एक दूसरेके साथ कुछ ऐसी रीतियोंको बर्तते हैं जो विधान द्वारा बाध्य नहीं हैं। वैयक्तिक व्यवहारमें ही अतिथिसत्कार, बड़ों, बराबर वालों और छोटोंके साथ पत्रव्यवहार आदिकी पद्धतियाँ, साथ भोजन करते समयके उपचार आदि न तो किसी क़ानूनके भीतर है, न इनका पुण्यपापसे कोई सम्बन्ध है। ऐसी ही बहुतसी परम्परागत बातें राष्ट्रोंके बीचमें बर्ती जाती हैं। यह केवल सभ्यताकी परिचायक हैं। इन्हींको अन्तराष्ट्रिय शील कहते हैं।

अन्तमें यह भी देख लेना चाहिये कि अन्तराष्ट्रिय विधानका स्थानीय विधानोंसे क्या सम्बन्ध है। यह हम पहिले भी कह चुके हैं

कि अन्तराष्ट्रिय विधानका देशोंके भीतरी शास-
अन्तराष्ट्रिय नसे कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी जैसे गाँवकी विधानका स्थानीय पद्धतियोंका कौटुम्बिक जीवनपर और देशके विधानोंसे सम्बन्ध विधानोंका ग्रामजीवनपर प्रभाव पड़े बिना

नहीं रहता, उसी प्रकार अन्तराष्ट्रिय विधानका सभ्य देशोंके स्थानीय विधानोंपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। यह प्रभाव लेखबद्ध नहीं है, कोई राष्ट्रविशेष इसको माननेपर विवश नहीं किया जा सकता। ऐसे बहुतसे अवसर उपस्थित होते हैं जब कि स्थानीय विधान और अन्तराष्ट्रिय विधानमें प्रत्यक्ष विरोध देख पड़ता है। कभी कभी ऐसे अवसर न्यायालयोंके सामने आते हैं। ऐसी स्थितिमें भिन्न भिन्न न्यायाधीशोंकी भिन्न भिन्न सम्मतियाँ हैं पर इंग्लैण्ड तथा अन्य कई देशोंका प्रचलित विचार यह प्रतीत

होता है कि अन्ताराष्ट्रिय विधान बाहरी व्यवहारमें मान्य होनेपर भी अनिवार्य नहीं है। कोई अन्ताराष्ट्रिय नियम कितना ही अच्छा क्यों न हो पर वह विधानोंको गणनामें तभी आ सकता है जब वह एक बार पार्लमेण्ट तथा अन्य व्यवस्थापक सस्था द्वारा स्वीकृत हो जाय। जब तक ऐसा न हो तबतक न्यायालयकी दृष्टिमें वह विधान नहीं है। इसी लिये ब्रिटिश साम्राज्यकी यह प्रथा है कि जब किसी उपयोगी अन्ताराष्ट्रिय नियमको अपने न्यायालयोंमें मान्य बनाना होता है तो उसे अपनी पार्लमेण्टके सामने रखकर स्वीकृत करा लेते हैं।

अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्रकी प्रथा भिन्न है। वहां यह सिद्धान्त मान लिया गया है कि अन्ताराष्ट्रिय विधानका स्थान स्थानीय विधानोंसे ऊंचा है और जहां दोनोंमें विरोध हो वहां अन्ताराष्ट्रिय विधानको ही श्रेष्ठ मानना चाहिये। विचार करने पर यही प्रथा समुचित जान पड़ती है। देशके प्रत्येक कानूनका ग्राम्य पञ्चायतकी बैठकमें स्वीकार किया जाना पागलपन है। अंश अंशीके बाहर नहीं जा सकता। स्थानीय विधानोंको अन्ताराष्ट्रिय विधानोंके सामने, जो कि सर्वदेशीय है, प्रधानता नहीं दी जानी चाहिये।

संक्षेप

इस अध्यायमें जो कुछ लिखा गया है उसको संक्षिप्त करके यों कह सकते हैं—

(१) कुछ ऐसे नियम हैं जिनका व्यवहार सभ्य राज एक दूसरेके साथ करते हैं।

(२) इन नियमोंका कोई नियत विधाता नहीं है और न कोई ऐसी अधिष्ठात्री शक्ति है जिससे दबावसे उनका पालन किया जाता है। राष्ट्रोंका अनुभव और उल्लङ्घन करनेपर प्रतिकूल लोकमत तथा युद्धकी आशङ्का उनको इन नियमोंको माननेके लिये प्रेरित करती है।

(३) बहुधा इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि व्यवहार युक्तिसङ्गत और सदाचारके अनुकूल हो ।

(४) अन्ताराष्ट्रिय विधान देशोंके स्थानीय विधानोंसे पृथक् है पर उसका स्थान स्थानीय विधानोंसे ऊँचा है, इस लिये जहाँ द्वैधा हो वहाँ वह स्थानीय विधानोंको बाधित कर देता है ।

दूसरा अध्याय ।

अन्ताराष्ट्रिय विधानका इतिहास ।

वस्तुस्थिति तो यह है कि अन्ताराष्ट्रिय विधान लगभग उतना ही प्राचीन है जितना कि मानवसमाज । मनुष्योंकी सृष्टि जब कभी और जिस किसी प्रकार हुई हो, वह कुछ दिनोमें पृथक् समूहोमें बँट गये । प्रत्येक समूहके अन्ताराष्ट्रिय स्त्री-पुरुष एक दूसरेके सम्बन्धी थे, इसलिये विधानकी प्राचीनता कुटुम्ब, गोत्र आदिका भेद होते हुए भी एक दूसरेको 'अपना' समझते थे । एक समूहवालों-के लिये दूसरे समूह वाले 'पराये' थे । 'जाति' 'राष्ट्र' आदि शब्द समूहके पर्याय हो सकते हैं । इन समूहोंका एक दूसरेसे कई प्रकारके काम पड़ते रहे होंगे । और कुछ नहीं तो लड़ाईके तो बहुतसे अवसर आते रहे होंगे । जङ्गल, आखेटभूमि, उर्वराभूमि, नदीतट आदिके लिये मुठभेड़ होती रहती ही होगी । पहिले पहिले तो किसी प्रकारके नियम रहे न होंगे पर धीरे धीरे कुछ नियम बन ही गये होंगे । जब दो समूह एक दूसरेके पड़ोसमें रहेंगे तो यह असम्भव है कि वह सदैव लड़ते ही रहें । बीच बीचमें शान्ति भी होगी । कभी कभी इस बातकी आवश्यकता भी पड़ जायगी कि दोनों मिलकर अपनी रक्षा किसी तीसरे प्रबल समूहसे करें । इस प्रकार युद्ध, शान्ति, सन्धि, आदिके नियम बन गये होंगे । जङ्गली देशोंमें भी ऐसे कुछ न कुछ नियम पाये जाते हैं । इनको अन्ताराष्ट्रिय विधानका मूल कह सकते हैं । उदाहरणतः, दूत सर्वत्र अवध्य माना जाता है ।

भारत, आसुरदेश, (असीरिया), शलिदया, मिश्र, चीन और फारस पृथ्वीके अति प्राचीन सभ्य देश थे। इनके धर्म, शिक्षा, कलाकौशल व व्यापारने किसी समय बड़ी उन्नति प्राचीन सभ्य की थी। फलतः, इनको अपने व्यवहारमें अन्तः-समाज राष्ट्रिय नियम बर्तने ही पड़ते थे। एक ओर तो इन्हे आपसमें सम्बन्ध रखना होता था, दूसरा ओर अपने पड़ोसकी असभ्य जातियोंसे काम पड़ता था। भारतको ही लीजिये। आर्यनरेशोंको कई प्रकारके अन्तराष्ट्रिय व्यापार करने पड़ते थे। एक ओर तो उनके आपसके व्यवहार, क्योंकि सारे भारतमें एकछत्र राज्य तो था नहीं। दूसरी ओर आसुर, चीनी, मिश्री जातियोंसे काम पड़ता था। तीसरी ओर भारतकी अर्द्ध सभ्य द्रविड़ जातियाँ थीं और चौथी ओर पूर्णतया असभ्य कोल, भील, गोंड आदि थे। यह तो असम्भव था कि आर्यगण नित्य सबसे लड़ते रहते। इसलिये उनको कई प्रकारकी सन्धियाँ तथा शान्ति-मूलक नियम बर्तने पड़ते थे। इतना ही नहीं, लड़ाई तकके लिये नियम थे। यदि ऐसा न होता तो आर्यजाति कबकी लुप्त होगयी होती। इन नियमोंके अनुसार जो कुछ होता था उसे धर्मयुद्ध कहते थे। आर्यों की सभ्यताके प्रभावसे दैत्य और राक्षस तक इन नियमोंका पालन करते थे। हमको इन नियमोंका ज्ञान स्मृतियों, इतिहासों, पुराणों तथा नीतिग्रन्थोंसे होता था। उदाहरणके लिये कौटिलीय अर्थशास्त्रका कुछ अंश परिशिष्टमें सानुवाद उद्धृत किया गया है। आर्योंके नियम अत्यन्त उदार थे। विजित शत्रुओंके राज्य प्रायः लौटा दिये जाते थे। शत्रुकी प्रजाको न तो प्राणोंका भय होता था, न लूट-मारका। दास रखनेकी प्रथा अवश्य थी पर दासोंके साथ दुर्व्यवहार नहीं हो सकता था।

परन्तु यहाँ हमको यूरोपकी ओर अधिक ध्यान देना है क्योंकि वर्तमान अन्ताराष्ट्रिय विधानकी उत्पत्ति और वृद्धि यूरोपमे ही हुई है। यूरोपके सभ्य देशोंमें यूनान प्राचीनतम है। यूनान उसको मिश्रके साक्षिभ्यसे भी बहुत कुछ लाभ पहुँचा होगा। यूनान कई राज्योंमें विभक्त था। इन राज्योंमें कभी कभी भीषण युद्ध होता था। परन्तु इनको यह बात विस्मृत न थी कि इन सब राज्योंकी जनता एक ही जातिकी थी, एक ही भाषा बोलती थी, एक ही धर्मको मानती थी। यह लोग अपनेको हेलेनीज और दूसरोंको बार्बेरियन (बर्बर = अनाथ्य) कहते थे। कोई यवन (यूनान-निवासी) कैसा ही बुरा क्यों न हो, वह सारे संसारके बर्बरोंसे श्रेष्ठ था। अस्तु ऐसे विद्वान्की भी धारणा थी कि ईश्वरने बर्बरोंको इपी लिये उत्पन्न किया है कि वह हेलेनीजके दास होकर रहें। इन विचारोंका परिणाम यह था कि यवन दो प्रकारके अन्ताराष्ट्रिय नियमोंको बर्तते थे, एक आपसमे, दूसरे बर्बरोंके साथ। जो नियम आपसमे बर्ते जाते थे वह उदार और सभ्य थे, जो बर्बरोंके साथ बर्ते जाते थे वह अनुदार और क्रूर थे।

यूनानके पीछे रोम यूरोपीय सभ्यताका केन्द्र हुआ। वह सैकड़ों वर्ष तक इस पदपर आरूढ़ रहा। यद्यपि कलाकौशल, काव्य, नाटक, दर्शनमे यूनानने बहुत उन्नति की थी रोम परन्तु राजनीति, शासन, सैन्ययोजना, विधान आदिमे रोमको यूरोपका आचार्य कहना अत्युक्ति न होगी। विधानके अन्य अंगोंकी भांति अन्ताराष्ट्रिय विधानने भी रोममें ही जड़ पकड़ी

रोमका ऐतिहासिक अनुभव यूनानसे भिन्न था। पहिले तो उसे इटलीके राज्योंसे लड़ना पड़ा। इन राज्योंके निवासी कई बातोंमें रोमन लोगोंसे मिलते जुलते थे पर एक बात जो यूनानमें

थी वह यहाँ न थी। यूनानका देश छोटा था अतः यवन राज्य बहुत पास पास थे। इसके अतिरिक्त यूनानके लोग कुछ विशिष्ट देव-देवियोंकी पूजाके लिये तथा एकाध और अवसरोंपर एकत्र हुआ करते थे। इससे उनमें राज्यभेद होनेपर भी भाईचारा था। इटलीमें दोमेंसे एक भी बात न थी, इसलिये रोमको इन इटालियन राज्योंके साथ भी परायों जैसा ही बर्ताव करना पड़ा। दक्षिणमें प्रबल कार्थेज राज्य था। इससे रोमको कई बार लड़ना पड़ा। एक बार तो जानके लाले पड़ गये। उत्तर और पश्चिममें असभ्य फ्रैक, गाल, केल्ट आदि जातियाँ थीं। रोमने इनमेंसे कईयोंको जीता पर इनके भीतरी प्रबन्धमें हस्तक्षेप करना उचित न समझा। बहुधा इनके मरेश करद बना कर छोड़ दिये गये। जो प्रान्त पूर्णतया रोमन साम्राज्यमें मिला लिये गये उनपर रोमन प्रान्ताधीश शासन करते थे। रोम दक्षिण और पूर्वमें, यवन, यहूदी और मिश्री ऐसी सभ्य जातियोंपर राज्य कर रहा था। इसलिये रोममें कुछ अन्ताराष्ट्रिय नियमोंका बन जाना स्वाभाविक था।

इन नियमोंको अन्ताराष्ट्रिय विधान नहीं कह सकते। अन्ताराष्ट्रिय विधान तो तब होता जब रोमको अपने बराबर वालोंसे काम पड़ता। जिन दिनों रोमके साम्राज्यकी वृद्धि राष्ट्रोंका विधान हो रही थी उन दिनों रोमने भी प्रायः यूनानकी नीतिका ही पालन किया था। विदेशियोंके साथ किसी विशेष सभ्यताके बर्तावकी आवश्यकता न समझी जाती थी, केवल समयोचिततापर दृष्टि रहती थी पीछेसे साम्राज्यके स्थापित हो जानेपर तीन परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई।

क-कभी कभी रोम और उसके अधीनस्थ किसी राज्य या जातिमें मतभेद हो जाता था। दोनों पक्ष बराबरके न थे। रोम अधिपति था इसलिये उसकी आज्ञा मान्य थी पर गिर्य मनमानी

आज्ञा देना नीतिसम्मत न होता । इसलिये ऐसे अवसरोंके लिये कुछ व्यावहारिक नियमोंका पालन होने लगा ।

ख-कभी कभी दो अधीनस्थ राज्यों या जातियोंमें मतभेद और कलह खड़ा हो जाता था । इनको आपसमें लड़ने-की अनुज्ञा तो थी ही नहीं, दोनोंको रोमका निर्णय स्वीकार करना पड़ता था । ऐसे अवसरोंके लिये भी कुछ व्यावहारिक नियम बन गये थे ।

ग-सबसे महत्त्वके वह अवसर थे जब एक रोमन और एक अरोमनमें दीवानी या फौजदारीका झगड़ा हो जाता था । दीवानीके झगड़े विशेष महत्त्वके थे । रोमका विधान 'नागरिक विधान' (जस सिविली*) कहलाता था पर रोमके बाहर यह प्रचलित न था । इससे बड़ी कठिनाई पड़ती थी । यदि रोमन विधानके ही अनुसार निर्णय किया जाता तो बाहर वालोंके साथ अन्याय होता अतः रोमन विधायकोंने एक युक्ति निकाली । उन्होंने इटली और उसके आसपासके देशोंके विधानों और रीतियोंका अनुशीलन करके एक विधान संग्रह बनाया जिसे 'राष्ट्रोंका विधान' (जस जेंशियमा†) कहते थे ।

यह भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके विधानोंके आधारपर बना था, इसलिये इसे उन विधानोंका महत्तम समापवर्तक कह सकते हैं । इसके अन्तर्गत वह विधान थे जो न्यूनाधिक रूपमें सर्वत्र मान्य थे । इस विधान-संग्रहसे उन्हीं अवसरोंपर काम लिया जाता था जब कि वादी प्रदिवादी दोनों अरोमन हो या उनमेंसे एक अरोमन हो, क्योंकि रोम वाले अपने नागरिक विधानको पवित्र समझते थे और परस्पर व्यवहारमें उसे ही बर्तते थे । धीरे धीरे राष्ट्रोंके विधानने आगे पाँव बढ़ाया । उससे सिद्धान्त इतने न्याय्य प्रतीत

*Jus civile

† Jus Gentium

होने लगे कि नागरिक विधानपर भी उसकी छाया पड़ने लगी। या तो वह इतना तुच्छ समझा जाता था कि केवल असभ्य जातियाँ ही उसकी पात्र थीं या उसने रोमके निजी विधानका ही रूप परिष्कृत कर दिया। इस 'जस जेशियम' को कई अंशोंमें वर्तमान अन्ताराष्ट्रिय विधानका पूर्व रूप कह सकते हैं।

समय पाकर इसको एक और नाम या विशेषण दिया गया। रोमन शास्त्रियोंकी विचारधाराने यह रूप धारण किया कि जब यह विधान एकदेशीय नहीं वरन् सर्वराष्ट्रमान्य है तो यह उन विधानों, नियमों तथा प्रथाओंकी अपेक्षा जो किसी एक समाजमें ही प्रचलित है अधिक स्वाभाविक होगा। अतः वह इसको 'प्राकृतिक विधान' (जस नैचुरेली) भी कहने लगे।

एक दिन रोम साम्राज्यका भी अन्त हो गया। उसका पश्चिमी भाग कई छोटे बड़े स्वतन्त्र राज्योंमें बंट गया, पूर्वी भागपर अब भी एक रोम जातीय सम्राट् शासन करता था। रोमन साम्राज्यके इस पूर्वीय साम्राज्यकी राजधानी कन्स्तान्टिनियाँ थी। बिभ्रस होनेके इस समयको यूरोपियन इतिहासका तमोयुग पिछेका काल कहते हैं। चारों ओर घोर विप्लव छाया हुआ था। न कोई नियमको देखता था, न न्यायको पूछता था। बीचमें कुछ कालके लिये फिर अधिकार केन्द्रीभूत हुआ। पोपने जर्मनीके सम्राट् को 'रोमन सम्राट्' की उपाधि दी। अर्म और राजनीतिके मेलने उद्दण्डताको कुछ कम किया। पर यह बात भी बहुत दिनों तक न निभ सकी। मेल टूट गया। साम्राज्यका नाममात्र अवशिष्ट रह गया। उसके कई टुकड़े हो गये। इंग्लैण्ड तो पृथक् था ही, फ्रांस, आष्ट्रिया, हंगरी भी पृथक् हो गये। स्वयं जर्मनीमें कई छोटे बड़े राज्य थे। यही दशा इटलीकी थी।

⌘ Jus Naturale (Law of Nature)

पोलैण्ड, स्वीडन और रूसका बल बढ़ रहा था। उधर नैर्क्रत्य कोणपर स्पेन अत्यन्त समृद्ध हो गया था। यह तो राज्योंका नाम-कीर्तन हुआ। प्रत्येक राज्यमें कई बड़े बड़े सामन्त (जागीरदार) थे। यह अपनी जागीरोंमें राजसी ठाटसे रहते थे। सामन्त सामन्तका शत्रु था, राजा राजाका शत्रु था। इस झगड़ेमें प्रजा बेचारी पिसी जाती थी। दीनोंका कोई सहायक न था। नरेश अपने अपने स्वार्थ या वैर-परिशोधके लिये लड़ाइयां ठान देते थे फिर चाहे कोई जीते, कृषक और व्यापारी लूटे मारे जाते थे, स्त्रियोंके साथ अत्याचार होता था और देश उजाड़े जाते थे। इस महा भन्धकारके समयमें केवल एक प्रदीप टिमटिमा रहा था। ईसाई धर्म इन नरपशुओंकी कुछ रोक-थाम करता था। बहुतसे धर्माभ्यक्ष स्वार्थी और विषयी हो गये थे पर धर्मका आतङ्क वही था। किसी नरेश-को यह साहस न होता था कि प्रत्यक्ष रूपसे पोपकी अवज्ञा करे। यह ठीक है कि पोप तथा उनके अनुयायी भी बहुधा नरेशोंसे मिल जाते थे पर उनको यह अभीष्ट न था कि नरेश बहुत बलवान हो जायँ, इसलिये वह समय समयपर बीचमें पड़कर प्रजाकी रक्षा भी कर देते थे। मार्टिन लूथरने पोपके मार्गमें भी एक अड़-चन डाल दी। उन्होंने प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदायको जन्म दिया। अब झगड़े और बढ़े। धार्मिक द्वेषने उनको और दुःसाध्य बना दिया। उसपर बिपत्ति गढ़ थी कि अब कोई बीचमें पड़ने वाला भी न रहा।

यह ऐसा समय था जब कि अन्ताराष्ट्रिय विधानकी बहुत बड़ी आवश्यकता थी पर दुर्भाग्यवशात् इसका अस्तित्व नहीं के बराबर था। तीन प्रथकारोंने इस विषयपर पुस्तकें लिखीं। पहिली पुस्तक सं० १६३९ में प्रकाशित हुई। उसके लेखक बाल्थज़र अयला थे। उसका नाम डि ज्यूरे एट आफ़िसिइस बेलिसिस था।

दूसरी पुस्तक संवत् १६५५ में प्रकाशित हुई। उसके लेखक आल्बेरिकस जेण्टाइलिस थे। उसका डि ज्युरे बेलि लाइब्रि ट्रैसके नाम था। तीसरी पुस्तक सं० १६६७ में प्रकाशित हुई। उसके लेखक फ्रांसिस्को सुआरेज थे। उसका नाम था ट्रैक्टेटस डि लिजिबस एट डिओ लेजिस्लेटोरे। इन सब ग्रंथकारोंने इस महत्वपूर्ण विषयपर न्यूनाधिक प्रकाश डाला पर इनका प्रभाव इतना न पड़ा कि तत्कालीन राजनीतिक जगत्में कोई बड़ा परिवर्तन देख पड़ता।

भगवान्की कृपासे यह अभाव भी दूर हुआ। अन्ताराष्ट्रिय विधानके सच्चे आचार्यका जन्म उपर्युक्त पुस्तकोंमेंसे पहिली पुस्तकके प्रकाशित होनेके लगभग एक साल पीछे मोशिअस २७ चैत्र संवत् १६३९ को हुआ। उनका नाम ह्यूग वान ग्रूट था पर उनकी ख्याति ह्यूगो मोशिअस नामसे अधिक है। वह हालैण्डके निवासी थे। उन दिनों हालैण्ड-वाले अपनी धार्मिक तथा राजनीतिक स्वाधीनताके लिये स्पेनसे लड़ रहे थे। मोशिअसने युद्धकी आपत्तियाँ अपनी आँखोंसे देखी थीं। वह बड़े ही प्रतिभा-शाली व्यक्ति थे। थोड़े ही वयमें उनकी प्रसिद्धि हो गयी। वह सार्वजनिक कामोंमें भी भाग लेते थे। फलतः संवत् १६६५ में वे पकड़े गये और उनको आजन्म कैदका दण्ड दिया गया। तीन वर्ष पीछे उनकी स्त्रीने उनके छुटकारेकी युक्ति निकाली। वह पुस्तकोंके बहाने एक संदूकमें बन्द हो कर बाहर निकल आये। जेलसे भाग कर पेरिस पहुँचे। फ्रांसके अरेशने उनको कुछ वृत्ति देना स्वीकार किया पर रुपया स्यात्

❀De Jure Belli Librarius by Albericus Gentilis

†Tractatus de Legibus et Deo Legislatore by Francisco Suarez ‡Hug van Groot (Hugo Grotius)

ही कभी ठीक समयपर मिलता था। संवत् १६९२ में यह स्वीडनकी महारानीको औरसे फ्रांसमें राजदूत नियुक्त हुए। संवत् १७०२ में समुद्रमार्गसे कहीं जा रहे थे कि जहाज़ डूब गया। यह किनारे तो पहुँच गये पर स्वास्थ्य नष्ट हो गया। वही साल १३ श्रावणको इनका देहान्त हो गया।

जिस पुस्तकके कारण इनकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी उसका नाम था डि ज्यूरे बेलि ऐक पेसिस † (युद्ध और शान्तिका विधान)। वह संवत् १६७२ में प्रकाशित हुई। उन दिनों मोशि-अस बड़े कष्टमें थे। बर्बर्चोंके सामान्य भरण-पोषणका भी प्रबन्ध नहीं था, प्रकाशकसे उन्हें पारिश्रमिक स्वरूप २०० प्रतियाँ मिलीं। इनमेंसे वह बेचारे कुछको बेच पाये पर जो मूल्य मिला वह बहुत ही कम था।

पुस्तक छपते ही प्रसिद्ध हो गयी। केवल विद्वानोंने ही नहीं प्रश्रुत नरेशों और राजपुरुषोंने भी इसका आदर किया। स्वीडनका विजयी नरेश गस्टेवस ऐडोल्फस एक प्रति सदैव अपने पास रखता था। उसके प्रकाशनके पोछे उन दिनों सभी युद्धों और सन्धि-पत्रोंमें उसके सिद्धान्तोंका अनुसरण किया गया। उसने राजनी-तिक जगत्का कायापलट कर दिया। एक जगह उन्होंने लिखा है 'मैंने सारे ईसाई जगत्में युद्धविषयक ऐसी स्वेच्छाचारिता देखी जिससे कि जगली जातियाँ भी लज्जित होती थीं। छोटी छोटी बातोंपर या बिना किसी कारणके ही लड़ाई छेड़ दी जाती थी। जब एक बार युद्ध आरम्भ हो जाता था तो दैवी और मानवी विधानोंका इस प्रकार अनादर किया जाता था कि जैसे लोगोंको सभी प्रकारके अपराधोंके बेरोकटोक करनेकी आज्ञा मिल गयी हो।' उनको इस बातका श्रेय है कि यह बात जाती रही। सब

मनुष्योंकी प्रकृति सात्त्विक नहीं हो गयी पर बहुत सी कुरीतियाँ जो पृथ्वीको नरकतुल्य बनाये हुए थीं दूर हो गयीं ।

अब देखना यह है कि वह नयी शिक्षा क्या थी जो यूरोपके सामने रक्खी गयी । झूगो प्रोशिअसके उपदेशका सारांश यह था:

जिस प्रकार मानव व्यक्ति समाजके सदस्य हैं उसी प्रोशिअसका प्रकार व्यक्तिसमूह अर्थात् राष्ट्र भी समाजके सदस्य है । बिना समाजके मनुष्यका जीवन उपदेश

पशुओ जैसा हो जायगा । राष्ट्र-समाजके प्रत्येक सदस्यके कुछ स्वत्व और कर्त्तव्य हैं । यह अधिकार किसी राष्ट्रको नहीं है कि वह मनमाना आचरण करे । चाहे युद्ध हो, चाहे शांति, राष्ट्रोंका परस्परका व्यवहार अवैध और अनुचित कदापि न होना चाहिये । यह ठीक है कि न तो सब राष्ट्रोंपर कोई एक अधिपति है, न सबका कोई एक धर्मगुरु है कि जिसका आदेश सब मानें, पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि राष्ट्रोंके पास अपने आचरणके औचित्य तथा अनौचित्य जांचनेकी कसौटी नहीं है । एक कसौटी है । ईश्वरने प्रत्येक मनुष्य, कमसे कम प्रत्येक सभ्य मनुष्यके हृदयमें एक ऐसी शक्ति रख दी है जो उसे बतलाती रहती है कि क्या उचित है और क्या अनुचित । इस विवेकशक्ति या तर्क-शक्तिसे जो नियम सिद्ध होते हैं उनको 'जस नैचुरेली' (प्राकृतिक विधान) कहते हैं । सब राष्ट्रोंका परस्पर व्यवहार इसी प्राकृतिक विधानके अनुसार होना चाहिये । इस सिद्धान्तके अनुसार प्रोशिअसने बहुतसे व्यावहारिक नियम भी बतलाये । उनका उल्लेख यथास्थान होगा । उन्होंने यह भी दिखलाया कि यह नियम रोमके जस जैशियम (राष्ट्रोंके विधान) के अनुकूल थे ।

प्रोशिअसकी सफलताके तीन प्रधान कारण थे (१) उस समयके विद्वानोंकी सभी रोमन बातोंके प्रति बड़ी श्रद्धा थी । विधि-

विधानके विषयमें तो रोम एक मात्र आदर्श था। इसलिये जब प्रोशिअसने जिस जॉशियमके नामपर दुहाई दी तो ग्रोशिअसकी सारा विद्वद्बल उनकी ओर आ गया। (२) सफलताके प्राकृतिक विधानका नाम बड़ा हृदयग्राही था। कारण प्राकृतिक विधान क्या वस्तु है यह तो कोई सोचता न था पर लोग यह सुनते आये थे कि इस नामका कोई तत्त्व है जिसके प्रतिकूल चलनेसे मनुष्य मनुष्यतासे गिरकर पशुवत् हो जाता है। इस लिये जब प्रोशिअसने प्राकृतिक विधानको सदाचरणकी कसौटी बनाया तो सब ही उधर झुके। एक बात और थी। यदि प्राकृतिक विधानके नामपर प्रोशिअसने कोई बड़े आदर्श स्वरूप नियम उपस्थित किये होते जिनके पालन करनेमें बहुत स्वार्थत्याग और धार्मिकताकी आवश्यकता होती तो स्यात् लोग तत्पर न होते। पर ऐसा न करके उन्होंने वही नियम सामने रखे जो रोमन कालसे चले आते थे और अब भी यदा बड़ा पालित होते थे। सिद्धान्तकी दृष्टिसे इनका कोई विरोधी न था, भेद इतना ही हुआ कि अब प्रोशिअसने इनको अनिवार्य बतलाया। (३) लोग उच्छृङ्खलतासे ऊब गये थे। सभी ऐसा मार्ग ढूँढ़ रहे थे जिससे जीवनकी विकरालता कुछ कम हो। प्रोशिअसकी पुस्तकका निकल जाना काकतालीय लाभ हो गया।

यह तो सब मानते हैं कि प्रोशिअसने यूरोपियन जगत्का बड़ा उपकार किया पर आजकल 'प्राकृतिक विधान' के सिद्धान्तपर आक्षेप किया जाता है। यह कहा जाता है कि प्राकृतिक अन्ताराष्ट्रिय विधानका वास्तविक मूल राष्ट्रोंका विधान ऐकमत्य है। जिस परिपाटीको अधिकांश राष्ट्र स्वीकार कर लें वही अन्ताराष्ट्रिय विधान हो जायगा। यदि आज किसी कारणसे सभ्य राष्ट्रोंमें युद्धके बन्धियोंकी

नाक काट लेनेकी प्रथा चल पड़े तो यह भी अन्तराष्ट्रिय विधानके अन्तर्गत हो जायगी। उस समय जो राष्ट्र नाककाट लेगा वह कानूनके अन्दर' होगा। हाँ, यदि कोई राष्ट्र किसी दूसरे अग कटवाले तो उसका व्यवहार नि सन्देह अवैध होगा। अतः आपसके व्यवहारकी कसौटी कोई कल्पित प्राकृतिक विधान नहीं प्रत्युत राष्ट्रोंकी स्वीकृति है। यह आक्षेप न्याय्य है और एक प्रकारसे प्रोशियसने भी इसे मान लिया था क्योंकि उन्होंने जिन नियमोंके पालन करनेका आदेश किया वह वही थे जो अधिकांश राष्ट्रोंको-मान्य थे और जिनमेंसे कुछको रोमन विधायकोने बहुतसे राष्ट्रोंकी प्रथाओंका अनुशीलन करके स्थिर किया था।

दूसरा आक्षेप दार्शनिक है। मनुष्यके हृदय या मस्तिष्कमें किसी विशिष्ट विवेकशक्तिका होना असिद्ध है। आग सबको जलण लगती है, बर्फ सबको ठंढा लगता है, पर एकही काम सबको भला या बुरा नहीं लगता। किसी देशमें नर-मांस खाना भी बुरा नहीं समझा जाता, किसी समाजके लोग मांसमात्रको त्याज्य मानते हैं। सब राष्ट्रोंका पुण्य-पाप तथा कार्य-अकार्यका विचार एकसा नहीं है। अतः यह नहीं माना जा सकता कि ईश्वरने सबको कोई ऐसी शक्तिविशेष दे रखी हो जिससे उचित अनुचितका निश्चय हो सके। हाँ, यह ठीक है कि अधिकांश सभ्य राष्ट्र कुछ कामोंको अच्छा और कुछको बुरा मानते हैं। पर इससे किसी प्राकृतिक विधानका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। इन राष्ट्रोंका बुद्धिविकाश प्रायः एक सा ही हुआ है। सबने एक सी ही शिक्षा पायी है अतः इनके व्यवहारों और विचारोंमें भी समता है। यह हम अवश्य कह सकते हैं कि जो व्यवहार वर्तमान कार्यकार्य विचारके अनुकूल हैं वह उचित हैं, जो प्रतिकूल हैं वह अनुचित हैं। पर हम इन विचारोंको

प्राकृतिक नहीं कह सकते, न हमको इन्हें ईश्वर-प्रेरित कहनेका अधिकार है।

व्यावहारिक दृष्टिसे यह आक्षेप न्याय्य है पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि कोई ऐसा कर्ममार्ग हो ही नहीं सकता जो अचल हो। बाह्य क्रियाओंके रूपोंमें समय समयपर कार्यकार्य-भेद होते रहते हैं पर उनका एक ऐसा मूल है जो की सच्ची स्थिर और असन्दिग्ध है। वह मूल “तार्किक शक्ति” कसौटी नहीं है। तर्क तो अप्रतिष्ठित है। उस मूल, उस निश्चल तत्त्वका नाम है ‘आत्मज्ञान’। जो निष्ठा मनुष्योंको मोक्षोन्मुख ले जाती है वही सच्ची कर्मनिष्ठा, खोदे-खरे कर्मोंकी सच्ची कसौटी है। जो परिपाटी जीव जीवके परस्परके भेदको मिटानेमें समर्थ हो वही उचित परिपाटी है। जो विधान जितना ही ‘आत्मवत् सर्वभूतेषु’ के सिद्धान्तके अनुकूल होगा वह उतना ही ‘प्राकृतिक’ होगा।

मोक्षका अर्थ है छुटकारा, स्वातंत्र्य। स्वर्गसुख मोक्ष नहीं है। अतः जो कार्यप्रणाली मोक्षको आदर्श मानकर चलेगी उसमें यह पाँच गुण अवश्य होंगे—

वह सदैव इस बातको अपना लक्ष्य बनायेगी कि प्रत्येक राष्ट्र अधिकसे अधिक स्वाधीनताका उपभोग करे। इससे अराजकता नहीं फैल सकती। अराजकता तब फैलती है जब कि एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह दूसरोंकी स्वाधीनतामें विघ्न डालने चलता है, पर मोक्षमूलक कार्यप्रणालीका दूसरा लक्षण यह होगा कि प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रके बराबर माना जायगा। न कोई बड़ा होगा न छोटा।

युद्ध आदिके अकस्मात् छिड़ जानेपर भी यह सदैव स्मरण रक्खा जायगा कि दूसरोंको कमसे कम कष्ट दिया जाय। ‘आत्मनः प्रतिकूलानि मा परेषां समाचरेत्’, ही व्यवहारकी कुञ्जी होगी।

दूसरोंको जो कुछ दण्ड दिया भी जायगा वह प्रतिहत्साके भावसे नहीं वरन् उनके सुधारके उद्देश्यसे ।

प्रेम ही व्यवहारका आदर्श माना जायगा ।

अन्ताराष्ट्रिय विधान जीवोंको मुक्त नहीं बना सकता पर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है जिसमें राष्ट्र राजनीतिक और आर्थिक तथा मानसिक और नैतिक स्वाधीनताका उपभोग करे । इसका परिणाम व्यक्तियोंपर पड़े बिना नहीं रह सकता । अतः अन्ताराष्ट्रिय विधान वह परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है जिसमें जीवोंको शान्ति मिले और यदि वह चाहे तो अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकें । इस दृष्टिसे हम कह सकते हैं कि अन्ताराष्ट्रिय विधान जीवोंके सच्चे आध्यात्मिक कल्याणका एक अवान्तर साधन हो सकता है ।

अस्तु, यह तो दार्शनिक सिद्धान्तकी बात हुई । प्रोशिअसके पीछे व्यूफेण्डाफ, वैटेल, आदि कई विद्वानोंने इस विषयपर पुस्तकें लिखीं । कोई प्रोशिअसके मतसे सहमत हुआ, वर्तमान काल- किसीने विरोध किया । आजकल लोग 'प्राकृतिक विधान' की सत्ता माननेको प्रस्तुत नहीं हैं ।

विद्वानोंकी सम्मति यह है कि जिन जिन नियमोंका पालन हो रहा है वह सभ्य राष्ट्रोंके प्रथाओंके अनुसार बने हैं । इन प्रथाओंकी उत्पत्ति दर्शनशास्त्रके सिद्धान्त सामने रख कर नहीं हुई है । राष्ट्रोंको जिन बातोंमें सुविधा देख पड़ी है उन्हींका उन्होंने अवलम्बन किया है । लूटमारकी बात लीजिये । पहिले विजित देशकी प्रजा लूटी जाती थी और गाँवके गाँव जला दिये जाते थे । इसमें कई प्रकारकी असुविधाएँ होती थीं । जो आज विजेता है वही कल विजित हो सकता है, फिर उसके सिरपर भी वही आपत्ति आयेगी । इन्हीं सब अनुभवोंके कारण धीरे धीरे लूटमारकी प्रथा

डठ गयी। अब विजित देशमें लूट-मार न करना और नगर तथा गाँवोंको अग्निसात् न करना अन्ताराष्ट्रिय विधानका एक अङ्ग बन गया है। इसी प्रकार अन्य नियमोंकी भी सृष्टि हुई है। अतः जिस पद्धतिको सब या अधिकांश सभ्य राष्ट्र स्वीकार कर लेते हैं वही अन्ताराष्ट्रिय विधानके अन्तर्गत हो जाता है। ऐसे विधानको प्रोशिअस राष्ट्रोंका 'विहित विधान' (इंस्टिट्यूटेड लॉ*) और वैटेल 'सिद्ध विधान' (पॉजिटिव्ह लॉ †) कहते हैं।

परन्तु आजकल सभ्य देशोंमें बुद्धिका जैसा कुछ विकाश हुआ है उसके अनुसार मनुष्यकी विवेचनाशक्ति कुछ कामोंको काय्य अर्थात् अच्छा और कुछको अकार्य्य अर्थात् बुरा समझने लगी है। यह विवेचना-शक्ति अपनी तीव्र दृष्टि सर्वत्र डालती है। धार्मिक कृत्य, विवाहादि सस्कार, भोजनपान, सम्पत्ति विभाग, दण्डविधान, शासनपद्धति आदि जीवनके सभी अङ्गोंकी आलोचना की जाती है और जो बातें बुरी प्रतीत होती हैं उनके स्थानमें अच्छी बातोंके रखनेका प्रयत्न किया जाता है। इसी प्रकार, अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारके भी कुछ नियम तो अच्छे और कुछ बुरे कहे जा सकते हैं और जो बुरे हैं उनके स्थानमें अच्छे नियमोंसे काम लिये जानेका प्रयत्न किया जा सकता है। यह अच्छे-बुरेका निर्णय बुद्धि-विकाश-पर निर्भर है अतः जो नियम आज अच्छा लगता है सम्भवतः वही कल बुरा जँचने लगे पर प्रत्येक समयमें कुछ ऐसे नियम अवश्य होंगे जो सर्वथा बुद्धिसंगत प्रतीत होंगे। इन्हींके समूह-को प्रोशिअसके शब्दोंमें 'नैचुरल लॉ' (प्राकृतिक विधान)‡ और वैटेलके शब्दोंमें 'नेसेसरी लॉ' (आवश्यक विधान)§ कहते हैं।

* Instituted Law

† Positive Law.

‡ Natural Law (Grotius) § Necessary Law (Vattel)

कोई विधान हो जब तक वह लेख-बद्ध नहीं होता तब तक उसका रूप अ-निश्चित रहता है। केवल विद्वानोंकी पुस्तकोंमें काम नहीं चल सकता। इनका महत्त्व चाहे कितना अन्तराष्ट्रिय ही हो पर यह राजोंको बाध्य नहीं कर सकती। विधान समग्र राज उन्हीं लेखोंसे बाध्य होते हैं जिनपर उनके प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर होते हैं। ऐसे लेखोंको सन्धि-पत्र या समय-पत्र (कॉन्व्हेनेण्ट्स) कहते हैं।

सब सन्धियोंका महत्त्व एकमा नहीं होता। जो सन्धियाँ दो राजोंके आपसके झगड़ोंके मिटानेके लिये होती हैं उनमें स्यात् ही कोई ऐसी बात हो सकती है जो सबके कामकी हो। पर कभी कभी ऐसी सन्धियाँ होती हैं जिनमें कई बड़े राष्ट्र सम्मिलित होते हैं। ऐसे सन्धिपत्रोंमें सिद्धान्तकी बातें लिखी जाती हैं और ऐसे नियम बनाये जाते हैं जिनको माननेकी सभी सम्मिलित राष्ट्र प्रतिज्ञा करते हैं। ऐसे सन्धिपत्रोंके संग्रहको अन्तराष्ट्रिय विधान समग्र कह सकते हैं। इनमें जो बातें निश्चित होती हैं उनको प्रायः वह राज भी मान लेते हैं जिनके हस्ताक्षर नहीं होते। इस विषयपर एक और अध्यायमें भी विचार किया जायगा। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा। सन् १९२५ में पेट्रोग्रेडमें एक समयपत्र लिखा गया जिसको 'सेण्टपीटर्सबर्गकी घोषणा'† (उस समय रूसकी राजधानी पेट्रोग्रेडका नाम सेण्ट पीटर्सबर्ग था) कहते हैं। इसमें यह निश्चय हुआ कि अब युद्धमें ऐसी गोलियोंसे काम न लिया जाय जो शरीरके भीतर जाकर फूट जाती हैं, क्योंकि इनसे सिपाहियोंको व्यर्थका कष्ट होता है। इसपर पहिलेपहिले केवल १८ राजोंके प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर थे। पर आज इसको सभी राज मानते हैं। यह एक लेखबद्ध विधान हो गया है।

❖ Covenant

† The Declaration of St Petersburg, 1868

अब अन्तराष्ट्रिय विधानके लिये एक वस्तुकी कमी रह गयी, कोई निश्चित विधाता न था। आवश्यकता इस बातकी थी कि कोई ऐसी संस्था हो जो आवश्यक विधान बनाये अन्तराष्ट्रिय और जिसकी आज्ञाएं सर्वमान्य हो। ऐसी संस्था व्यवस्थापकसभा, सब राष्ट्रोंके मेलसे ही बन सकती थी क्योंकि हेग सम्मेलन कोई एक अधिपति तो है नहीं। दैव कृपासे यह अभाव भी पूरा हुआ।

रूसके जार द्वितीय निकोलस शान्तिप्रिय मनुष्य थे। उनको वर्तमान कालके युद्धोकी भीषणता और तत्सम्बन्धी आर्थिक अपव्यय देख कर दुःख होता था। इसलिये उन्होंने ८ भाद्र १९५५ (२४ अगस्त १८९८) को यह इच्छा प्रकट की कि सब राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंका एक महा-सम्मेलन हो जिसमें 'सच्ची और स्थायी शान्तिके स्थापित करने और सेना-वृद्धि घटानेके उपायों' पर विचार किया जाय। स्थायी सन्धि तो स्थापित हो नहीं सकी पर युद्ध-सम्बन्धी कई नियम बन गये। यह सम्मेलन संवत् १९५६ के वैशाखमें हेग (हालैण्डकी राजधानी) में हुआ। २६ राष्ट्रोंके प्रतिनिधि आये थे। सम्मेलनने कई उपयोगी नियम बनाये, जिनका यथास्थान कथन होगा। उठनेके पहिले प्रतिनिधियोंने कई ऐसे विषयोंका उल्लेख किया जो इस बार निर्णीत न हो सके थे और यह इच्छा प्रकट की कि दूसरी बार सम्मेलन करके इनपर विचार किया जाय।

दूसरा सम्मेलन भी हेगमें हुआ (१९६४)। इस बार ४४ राज्योंके प्रतिनिधि आये थे। इसमें भी कई आवश्यक बातें निश्चित हुईं और शेषके सम्बन्धमें यह इच्छा प्रकट की गयी कि तृतीय सम्मेलनमें उनपर विचार किया जाय। इसके दूसरे साल लन्दनमें एक सम्मेलन हुआ। इसमें समुद्र-युद्धसम्बन्धी कई आवश्यक प्रश्नोंपर विचार और निश्चय हुआ।

प्रसिद्ध अमेरिकन दानवीर स्वर्गीय श्री ऐण्ड्र्यू कार्नेगोने सम्मेलनके लिये हेगमे एक विशाल और सुसज्जित भवन भी बनवा दिया है ।

ऊपर जो संक्षिप्त वर्णन दिया गया है उससे विदित होता है कि हेग सम्मेलन एक प्रकारकी अन्ताराष्ट्रिय व्यवस्थापक सभा थी । सभी प्रधान राष्ट्रोंके प्रतिनिधि इसके सदस्य थे । कुछ ऐसे भी राष्ट्र थे जिनके प्रतिनिधि नहीं आये थे पर वह छोटे और अल्प-महत्त्वके थे । यह ठीक है कि जिस समयपत्रपर उनके हस्ताक्षर न थे उसको माननेके लिये वह बाध्य न थे पर इस बातकी बहुत ही कम सम्भावना थी कि कोई छोटा राज किसी ऐसे आचरणके करनेका साहस करेगा जो प्रमुख राजोंकी इच्छाके प्रतिकूल हो । तात्पर्य यह है कि हेगमे निर्धारित नियम सभी राजोंके मान्य थे चाहे उनके प्रतिनिधि वहां उपस्थित रहे हों, चाहे न रहे हों ।

हेग सम्मेलनके व्यवस्थापक सस्था होनेमे केवल दो त्रुटियाँ थीं । एक तो यह कि इसके अधिवेशन अनिश्चित थे । पहिला सम्मेलन १९५६ में हुआ, दूसरा आठ वर्ष पीछे १९६४ में, तीसरा स्यात् १९७२, ७३ तक होता पर महा-समरने ऐसा अवसर ही न दिया । व्यवस्थापक सभाकी स्थायी सस्था होनी चाहिये, यह नहीं कि जब सदस्योंकी इच्छा हुई तभी अधिवेशन हो गया ।

दूसरी त्रुटि इससे बड़ी थी । मान लिया कि बहुतसे उत्तम वृत्तम विधान बन गये पर यदि कोई राज उनको न माने तो उसके साथ क्या किया जाय ? सम्मेलनके पास कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जिससे वह किसी उच्छृङ्खल राजको दण्ड दे सके । उसके सदस्य राज पृथक् पृथक् चाहे जो करें पर स्वयं सम्मेलनके पास किसी प्रकारका बल न था ।

यूरोपीय महायुद्धने राष्ट्रोंकी आंखें खोल दीं। अधिक दोषी कौन था, यह हम नहीं कह सकते। पहिले बन्दूक किसीने चलायी हो पर अपराधी सब थे। अमेरिकाके राष्ट्रपति श्री वुडरो विल्सनने सोचा कि कोई ऐसा उपाय निकाला जाय जिससे भविष्यत्में युद्ध न हों या बहुत कम हों। राष्ट्रसंघ उन्हींके विचारोंका परिणाम है। जो लोग समाचारपत्रोंको पढ़ते रहते हैं वह उसके स्वरूपसे परिचित हैं। संघ राष्ट्रोंका एक संघ बन गया है। उसके समय-पत्रको राष्ट्र-संघका समय पत्र^३ कहते हैं। राष्ट्र-संघमें पृथ्वी के सभी प्रधान-राजोंके प्रतिनिधि हैं, पर विचित्र बात यह है कि जिन अमेरिकाके राष्ट्रपति विल्सनने इसकी नींव डाली वही इसका सदस्य नहीं है। कई कारणोंसे अमेरिकन सिनेटने सज़की सदस्यता अस्वीकार कर दी।

नियम यह है कि जिस राजका शासन स्थिर हो और संघके नियमोंका पालन करनके लिये तैयार हो वह सदस्य हो सकता है। जर्मनी, रूस और बल्गेरिया, जो मित्रदलसे लड़े थे, उस समय सदस्य हो सकते हैं जब इनके व्यवहारसे इस बातका विश्वास हो कि अब यह उन्मार्गगामी न होंगे। और जो कोई राज सदस्य होना चाहे वह सदस्योंकी दो-तिहाई सम्मतियोंसे चुना जा सकता है।

अमेरिकाके निकल जानेसे एक बड़ी हानि हुई है। संघ चार महास्यार्थी राजोंके हाथमें आ गया है। इनके नाम हैं ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जापान। इनको 'चतुर्महत्'[†] कहने लग गये हैं। यह अन्य सदस्योंको जैसा नाच चाहते हैं नचाते हैं।

❀Covenant of the League of Nations.

†The Big Four.

कितनी बातें यह आपसमें निश्चित कर डालते हैं जिनकी दूसरोंको रत्ती भर सूचना नहीं होती, फिर जब वह निश्चय संघकी बैठकमें रक्खा जाता है तो बड़ोंके अनुचित दबावमें पड़ कर सबको उसे स्वीकार करना होता है। अस्तु, संघके खुलनेके यह उद्देश्य बतलाये गये हैं—

“युद्ध न छेड़नेके कर्तव्यको स्वीकार करने, राष्ट्रोंके लिये खुले, न्याय्य और प्रतिष्ठित सम्बन्धोंको निश्चित करने, शासनोके व्यवहारमें अन्ताराष्ट्रिय विधानके नियमोंको दृढतापूर्वक राष्ट्रसंघके उद्देश्य आचरण-विधि बनाने, न्यायके स्थापित करने और सङ्गठित जनसमुदायोंके परस्पर व्यवहारमें सब सन्धि-जन्य कर्तव्योंको पूर्णतया पालन करने, के द्वारा अन्ताराष्ट्रिय सहयोगकी वृद्धि और अन्ताराष्ट्रिय शान्ति और रक्षाकी प्राप्तिके लिये ”❀

यहाँपर हम केवल उन्हीं धाराओंका भावार्थ देते हैं जिनका हमारे विषयसे विशेष सम्बन्ध है।

❀ In order to promote international co-operation and to achieve international peace and security by the acceptance of obligations not to resort to war, by the prescription of open, just and honourable relations between nations, by the firm establishment of the understandings of international law as the actual rule of conduct among governments and by the maintenance of justice and a scrupulous respect for all treaty obligations in the dealings of organized peoples with one another

पहली धाराके द्वारा संघके सदस्योंके प्रतिनिधियोंकी एक स्थायी समिति बनायी गयी और इसके लिये राष्ट्रसंघके समय एक स्थायी कार्यालय स्थापित करके स्थायी पत्रकी कुछ धाराएँ कार्यकर्ता नियुक्त किये गये ।

सातवीं धाराके द्वारा यह कार्यालय जेनीवा नगरमें खोला गया ।

बारहवीं धाराके द्वारा यह निश्चय हुआ कि यदि संघके दो या अधिक सदस्योंमें कोई ऐसा मतभेद उत्पन्न हो जाय जो आपसमें न तय हो तो वह संघकी स्थायी समिति (कौंसिल आव दि लीग[॥]) के सामने रक्खा जाय । समिति छ. महीनेके भीतर उसपर अपनी रिपोर्ट देगी । निर्णय करनेके लिये यथासम्भव पञ्च चुने जायेंगे । पञ्चोंको अपनी रिपोर्ट बहुत शीघ्र देनी होगी । यदि उभय पक्ष पञ्चोंके निर्णयको मान ले' तो ठीक ही है पर यदि वह न मानें तब भी निर्णयके प्रकाशित होनेके तीन मासके भीतर युद्ध न होगा ।

चौदहवीं धाराके द्वारा एक स्थायी अन्तराष्ट्रीय न्यायालय स्थापित किया गया ।

सोलहवीं धारा द्वारा यह निश्चय हुआ कि यदि संघका कोई सदस्य उपर्युक्त बारहवीं धाराका उल्लङ्घन करके युद्ध छेड़ दे तो यह माना जायगा कि वह संघके सभी सदस्योंसे लड़ना चाहता है । इसलिये सभी राज उससे सब प्रकारके व्यापारिक और आर्थिक सम्बन्ध तोड़ देंगे और अपनी अपनी प्रजाको उसकी प्रजासे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखने देंगे । इतना ही नहीं, इस बातका भी प्रयत्न किया जायगा कि जो राज संघके सदस्य नहीं है वह भी उसका बहिष्कार कर दें । स्थायी समिति यह भीनिश्चित करेगी कि उसके विरुद्ध सैनिक बलका किस प्रकार प्रयोग किया जाय ।

इस समयपत्रपर पहिले बेल्जियम, बोलिविया, ब्रिटिश सा-
म्राज्य, [और उसके पाँच प्रधान अंग अर्थात् कनाडा, आस्ट्रेलिया,
न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका और भारत (!)], चीन, क्यूबा,
ज़ेको-स्लोवेकिया, ईक्वेडोर, फ्रांस, यूनान, ग्वाटिमाला, हैटी, हजाज़
होण्डुराम, इटली, जापान, लाइबीरिया, निकारागुआ, पनामा,
पेरू, पोलैण्ड, पुर्तगाल, रूमानिया, सर्बिया, स्याम और युरुग्वेके
हस्ताक्षर थे ।

ऐसे प्रामाणिक पत्रको रद्दी काग़ज कहनेका साहस नहीं होता ।
इम ऊपर लिख चुके हैं कि अमेरिकाके निकल जानेसे सब अपने
आदर्शसे गिर गया है और चार स्वार्थी राजोंके
अविष्य हाथकी कठपुतली हो रहा है । परन्तु स्वार्थमूलक
मेल बहुत दिनों तक नहीं ठहरता । सम्भवतः
इन चारोंमें भी फूट होगी और तब न्याय और शान्तिको सिर
उठानेका अवसर मिलेगा ।

सबके उद्देश्य बड़े उत्तम हैं और समयपत्रकी धाराएँ ऐसी
हैं कि यदि उनके अनुसार सचमुच चला जाय तो स्यात भूमण्डलसे
युद्धका नाम ही मिट जाय । यदि पञ्च निष्पक्ष होंगे तो उनका
निर्णय इतना न्याय्य होगा कि सारा सभ्य ससार उसे मानेगा ।
जो राज उसे न मानकर लड़ने पर प्रस्तुत होगा वह समस्त
जगत्में अपकीर्त्तिका भाजन होगा और उसकी साख तथा प्रतिष्ठा
मिट्टीमें मिल जायगी । यदि वह लड़ना चाहे भी तो तीन महीने
तक ठहरना होगा । इतनेमें शत्रु भी बहुत कुछ प्रबन्ध कर लेगा
और सभ्य जगत्की सद्मानुभूतिसे लाभ उठानेका अवकाश पा
जायगा । नियमोंका उल्लंघन करना असम्भव होगा क्योंकि
ऐसा कोई राज नहीं है जो दस बीस राष्ट्रों द्वारा बहिष्कृत हो
कर भी अपना काम चला सके । फिर समस्त राजोंके संयुक्त सैनिक

बलका कौन सामना करेगा ? अन्तराष्ट्रिय न्यायालय भी बड़ी ही उपयोगी संस्था हो सकता है । पर यह सब बातें तभी होंगी जब प्रमुख राज अपने अपने क्षुद्र स्वार्थको छोड़ कर लोकहितका सकल्प करें । इसी साधनसे अन्तमें उनका भी भला होगा । यदि भगवान् राजो और राष्ट्रोंको ऐसी सद्बुद्धि दे तो जगतीतलपर इतनी शान्ति, समृद्धि और सुखका अनुभव हो कि स्वर्ग भी इसके आगे तुच्छ प्रतीत हो । खेद इस बातका है कि संघके स्थापित हो जानेपर भी उसका भविष्य अभी सुनिश्चित नहीं कहा जा सकता ।

तीसरा अध्याय ।

अन्तराष्ट्रिय विधानके पात्र ।

जिन लोगोंके लिये कोई विधान बनाया जाता है, जिन लोगोंके साथ वह बर्ता जाता है, वह उसके पात्र कहलाते हैं। अब देखना यह है कि अन्तराष्ट्रिय विधानके पात्र कौन लोग हैं। इस प्रश्नका आंशिक उत्तर तो पहले अध्यायमें दिया जा चुका है। यह विधान पात्रोंके भेद राजोंके बीचमें ही बर्ता जाता है। व्यवहार और सब आचार्योंके मतने यह भी निश्चय कर दिया है कि स्वाधीन अर्थात् पूर्ण प्रभुत्वयुक्त राज वस्तुतः पात्र हैं। यह उचित ही है। समाजके कामोंमें भाग लेनेका अधिकार उन्हीं लोगोंको होता है जो प्राप्तवयस्क हैं और किसी न किसी प्रकारके निष्पाप स्वतंत्र व्यवसायसे अपनी जीविका चलाते हैं। पागल, चोर, डाकू आदिको समाज कोई अधिकार नहीं देता। पर लडकोंको आंशिक अधिकार रहता है। वह न तो प्राप्तवयस्क होते हैं, न स्वतंत्र, पर बहुत सी बातोंमें उनका लिहाज किया जाता है। उनके अभिभावकोंके सिर निश्चित दायित्व होता है। इसी प्रकार कई अर्द्ध-प्रभु, पराधीन राज ऐसे हैं जो अन्तराष्ट्रिय विधानके अशत पात्र हैं। किसी किसी अवस्थामें यह विधान ऐसे समुदायों और व्यक्तियोंपर भी लागू होता है जिनको किसी दृष्टिसे 'राज' नहीं कह सकते। इस अध्यायमें इन सब भिन्न भिन्न प्रकारके पात्रोंका विचार होगा।

सबसे पहिले हम उन राजोंको लेते है जिनका पात्रत्व निर्विवाद है अर्थात् स्वाधीन राज । यहाँपर इन दोनों शब्दोंकी परिभाषापर विचार कर लेना आवश्यक है । राजनीतिशास्त्रका

एक बहुत बड़ा भाग इसी परिभाषापर विचार 'राज' शब्दका करता है । यहाँ हम शास्त्रार्थमें प्रवेश न करके वह अर्थ सामने रखना चाहते है जो प्रायः सर्व-
अर्थ

सम्मत है । पहिले विशेष्य अर्थात् 'राज' को लीजिये । 'राज उस राजनीतिक समुदायको कहते हैं जिसके अङ्ग* किसी एक ऐसे अधिकारीके अधीन हो जिसकी आज्ञाएँ उनमें से अधिकांश अनायास माना करते हों ।'

इस परिभाषामें कई महत्वपूर्ण शब्द है जिनका अर्थ भली भाँति समझ लेना चाहिये । जो समुदाय 'राजनीतिक' नहीं है वह राज नहीं कहला सकता । किसी धार्मिक सम्प्रदायमें चाहे एक करोड़ उपासक हों पर वह राज नहीं कहा जायगा । सब लोगोंका एक अधिकारीके अधीन होना आवश्यक है चाहे वह अधिकारी एक व्यक्ति हो या बहुतसे व्यक्तियोंका समूह । यह भी आवश्यक है कि अधिकांश मनुष्य उसको आज्ञा मानते हों । 'अधिकांश' इस लिये कहा गया कि प्रत्येक समुदायमें कुछ पागल, चोर, जुआरी (और कभी कभी साधु महात्मा) होते हैं जो अवज्ञा करते रहते हैं । इसके अतिरिक्त, कभी कभी कोई ऐसा राजनीतिक दल भी हो सकता है जो स्थापित सरकारकी अवज्ञा कर रहा हो । 'अनायास' शब्द भी ध्यान देने योग्य है । कभी कभी ऐसा हो सकता है कि कोई देशी या विदेशी किसी समुदायके लोगोंको पशुबलका प्रयोग करके दबा ले और उनमें अपनी

*जिन लोगोंके एकत्र होनेसे कोई समुदाय बनता है वह उसके 'अंग' कहलाते हैं ।

इच्छाके अनुसार काम कराये । ऐसा समुदाय राज नहीं कहा जा सकता । हां यदि सब लोग उस अधिकारीके अधीन रहना हृदयसे स्वीकार कर ले या कमसे कम बिना बलप्रयोगके ही उसकी बात मान लिया करे तो वह समुदाय 'राज' हो जायगा ।

यहाँपर यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दीमें जिस 'राज्य' शब्दका बहुधा प्रयोग किया जाता है उसके और 'राज'के अर्थमें भेद है । राज्य शब्द तीन अर्थोंमें प्रयुक्त हो 'राज्य' का अर्थ सकता है । (क) जो भूभाग किसी राजके अधीन हो (ख) जो भूभाग किसी नरेशके अधीन हो (ग) जितने दिनों तक कोई नरेश शासन करे । इस पुस्तकमें यह शब्द बराबर पहिले अर्थमें ही प्रयुक्त होगा । भारतमें अधिकांश राजोंके अधिकारी नरेश ही होते आये हैं इसलिये प्रायः (क) और (ख) में कम अन्तर प्रतीत होता है पर अन्य देशोंकी वर्तमान स्थिति देखकर अर्थ-भेद समझ लेना अच्छा है । यदि किसी राज्यके पैतृक प्रधान अधिकारीकी ओर संकेत करना होगा तो हम 'राजा' शब्दके स्थानमें नरेशका प्रयोग करेंगे ।

अब प्रधान शब्द 'राज' की परिभाषा तो हो चुकी, उसके विशेषणोंकी देखना है । 'स्वाधीन'के अर्थपर विचार करनेके पहिले हमको 'प्रभु' और 'प्रभुत्व'के अर्थको समझ 'प्रभुत्व'का अर्थ लेना चाहिये । यद्यपि इस विषयमें अनेक मत-भेद है कि राजके कर्तव्य क्या क्या हो सकते हैं, पर गोल शब्दोंमें इतना सब मानते हैं कि राजको चाहिये कि समुदायकी सर्वप्रकारेण रक्षा करे और उसकी उत्तरोत्तर उन्नति करे । इस कर्तव्यके पालनके लिये राजको समय समयपर नाना प्रकारके साधनोंसे काम लेना पड़ेगा । इन सब साधनोंसे काम लेनेके अधिकारको 'प्रभुत्व' कहते हैं । जिस राजको पूर्ण प्रभुत्व

प्राप्त है वह अपने समुदायके हितके लिये जब जो चाहेगा वह करेगा। वह अपने राज्यमें चाहे जैसे विधान बनाये, चाहे जैसे कर लगाये, राज्य क बाहर चाहे जिससे युद्ध छेड़ 'स्वतंत्र'का अर्थ दे, युद्धके अन्तमें चाहे जैसी सन्धि करे। तात्पर्य यह है कि वह किसी दूसरे राज (या समुदाय) की बात माननेके लिये बाध्य नहीं है। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जापान, अफगानिस्तान, आदि इस प्रकारके राजोंके उदाहरण हैं। ऐसे राजोंको पूर्ण प्रभु, स्वाधीन या स्वतंत्र राज ❀ कहने हैं।

ऐसे भा राज है जिनको पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त नहीं है। वह कई काम तो अपनी इच्छाके अनुसार कर सकते हैं पर अन्य बातोंमें उनको किसी दूसरे राजकी इच्छाके अनुकूल चलना पड़ता 'अशप्रभु'का अर्थ है। भारतके देशी राजोंको ही लीजिये। इनमें बड़ेसे बड़ा राज भी न तो किसीसे युद्ध कर सकता है न सन्धि। उसे ब्रिटिश राजका मुँह ताकना पड़ता है। हाँ, भीतरी शासन—जैसे शिक्षा, लगान, न्याय, इत्यादि—में इनको पूर्ण अधिकार है, यद्यपि शासनका रूप परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ऐसे राजोंको अर्द्ध-प्रभु † या अशप्रभु ‡ कहते हैं। कोई कोई इनको अर्द्ध-स्वतंत्र § कहते हैं पर विधानशास्त्र क आचार्योंकी रायमें यह सच्चा ठीक नहीं है, 'स्वातन्त्र्य अविभाज्य है' + ।

जो कुछ ऊपर कहा गया है उससे विदित है कि राजके प्रभुत्वका आश्रय या अधिष्ठान सारा समुदाय है। परन्तु यह असम्भव है कि प्रत्येक अवसरपर सारा समुदाय सब 'वृष्टप्रभु'का अर्थ काम करे। समुदायकी ओरसे अर्थात् उसके नामसे कुछ लोग काम करते हैं। साधारण बोलचालमें इनको ही (चाहे यह कोई एक व्यक्ति या नरेश हो या

❀ Independent States † Semi-Sovereign ‡ Part-Sovereign
§ Semi-Independent + Independence is indivisible

व्यक्तिसमूह अर्थात् पार्लमेण्ट हो) राजका प्रभु कहते हैं। इस सम्बन्धमें राजनीति शास्त्रमें 'दृष्टप्रभु' ❀ (नामिनल साव्हरन) शब्दका प्रयोग होता है।

हमारे कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि स्वतंत्र राज पूर्णतया स्वेच्छाचारी होते हैं। उनको कुछ तो अपने अपने समुदायके अङ्गोंके नैतिक, आर्थिक और धार्मिक विचारोंका स्वतंत्र राजोंकी लिहाज करना पड़ता है, कुछ अन्य राजोंके बला-स्वेच्छाचारितामें बलको देखना पड़ता है और कुछ सभ्य जगत्के रूकावटें लोकापवादसे भी डरते रहना पड़ता है। स्वाधीनताका अर्थ यही है कि किसी परराज-विशेषकी आज्ञाएँ नित्यमान्य न हों।

उपर्युक्त परिभाषाओंसे यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि स्वतंत्र राज किसे कहते हैं। पर केवल स्वतंत्र राज होना ही पर्याप्त नहीं है। अन्तराष्ट्रिय विधानकी पात्रताके लिये कुछ अवा-पात्रताके लिये न्तर गुण भी होने चाहिये। पहिले गुणका नाम आवश्यक अवा सभ्यता है। सभ्यताकी परिभाषा बहुत कठिन न्तर गुण है। भारतीय, चीनी, अंग्रेज अपने अपनेको सभी सभ्य समझते हैं, सभी अपनी सभ्यताको सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। इनके आचार-विचारमें बहुत अन्तर है। पर आज कल पाश्चात्य देशोंकी बन आयी है इसलिये सभ्यताका अर्थ पाश्चात्य ढङ्गकी सभ्यता हो रहा है। यह आवश्यक है कि जो राज अन्तराष्ट्रिय विधानसे लाभ उठाना चाहे वह न्यूनाधिक सीमा तक पाश्चात्य ढगपर चले। यह दशा सदैव नहीं रहेगी। पाश्चात्य सभ्यतामें घुन लग चुका है और अब स्यात् शीघ्र ही उसका अग्नि-संस्कार होगा।

दूसरा अवान्तर गुण राज्य है। यह सम्भव है कि कुछ अत्यन्त सभ्य मनुष्योंका समुदाय, जो किसी एक अधिकारीका अनन्य आज्ञाकारी हो, खानाबदोशोंकी भाँति एक स्थानसे दूसरे स्थानपर घूमा करता हो। ऐसा समुदाय विधानका पात्र नहीं माना जा सकता। पात्रताके लिये किसी निश्चित भूभागपर बसा रहना आवश्यक है। तीसरा गुण यह है कि जो पात्र बनना चाहे वह स्वयं अन्ताराष्ट्रिय विधानके नियमोंका पालन करे। चौथा गुण स्थायित्व है। यह तो किसी राज या अन्य मानव संस्थाके लिये नहीं कहा जा सकता कि वह चिरकाल तक रहेगी परन्तु जो राज पात्र बनता है उसकी परिस्थिति ऐसी होनी चाहिये जिससे कि उसके स्थायित्वकी आशा की जा सके। यह सम्भव है कि किसी गाँवके निवासी परम सभ्य हों और वह स्वाधीन भी हों पर यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि वह गाँव बहुत दिन तक स्वाधीन रह सकेगा। वह युद्ध या किसी अन्य प्रकारसे अवश्य किसी बड़े राजका टुकड़ा हो जायगा, अतः वह अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र नहीं हो सकता। इन सब बातोंपर विचार करके हाँलने पात्रके यह लक्षण बतलाये हैं—यदि किसी समुदायका उस भूमिपरके, जिसपर वह बसा हुआ है, सब मनुष्यों और वस्तुओपर समष्टिरूपसे निर्विवाद और अनन्य अधिकार है, यदि वह अपने बाहरी व्यवहारमें किसी अन्य समुदायकी इच्छाके अधीन नहीं है और अन्ताराष्ट्रिय विधानके नियमोंका पालन करता है और यदि उसके अस्तित्वके स्थायी होनेकी आशा की जासकती है, तो वह अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र है। ❀

❀ The simple facts that a community in its collective capacity exercises undisputed and exclusive control over all persons and things within the terri-

अन्ताराष्ट्रिय विधान इस बातपर दृष्टि नहीं डालता कि कोई समुदाय विशेष किस प्रकार पात्र हुआ। चाहे वह विद्रोह करके पृथक् हो गया हो, चाहे आपसके किसी प्रकारके सम्झौतेके कारण किसी बड़े राजसे पृथक् कर दिया गया हो, उसमें जब उपर्युक्त लक्षण होंगे तभी पात्र मान लिया जायगा। ❀

अन्ताराष्ट्रिय विधान उन राजोंके भीतरी प्रबन्धकी ओर दृष्टि नहीं डालता जो उसके पात्र हैं। चाहे उनमें किसी एक नरेशके हाथमें सारा अधिकार हो, चाहे नरेश और पार्ल-राजोंके दो मुख्य मेण्डमें अधिकार बंटे हों, चाहे नरेश ही ही वर्ग, निरवयव और न, अन्ताराष्ट्रिय विधान केवल इतना चाहता है कि सावयव राज कोई एक ऐसा अधिकार-केन्द्र हो जिसकी परराज नीतिको सारा राज मानता हो। फिर भी राजोंके मुख्य भेदोंको समझ लेना आवश्यक है। राजोंके दो मुख्य वर्ग हैं—

tory occupied by it, that it regulates its external conduct independently of the will of any other community and in conformity with the dictates of international law, and finally that it gives reason to expect that its existence will be permanent, are sufficient to render it a person in law

International Law by Hall—Chapter I

❀“International Law takes no cognizance of matters anterior to the acquisition of those marks (the marks of a state) and is, consequently, indifferent to the means which a community may use to form itself into a State”—Hall.

निरवयव और सावयव❧। जैसा कि नामसे ही प्रकट होता है, निरवयव राज वह हैं जो अकेले हैं अर्थात् जिनके टुकड़े नहीं हो सकते, जैसे फ्रांस, जापान, स्याम, नैपाल, अफ़गानिस्तान। इन राजोंको चाहे जितने प्रान्तोंमें बाँट दें, पर यह प्रान्त स्वतन्त्र नहीं होते और इनको किसी दृष्टिसे राज नहीं कह सकते। सावयव राज वह हैं जिनके कई अवयव हैं अर्थात् जो कई राजोंके मिलनेसे बने हैं। यह अवयव प्रान्त नहीं वरन् पृथक् पृथक् राज हैं जो किसी कारणसे मिलकर एक हो गये हैं। ब्रिटेन, अमेरिकाका संयुक्त राज, जर्मनी, सावयव राजोंके उदाहरण हैं।

सावयव राजोंके भी दो प्रधान भेद होते हैं, पूर्ण-संयुक्त और अपूर्ण-संयुक्त। पूर्णसंयुक्त राज वह हैं जिनके टुकड़े इस प्रकार मिळ गये हैं कि बाह्य नीतिकी दृष्टिसे उनकी सावयव राजोंके पृथक् सत्ताका लोप हो गया है। ब्रिटेनको लीजिये। दो भेद-पूर्ण संयुक्त उसके चार प्रधान भाग हैं, इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड, और अपूर्ण आयरलैण्ड, और वेल्स। इनके अतिरिक्त उपनि-संयुक्त राज वेश आदि भी हैं। पर बाह्य नीतिमें इन सबको मिला कर जो संयुक्त राज बना है उसीके नामसे सब काम होता है, पृथक् पृथक् टुकड़ोंके नामसे नहीं। अकेले इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड, वेल्स आदि अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र नहीं हैं, हाँ इनके मेलसे जो राज बन गया है, वह पात्र है। अपूर्ण संयुक्त राजोंमें यह बात नहीं होती। उनमें संयुक्त राज तो पात्र होता ही है, अवयव भा पात्र होते हैं। कई काम मिलकर होते हैं, कई काम अवयव पृथक् पृथक् कर लेते हैं। भारतमें मराठोंके इतिहाससे इसके बड़े अच्छे उदाहरण मिलते हैं। महा राष्ट्रसंघ

❧Unitary States and Composite States.

†Perfect Unions and Imperfect Unions.

एक अर्णसंयुक्त राज था। कई काम तो पेशवा सारे महाराष्ट्रकी ओरसे करते थे पर ग्वालियर, इन्दौर, बडौदा, नागपुर, आदि पृथक् पृथक् भी युद्ध और सन्धि कर सकते थे। इन अर्णसंयुक्त राजोंमें अवयवोंकी अन्ताराष्ट्रिय सत्ता बनी रहती है।

पूर्णसंयुक्त राजोंके तीन प्रधान भेद होते हैं, अलिङ्गसंयुक्त राज, व्यक्तिशेष संयुक्त राज और लिङ्गशेष संयुक्त राज *। यदि दो या

अधिक राजोंका इस प्रकार संयोग हो कि उनका

पूर्णसंयुक्त राजो- पृथक् अस्तित्व पूर्णतया मिट जाय, उनकी पृथक् के तीन भेद- पृथक् राजसत्ताका कोई लिङ्ग ही न रह जाय, तो अलिङ्ग संयुक्त, संयोगसे जो राज बनता है उसे अलिङ्ग संयुक्त राज व्यक्तिशेष संयुक्त कहते हैं। ब्रिटेन इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। और लिङ्गशेष पहिले इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड पृथक् पृथक् राज संयुक्त राज थे, दोनोंके पृथक् पृथक् नरेश थे, पृथक् पृथक् पार्लमेण्टें थीं। अब एक राज, एक नरेश, एक पार्लमेण्ट

है। भीतर बाहर एक शासन, एक सरकारकी आज्ञा सब मानते हैं। व्यक्तिशेष उन संयुक्त राजोंको कहते हैं जिनमें परराज विषयक बातोंमें तो अवयवोंको कोई अधिकार नहीं होता परन्तु आभ्यन्तर शासनमें वह स्वतन्त्र होते हैं और उनका पृथक् व्यक्तित्व बना रहता है। विनष्ट आस्ट्रिया-हंगरीका राज इसका उत्तम उदाहरण था। आस्ट्रिया और हंगरीकी पृथक् पृथक् पार्लमेण्टें थीं जो भीतरी शासनके सम्बन्धमें यथेच्छ नियम बनाती थीं। पर नरेश दोनोंका एक था, सेना एक थी, परराजनीति एक थी। बाहरी राजोंसे व्यवहार करते समय आस्ट्रिया-हंगरी एक राज था पर भीतरी शासनकी दृष्टिसे दो स्वतन्त्र राज थे। दोनों भागोंको अपनी स्वतन्त्रताका यहाँ तक ध्यान था कि सम्राटको हंगरी देशमें हंगरीकी भाषा मेग्यारमें बात

* Incorporate Unions, Real Unions, Federal Unions

चीत करनी पड़ती थी। लिङ्गशेष राज इन दोनोंसे भिन्न होते हैं। उनमें परराजनीति और बाह्य व्यवहार तो संयुक्त राजके हाथमें होता ही है, आभ्यन्तर शासनका बहुत बड़ा अंश भी उसीके हाथमें होता है। इसके दो उदाहरण स्वीजरलैण्ड और अमेरिकाके संयुक्त राज है। संयुक्तराजके अवयवभूत ४९ राज है। यह राज अपने अपने भीतरी शासनके सम्बन्धमें बहुत कुछ स्वतन्त्र है परन्तु पूर्णतया नहीं। भीतरी शासनके सम्बन्धमें भी बहुत से नियम और विधान संयुक्त राजकी सरकार ही बनाती है। इन राजोंकी परिस्थिति अलिङ्ग, जिनमें अवयवोंका अस्तित्व मिट जाता है, और व्यक्तिशेष, जिनमें उनका अस्तित्व पूर्णतया बना रहता है, के बीचमें है क्योंकि अवयवोंके राजत्वके लक्षण रहते तो हैं परन्तु बहुत संकुचित रूपमें।

अपूर्ण संयुक्त राजोंके भी दो भेद माने जाते हैं—आकस्मिक और संघ ॐ। जैसा कि नामसे ही प्रतीत होता है, आकस्मिक संयोग वास्त-

विक संयोग नहीं है। कभी कभी एक ही व्यक्ति

अपूर्ण संयुक्त दो भिन्न भिन्न देशोंका नरेश हो जाता है। ऐसी राजोंके दो भेद- दशामे उन दोनों देशोंमें आकस्मिक संयोग माना

आकस्मिक जाता है। पर सचमुच यह कोई संयोग नहीं और संघ है। दोनों देश पृथक् हैं और उनकी परराज-नीति

भी पृथक् हो सकती है। कुछ कालके लिये एक

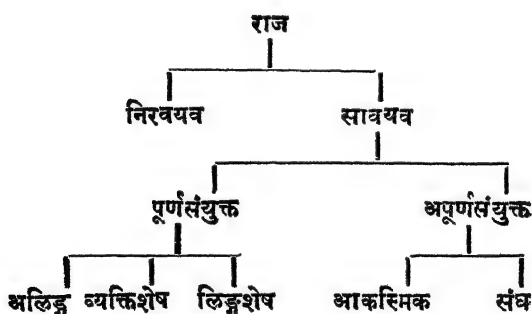
ही नरेश दोनोंपर शासन कर रहा है पर यह कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं है। संवत् १७७१ से १८९४ तक इंग्लैण्डका बादशाह हैनोवरका

इलेक्टर भी था पर दोनों देशोंमें सिवाय इस इतनी सी बातके और कोई एकता न थी। संघका उदाहरण हम पहिले दे चुके हैं। इस

समय कोई अच्छा उदाहरण है भी नहीं। भारतमें महाराष्ट्र संघके पहिले भी कई बार सघोंकी सृष्टि हो चुकी है। संघोंका रूप कुछ

लिङ्गशेष राजोंसे मिलता है पर दोनोंमे कई बड़े भेद है । लिङ्गशेष राजोंके अवयव आंशिक आभ्यन्तर प्रभुत्व रखते हैं । परन्तु बाह्य बातोंमें वह कोई नीति निर्धारित नहीं कर सकते । संघके अवयव आभ्यन्तर बातोंमें तो पूर्णतया स्वाधीन होते ही हैं, बाह्य व्यवहारमें भी उनका प्रभुत्व न्यूनधिक रहता है, या तो कुछ बाह्य व्यवहार पृथक् पृथक् और कुछ सम्पूर्ण सघकी ओरसे हाते हैं या यह कि किसी कार्य विशेषके लिये कुछ कालके लिये संघ बना लिया जाता है । उस कार्यको छोड़कर संघके अवयव जो चाहे और जैसे चाहे करें । युद्धके दिनोंमे ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, आदिका एक सघ बना हुआ था ।

यह तो प्रधान भेद हुए पर और भी कई प्रकारके संयुक्त राज हो सकते हैं । सुविधाके लिये यह भेद निम्न-लिखित वृक्षमें दिखला दिये गये हैं ।



इस प्रकार भेद भली भाँति स्मरण रखे जा सकते हैं ।

हम अल्पप्रभु राजोंकी परिभाषा पहिले ही कर चुके हैं । हमने बतलाया है कि इन राजोंको अन्तराष्ट्रिय विधानका पूर्ण पात्र नहीं

मान सकते, क्योंकि यह अपने बाह्य व्यवहारमें पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं होते। अल्पप्रभु राजोंको दो कोटियोमें विभक्त कर सकते हैं। पहिली

कोटिमें वह राज है जिनका प्रभुत्व अशत, किसी अल्पप्रभुराज और परराजके हाथमें चला गया है अर्थात् जो किसी अन्ताराष्ट्रिय परराजके अधीन हैं और उसकी इच्छाके अनुसार विधान, दो प्रकार-चलनेके लिये विवश है। दूसरी कोटिमें वह राज के अल्पप्रभु राज है जो पृथक् पृथक् तो पूर्णप्रभु हैं पर किसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये एक संघके अवयव बन गये हैं। अब बहुत सी बातोंमें इन सबके नामसे संघ ही बात करेगा, अतः इनके प्रभुत्वमें कमी आ गयी। पर कई विषयोंमें यह अवयव स्वतन्त्र हैं। उन विषयोंके सम्बन्धमें यह परराजोंसे यथेच्छ व्यवहार कर सकते हैं और सघ कुछ नहीं बोल सकता। इस दृष्टिसे संघ भी अल्पप्रभु है। आजकल इस प्रकारका कोई अच्छा उदाहरण नहीं है। भारतमें, जैसा कि हम पहिले भी लिख चुके हैं, महाराष्ट्र सघ अच्छा उदाहरण था। गत महासमरके पहले जर्मन साम्राज्य भी कुछ इसी प्रकारका उदाहरण था। सन्धि और युद्ध तो जर्मन राजसंघ (या साम्राज्य) की ओरसे ही निश्चित होते थे पर कुछ अन्य बातोंमें सघके अवयव अर्थात् प्रशा, बवेरिया, सैक्सनी, इत्यादि यूरोपके अन्य राजोंसे पृथक् पृथक् भी सम्बन्ध कर सकते थे। कभी कभी एक ही यूरोपीय राजके यहां सघके भी राजदूत जाते थे और अवयवोंके भी राजदूत जाते थे।

इतिहास बतलाता है कि ऐसे सघ स्थायी नहीं होते। कुछ दिनोंमें इनका लोप हो जाता है। या तो सघका बल बढ़ता जाता है और उसके अवयवोंका बल घटता जाता है यहां तक कि कुछ काल पा कर अवयवोंका पृथक् राजत्व नाममात्रको ही रह जाता है और सघ वस्तुतः एक लिङ्गशेष सयुक्त राज बन जाता है या संघ

टूट जाता है और उसका प्रत्येक अवयव एक निरवयव स्वतंत्र राज बन जाता है। जर्मनीमें धीरे धीरे पहिली परिस्थिति होती जा रही थी। राजसंघ अर्थात् साम्राज्यकी शक्ति तो बढ़ती जाती थी और पृथक् राजोंकी शक्ति घटती जाती थी। सम्भवतः कुछ कालमें उनकी वही परिस्थिति हो जाती जो इस समय अमेरिकाके संयुक्त राजोंकी है। दूसरी परिस्थिति भारतमें महाराष्ट्र संघकी हुई। संघ टूट गया और शिन्दे, होल्कर, गायकवाड, भोंसला, आदि सभी स्वतंत्र हो गये।

उन अंशप्रभु राजोंकी, जिनका प्रभुत्व अशत, किसी पर-राजके हाथमें चला गया है, समस्या भी अत्यन्त टेढ़ी है। इनके दो भेद किये जाते हैं, एक तो वह राज जो किसी पर-राजकी रक्षामें हैं, दूसरे वह जो किसी परराजके आधिपत्यमें हैं। दोनोंमें अन्तर यह बतलाया जाता है कि जो राज पहिले स्वतंत्र थे पर अब किसी कारणसे अपना कुछ प्रभुत्व खो बैठे हैं वह तो रक्षितराज है और जो राज किसी बड़े राजके अंश हैं पर किसी न किसी प्रकार इतने प्रभावशाली हो गये हैं कि उनको कुछ प्रभुत्व प्राप्त हो गया है वह आधिपत्यमें हैं। पर यह अन्तर नाम मात्रका ही है। रक्षक और अधिपतिके ठीक ठीक अधिकार क्या है यह कोई नहीं कह सकता। होना यह चाहिये कि रक्षकके अधिकार थोड़े और अधिपतिके

अधिक हों पर कभी कभी इसके विरुद्ध भी होता
आधिपत्य है। सर्बिया, बल्गेरिया, रूमानिया तुर्क साम्राज्य-

के अङ्ग थे पर धीरे धीरे इनकी शक्ति इतनी बढ़ गयी थी कि इनको एक प्रकारकी अन्ताराष्ट्रिय सत्ता प्राप्त हो गयी, यह एक प्रकारके राज हो गये। उस समय सुल्तान इनके अधि-पति थे। होना यह चाहिये था कि यह पूर्णतया सुल्तानकी इच्छाके अनुकूल चलते पर ऐसा न होता था। बल्गेरिया बिना उनसे पूछे

युद्ध और सन्धि करता था, उसने सन्वत् १९४२ में उनकी अवज्ञा करके पूर्वीय रूसीलियाको अपनेमें मिला लिया और १९४४ में बिना उनकी स्वीकृतिके एक नया नरेश चुन लिया। यही गति सर्बिया आदिकी भी थी। अन्तमें १९५५ में वह स्वतन्त्र हो गया।

एक ओर तो अधिपतिका अधिकार इतना क्षीण हो सकता है, दूसरी ओर रक्षकका अधिकार इतना बढ सकता है कि रक्षित राजका प्रभुत्व लुप्तप्राय हो जाता है। सन्वत् १९७१ के पहिले मिश्रकी विचित्र परिस्थिति थी। वह देश सुल्तानके आधिपत्यमें था पर ब्रिटिश सरकारने उसे इस तरह दाब लिया था कि सारा शासन अंग्रेजोंके ही हाथमें था। १९७१ में जब तुर्कोंने महासमरमें

जर्मनीका पक्ष लिया तो मिश्र ब्रिटिश संरक्षणमें
सरक्षण ले लिया गया पर शासनकी दशा वही रही। अब
जाकर वह सरक्षणसे मुक्त कर दिया गया है।

सरक्षण कालमें परराज-नीतिकी कौन कहे, आभ्यन्तर प्रबन्ध भी सारा ही अंग्रेजोंके हाथमें था। प्रत्येक विभागमें अंग्रेज अफसर भरे थे। नामको मिश्री मंत्री होते थे पर उनके साथ अंग्रेज सहायक और परामर्शदाता लगे रहते थे। यही दशा १९६९ से मरक्कोमें है। उस साल वह फ्रांसके सरक्षणमें आया, तबसे रक्षक उसका भक्षक बना हुआ है।

संरक्षण एक कर्णप्रिय शब्द है पर उसका अर्थ—राजनीतिक अर्थ—उतना मधुर नहीं है। जब कोई प्रबल राज किसी दुर्बल राजको हडप लेना चाहता है पर किसी कारणसे ऐसा एकाएक करना चीतिसङ्गत नहीं समझता तो वह अपना संरक्षण स्थापित करता है। रक्षाके बहाने धीरे धीरे सारा अधिकार अपने हाथमें आ जाता है फिर अवसर पाकर उसका नाम भी मिटा दिया जाता है। सन्वत् १९५२ तक कोरिया चीनके सरक्षणमें था। १९५२ में चीन और

जापानमें शिमोनोसेकिकी सन्धि हुई। इसकी एक धाराके अनुसार कोरिया स्वतंत्र राज मान लिया गया। १९६२ में रूस-जापान युद्धके पीछे जापानने उसे अपने संरक्षणमें लिया और गला घोटते घोटते १९६७ में उसे अपने साम्राज्यमें ही मिला लिया।

ऊपर जिन दो प्रकारके अल्पप्रभु राजोंका वर्णन हुआ है उनकी परिस्थिति तो सहज ही समझमें आ जाती है। पर कुछ राजोंकी परिस्थिति विलक्षण होती है। यह सब जानते हैं कि अमुक राज पूर्णप्रभु नहीं है वरन् अमुक राजके दबावमें है पर ऐसा कोई सन्धि-पत्र नहीं है जो इस बातको स्पष्ट करता हो। इसका बहुत अच्छा उदाहरण क्यूबामें मिलता है। १९५५ तक यह द्वीप स्पेनके अधीन था। उस साल यह स्पेनके हाथसे निकालकर स्वतंत्र कर दिया गया। चार वर्ष तक उसमें अमेरिकाके संयुक्तराजके, जिसने उसे स्वतंत्र कराया था, कुछ सैनिक रखे हुए थे। १९५९ में उससे और संयुक्तराजसे एक सन्धि हुई। उसमें यह बात स्पष्ट-तया लिख दी गयी कि क्यूबा स्वतंत्र है पर संयुक्तराजको यह अधिकार दिया गया कि यदि क्यूबाकी स्वाधीनतापर कोई आपत्ति पड़े या क्यूबाकी सरकार जानमालकी रक्षा न कर सके तो संयुक्तराज हस्तक्षेप करे। १९६३ में क्यूबामें एक विद्रोह हुआ। तत्काल

संयुक्तराजके सैनिकोंने जाकर शान्ति स्थापित की
अनुगमन और जब तक फिर एक दृढ़ सरकार सङ्गठित न हो

गयी तब तक वहां एक अमेरिकन गवर्नर शासनकी देखरेख करता रहा। इस वर्णनसे यह तो निर्विवाद है कि क्यूबा संयुक्तराजके दबावमें है पर इस दबावका कोई लिखित प्रमाण नहीं है। लेखोंके अनुसार क्यूबा 'स्वतंत्र' राज है। ऐसे और भी उदाहरण हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि एक राज दूसरेपर किसी न किसी प्रकार दबाव तो बैठा लेता है पर जो राज

दबाया जाता है उसकी लाज बनाये रखनेके लिये यह बात लेख-बद्ध नहीं की जाती। ऐसे दबे राज्योंको न तो आधिपत्यगत कह सकते हैं न रक्षित। हम इनको सुविधाके लिये 'अनुगामी राज' की संज्ञा देते हैं। लारेंस इनको सुवर्किल राज ❀ कहते हैं। जिस राजका अनुगमन किया जाता है उसको 'सहायक राज' कह सकते हैं। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है कि यह भी रक्षाका रूपान्तर मात्र है।

यूरोपीय युद्धके पश्चात् एक नये प्रकारके अल्पप्रभु राजकी सृष्टि की गयी है। हम ऊपर राष्ट्र-संघका कथन कर आये हैं।

उसने निश्चित किया कि पृथ्वीके कुछ भाग ऐसे
आदेश हैं जिनकी उन्नतिके लिये यूरोपके भिन्न भिन्न
सर्कारोंको दायी बनाना चाहिये। इन दायी
सर्कारोंको उन प्रदेशोंकी इस दृष्टिसे उन्नति करनी होगी कि कुछ
कालमें वहाँके निवासी पूर्ण स्वायत्तशासनके योग्य हो जायं, तब
तक राष्ट्रसंघ इस बातकी बराबर जाँच करता रहेगा कि यह काम
ईमानदारीसे किया जा रहा है या नहीं और यदि वह असन्तोषजनक
हुआ तो दायित्व ले लिया जायगा। राष्ट्रसंघके दिये हुए इस प्रकारके
अधिकारको 'आदेश' या 'शासनादेश', † कहते हैं। जिस राजको
आदेश मिलता है उसे आदेशप्राप्त या 'सादेश राज', ‡ कहते हैं।
जिस भूभागके ऊपर आदेश मिलता है उसे आदिष्ट कहते हैं। इसके
भी कई उदाहरण हैं। पश्चिमी एशियामें इराक और शाम दो अरब
राज्योंकी सृष्टि हुई है। दोनों अल्पप्रभु हैं। इराकका आदेश अंग्रे-
जोंको और शामका फ्रांस वालोंको दिया गया है। अफ्रीकाका बहुतसा
भाग जो पहिले जर्मन साम्राज्यमें था अब अंग्रेजोंके आदेशमें है।

* Client States (क्लाएंट स्टेट्स)

†Mandate (मैण्डेट) ‡ Mandatory. (मैण्डेटरी)

आदेशका सिद्धान्त बहुत अच्छा है। यदि राष्ट्रसंघ सबल और ईमानदार हो तो आदेशोंसे लाभ हो सकता है। अशिक्षित और असभ्य देश किसी सभ्य देशके निरीक्षणमें रख दिये जाय। ज्यो ज्यो उनके निवासी योग्य होते जाय त्यों त्यों उनके अधिकारोंकी वृद्धि होती जाय और शीघ्रसे शीघ्र उनको पूर्ण स्वातन्त्र्य दे दिया जाय। राष्ट्रसंघमें सभी राज्योंके प्रतिनिधि होंगे इसलिये किसीके साथ पक्षपात न होगा और जो सादेश राज अपना काम बेईमानीसे करेगा उससे यह काम छीन लिया जायगा। पर इस समय ऐसा नहीं हो रहा है। राष्ट्रसंघमें इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली और जापान ऐसे स्वाधियोक्रा प्राधान्य है। आदेशोंका बहाना है। जिन देशोंपर आदेश प्राप्त है उनको सचमुच योग्य और उन्नत बनानेका कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। केवल अपना स्वार्थ सिद्ध किया जा रहा है। वस्तुतः तत्तद्देश अपने अपने साम्राज्यमें मिला लिये गये हैं पर संसारको धोखा देनेके लिये आदेशोंका होंग रचा गया है। शाम और इराककी जनता अपना काम सभाल सकती है पर उन देशोंमें तेल तथा अन्य खनिज सम्पत्ति है। उसके लालचके मारे अंग्रेज और फ्रांसीसी वहाँसे हटना नहीं चाहते। जो सभ्य है उसे जबरदस्ती न जाने कौनसी सभ्यता सिखलायी जायगी। नि.सन्देह अफ्रीका वालोंको सच्ची शिक्षा देनेकी आवश्यकता है पर सादेशने जो मार्ग पकड़ा है उससे तो बेचारे हबशी दो हजार वर्षमें भी स्वायत्तशासनके योग्य न होंगे। उनके देशका सार चूस लिया जायगा, उनको मद्य पान करना और बहु-मूल्य अंग्रेजी विलास-सामग्रीका प्रयोग करना सिखला दिया जायगा और बस। इसका अर्थ यह होगा कि वह यूरोपके राजनीतिक दास तो है ही नैतिक और आर्थिक दास भी हो जायेंगे। यूरोपीय राष्ट्रोंके स्वार्थ उनको स्वाधीन नहीं देखना चाहता।

इस स्थानपर हमको भारतके देशी राजोंकी परिस्थितिपर भी विचार कर लेना है। ये राज तीन कोटियोंमें विभक्त हो सकते हैं। सबसे नीचे वर्गमें वे राज हैं जिनकी सृष्टि भारतके देशी अंग्रेज सरकारने की है। या तो ये पहिले थे ही नहीं या अंग्रेज सरकारने इनको छीन कर फिर कुछ विशेष शर्तोंपर लौटा दिया या इनकी गिनती पहिले ज़मीनदारियोंमें थी, फिर अंग्रेज सरकारने इन्हें राज बनाया या इनके प्रथम नरेश डाकू थे जिनको अंग्रेज सरकारने कुछ भू-भाग का नरेश बनाकर शान्त किया या किसी प्रबल शत्रुके गालमे निकाल कर पुनः स्थापित किया। इनके साथ जो शर्तें हुई हैं वे जिन समय-पत्रोंमें लिखी हैं उनको 'सनद' कहते हैं, ऐसे राजोंको 'सनदी राज' कहते हैं। मैसूर, बनारस, पन्ना, सरीला, मैहर इत्यादि सनदी राज हैं।

दूसरे वर्गमें वे राज हैं जिनके साथ अंग्रेज सरकारकी सन्धियां हुई हैं पर इन सन्धियोंमें जहां यह लिखा है कि राजके नरेश अपने राजके पूर्ण स्वामी होंगे और ब्रिटिश सरकार उनके आभ्यन्तर शासनमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न कर सकेगी वहीं यह भी लिखा है कि ये राज ब्रिटिश सरकारके 'सरक्षण' में होंगे। उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, रीवा, त्रावणकोर इत्यादि इसी प्रकारके राज हैं।

तीसरे वर्गमें वे राज हैं जिनकी सन्धियोंमें यह लिखा है कि राज और ब्रिटिश सरकारमें 'मैत्री और सहकारिता' का सम्बन्ध है। इन सन्धियोंमें सरक्षणका शब्द नहीं आया है। सन्धियोंका ढंग भी प्रायः वैसा ही है जैसा कि आजकल दो बराबरके राजोंमें होता है। यह उनमें निःसन्देह लिखा है कि बिना ब्रिटिश सरकारके परामर्शके ये राज किसी परराजसे कोई सम्बन्ध नहीं रख सकते

परन्तु इसके साथ ही ब्रिटिश सरकारके अधिकार भी कई बातोंमें परिमित कर दिये गये हैं । हैदराबाद, ग्वालियर, बड़ौदा इत्यादि इसी वर्गमें है ।

अब यदि विचार करके देखा जाय तो कमसे कम पिछले दोनों वर्ग अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र हो सकते हैं । सन् १८७० तक इनमेंसे कईको ब्रिटेन और फ्रांसकी सरकारोंने पात्र माना भी था । संधिपत्रोंमें कईको स्वतन्त्र माना भी गया है । स्वतन्त्र न भी कहिये पर इनके राज्य विस्तार, जन-संख्या, अधिकार, समृद्धि और सन्धियोंको देखते हुए इनको अल्पप्रभु माननेमें तो किसी प्रकारकी भी आपत्ति नहीं हो सकती । परन्तु ये राज दुर्बल हैं, इनमें ऐक्य नहीं है, इनके नरेशोंमें आत्माभिमान नहीं है और ये दास भारतके टुकड़े हैं इसीलिये अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र नहीं माने जाते । सरकारने इस बातकी स्पष्ट घोषणा ❀ कर दी है और इन्होंने इस पतित परिस्थितिको स्वीकार कर लिया है ।

अभी तक हमने जितने प्रकारके पात्रोंका उल्लेख किया है वे चाहे अल्पप्रभु हो या पूर्णप्रभु पर उनका पात्रत्व स्थायी रहता है । अब हम एक ऐसे महत्वपूर्ण वर्गका उल्लेख करना चाहते हैं जिसका पात्रत्व स्थायी न होकर अल्प-कालीन होता है ।

जब किसी विस्तृत राजका कोई अंश अपनी परिस्थितिसे असन्तुष्ट होकर स्वराज्यके लिए आन्दोलन करता है तो पहिले तो उससे परराजोंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता इसलिये अन्ताराष्ट्रिय विधान उस की ओर दृष्टि ही नहीं डालता । पर यदि आन्दोलन बल

*The Principles of International Law have no bearing upon the relations existing between the British Government and the Native States under the Suzerainty of the Queen-Empress”

पकड़ता गया तो वह शीघ्र ही 'विद्रोह' का रूप धारण करता है। चाहे विद्रोह हिंसात्मक हो या अहिंसात्मक परन्तु बिना विद्रोहके किसी समुदायको स्वराज्य मिल नहीं सकता। जब तक विद्रोहका क्षेत्र सकुचित रहता है तब तक तो परराज उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं देते पर यदि उसका क्षेत्र बढ़ गया तो फिर उपेक्षाभावसे काम नहीं चल सकता। यदि देशका कोई बड़ा भाग विद्रोहियोंके कब्जेमें चला गया है तो वे उसमें मालगुजारी तथा अन्य कर उगाहते होंगे, उन्हींकी ओरसे पुलीस तथा न्यायका प्रबन्ध होगा, उनकी सेनाएँ होंगी। जबतक विद्रोह छोटा था तबतक विद्रोही डाकू कहे जा सकते थे, पर अब उनको डाकू नहीं कह सकते, क्योंकि उन्होंने एक प्रकारका राज स्थापित कर लिया है। इसके साथही यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि स्यात् वह राज जिसके विरुद्ध इन्होंने विद्रोह किया है इनको जीत ले। इसलिये इसके साथ वैसा बर्ताव नहीं किया जा सकता जैसा कि स्वाधीन राजोके साथ किया जाता है। ऐसी अवस्थाओंमें एक मध्यम मार्गका अवलम्बन होता है। इस विद्रोही सरकारके साथ कोई परराज सन्धि नहीं करता, न इसके यहाँ कोई राजदूत भेजा जाता है। इसके अधिकारियोंके साथ जो पत्र-व्यवहार किया जाता है वह उस प्रकारका होता है जैसा कि साधारण सज्जनोंके साथ किया जाता है। वह भी किसी परराजके यहाँ राजदूत नहीं भेज सकती। परन्तु उसको युद्ध-सम्बन्धी वे सब अधिकार मिल जाते हैं जो सभ्य समुदायोंको अन्ताराष्ट्रिय विधानके अनुसार प्राप्त हैं। उसके सिपाहियोंके साथ सैनिकोंकी भाँति बर्ताव किया जाता है, डाकूओंकी भाँति नहीं। शस्त्र ढालने और 'मोल लेने, जीते हुए प्रदेशोंपर कब्जा करने, उनसे युद्ध और खाद्य सामग्री वसूल करने, तार, रेल, डाक आदिकी जाँच-पड़ताल करने, जासूसोंको दण्ड देने, तदस्थ

परदेशियोंके जहाजोंकी तलाशी लेने इत्यादिके युद्ध-सम्बन्धी सब अधिकार उसको दे दिये जाते हैं। जिस भू-भागपर विद्रोही-का कब्जा हो जाता है उससे जिन परराजोंका व्यापारादि सम्बन्ध होता है उनको बहुत शीघ्र यह निश्चय करना पड़ता है कि वे विद्रोहियोंके साथ कैसा बर्ताव करें। यदि वे देखते हैं कि विद्रोहके सफल होनेकी आशा है तो, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, विद्रोहियोंको युद्ध-सम्बन्धी वे सब अधिकार (और कर्तव्य) दे दिये जाने हैं जो अन्य स्वतन्त्र राजो अर्थात् अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्रोको प्राप्त हैं। इस प्रकारके पात्रोको राजातिरिक्त युद्धकारी सभ्य समुदाय कहते हैं। जब किसी राजक्रान्तिकारी समुदायके साथ दो एक परराज ऐसा बर्ताव करने लगते हैं तो विवश होकर उस राजको भी, जिसके विरुद्ध विद्रोह किया जाता है, ऐसा ही करना पड़ता है।

यह पात्रत्व स्वभावतः अल्पकालीन होता है। यदि विद्रोही हार गये तो फिर उनकी स्थापित की हुई सरकारका अस्तित्व ही मिट जाता है। यदि उनकी जीत हुई तो फिर उनको पूर्ण पात्रत्व प्राप्त हो जायगा, क्योंकि वह एक पूर्णप्रभु राज स्थापित कर लेंगे। यदि उन्होंने अपने पुराने अधिपतिके संरक्षणमें एक अल्पप्रभु राज स्थापित कर लिया तो भी उनका पात्रत्व वैसा अनिश्चित और एकाङ्गी न रहेगा जैसा कि विद्रोहकालिक पात्रत्व था।

इतना और स्मरण रखना चाहिये कि यह युद्धकालिक पात्रत्व केवल 'सभ्य' क्रान्तिकारियोंको प्राप्त होता है। असभ्य मनुष्य अपनी स्वाधीनताके लिये प्रयास करनेपर विद्रोही और डकैत ही माने जाते हैं। सभ्य शब्दकी परिभाषा तो क्या हो सकती है, सिवाय इसके कि जो समुदाय न्यूनाधिक पाश्चात्य रंगमें रँगा है अर्थात् जो स्वराज्य संग्रामके समय और स्वराज्य

प्राप्त करनेके पीछे पाश्चात्य जगत्के साथ पाश्चात्य ढंगका व्यवहार कर सकता है, वही सभ्य माना जाता है। अस्तु, इसीलिये प्रायः 'समुदाय' के पहिले 'सभ्य' जोड़कर इस प्रकारके अल्प-कालीन आंशिक पात्रोंको 'राजातिरिक्त युद्धकारी सभ्य समुदाय'❀ कहते हैं।

एक प्रश्न यह होता है कि व्यक्तियोंको इस विधानका पात्र मान सकते हैं या नहीं। प्रश्न उत्पन्न इसलिये होता है कि इस विधानके अनुसार ही व्यक्तियोंको युद्ध और व्यक्तियोंकी शान्तिके समय कई प्रकारके अधिकार प्राप्त हैं। परिस्थिति यह विधान उनके कई कर्तव्योंको भी स्थिर करता है। इन अधिकारों और कर्तव्योंका विस्तृत वर्णन अगले खण्डोंमें होगा। इसके उत्तरमें यह कहा जाता है कि व्यक्तियोंमें वे गुण नहीं मिल सकते जो पात्रोंमें होने चाहिये। युद्धादिके समय व्यक्तियोंके जो अधिकार और कर्तव्य होते हैं उनके विषयमें यह कहा जाता है कि सभी स्वतन्त्र राजोंने अपने गृह्य विधानोंको यथासम्भव अन्तराष्ट्रिय विधानके अनुसार बनाया है और व्यक्तियोंको इन गृह्य विधानोंका पालन करना पड़ता है इसलिये उनका अन्तराष्ट्रिय विधानसे कोई प्रत्यक्ष और अव्यवहित सम्बन्ध नहीं है। इसलिये आपेनहाइमकी सम्मतिमें व्यक्तियोंको इस विधानका पात्र न कहकर लक्ष्य† कहना चाहिये।

यही नियम समितियोंके लिये भी लागू होना चाहिये और साधारणतः लगता भी है। परन्तु कुछ समितियोंकी एक विशिष्ट

*Civilized belligerent communities not being States.

†Objects, not Subjects, of International Law

परिस्थिति होती है। भारतवासियोंको ईस्ट इण्डिया कम्पनी जिसने भारतपर लगभग सौ वर्षतक शासन किया कुछ समितियोंकी भूली नहीं है। वह कुछ अंग्रेज व्यापारियोंकी विशिष्ट परिस्थिति समिति थी। उसको ब्रिटिश सरकारसे व्यापार करनेकी अनुज्ञा मिली थी। उसपर ब्रिटिश सरकारका पूरा पूरा अधिकार था। यह सरकार उसके प्रत्येक कामका निरीक्षण कर सकती थी और प्रत्येक कामको रद्द कर सकती थी। अन्तमे १९१५ (सन् १८५८) मे पार्लमेंटने उसका अस्तित्व ही मिटा दिया। इन बातोंको देखते हुए तो उसको न हम किसी प्रकार प्रभु कह सकते हैं न पात्र मान सकते हैं। परन्तु उसको व्यापारके साथ साथ शासन करनेकी भी अनुज्ञा थी। वह भारतीय नरेशोंसे युद्ध और सन्धि करती थी। प्रांतीय शासक नियुक्त करती थी। उसका भारतीय राजोंके अतिरिक्त फ्रांस इत्यादिके साथ भी सम्बन्ध था। संवत् १९१५ मे ब्रिटिश सरकारने उसकी सब सन्धियों, सनदों, ऋणों, आदिका दायित्व अपने ऊपर उसी प्रकार स्वीकार कर लिया जिस प्रकार एक राज दूसरे राजके प्रति, जिसका वह उत्तराधिकारी होता है, करता है। इस दृष्टिसे कम्पनीको अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र मानना चाहिये।

इस समय भी इस प्रकारकी दो एक समितियाँ हैं। इनमें ब्रिटिश साउथ अफ्रीका कम्पनी सबसे समृद्ध और प्रभावशाली है। इसका जन्म १९४६ मे हुआ। दक्षिण अफ्रीकाका एक बहुत बड़ा भाग इसके अधीन है। ब्रिटिश औपनिवेशिक सचिवके निरीक्षणमें रहते हुए इसको प्रायः वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो एक राजको प्राप्त होते हैं।

ऐसी समितियोंकी परिस्थिति विचित्र होती है। उनको एक दृष्टिसे प्रभु और दूसरीसे प्रजा कह सकते हैं। वे युगपत् अन्ता-

राष्ट्रीय विधानकी पात्र भी है और लक्ष्य भी । जो पूर्णप्रभु राज किसी ऐसी समितिके साथ किसी प्रकारका व्यवहार करते हैं वे उसको अपने बराबर नहीं मानते वरन् यह समझ लेते हैं कि जिस प्रधान राजके अधीन यह समिति है उसने अपना कुछ अधिकार इसे सौंप रक्खा है और अन्तमें इसके सब कामोंके लिये वही दायी है ।

अन्तमें कुछ अनिश्चित उदाहरणोंका उल्लेख करके हम पात्रोंकी प्रकार-सूचीको समाप्त करते हैं । अनिश्चित कोटिमें सबसे प्रथम गणना तटस्थकृत राजोंकी है । यूरोपीय अनिश्रित महासमरके पहिले बेल्जियम इसी वर्गमें था पर उदाहरण— अब वह इससे निकल गया है । आजकल तटस्थकृत राज स्वीजरलैण्ड ही इसका एकमात्र उदाहरण है । ऐसे राज अपने आभ्यन्तर शासनमें पूर्णतया स्वाधीन होते हैं । उनका व्यवहार परराजोंके साथ पूर्ण बराबरीका होता है । बस एक बातमें उनका अधिकार परिमित रहता है । वे सिवाय आत्मरक्षाके और किसी अवस्थामें किसीसे युद्ध नहीं कर सकते । इसीलिये उनको तटस्थकृत* कहते हैं । वे किसी राजसे कोई ऐसी सन्धि नहीं कर सकते जिससे उनकी तटस्थतामें बाधा पड़े । इस तटस्थतामें उनके पूर्ण प्रभुत्व या प्रतिष्ठामें किसी प्रकारकी कमी नहीं मानी जाती । ऐसा समझ लिया जाता है कि उनके प्रभुत्वका यह अंश प्रसुप्त है । इसके पुरस्कारमें कुछ बड़े राज उनकी रक्षाका भार अपने ऊपर लेते हैं । १८७२ में ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया रूस और जर्मनी (प्रशा) ने स्वीजरलैण्डकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया । १८९६ में यही दायित्व बेल्जियमके सम्बन्धमें लिया गया । स्वीजरलैण्डकी बात तो अभीतक निभी आती है पर

१९७१ में बेल्जियम पर आक्रमण करके जर्मनीने उसे तटस्थताके बन्धनसे मुक्त कर दिया। प्रभुत्वमें आंशिक कमी देख पड़नेपर भी ये तटस्थीकृत राज पूर्ण पात्र माने जाते हैं।

दूसरा उदाहरण औपनिवेशिक संरक्षित राजोंका है। इस-प्रकारके कई राज अफ्रीकामें हैं। कोई ब्रिटेन, कोई इटली, कोई फ्रांस, कोई पुर्तगालके अधीन हैं। सीधा सादा औपनिवेशिक तात्पर्य यह है कि इन देशोंने अफ्रीकाके बड़े सरक्षित राज* बड़े टुकड़े दबा लिये हैं। उनमें किसी अन्य सम्य राजको घुसने नहीं देना चाहते। उनमें गोरोंकी संख्या थोड़ी है इस लिये पाश्चात्य ढङ्गकी शासनपद्धति चलायी नहीं गयी है। जो जंगली या अर्धसभ्य नरेश या सदाँर हैं वे अपनी अपनी प्रजापर शासन करते हैं पर सबके ऊपर वह यूरोपीय राज, जो उस भूभागका स्वामी बन बैठा है, किसी न किसी प्रकारकी देख-भाल करता है। नामको वह अपनेको संरक्षक कहता है, पर इस संरक्षणका उल्लेख हम पहिले कर आये हैं। जब यहा कोई एक सुनिश्चित रक्षित राज ही नहीं है तो संरक्षण किसका होता है? वास्तविक बात यह है कि जब तक गोरोंकी संख्या पर्याप्त न हो तब तक पाश्चात्य ढङ्गका महँगा शासन क्यों चलाया जाय? गोरोंकी संख्या बढ़नेपर आदिम सदाँरोंके अधिकारोंके छिन जाने और वहां उपनिवेश बन जानेमें देर नहीं लगती।

जबतक उपनिवेश स्थापित नहीं होता तब तक बड़ी अड़चन रहती है। न यह कह सकते हैं कि कोई निश्चित राज है न यह कह सकते हैं कि नहीं है। इसलिये इस विचित्र शासनका पात्रत्व भी अनिश्चित रहता है।

*Colonial Protectorates (कोलोनिअल प्रोटेक्टरेट्स)

रोमन कैथलिक सम्प्रदायके प्रधान आचार्य पोपका स्थिति भी विचित्र है। [संवत् १९२७ तक तो एक छोटा सा राज्य पोपकी गद्दीके अधीन था पर उस साल इटलीकी सरकार-पोप ने वह राज्य इटलीमें मिला लिया। अब पोप केवल धर्मगुरु है। पर उनको अब भी कई ऐसे अधिकार प्राप्त हैं जो अन्ताराष्ट्रिय विधानके अनुसार केवल स्वतंत्र राज्योंके शासनाध्यक्षोंको मिल सकते हैं। पोप कैद नहीं किये जा सकते न उनको कोई और शारीरिक दण्ड दिया जा सकता है, बिना उनकी अनुज्ञाके उनके महलमें इटालियन सरकारका कोई कर्मचारी प्रवेश नहीं कर सकता, कई स्वतंत्र राज्योंके दूत पोपके दरबारमें रहते हैं और पोपके दूत कई राज्योंमें रहते हैं। कई बार अन्ताराष्ट्रिय झगड़ोंका निपटारा पोपकी मध्यस्थतासे हुआ है। न तो पोपके पास कोई राज है न उनके हाथमें किसी प्रकारका भौतिक अधिकार है पर एक प्रभावशाली सम्प्रदायविशेषकी धार्मिक निष्ठाने उनको अन्ताराष्ट्रिय विधानका एक विचित्र पात्रत्व दे रखा है।

तुर्की सरकारकी दुर्बलताने कई विचित्र उदाहरणोंकी सृष्टि कर दी थी। सम्भव है अब उनकी तलवार इन समस्याओंको सुलझाकर अन्ताराष्ट्रिय विधानके आचार्योंको चिन्तामुक्त कर दे। १९३५ में तुर्क सरकारने साइप्रस द्वीप-साइप्रस और क्रीट का ब्रिटेनके नाम ९९ वर्षका पट्टा लिख दिया।

वह द्वीप पूरा पूरा ब्रिटिश शासनमें है। तुर्कोंको शासनमें हस्तक्षेप करनेका किसी प्रकारका अधिकार नहीं है। परन्तु जिस समय पट्टा लिखा गया उस समय सब आवश्यक व्यय करनेके पीछे तुर्क सरकारको साइप्रससे प्रति वर्ष ९२,८०० पौण्ड अर्थात् १३, ९२,०००) बचता था। इतना रुपया अभी ब्रिटेन

उसे देता है। अब यह नहीं कहा जा सकता कि इस समय साइप्रस-का स्वामी कौन है और उसकी अन्ताराष्ट्रिय स्थिति क्या है।

क्रीटकी दशा और भी निराली थी। यह द्वीप तुर्की आधिपत्य-मे माना जाता था। इस आधिपत्यका एक मात्र प्रमाण यह रह गया था कि इसके ध्वजस्तम्भसे तुर्की झण्डा लहराया करता था। इसकी प्रजा प्रधानतः यूनानी है। ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और इटली इसके अभिभावक या संरक्षक माने जाते थे। वे चारों मिल कर हार्ड कमिश्नर उपाधिधारी एक अधिकारीको नियुक्त करते थे जो इस द्वीपके आन्तरिक शासनका अध्यक्ष होता था। वह निवासियोंमें से ही अपने मंत्री चुनता था। एक व्यवस्थापक सभा भी थी जिसके प्रायः सब सदस्योंको क्रीटवासी ही चुनते थे परन्तु वैदेशिक विषय हार्ड कमिश्नरके हाथमें न थे। उनका प्रबन्ध ब्रिटिश, फ्रेञ्च, रूसी और इटालियन सरकारके रोमस्थ प्रतिनिधि करते थे। ऐसी अवस्थामे यह कहना बड़ा ही कठिन था कि क्रीट तुर्क साम्राज्य-का एक प्रान्त मात्र था या सुल्तानके आधिपत्यमे एक अल्पप्रभु राज था या ब्रिटेन आदि चारों यूरोपीय राजों द्वारा संरक्षित राज था या तुर्क सरकार भी उसकी संरक्षक थी या उसके पांच अधिपति थे।

यूरोपमें ही वर्तमान अन्ताराष्ट्रिय विधानका जन्म हुआ। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दीमें जो यूरोपीय राज थे उनके पारस्परिक व्यवहारमे जो नियम प्रायशः बरते जाते थे उनके सङ्कलनसे ही इस विधानकी सृष्टि हुई। समाजमें प्रवेश उनके परस्पर संघर्षसे जिन नये राज्योंकी उत्पत्ति हुई वे भी स्वभावतः उन्हीं नियमोंका पालन करने लगे क्योंकि ये सब उसी पाश्चात्य संस्कृतिकी गोदमें पले थे। अतः अमेरिका और यूरोपके पश्चिमी राज निसर्गत अन्ताराष्ट्रिय समाजके अङ्ग और अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र माने गये।

परन्तु अन्ताराष्ट्रिय समाज जड़ संस्था नहीं है। उसमें नये नये सदस्य प्रवेश करते ही रहते हैं। नवागन्तुक तीन प्रकारके होते हैं।

पहले वर्गमें वे राज भाते हैं जो किसी समय नव-सभ्य राज असभ्य समझे जाते थे। हम पहिले भी कह चुके हैं कि सभ्यता एक ऐसा शब्द है जिसकी परिभाषा नहीं हो सकती। जो बात एक देश या कालमें असभ्यता-सूचक मानी जाती है वही दूसरे देशकालमें सभ्यताका चिह्न हो जाती है। चाहे कितने ही कर्णप्रिय शब्दोंका प्रयोग किया जाय पर स्पष्ट बात यह है कि जब कोई राजविशेष इतना बलवान् हो जाता है कि यूरोपीय शक्तियोंका यूरोपीय ढंगसे [अर्थात् तोप और कुटिलताका तोप और कुटिलतासे] उत्तर दे सकता है तो वह सभ्य कहलाने लगता है। अभी साल भरके भीतर अफगानिस्तानकी गिनती सभ्य राजोंमें हुई है। जापान सभ्य राजोंमें अग्रगण्य हो रहा है।

कभी कभी दुर्बल राजोंको भी सभ्य जगतमें प्रवेश करनेका सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। यह उस समय होता है जब कोई राजविशेष दुर्बल होते हुए भी हजम नहीं किया जा सकता पर बिना उससे अन्तरंग सम्बन्ध किये काम भी नहीं चलता या किसी अर्थ-विशेषको सिद्ध करना होता है। पुराने तुर्क राज, चीन और फारस दुर्बल तो थे पर उनकी स्वाधीनता छीनी भी नहीं जा सकती थी। एक तो वे स्वयं बहुत कुछ लड़ते मिड़ते, दूसरे पारस्परिक ईर्ष्याके कारण कई यूरोपीय राष्ट्र उनका साथ देते। इसके साथ ही उनसे नित्य ही काम पड़ता था। इसलिये विवश होकर उनको सभ्य मान लिया गया और उनको अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्रत्व मिला।

कोरिया चीनके संरक्षणमें था। जापानकी उसपर नीक थी पर उसे चीनके हाथसे छीननेसे चीन रुष्ट होता और स्यात् दुश्मन

करता इस लिये जब उसने १९५२ में चीनसे सन्धि की तो उससे यह स्वीकार कराया कि कोरिया एक स्वतन्त्र राज है। ब्रिटेन जापानका मित्र ही था उसने भी इस बातको स्वीकार कर लिया और १९५९ में अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये रूसने भी इस बातको मान लिया। बस फिर क्या था, बेचारा कोरिया सभ्य बन गया और अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र हो गया। दूसरे ही साल रूसने उसमें कुछ सेना भेजकर उसे अपने संरक्षणमें ले लिया। भला जापानको यह बात कैसे भाती। जिस उद्देश्यसे उसने कोरियाको 'स्वतन्त्र' बनाया था वह रहा जाता था। बस उसने 'कोरियाकी स्वाधीनताकी रक्षा' के लिये उससे युद्ध ठाना। रूसके हारनेपर जापान कोरियाका संरक्षक बन बैठा। अन्तमें जिस बातके लिये यह षड्यन्त्र रचा गया था वह पूरी हुई—१९६७ में जापानने कोरियाको पूर्णतया अपने राज्यमें मिला लिया।

दूसरे वर्गमें वे नये राज हैं जो सभ्य मनुष्योंके द्वारा असभ्य देशोंमें बसाये जाते हैं। इसके कई उदाहरण मिलते हैं। दक्षिण अफ्रीकाके केपकोलोनी प्रदेशमें बहुतसे डच असभ्य देशोंमें जातिके लोग बसे हुए थे। जब यह प्रदेश अंग्रेज-नव-स्थापित राज जोके हाथमें आया तो कुछ डच कृषक और भीतरकी ओर बढ़ गये। जब वहां भी अंग्रेज पहुंचे तो वह वाल नदीके किनारेके जंगली प्रदेशमें जा बसे। यहाँ उन्होंने ट्रांसवाल (वाल-वार) नामक नया राज स्थापित किया। वे बोअर कहलाते थे। संवत् १९०९ में ब्रिटिश सरकारने ट्रांसवालको स्वतन्त्र राज मान लिया। यह राज बहुत दिनों तक न चला। बोअर-युद्धके पीछे १९५९ में ट्रांसवाल अंग्रेजों राजमें मिला लिया गया।

पश्चिमी अफ्रीकाका लाइबीरिया राज कुछ इसी प्रकार स्थापित हुआ। आजसे १२५-१५० वर्ष पहिले अफ्रीकासे लाखों

हबशी गुलाम बना बना कर अमेरिका भेजे गये । ये बेचारे पशु-ओंकी भाँति बेचे और मोल लिये जाते थे । लगभग १०० वर्ष हुए गुलामीकी प्रथा उठा दी गयी । सब गुलाम मुक्त कर दिये गये । उनके लाखों वंशज अमेरिकामें अब भी हैं । वे बहुत ही परिश्रमा और सुशिक्षित हैं पर उनके साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता । संवत् १८७८ में अमेरिकाके कुछ उदार पुरुषोंने पश्चिम अफ्रीकामें कुछ भूमि मोल लेकर बहुतसे मुक्त हबशी गुलामोंको वहाँ बसाना आरम्भ किया । ये लोग हबशी तो थे ही, जलवायु इनके अनुकूल था और थोड़े ही समयमें इनके समाजने अच्छी वृद्धि की । १९०४ में इन्होंने अपनी स्वतन्त्रता घोषित की और अन्य स्वतन्त्र राजोंने भी इनकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली । यही लाइबेरियाका प्रजातन्त्र राज है ।

काङ्गोका इतिहास सबसे निराला है । यह मध्य पश्चिम अफ्रीकाका एक बड़ा प्रान्त है । इसमेंसे गुलाम पकड़ पकड़ कर बाहर भेजे जाते थे । इस बातको रोकने और इसमें कुछ सभ्यता फैलानेके लिये इण्टर्नेशनल असोसिएशन आव दि काङ्गो (काङ्गोकी अन्ताराष्ट्रिय समिति) नामक एक समिति खुली । इस समितिके उद्देश्य बड़े ही उदार और प्रशंसनीय थे । धीरे धीरे उस प्रान्तके असभ्य निवासियोंसे सन्धि कर करके इसने एक बहुत बड़ा भूभाग मोल ले लिया जिसमें कमसे कम १,७०,००,००० प्राणी बसे थे । बेल्जियम-नरेश इसके प्रधान संरक्षक और पृष्ठपोषक थे । संवत् १९४२ में बर्लिनमें एक अन्ताराष्ट्रिय सभा हुई जिसमें यूरोपके उन सभी राजोंके प्रतिनिधि उपस्थित थे जिनका पश्चिमो अफ्रीकासे कोई सम्बन्ध है । इस सभाने काङ्गोको एक तटस्थीकृत राज मान लिया, और बेल्जियम-नरेश इस नये राजके नरेश मान लिये गये । यह राज बेल्जियमसे पृथक् था, यद्यपि दोनों देशोंका नरेश

एक ही व्यक्ति था। अब यह राज जिसे काङ्गो फ्री स्टेट (काङ्गोका स्वतन्त्र राज) का नाम दिया गया स्वयं अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र हो गया। इसके चार वर्ष पीछे बेल्जियम-नरेशने एक वसीयतनामा लिखकर यह राज बेल्जियमको दे दिया। परन्तु उनके जीवन भर इसका शासन सर्वथा पृथक् ही रहा। इधर उन उद्देश्योंपर, जिनको लेकर पहिले पहिले अन्ताराष्ट्रिय समिति स्थापित हुई थी, पानी फेर दिया गया। नामको गुलामी तो नहीं थी पर काङ्गोमें रबड उत्पन्न होता है आर इस व्यापारके लिये वहाँके निवासियोंके साथ जो भीषण अत्याचार किये जाने लगे थे, जिस निर्दयताके साथ बेगार लिया जाता था, जिस पाशविकताके साथ भमानुषिक दण्ड दिये जाते थे, उन्होंने गुलामीके भी कान काटे थे। जब इन बातोंका समाचार सभ्य जगत्में पहुँचा तो लोग बहुत खिन्न हुए। बेल्जियमपर बहुत आक्षेप हुए। अन्तमें सबत १९६६ में यह राज बेल्जियममें मिला लिया गया और बेल्जियमका एक प्रान्त हो गया। इस बातपर किसी राजने आक्षेप नहीं किया। अब शासनमें बहुत कुछ सुधार हो गया है।

ऊपर जिन दो वर्गोंका उल्लेख हुआ है उनके उदाहरण कम मिलते हैं और सम्भवतः भविष्यत्में मिलेंगे ही नहीं। परन्तु जिस तीसरे वर्गका अब उल्लेख होगा उसके उदाहरण नव-स्वतन्त्र राज बहुत मिलते हैं और स्यात् आगे भी मिलते रहेंगे। इस वर्गमें वे राज आते हैं जो किसी समुदायके स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने, स्वराज्य पा जाने, पर बनते हैं।

जब किसी राजका कोई अंशविशेष इतना असन्तुष्ट हो जाता है कि वह बिना पृथक् हुए नहीं रह सकता तो एक नये राजकी सम्भावना होती है। यदि स्वातन्त्र्यवादी एक निश्चित भूभागपर अपना अधिकार जमा लें और उसपर सभ्य ढंगसे

शासन करने लग जायँ तो यह मानना ही पड़ता है कि उन्होंने एक नया राज स्थापित कर लिया है। परराज उस समय तक प्रतीक्षा करते हैं जब तक कि यह सम्भावना रहती है कि स्यात स्वराज्यवादी हरा दिये जायँ पर जब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अब उनकी जड़ दृढ़ हो गयी तो फिर उनके साथ वैसा व्यवहार करना ही पड़ता है जैसा कि स्वतन्त्र राजोंके साथ किया जाता है। इसपर वह राज भी आक्षेप नहीं कर सकता जिससे टूट कर नया राज अलग हुआ था।

१८६१ में दक्षिणी अमेरिकाके ड्योनस आयरस प्रदेशके निवासियोने स्पेनके विरुद्ध विद्रोह किया और लगभग ६ वर्षमें स्पेन वालोको निकाल बाहर किया। स्पेन अब भी अपनेको ड्योनस आयरसका स्वामी कहता था पर उसका अधिकार वहाँ रत्ती भर न था। १८८५ में ब्रिटेनने ड्योनस आयरस की स्वाधीनताको स्वीकार किया। ऐसी अवस्थामे स्पेनको आक्षेप करनेकी जगह न थी। १८९३ में टेक्ससने मेक्सिकोके विरुद्ध विद्रोह किया। उन्होंने मेक्सिकन सेनाको तो पराजित किया ही मेक्सिकोके राष्ट्रपतिको भी बन्दी कर लिया। ऐसी दशामें दूसरे ही साल अमेरिकाने उसकी स्वाधीनताको स्वीकार कर लिया।

परन्तु प्रत्येक अवसरपर इतनी निष्पक्षता नहीं दिखलायी जाती। अमेरिका चाहता था कि अटलाण्टिक और प्रशान्त महासागरोंके बीचमें एक नहर खोदी जाय। यह नहर पनामाके स्थलडमरूमध्यको काटनेसे बन सकती थी। यह डमरूमध्य कोलम्बिया राजमें पड़ता था और कोलम्बियावाले अमेरिकाकी बात मानते न थे। भाग्यसे पनामा प्रान्तवालोंने विद्रोह किया। वे अपना पृथक् राज बनाया चाहते थे। अमेरिकाने पन्द्रह दिनके भीतर ही उनका स्वातंत्र्य स्वीकार कर लिया और इसके पीछे पाँच

दिनके भीतर पनामाके नये राजसे वे सब शर्तें स्वीकार करा लीं जिन्हें कोलम्बिया नहीं मानता था। अमेरिकाकी सहायताने पनामाको बलवान् बना दिया और कोलम्बिया मुंह देखता रह गया। यदि वह प्रबल राज होता या उसके भी प्रबल सहायक होते तो अमेरिकाको यह साहस न होता कि इतनी जल्दी विद्रोहियोंको स्वतन्त्र मान ले।

अभी हालकी ही बात है। अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये ब्रिटिश सरकारने मकाके शरीफ़को, जिसने तुर्की सुल्तानके विरुद्ध विद्रोह किया था, तत्काल ही हजाज (अरब) का नरेश स्वीकार कर लिया।

ऊपर जितने उदाहरण दिये गये हैं वे सब हिंसात्मक विद्रोहके हैं। प्रायः हिंसात्मक असहयोग या सशस्त्र विद्रोह ही स्वतन्त्र होनेका साधन है। पर कभी कभी शान्तिके साथ भी नये राजोंका जन्म हो जाता है। १८८२ में दक्षिणी अमेरिकाका ब्रेजील प्रदेश जो उस समय तक पुर्तगालके अधीन था पृथक् हो गया और पुर्तगालवालोंने शान्तिपूर्वक उसका स्वातन्त्र्य स्वीकार कर लिया। १९६२ में इसी प्रकार स्कैण्डिनेवियाके स्वीडन और नार्वे दोनों भाग पृथक् पृथक् राज हो गये। आज भारत भी अहिंसाके ही द्वारा स्वाधीन होना चाहता है। ईश्वर उसका प्रयत्न सफल करे।

अन्ताराष्ट्रिय विधान साधनोको नहीं देखता। जो राज स्वतन्त्र है, वह इस विधानका पात्र है, चाहे उसने किसी प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्त की हो। जैसा कि हॉल कहते हैं—यदि किसी समुदायका इस भूखण्डपरके, जिसपर उसका कब्जा है, सब प्राणियों और वस्तुओंपर असीदिग्ध और अनन्य अधिकार है, यदि वह अन्य किसी समुदायकी इच्छाकी ओर ध्यान दिये बिना ही अपने बाह्य व्यवहारको निश्चित करता है, यदि वह अन्ताराष्ट्रिय विधानका

अनुसरण करता है और यदि इस बातकी भाशा होती है कि उसका समष्ट जीवन चिरस्थायी रहेगा, तो वह समुदाय अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र है। अन्ताराष्ट्रिय विधान उन बातोंको नहीं देखता जो किसी समुदाय-विशेषके राज-लक्षण प्राप्त करनेके पहिले होती हैं, इस लिये वह उन साधनोंकी ओरसे उदासीन है जिनके द्वारा कोई समुदाय अपनेको राज बनाता है ॥

इन बातोंका अर्थ यही है कि जब कोई समुदाय येन केन प्रकारेण उन लक्षणोंसे सम्पन्न होता जाता है जो राजोंमें पाये जाते हैं तो सभी उसे राज मानने लगते हैं अर्थात् उसके साथ वही व्यवहार किया जाता है जो राजोंके साथ किया जाता है, उसके कर्तव्य और अधिकार अन्य राजोंके सिद्धान्त अधिकारों और कर्तव्योंके समान हो जाते हैं।

इस परिपाटीसे एक सिद्धान्त निकलता है जिसे राज-समता सिद्धान्त कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार किसी देश विशेषके साधारण विधानकी दृष्टिमें सब नागरिक बराबर हैं उसी प्रकार अन्ताराष्ट्रिय विधानकी दृष्टिमें सब राज बराबर हैं। इस सिद्धान्तके मान लिये जानेसे मानव-समाजका बहुत कल्याण हुआ है। बहुत से छोटे और दुर्बल राजोंकी सत्ता-की रक्षा केवल इस सिद्धान्तने करायी है। बड़े राज छोटे राजोंके स्वत्वोंको हानि पहुचानेमें इसलिये झिझकते हैं कि उन्हें निन्दाका डर रहता है।

परन्तु एक बात समझ लेनी चाहिये। साधारण विधानोंमें यह बात होती है कि उनके पीछे किसी न किसी सरकारका बल होता है जो बड़े और छोटे, धनी और निर्धनमें न्याय कराती है। जो इतना निर्धन है कि वकील नहीं कर सकता उसकी ओरसे सकार

बकील कर देती है। पर अन्ताराष्ट्रिय विधानमें अब तक ऐसा न था। यदि कोई सबल राजा विधानकी अवहेलना करके किसी छोटे राजके स्वत्वोंको हानि पहुंचाना ही चाहे तो उसे कोई रोक नहीं सकता था। कोई ऐसा न्यायालय नहीं था जो सबल-निर्बलपर समान शासन करे। विवादोंके निर्णय करनेका एकमात्र साधन युद्ध था परन्तु युद्धमें सबलकी ही बन आती थी।

अब स्यात् ऐसा न हो। राष्ट्रसंघ स्थापित हो गया है। एक अन्ताराष्ट्रिय न्यायालय भी खुल गया है। सम्भव है आगे चलकर बड़े छोटोंमें सचमुच न्याय होने लगे। अभी राष्ट्रसंघ विश्वस्त संस्था नहीं है परन्तु ऐसी आशा की जा सकती है कि भविष्यत्में इसका भी सुधार हो जायगा।

किसी राजका पात्र होना तभी निश्चित हो सकता है जब अन्य राज जो पहलेसे पात्र है उसे पात्र मानें। इस माननेको 'स्वीकृति' कहते हैं। जो राज बहुत पहिलेसे चले आते हैं अर्थात् जिनका व्यवहार अन्ताराष्ट्रिय विधानका उसकी विविध आधार है उनके लिये किसी प्रकारकी स्वीकृतिकी रीतिया आवश्यकता नहीं है। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, हालैंड आदिको किसीने स्वीकृति नहीं दी। पर नवस्थापित राजोंको और ऐसे राजोंको जो पहिले असभ्य कोटिमें गिने जाते थे पर अब सभ्य माने जाने लगे हैं स्वीकृतिकी आवश्यकता होती है।

ऐसा बहुत कम होता है कि किसी राज-विशेषको अन्य सब राज या सब प्रमुख राज एक साथ ही स्वीकार कर लें। आरम्भमें एक या दो जिनको उसके साथ किसी कारण विशेषसे अधिक सहानुभूति होती है या जिनको उससे कोई स्वार्थ सिद्ध करना रहता है उसे स्वीकार कर लेते हैं। फिर धीरे धीरे दूसरे भी ऐसा करने लग जाते हैं। जब किसी राजको प्रधान प्रधान राज स्वीकार

कर लेते हैं अर्थात् अन्ताराष्ट्रीय विधानका पात्र मान लेते हैं तो छोटे राज ऐसा करनेसे विमुख नहीं रह सकते। इस बातकी आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक नये राजके लिये कुछ समयके भीतर सभी राजकी स्वीकृति मिल जाय। यदि प्रमुख राजोंकी स्वीकृति मिल चुकी है तो दूसरोंकी मूक स्वीकृति मान ली जाती है।

स्वीकृति देनेके कई प्रकार हैं। सबसे सीधा और निर्विवाद ढंग यह है कि इस विषयकी एक विशेष विज्ञप्ति निकाली जाय। ऐसी विज्ञप्ति एक मात्र उद्देश्य उस नये राजको स्वीकृति देना होता है। १९४१ में अमेरिकाक सयुक्त राजने काङ्गो फ्री स्टेटको इस प्रकारकी विज्ञप्ति द्वारा ही स्वीकृति दी थी। उसके मुख्यांशका भावानुवाद इस प्रकार है—

फ्रेडरिक टी० फ्रेलिंगह्युसेन (सेक्रेटरी आव स्टेट)' अमेरिकाके सयुक्तराजके राष्ट्रपतिके दिये हुए अधिकारके आधारपर और सिनेटके परामर्श और अनुज्ञाके अनुसार, "..... इस बातकी घोषणा करते हैं कि सयुक्त राजकी सरकार काङ्गोकी अन्ताराष्ट्रीय समितिके उदार और दयालु उद्देश्योंसे सहानुभूति रखती है और सयुक्त राजक सब कर्मचारियोंको आज्ञा देते हैं कि जल और स्थलपर अन्ताराष्ट्रीय अफ्रीकन समितिके झण्डेको एक मित्र मर्कारका झण्डा स्वीकार किया करें।

इसके साक्ष्यमे वह आज २२ अप्रैल सन् १८८४ को वाशिंगटन नगरमें अपना हस्तक्षर करते हैं और अपनी मुहर लगाते हैं।†

† Frederick T. Frelinghuysen, Secretary of State, duly empowered therefor by the President of the United States of America, and pursuant to the advice and consent of the Senate, heretofore given...declares that...the Government of the

दूसरा प्रकार सन्धि द्वारा है। स्वीकृति-दायक सन्धियाँ दो प्रकारकी होती हैं। कुछ तो ऐसी होती हैं जिनमें स्वीकृतिका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं होता। सन्धि १८२५ में फ्रांस और अमेरिकाके संयुक्त राजमें एक सन्धि हुई। उस समय अमेरिकावाले ब्रिटिश साम्राज्यके बाहर निकल चुके थे और अपनी स्वाधीनता घोषित कर चुके थे पर तब तक किसी प्रमुख राजने उनको स्वीकार नहीं किया था। उपर्युक्त सन्धिमें फ्रांसकी ओरसे यह कहीं नहीं कहा गया कि उसने संयुक्त राजको स्वीकार कर लिया परन्तु सन्धिकी शर्तें ऐसी थीं जो दो स्वतंत्र राजोंके बीच ही हो सकती थीं। इसका यही अर्थ हो सकता था कि फ्रांसने संयुक्त राजको एक स्वतंत्र राज और अन्ताराष्ट्रिय विधानका पूर्ण पात्र मान लिया परन्तु इस स्वीकृतिको कहीं लेखबद्ध करना अनावश्यक समझा।

दूसरे प्रकारकी सन्धियोंमें और शर्तोंके साथ साथ स्वीकृतिका भी स्पष्ट उल्लेख रहता है। १९४१ में जर्मनीने कागो फ्री स्टेटसे एक सन्धि की। इस सन्धिकी सात धाराएँ थीं। चार

United States announces its sympathy with, and approval of, the humane and benevolent purposes of the International Association of the Congo and will order the officers of the United States, both on land and sea, to recognize the flag of the International African Association as the flag of a friendly Government

In testimony whereof, he has hereunto set his hand and affixed his seal, this twenty-second day of April, A. D 1884, in the city of Washington

धाराओंमें उन अधिकारोंका उल्लेख था जो जर्मनोंको कांगो राजमें प्राप्त होनेवाले थे । दोमें जर्मन सरकारने नये राजको स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकृति प्रदान की थी । हम यहां उन्हीं दोनोंके भावानुवाद देने हैं ॐ—

धारा ५

जर्मन साम्राज्य समितिके झण्डेको—नीले झण्डेको जिसके बीचमें एक सुनहरा तारा है—एक मित्र राजका झण्डा स्वीकार करता है ।

धारा ६

जर्मन साम्राज्य समितिके, और जो नया राज बनने वाला है उसके, राज्यकी, संलग्न मानचित्र में दी हुई सीमाओंको, स्वीकार करनेको प्रस्तुत है ।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि कई राज मिलकर किसी राज विशेषको स्वीकार करते हैं । सन् १९१३ में फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, अस्ट्रियाने मिलकर रूम (तुर्क साम्राज्य) को अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्रत्व प्रदान किया । १९३५ में फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, आस्ट्रिया और रूसने सर्बियाकी स्वतंत्रताको इस शर्तपर स्वीकार किया कि वह अपने शासनमें धार्मिक भेदभावको स्थान न दे ।

*Article V—The German Empire recognizes the flag of the Association—a blue flag with a golden star in the centre—as that of a friendly State

Article VI—The German Empire is ready on its part to recognize the frontiers of the territory of the Association and of the new State which is to be created, as they are shown in the annexed map

प्रत्येक राजकी ओरसे उसकी सकार्र काम करती है। न तो सारा समुदाय विधान-निर्माण कर सकता है, न शासन कर सकता है, न परराजोंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। यह सब काम उसकी सकार्र करती अविच्छिन्नता है। जो काम सकार्र करती है उसके लिये सारा राज बाध्य होता है। सकार्रके लिये हुए ऋण, सकार्रकी सन्धि शर्तें, सकार्रके दिये हुए वचन, सारे समुदायके नामसे होते हैं और सारा समुदाय उनके लिये दायी है। इसमें अपवाद तभी होता है जब सकार्र अपने अधिकारके बाहर कोई काम कर बैठे। जैसे, ब्रिटेनमें नियम है कि बिना पार्लमेण्टकी अनुज्ञाके सकार्र ऋण नहीं ले सकती। अब यदि ब्रिटेन सकार्र बिना पार्लमेण्टसे पूछे ही ऋण ले ले तो ब्रिटिश राज उसके लिये दायी नहीं हो सकता।

प्रत्येक समुदायका यह नैसर्गिक स्वत्व है कि वह अपना शासन चाहे जैसा रखे। विदेशियोंको इस सम्बन्धमें बोलनेका कोई अधिकार नहीं है। चाहे किसी राजमें प्रजातन्त्र हो, चाहे गणतन्त्र हो, चाहे एक नरेशके हाथमें सारा अधिकार हो, इससे विदेशियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं। भीतरी शासनके सम्बन्धमें चाहे जितने परिवर्तन हों बाहरवालोंको तटस्थ रहना चाहिये। इन परिवर्तनोंसे राज-जीवनके प्रवाहमें कोई विघ्न नहीं पड़ता। चाहे सकार्रके रूपमें कोई परिवर्तन हो जाय, चाहे राज्य बढ जाय चाहे घट जाय, परन्तु राज ज्योंका त्यों रहता है, उसके स्वत्वों और कर्तव्योंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। गत चार पांच वर्षके भीतर यूनायन पहिले नरेशाधीन था, फिर प्रजातन्त्र हुआ, फिर नरेशाधीन होगया, उसका राज्यविस्तार पहिले घटा, फिर बढा और पीछेसे फिर घटा पर उसके जीवनमें कोई अन्तर नहीं आया। वह वही सुबान रहा। जो सन्धियाँ उसकी पहिली सकार्र कर गयी थी

वह उसपर फिर भी बाध्य रहें। कहनेका तात्पर्य यह है कि जबतक किसी राजकी नयी सकार अपनी पूर्ववर्ती सकारोंकी स्वीकृत की हुई सब शर्तोंको मञ्जूर करती है तबतक अन्ताराष्ट्रिय विधानकी दृष्टिमें राजकी सत्तामें कोई अन्तर नहीं आता। यदि विदेशी भीतरी शासनमें बोलते हैं तो यह उनका अन्याय और अनधिकार प्रयत्न है।

परन्तु कभी कभी राजसत्तामें परिवर्तन होता है। यदि कोई स्वतंत्र राज किसी अन्य राजकी संरक्षकता स्वीकार करले या तटस्थीकृत हो जाय तो उसकी सत्तामें परिवर्तन माना जायगा क्योंकि वह पूर्णप्रभुसे अशप्रभु हो गया। इसी प्रकार यदि कोई अशप्रभु-राज पूर्णप्रभु हो जाय तो उसकी सत्तामें परिवर्तन माना जायगा। यूरोपीय महासमरके पहिले बेल्जियम तटस्थीकृत राज था पर अब वह एक पूर्णप्रभु राज होगया है।

राजजीवनका अन्त भी हो सकता है। यह तीन मुख्य प्रकारोंसे होता है सबसे साधारण प्रकार तो यह है कि उसको कोई दूसरा राज पूर्णतया अपनेमें मिला ले। महासमरके पश्चात् माण्टेनेग्रो सर्बियामें मिला लिया गया, कोरियाको जापानने पूर्णतया अपने साम्राज्यमें मिला लिया है। दूसरा प्रकार यह है कि उससे टूट कर कई पृथक् राज बन जाय। दक्षिणी अमेरिकामें कोलम्बिया नामका एक विशाल प्रजातंत्र राज था। १८८९ में उसके तीन टुकड़े हो गये। यह तीनों टुकड़े—वेनेजुएला, इक्वेडोर और न्यू ग्रनाडा—स्वतंत्र राज हो गये पर कोलम्बियाकी सत्ताका अन्त हो गया। (पीछेसे सन् १९२० में न्यू ग्रनाडाने फिरसे कोलम्बिया नाम धारण कर लिया पर इसकी सत्ता पुराने कोलम्बियासे नितान्त भिन्न थी।) मध्यभारत में देवास राज टूटकर बड़ा देवास और छोटा देवास नामक दो पृथक् राजोंमें विभक्त होगया है

अब इन दोनोंकी सत्ता तो है पर मूल देवास्की सत्ताका लोप हो गया है। तीसरा प्रकार यह है कि कई राज मिलकर एक नया राज बनावें। १९०५ में स्वीजरलैण्डके सब छोटे छोटे राज मिल गये। इनके मिलनेसे वह लिंगशेष प्रजातंत्र बना जिसे आज स्वीजरलैण्ड कहते हैं। अब अन्तराष्ट्रिय विधानकी दृष्टिमें उन छोटे राजोंका सत्ताका लोप हो गया है। किसी समय इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड पृथक् राज थे पर जब १७६४ में दोनोंके मिलनेसे ग्रेटब्रिटैनका अलिंगशेष राज बना तो इन दोनोंकी सत्ताका लोप हो गया।

जब एक राजका स्थान दूसरा राज लेता है तो कई बड़े बड़े प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इसको राजोत्तराधिकार कहते हैं। कुछ

आचार्योंकी तो यह सम्मति है कि जिस समय राजोत्तराधिकार एक राज दूसरेका उत्तराधिकारी हो उस समय

वही नियम बरते जाय जो उस समय काममें लाये जाते हैं जब एक व्यक्तिका उत्तराधिकारी दूसरा व्यक्ति होता है। उत्तराधिकारी पूर्वाधिकारीकी सारी सम्पत्तिका स्वामी होता है पर इसके साथ ही वह उसके समस्त ऋणोंके लिये भी दायी होता है। यदि राजोंके लिये भी यह नियम बन जाय तो अच्छा हो। जो मनुष्य किसी राजको ऋण देता है या उसकी सेवा करता है या उसके हाथ कोई सामग्री बेचता है वह इसी आशामें रहता है कि समय पाकर मेरा रुपया मुझे मिल जायगा। अब यदि बीचमें युद्धादि कारणोंसे उस राजका स्थान कोई दूसरा राज ले ले तो उन बेचारोंका रुपया तो न मारा जाना चाहिये। पर दिलाये कौन ? इसी लिये भिन्न भिन्न समयोंपर भिन्न भिन्न राजोंके व्यवहारमें बहुत कुछ ऐसे नियम हैं जिनका आजकल न्यूनाधिक पालन होता है। यहा हम उनका ही उल्लेख कर सकते हैं। इतना बतला देना आवश्यक है कि आजकल सभ्य देशोंमें राजपरिवर्तनसे नागरिकोंके नागरिक और साम्पत्तिक स्वत्वोंपर कोई

प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् न उनके व्यापार बन्द किये जाते हैं, न सम्पत्ति छीनी जाती है, न धर्ममें हस्तक्षेप किया जाता है। इस नियममें एकही अपवाद देख पड़ता है। रूसके बोल्शेविक शासक निजी सम्पत्तिके सिद्धान्ततः विरोधी हैं। यदि उनको कहीं अधिकार मिले तो स्यात् निजी सम्पत्ति, कमसे कम बड़ी जमीनदारियों और कलकारखानों, को जब्त कर लें।

उत्तराधिकारके दो प्रकार हो सकते हैं—पूर्ण और आंशिक। इन दोनोंपर पृथक् पृथक् विचार करना होगा।

पूर्ण उत्तराधिकार प्रायः उसी अवस्थामें होता है जब एक राजा दूसरेको युद्धमें जीतकर उसके राज्य को पूर्णतया अपने राज्यमें मिला लेता है। इस दशामें विजित राजकी सत्ताका लोप हो जाता है। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं सकता कि विजेता विजितकी सारी सम्पत्तिका स्वामी हो जाता है और विजितके सब अधिकार उसको मिल जाते हैं। अब रहा कर्तव्योंका प्रश्न। कर्तव्योंमें सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि विजितके ऋणोंको विजेता देगा या नहीं। इसके लिये कोई स्पष्ट नियम नहीं है पर आजकल सभ्य देशोंमें ऋणोंका चुकाना ही श्रेष्ठ समझा जाता है। हां, वह ऋण नहीं चुकाया जाता जो विजित राजने उसी युद्धके लिये लिया था। आपेनहाइम आदि कुछ आचार्योंको सम्मतिमें तो यह ऋण भी चुकाया जाना चाहिये पर मानव स्वभाव ऐसा है कि उस ऋणको चुकानेके लिये कोई राज प्रस्तुत नहीं होता जो उसीको हरानेके लिये लिया गया था।

विलुप्त राजकी सत्ताके साथ साथ उसकी राजनीतिक सन्धियोंका भी लोप हो जाता है पर व्यापारिक सन्धियोंका प्रायः पालन होता है। यदि पूर्ववर्ती राजने विदेशी व्यापारियोंको कुछ विशेष शर्तोंपर व्यापार करनेके अधिकार दे रखे थे तो अपनी मीमांसा और उन शर्तोंका प्रायः पालन होता है।

जो समुदाय किसी राज विशेषका उत्तराधिकारी बननेकी आशा रखता है उसको यह अधिकार है कि पहिलेसे ही बतला दे कि जो लोग उस राजको किसी विशेष प्रकारकी सहायता देंगे उनको इस बातकी आशा न रखनी चाहिये कि उनकी क्षतिपूर्ति आगे चलकर होगी । इसी सिद्धान्तको मान कर गयामें भारतकी राष्ट्रीय महासभाने [पौष १९७९ (दिसम्बर १९२२)] यह निश्चय किया कि भविष्यत्में [अर्थात् माघ १९७९ (जनवरी, १९२३) से] भारतकी ब्रिटिश सरकार जो ऋण लेगी उसका दायित्व स्वराज होनेपर भारतीय सरकारपर न होगा । और भी इस प्रकारके कई उदाहरण हैं ।

यह तो आर्थिक बातें हुईं । विजित राजके नागरिकोंकी क्या स्थिति होती है ? इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि यदि वह वहीं रह जाय तो विजेताकी प्रजा हो जायगे पर यह अभी सुनिश्चित नहीं है कि यदि वह तत्काल देश छोड़ दे या यदि परदेश गये रहे हों और लौटें ही न तो वह किमकी प्रजा गिने जायगे । आजकल प्रथा यही है कि यदि वह किसी अन्य देशमें बसना चाहे तो उनको ऐसा करने दिया जाय ।

आंशिक उत्तराधिकार उस अवस्थामें होता है जब कि एक राज अपने राज्यका कुछ भाग दूसरे राजको दे देता है । यह भी प्रायः युद्धका ही परिणाम होता है और इस दशामें भी प्रायः वही नियम बरते जाते हैं जो पूर्णोत्तराधिकारमें बरते जाते हैं । जो अन्तर होता है-वह इसलिये होता है कि उत्तराधिकारीके साथ साथ पूर्वाधिकारीकी सत्ता भी बनी रहती है ।

जो भूभाग दिया जाना है उसका तथा उसपरकी सारी अच्छा राज-सम्पत्तिका उत्तराधिकारी स्वामी हो जाता है । रहा प्रश्न ऋणका । आजकल प्रथा यह है कि पूर्वाधिकारी राज जो ऋण

इस भूखण्डके विशेष उपयोगके लिये लेता है उसका भार उत्तराधिकारीपर पड़ता है। कुछ भाचार्योंका यह मत है कि उत्तराधिकारीको पूर्वाधिकारीके साधारण ऋणका भी कुछ अंश अपने ऊपर लेना चाहिये। जो राज ऋण लेता है वह उसे अपने सारे राज्यके लिये लेता है और सारे राज्यको उससे कुछ न कुछ लाभ पहुंचता है। यदि राज्यका कुछ अंश दूसरेके हाथमें चला गया तो यह हिमाव लगा लेना चाहिये कि उस टुकड़ेको कुल ऋणके कितने अंशसे लाभ पहुंचा होगा। उतनेका दायित्व उत्तराधिकारीपर होना चाहिये। यह बात है तो न्याय्य पर बहुधा इसका पालन नहीं होता। कभी कभी किसी अर्थ-विशेषको सिद्ध करनेके लिये ही राज इसके अनुसार चलते हैं। १२१७ में इटलीने पोपसे रोम नगर छीन लिया। इससे स्वभावतः रोमन कैथलिक मतके अनुयायी, जो सारे यूरोपमें फैले हुए हैं, असन्तुष्ट हुए। उनको प्रसन्न करनेके लिये इटलीने पोपके ऋणके एक अंशका भार अपने ऊपर ले लिया।

इस राज्यांगके नागरिकोंको आजकल यह अधिकार रहता है कि वह चाहें तो उसे छोड़कर अन्यत्र जा सकें। प्रायः एक वर्षका समय मिलता है। इस सम्बन्धकी विशेष शर्तें पूर्वाधिकारी और उत्तराधिकारीमें सन्धि द्वारा निश्चित हो जाती हैं। बड़े टेढ़े टेढ़े प्रश्न उठते हैं। स्त्रियोंकी राष्ट्रीयता क्या होगी? क्या स्त्री उसी राजकी नागरिक मानी जायगी जिसमें उसका पति रहना चाहता है या उसकी नागरिकता पृथक् हो सकती है? अवयस्क बच्चोंकी राष्ट्रीयताका निश्चय कैसे किया जाय? इन सब विवादास्पद प्रश्नोंके उत्तर आपसके समझौतेसे ही निश्चित हो रहे हैं।

चौथा अध्याय ।

अन्ताराष्ट्रिय विधानके आधार ।

जिसके सहारे कोई वस्तु खड़ी रहती है उसे उस वस्तुका आधार कहते हैं । यदि आधार शब्दका यही अर्थ किया जाय तो कोई भी विधान हो, उसका आधार उस राजका दण्डबल होगा जिसके राज्यमें वह प्रचलित है । जो विधानकी अवहेलना करेगा वह दण्डित होगा—यही मुख्य आधार हो सकता है । पर अन्ताराष्ट्रिय विधानको अभी तक कोई ऐसा सहारा प्राप्त न था, उसका कोई नियत पृष्ठपोषक न था । उसको यदि सहारा था तो अधिकांश सभ्य राजोंका व्यवहार । अब राष्ट्रसंघ स्थापित हो गया है । यदि उसका सघटन स्थायी रहा तो उसके हाथमें दण्डबल भी रहेगा ।

यहां हमने आधार शब्दका इस अर्थमें प्रयोग नहीं किया है । आधारसे हमारा तात्पर्य उन मार्गोंसे है जिनसे अन्ताराष्ट्रिय विधानकी उत्पत्ति हुई है । अंग्रेजी ग्रंथकार बहुधा सोर्स^१ शब्दका प्रयोग करते हैं पर उनको इसकी भी लम्बी व्याख्या करनी पड़ती है क्योंकि सोर्सका अर्थ है उद्गमस्थान । यह शब्द बुरा नहीं है पर यह समझ लेना चाहिये कि उद्गमस्थानसे इस देश विशेषसे अभिप्राय नहीं है जिसमें कोई नियम विशेष पहिले पहिले बरता या शब्दोंमें स्पष्टतया व्यक्त किया जाता है ।

उपयुक्त परिभाषाको ध्यानमें रखते हुए, अन्ताराष्ट्रिय विधानके सात मुख्य आधार हैं—

- (१) स्मृतिकारोंके ग्रन्थ
- (२) सन्धियां
- (३) शास्त्रियोंकी व्यवस्था
- (४) अन्ताराष्ट्रिय पञ्चायतोंके निर्णय
- (५) सामरिक न्यायालयोंके निर्णय
- (६) राज्योंके पत्र-व्यवहार

(७) वह निर्देश जो समय समयपर राज्योंकी ओरसे कर्मचारियों या न्यायालयोंकी सुविधाके लिये निकाले जाते हैं ।

अन्ताराष्ट्रिय विधान और दूसरे विधानोंमें जो प्रधान अन्तर है उसे न भूलना चाहिये—अन्ताराष्ट्रिय विधानको अबतक कोई भी इतना प्रबल आधार नहीं मिला है जितनी कि साधारण विधानोंके लिये एक छोटेसे छोटे देशकी सकार होती है ।

स्मृतिकारोंसे हमारा तात्पर्य उन विद्वानोंसे है जिन्होंने इस विषयपर प्रामाणिक पुस्तके लिखी हैं । जिस समय ऐसी पुस्तके पहिले पहिल लिखी गयी उस समय सुनि- स्मृतिकारोंके श्रित सामग्री बहुत कम थी । यूरोपके मध्य ग्रन्थ राज्योंके व्यवहारोंमें कुछ कुछ साम्य अवश्य था पर ऐसा कोई नियम नहीं था जो अनिवार्य- तथा परिपाल्य माना जाता हो । जेंटाइलिस, ग्रीशिअस, बिङ्करशोएक और वेटेलने जो कुछ लिखा वह केवल साम्प्रत व्यवहारको देख कर ही नहीं लिखा । उन्होंने कई बातोंपर भौचित्यानौचित्यकी दृष्टिसे भी विचार किया और विधानशास्त्र, कर्तव्यशास्त्र तथा मनोविज्ञानके परिज्ञात मौलिक सिद्धान्तोंके अनुसार नियम बनाये । इनमें कहीं कहीं मतभेद भी है पर जिन बातोंका समर्थन सबने किया है वह अन्ताराष्ट्रिय विधानके सर्व-संग्रसम्मत सिद्धान्तोंमें परिणत हो गयो हैं । किसी ऐसी बातका

अवहेलना करनेका, जिसके पक्षमें प्रायः सभी प्रामाणिक आचार्य हों, समूहसंख्य राष्ट्र प्रायः नहीं ही करते।

आरम्भमें इन स्मृतिकारोंके ही हाथमें अन्ताराष्ट्रिय विधानका निर्माण था। पीछेसे जब संख्यताकी वृद्धिके साथ साथ युद्ध, सन्धि, व्यापार, ताटस्थ्य इत्यादिसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारकी भी वृद्धि हो चली तो यह काम राजपुरुषों और राजकर्मचारियोंके हाथमें चला गया। इन लोगोंके निर्णयोंपर विधानका विकाश निर्भर हो गया। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ग्रन्थकारोंका कोई काम ही नहीं रहा। उनका काम अब भी बड़े महत्त्वका है। अन्तर इतना ही है कि अब उनको स्मृतिकार न कह कर भाष्यकार या व्याख्याकार कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। उनका प्रधान काम प्रचलित नियमों और विधानोंका ठीक ठीक अर्थ बतलाना है। यह काम वह अधिक योग्यतासे कर सकते हैं। राजपुरुष अपने अपने राजके हितको ही प्राधान्य देते हैं और उनका ऐसा करना जघन्य नहीं माना जाता परन्तु ग्रन्थकार का भाष्यकारका पक्षपाती होना अत्यन्त निन्द्य है। इस लिये जब राजोंमें किसी नियमविशेषके विषयमें विवाद उपस्थित होता है तो अब भी प्रामाणिक ग्रन्थोंके वाक्योंके आधारपर उसका निर्णय करनेकी चेष्टा की जाती है।

ग्रन्थोंका एक उपयोग और है। राजपुरुष उन्हीं प्रश्नोंपर विचार कर सकते हैं जो समयोचित अर्थात् उनकी आंखोंके सामने हों पर ग्रन्थकारके लिये यह बंधन नहीं है। वह बहुतसे प्रश्नोंके भावी महत्त्वका अनुमान करके उनपर भी विचार करता है इस लिये जब उनका समय आता है तो उसकी सम्मति, जो बहुत पहिले दी हुई होनेके कारण स्वभावतः निष्पक्ष होती है, आदरके साथ देखी जाती है।

अन्ताराष्ट्रिय विधानका दूसरा आधार सन्धियाँ हैं। संधारणत सन्धिसे तात्पर्य उस समझौतेसे होता है जो युद्धके पीछे होता है पर यह इस शब्दका सकुचित अर्थ है।

संधिया वस्तुतः यह शब्द एक व्यापक अर्थमें प्रयुक्त होता है। दो या दोसे अधिक राज किसी समय और किसी भी उद्देश्यसे जो कुछ भी निर्णय करते हैं वह सन्धि है। सन्धियाँ प्रधानतः तीन प्रकारकी होती हैं—

(१) व्यवस्थापक ।

(२) अर्थ-द्योतक ।

(३) विधायक ।

अब हम संक्षेपतः इन तीनों प्रकारकी संधियोंपर विचार करेंगे।

व्यवस्थापक सन्धियाँ

व्यवस्थापक सन्धिया वह हैं जो दो या अधिक राजोंमें कुछ विशेष प्रश्नोंकी व्यवस्था करनेके लिये की जाती हैं। यह प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका सम्बन्ध अन्य राजोंसे नहीं होता। व्यवस्थापक सन्धियोंको भी दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं (क) विग्रह-शोधक (ख) समयपत्र । विग्रह-शोधक सन्धियाँ वह हैं जो प्रायः युद्ध या विवादके पीछे होती हैं। यह आपसके सम्झौतेके रूपमें होती हैं। अमुक राज अमुक राजको इतना राज्य या रुपया देगा, अमुक राज अमुक राजके घरेलू प्रबन्धमें हस्तक्षेप न करेगा, इत्यादि। सन् १८६२ (सन् १८७५) में द्वितीय मराठा युद्धके पीछे होकर और अंग्रेजोंमें जो सन्धि हुई थी वह विग्रहशोधक सन्धियोंका शुद्ध उदाहरण है। उसकी नव धाराएँ थीं। हम वदाहरणके लिये उसकी दो धाराएँ उद्धृत करते हैं—

द्वितीय धारा

यशवन्तराव होल्कर टोंक रामपुरा, बून्दी, लखेरी, समेदी, भाभगर्गव, देस, इत्यादि उन सब स्थानोंपर से, जो बून्दी पहाड़ोंके उत्तर हैं और इस समय ब्रिटिश सरकारके हाथमें हैं, अपना स्वत्व छोड़ते हैं।

तृतीय धारा

कम्पनी इस बातका वचन देती है कि वह होल्कर वंशके राजाके उस अंशसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखेगी जो मेवाड़, मालवा या हाडावतीमें है और न वह उन नरेशोंसे किसी प्रकारका सरोकार रखेगी जो चम्बल नदीके दक्षिण है।

समयपत्र वह सन्धियाँ हैं जिनका सम्बन्ध किसी युद्धसे नहीं होता। इनमें सन्धि करनेवाले राज परस्पर व्यवहारके लिये कुछ शर्तें तय करते हैं। यद्यपि यह सन्धियाँ थोड़ेसे राजोंमें होती हैं और इनका कोई अन्ताराष्ट्रिय महत्त्व न होना चाहिये पर कभी कभी इनके द्वारा अन्ताराष्ट्रिय विधानपर प्रभाव पड़ता है। दो प्रभावशाली राज परस्पर व्यवहारके लिये जो निबन्ध बनायेंगे उनका अन्य राजों द्वारा स्वीकृत होकर अन्ताराष्ट्रिय विधानमें सम्मिलित हो जाना असम्भव नहीं है। जिस समय ऐसी सन्धियाँ लिखी जाती हैं उस समय इनको अन्ताराष्ट्रिय विधानके आधारोंमें नहीं गिन सकते। इनमें बहुधा ऐसी बातें लिखी जाती हैं जो प्रचलित विधानके विरुद्ध होती हैं। यदि सब बातें विधानके अनुकूल हों तो पृथक् सन्धि करनेकी आवश्यकता ही न हो। सन् १८४२ में प्रशा और सयुक्त राज (अमेरिका) में जो सन्धि हुई थी उसमें जान बूझकर दो ऐसी शर्तें रखी गयी थीं जो प्रचलित विधानके विरुद्ध थीं। सन्धिकी तेरहवीं धारा यह थी कि यदि दोनों सन्धिकारी राजों (प्रशा

और अमेरिका) में से एकसे किसी तीसरे राजने लड़ाई छिड़ जाय और दूसरे सन्धिकारी राजके जहाजोंपर शत्रुकी सहायताके लिये ऐसी चीजें (जैसे गोला बारूद, अस्त्र इत्यादि) लदकर जाती हों जिनको पहुंचाना युद्धके समयमें मना है तो यह जहाज जब्त न किये जाकर युद्धकी मीयाद भर केवल रोक लिये जाय । तेईसवीं धारा ॐ यह थी कि यदि सन्धिकारी राजोंमें कभी आप-समें ही युद्ध छिड़ जाय तो एक दूसरेके व्यापारी जहाजोंको न जब्त करेंगे, न लूटेंगे, न नाश करेंगे और न उनके व्यापारमें विघ्न डालनेका प्रयत्न करेंगे । लिखी जानेके समय ये शर्तें अपवाद स्वरूप ही होती हैं पर यदि प्रधान राज इनपर चलने लग जाय तो काल पाकर नियम अपवाद और अपवाद नियम हो जायगा ।

अर्थ-द्योतक सन्धियां

जैसा कि नामसे ही प्रकट है इस प्रकारकी सन्धियां कोई नया नियम नहीं बनातीं । इनका उद्देश्य प्रचलित नियमोंको स्पष्ट कर देना है । ऐसा बहुधा होता है कि सभ्य राज कुछ नियमोंका पालन करते आते हैं पर उन नियमोंका कहीं स्पष्ट बख्शेख नहीं मिलता । यह काम अर्थद्योतक सन्धियां करती हैं । कभी कभी इस विषयमें मतभेद होता है कि अमुक अवस्थाके लिये कौन सा नियम उपयुक्त है । ऐसी दशामें यदि कुछ राज मिलकर स्पष्ट शब्दोंमें नियमोंको लिख डालते हैं तो उनका यह लेख अर्थद्योतक सन्धि ही समझा जाता है क्योंकि उसके द्वारा अस्पष्ट प्रचलित नियमोंकी स्पष्ट व्याख्या हो जाती है ।

इस प्रकारकी सन्धियोंका पहिला उदाहरण १८३७ में मिलता है । उस साल रूस और डेन्मार्कमें एक सन्धि हुई जिसे प्रथम

* १८५३ के बाद यह धारा नहीं दुहरायी गयी । पड़ोसी सन्धिकारी मीयाद १८५३ में पूरी हुई थी ।

सशस्त्र तटस्थता ॐ कहते हैं। उसमें युद्धके समय तटस्थ राष्ट्रोंके अधिकार स्पष्ट किये गये हैं। उसकी कुछ धाराएं इस प्रकार हैं—

(१) युद्ध करनेवाले राष्ट्रोंके समुद्र-तटोंपर और उनके नौ-स्थानोंमें सभी जहाज जा सकते हैं।

(२) युद्ध करने वाले राज्योंकी प्रजाओंकी सम्पत्ति तटस्थ राज्योंके जहाजोंपर से जब्त न की जायगी, इत्यादि।

हम ऊपर हेगके अन्तराष्ट्रिय सम्मेलनोंका उल्लेख कर आये हैं। इनमें भी प्रायः पूर्व प्रचलित नियमोंका स्पष्टीकरण, वर्गीकरण और सग्रह किया जाता था। कभी कभी इस प्रकारकी सन्धियोंसे एक और काम लिया जाता है। ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जब एक बलवान् राज किसी अल्प बलशाली राजको कुछ ऐसे नियमोंके माननेपर बाध्य करता है जो प्रचलित विधानके अन्तर्गत नहीं होते। नियम होते तो हैं नये पर छोटे राजकी प्रतिष्ठा बचानेके लिये उन्हें अर्थाद्योतक सन्धिके रूपमें लिखते हैं जिससे यह प्रतीत हो कि यह नये नियम नहीं हैं प्रत्युत पुराने नियमोंकी व्याख्या मात्र हैं।

विधायक सन्धिया

यह नाम ही बतलाता है कि इस प्रकारकी सन्धियां नये नियम बनाती हैं। आजकल अन्तराष्ट्रिय जीवन इतना जटिल हो गया है कि साधारण और प्रचलित नियम सर्वथा पर्याप्त नहीं होते। इसलिये समय समयपर नये नियमोंकी आवश्यकता पड़ती है। यह प्रायः निश्चय है कि नये नियमोंके बनाते समय सभी राज्योंके प्रतिनिधि एकत्र नहीं होते पर यदि प्रमुख राज मिलकर कुछ नियमोंको बनायें और अन्य राज, कमसे कम अभ्य

प्रमुख राज, उसका विरोध न करें तो वह काल पाकर सर्वमान्य हो जाता है ।

इस प्रकारकी सन्धियोंके कई उदाहरण हैं । पहिले यह निश्चय नहीं था कि युद्धकालमें योद्धाओं और तटस्थोंमें समुद्रपर कैसा सम्बन्ध होना चाहिये अर्थात् योद्धाओंको तटस्थोंके साथ छेड़छाड़ करनेका कहांतक अधिकार है । सन्वत् १९१३ में पेरिस नगरमें एक सन्धि लिखी गयी जिसे पेरिसकी घोषणा^७ कहते हैं । इस घोषणाको इस विषयकी नियमावली कह सकते हैं [जो नियम निर्धारित हुए उनका यथास्थान आगे चलकर उल्लेख होगा] । इसपर पहिले पहिले ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया, सार्डिनिया और तुर्कीके हस्ताक्षर हुए । इसके बाद क्रमशः चालीस अन्य राजोंके हस्ताक्षर हो गये । पर अमेरिकाके संयुक्त राजने आजतक हस्ताक्षर नहीं किये । फिर भी जब जब काम पडा है वह इस घोषणाके अनुसार ही व्यवहार करता रहा है, इससे यह अनुमान होता है कि उसे भी यह नियम स्वीकार है ।

कुछ ऐसी सन्धिया होती हैं जो नये नियम तो नहीं बनाती पर इस प्रकारके नये निश्चय करती हैं जिनका प्रभाव अन्तराष्ट्रिय जगत्पर पड़े बिना नहीं रह सकता । इनको भी सुविधाके लिये विधायक सन्धियोंके ही अन्तर्गत मानते हैं । १९३५ में बर्लिनकी सन्धिके द्वारा सर्बिया, माण्टेनीग्रो और रूमानिया तुर्क साम्राज्यसे निकालकर स्वतन्त्र कर दिये गये । यद्यपि पक्षमें थोड़े से राज ही सम्मिलित थे पर उनके इस निश्चयका प्रभाव सारे अन्तराष्ट्रिय जगत्पर पडा । इसलिये उस संधिको विधायक पंधि कह सकते हैं । महासमरके पश्चात् यूरोपमें जो संधियां हुई हैं वह प्रायः सब इसी ढंगकी हैं ।

*The Declaration of Paris (1856)

अब किसी राजके सामने कोई ऐसा अन्ताराष्ट्रीय प्रश्न आता है जिसकी व्यवस्थाके विषयमें उसका मंत्रिमण्डल स्वयं निर्णय करनेमें असमर्थ होता है तो वह अपने देशके शास्त्रियोंकी प्रख्यात शास्त्रियों अर्थात् विधानशास्त्रके ज्ञाता-व्यवस्थाओंसे सम्मति लेता है। यह विद्वान् लोग जो व्यवस्था देते हैं उसका मानना अनिवार्य तो नहीं होता पर अपने देशके ही शास्त्रियोंसे सम्मति माँगकर फिर उसका तिरस्कार करना भी सुकर नहीं होता। यदि वह राज भी जिससे विवाद चल रहा हो इस सम्मतिको मानले तब तो वह सम्मति और भी मान्य हो जाती है। निष्पक्ष विद्वानोंकी सम्मतियोंका यही महत्त्व है कि अधिकांश राज उन्हें मान लेते हैं।

यदि दो राजोंमें किसी विषयमें मतभेद हो जाय तो उसे दूर करनेके दो ही मार्ग हैं, युद्ध या समझौता। समझौता कभी कभी तो आपसकी लिखा-पढीसे हो जाया करता है पर अन्ताराष्ट्रीय बहुधा नहीं भी होता। तब दोनों राज पञ्चायतोंके मिलकर किसी तीसरे राजको या तीन चार राजोंको पञ्च मान लेते हैं। इस पञ्चायतके निर्णयको दोनों पक्ष मान लेते हैं। युद्धके पीछे राष्ट्रसंघने तो एक अन्ताराष्ट्रीय न्यायालय ही स्थापित कर दिया है। यद्यपि इन न्यायालयोंके सामने विशेष विशेष प्रश्न ही आते हैं पर इनके निर्णयोंमें बहुधा सिद्धान्तकी बातें रहती हैं। यह ठीक वैसी ही बात है जैसे कि साधारणतः हाईकोर्ट और प्रिवीकौंसिलके न्यायाधीशोंके महत्त्वपूर्ण निर्णय भविष्यत्के लिये प्रमाण (नज़ीर) हो जाते हैं।

युद्धके समय कई बड़े जटिल प्रश्न उपस्थित होते हैं। प्रत्येक राजकी शत्रु के जहाजोंको पकड़ लेने और उन परकी सारी

सम्पत्तिको ज़ब्त करलेनेका अधिकार होता है। विशेष अवस्थाओंमें, जिनका उल्लेख भागे होगा, शत्रु के अतिरिक्त सामरिक न्याया- तटस्थ राजोंके जहाज़ भी पकड़े जाते हैं। लवोंके निर्णय पकड़ने वाले जहाज़ इन्हें अपने देश लाते हैं।

वहाँ एक विशेष न्यायालय युद्धकालके लिये बैठाया जाता है जिसे सामरिक न्यायालय कहते हैं। इस न्यायालयको इन मामलोंका निर्णय करना पड़ता है। काम बड़ा टेढ़ा होता है। एक ओर न्याय और अन्ताराष्ट्रिय विधानके अस्पष्ट नियम होते हैं, दूसरी ओर अपने देशको युद्धमें फंसा देख कर यह भाव स्वतः होता है कि जो उसके विरोधमें खड़ा हो या विरोधियोंको सहायता दे उसे कड़ा दण्ड दिया जाय, पर जो निष्पक्ष न्यायाधीश होते हैं उनके निर्णय स्वभावतः निर्भीक होते हैं। ऐसे न्यायाधीश अपने देशकी सरकारके विरुद्ध निर्णय करनेमें भी सझोच नहीं करते। ऐसे निर्णय स्वभावतः अन्य देशोंमें भी प्रमाण स्वरूप हो जाते हैं।

जैसा कि हम उपर देख चुके हैं अन्ताराष्ट्रिय प्रश्नोंका सबसे प्रामाणिक निर्णय सन्धियों द्वारा होता है। सन्धियां प्रायः प्रकाशित की जाती हैं अतः उनके तात्पर्यसे सभी राजोंके पत्र- परिचित हो जाते हैं। राजोंके पत्र-व्यवहारके लिये साधारणतः यह नियम उपयुक्त नहीं है।

यह पत्र व्यवहार प्रायः विशेष प्रश्नोंके सम्बन्धमें होता है जिनसे अन्य लोगोंसे कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस लिये वह प्रायः प्रकाशित भी नहीं किया जाता। यदि प्रकाशित किया भी जाय तो उसका महत्त्व केवल ऐतिहासिक होगा। पर कभी कभी ऐसे प्रश्न उठ जाते हैं जिनमें कोई सिद्धान्त अन्तर्गत होता है। ऐसे पत्र-व्यवहारके प्रकाशित हो जानेसे उस सिद्धान्तपर

प्रकाश पड़ता है। इसके कई उदाहरण हैं। जर्मनीके सम्राट् विल्हेम ने कुछ अंग्रेज महाजनोंसे ऋण लिया था और उसे चुकानेके लिये उन्होंने साइलीशिया प्रान्तकी वार्षिक आयका एक भाग नियत कर दिया। सन् १७९९ में यह प्रान्त प्रशाके नरेश फ्रेडरिकके हाथमें आया। उसने भी यह वचन दिया कि ऋण पूर्ववत् चुकाया जाता रहेगा। यह बात दस वर्ष तक रही। इस बीचमें प्रशा और इंग्लैण्डमें कुछ अनबन हो गयी और अंग्रेजोंने प्रशाके कुछ जहाज जब्त कर लिये। फ्रेडरिककी सम्मतिमें यह अन्याय था और उन्होंने इसके बदले अंग्रेज महाजनोंका ऋण देना बन्द कर दिया। इसपर बहुत कुछ पत्र-व्यवहार चला। अंग्रेज सरकारकी ओरसे यह दिखलाया गया कि राजोंकी अनबनके कारण महाजनोंको क्षति पहुँचाना अनुचित है। प्रशाकी सरकारने भी अन्तमें इस तर्कको स्वीकार कर लिया। साइलीशियन ऋणका प्रश्न तो १८१३ में सन्धि द्वारा तय हो ही गया पर जिस सिद्धान्तपर अंग्रेजोंने आग्रह किया था उसे अन्य राजोंने भी स्वीकार कर लिया और इस पत्र-व्यवहारको अन्ताराष्ट्रिय जगत्में एक नये विधानको प्रचलित करनेका श्रेय प्राप्त हो गया।

अन्ताराष्ट्रिय विधानके एक आधारका उल्लेख शेष है। अभी तक जितने आधारोंका जिक्र किया गया है उनमें प्रायः दो या तीन राजोंके सहयोगकी आवश्यकता है। कभी कभी एक राज भी विधानमें प्रामाणिक परिवर्तन कर सकता है। जितने नियम हैं वह सब एक साथ तो दिये गये निर्देश बने हैं नहीं। ज्यों ज्यों आवश्यकता प्रतीत हुई त्यों त्यों नियम बनते गये। युद्धके समय शत्रुके जहाजोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इस विषयमें कोई ठीक

नियम न थे। १७९८ में फ्रेञ्च सरकारने अपने जहाजोंके लिये कुछ नियम बनाये। यह नियम इतने अच्छे प्रतीत हुए कि अन्य राजोंने भी इन्हे मान लिया। इसी प्रकार १९२० में अमेरिकन सरकारने अपनी सेनाके लिये कुछ नियम बनाये। यह नियम भी शीघ्र ही सवमान्य हो गये। यह तो स्पष्ट ही है कि किसी एक राजका अपने भृत्योंके नाम भेजा हुआ निर्देश स्वतः कोई अन्ताराष्ट्रिय महत्त्व नहीं रखता पर जब अन्य नियमोंके अभावमें दूसरे दूसरे राज भी उस निर्देशके अनुसार व्यवहार करने लग जाते हैं तो वह निर्देश कोटिसे निकल कर अन्ताराष्ट्रिय विधानका एक अंग हो जाता है।

ऊपर जिन सात आधारोंका उल्लेख किया गया है उन्हींपर अन्ताराष्ट्रिय विधानकी भित्ति खड़ी है, पर यह बात कदापि न भूलना चाहिये कि अन्ताराष्ट्रिय विधान अन्य विधानोंसे भिन्न है। उसके साथ अभी तक कोई निश्चित दण्डधर नहीं है। उसके नियमोंका पालन इस लिये होता है कि बहुत से नियम बुद्धिसंगत है अतः उनको माननेमें सुविधा होती है और उनको मानना सभ्यताका परिचायक समझा जाता है। यह डर रहता है कि जो राज इन नियमोंकी उद्दण्ड अवहेलना करेगा उससे सारा सभ्य जगत् असन्तुष्ट होकर एक प्रकारका असहयोग करने लग जायगा। फिर भी जो राज अपनेको बलवान् समझता है वह लोकमतकी भी उपेक्षा कर बैठता है। सब नियम धरे ही रह जाते हैं पर बलशाली राज अपना मनमानी कर डालते हैं। इतना अवश्य है कि आज कल धीरे धीरे लोकमत प्रबल होता जाता है। स्यात् कभी ऐसा भा समय आ जाय जब कोई उसके विरुद्ध आचरण करनेका साहस न कर सके।

पाँचवाँ अध्याय ।

दौत्य ।

यह एक बड़ा ही रोचक विषय है । प्राचीन कालसे ही एक राजसे दूसरे राजमें दूत भेजनेकी प्रथा चली आती है । जङ्गली जातियों तकको इसकी आवश्यकता प्रतीत होती है । दूत सर्वत्र अवध्य माना गया है । प्राचीन कालमें भार जङ्गली जातियोंमें भी परराजसे आये हुए दूतको मारना घृणित कार्य समझा जाता था ।

जिस प्रकार मनुष्योंका काम बिना एक दूसरेसे मिलेजुले नहीं चल सकता उसी प्रकार राजोंके लिये भी एक दूसरेसे सम्पर्क और संसर्ग रखना आवश्यक और अनिवार्य होता है । जिन व्यक्तियोंके द्वारा यह सम्बन्ध स्थापित और प्रचलित होता है अर्थात् जो व्यक्ति इस कामके लिये राजोंके प्रतिनिधि होते हैं उन्हें दूत कहते हैं । आर्यकालमें एक राजसे दूसरे राजमें दूत

प्राचीन आर्य काल भेजनेकी बराबर प्रथा थी । कभी कभी दूत शब्दके अन्तर्गत 'चार' का भी अर्थ ले लिया जाता है पर दोनोंमें बड़ा अन्तर है । 'चार' गुप्त रूपसे भेष बदल कर भेद लेने जाता था । वह छिपा जासूस था । वह यह नहीं कहता था कि मैं अमुक राजका भेजा हुआ हूँ । उसके पकड़े जानेपर उसको भेजनेवाला राज भी उसकी रक्षाके लिये कोई प्रकट प्रयत्न नहीं करता था । परन्तु दूतकी यह बात न थी । वह स्पष्ट रूपसे आता जाता था । उसके लिये यह नियम था—'अविज्ञातो दूतः परस्थानं न प्रविशेन्निराच्छेद्वा' ❀ अर्थात् बिना बतलाये हुए, दूत न तो परस्थानमें प्रवेश करे, न परस्थानसे

* इस अध्यायमें जो गद्य सूत्र दिये गये हैं वह श्रीमत्सोमदेव शूरिके 'नीति वाक्यामृतम्' से लिये गये हैं ।

बाहर निकले। यह हम ऊपर कह चुके हैं कि दूत था। इस विषयमें यह स्पष्ट निर्देश था 'तेषामस्त्यावसायिनोऽप्यवस्थाः' अर्थात् यदि चाण्डालादि दूत बनकर आये हों तो वह भी अवध्य हैं।

दूतके हाथमें स्वभावतः बड़ा अधिकार होता था। मनु भगवान् कहते हैं, 'दूत एव हि संधरो भिनत्येव च सहतान्' तथा 'दूते संधिविपर्ययौ' अर्थात् दूत ही बिगाड़े हुआँको मिलाता और मिले हुआँको बिगाड़ता है। दूत के ही हाथमें संधि और विपर्यय है।

दूतकर्मके लिये प्रत्येक मनुष्य उपयुक्त नहीं हो सकता। इतने दायित्वका काम सबके हाथमें नहीं सौंपा जा सकता। मनुने दूतके यह लक्षण बतलाये हैं—

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित् ।

वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥

राजाका दूत अनुरक्त, शुचि, दक्ष, स्मृतिमान्, देशकालका ज्ञाता, सुन्दर शरीर वाला निर्भय और सुवक्ता होना चाहिये। यही बात अन्यत्र इस प्रकार कही गयी है—'स्वामिभक्तिरव्यसनिता दक्ष्यं शुचित्वममूर्खता प्रागलभ्य प्रतिभावत्त्व क्षान्ति परममवेदित्व जातिश्चेति प्रथमा दूतगुणा' अर्थात् स्वामिभक्ति, व्यसनोंसे मुक्त होना, चतुरता, पवित्रता, अमूर्खता सुवक्ता होना, तीव्र बुद्धि, क्षान्ति, दूसरेका रहस्य समझना और जाति—यह दूतके प्रथम गुण हैं।

अधिकार-भेदसे दूत कई प्रकारके होते थे। जिस दूतका सन्धि-विग्रहादिका पूरा अधिकार होता था वह 'निसृष्टार्थ' कहलाता था, जिसे कुछ विशेष काम ही सौंपे जाते थे वह परिमितार्थ कहलाता था॥

* बँगला विश्वकोषमें 'युक्तिकल्पतरु के आधारपर तीन प्रकारके दूत कहे गये हैं 'विमृष्यार्थो मितार्थश्च तथा शासनहारक'। जो अपने 'कार्यकाल' में के ल अरने स्वामीकी आज्ञाका प्रतिपादन करे वह

जब बौद्धकालमें भारतका यूनान, चीन आदिसे सम्बन्ध हुआ तो उन देशोंसे भी दौत्यसम्बन्ध स्थापित हुआ। चन्द्रगुप्तके दरबारमें बलक्षके यूनानी नरेश सेल्यूकसका भेजा हुआ दूत मेगस्थनीज कई बरस रहा था।

मुसलमानी कालमें दो प्रकारके राजदूत होते थे। जो स्वतन्त्र देशोंसे आते थे वह तो 'एलची' कहलाते थे और जिनको अधीन हिन्दू नरेश अपने प्रतिनिधि स्वरूप सम्राट्के दरबारमें छोड़ जाते थे वह 'वकील' कहलाते थे। यह नरेश एक दूसरेके दरबारमें जो दूत भेजते थे वह भी वकील ही कहलाते थे। आजकल भी कई देशी नरेशोंके वकील अग्रेज सरकारकी सेवामे उपस्थित रहते हैं। इन बेचारोंको राजदूत कहना इस शब्दकी हँसी उड़ाना है। कुछ राज अब भी आपसमें वकील भेजते हैं।

यूरोपमें दूत भेजनेकी प्रथा निश्चित रूपसे लगभग छः सौ वर्षसे निकली है। पहिले पहिले राजदूत थोड़े दिनोंके लिये और किसी विशेष कार्यके लिये नियुक्त किये जाते थे।

राजदूतका काम उस कामके हो जाने पर वह अपने देश लौट जाते थे।
(मध्ययुगीय सबसे पहिले फ्रांसके ग्यारहवें लुई (१५१८-
यूरोपमे) १५४०) ने परराज्योंमे स्थायी रूपसे दूत भेजे।

इन दूतोंको उन देशोंमें रहकर वहाँका सारा वृत्त लुईके पास भेजना पड़ता था। वस्तुतः इनका वही काम था जो आर्यकालमें 'चारों' का होता था। भेद केवल इतना था कि चार

'विमृष्टार्थ' जो अपना काम पूरा करनेके बाद चुप हो जाय, उत्तर-प्रत्युत्तर न करे, वह मितार्थ और जो लिखित पत्रादि ले जाय वह शासनहारक है। कौटिल्यने अमात्यके गुणोंसे युक्त दूतको निवृष्टार्थ, चौबाई गुणोंसे हीन दूतको परिमितार्थ, और आधे गुणोंसे हीन दूतको शासनहार माना है—सं०

बाहर निकले। यह हम ऊपर कह चुके हैं कि दूत अवध्य होता था। इस विषयमें यह स्पष्ट निर्देश था 'तेषामन्त्यावसायिनोऽप्यवध्या' अर्थात् यदि चाण्डालादि दूत बनकर आये हों तो वह भी अवध्य हैं।

दूतके हाथमें स्वभावतः बड़ा अधिकार होता था। मनु भगवान् कहते हैं, 'दूत एव हि सधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्' तथा 'दूते संधिविपर्ययौ' अर्थात् दूत ही बिगड़े हुआँको मिलाता और मिले हुआँको बिगाड़ता है। दूतके ही हाथमें संधि और विपर्यय है।

दूतकर्मके लिये प्रत्येक मनुष्य उपयुक्त नहीं हो सकता। इतने दायित्वका काम सबके हाथमें नहीं सौंपा जा सकता। मनुने दूतके यह लक्षण बतलाये हैं—

अनुरक्तः शुचिर्दक्ष स्मृतिमान्देशकालवित् ।

वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञ प्रशस्यते ॥

राजाका दूत अनुरक्त, शुचि, दक्ष, स्मृतिमान्, देशकालका ज्ञाता, सुन्दर शरीर वाला, निर्भय और सुवक्ता होना चाहिये। यही बात अन्यत्र इस प्रकार कही गयी है—'स्वामिभक्तिरव्यसनिता दाक्ष्य शुचित्वममूर्खता प्रागल्भ्य प्रतिभावत्वं क्षान्ति परममवेदित्व जातिश्चेति प्रथमा दूतगुणा' अर्थात् स्वामिभक्ति, व्यसनोंसे मुक्त होना, चतुरता, पवित्रता, अमूर्खता, सुवक्ता होना, तीव्र बुद्धि, क्षान्ति, दूसरेका रहस्य समझना और जाति—यह दूतके प्रथम गुण हैं।

अधिकार-भेदसे दूत कई प्रकारके होते थे। जिस दूतको सन्धिविग्रहादिका पूरा अधिकार होता था वह 'निसृष्टार्थ' कहलाता था, जिसे कुछ विशेष काम ही सौंपे जाते थे वह परिमितार्थ कहलाता था॥

* बँगला विश्वकोषमें 'युक्तिक्लृपतरु' के आधारपर तीन प्रकारके दूत कहे गये हैं 'विस्पृष्टार्थो मितार्थश्च तथा शासनहारक'। जो अपने 'कार्यकाल' में केवल अपने स्वामीकी आज्ञाका प्रतिपालन करे वह

जब बौद्धकालमें भारतका यूनान, चीन आदिसे सम्बन्ध हुआ तो उन देशोंसे भी दौत्यसम्बन्ध स्थापित हुआ। चन्द्रगुप्तके दरबारमें बलक्षके यूनानी नरेश सेल्यूकसका भेजा हुआ दूत मेगस्थेनीस कई बरस रहा था।

मुसल्मानी कालमें दो प्रकारके राजदूत होते थे। जो स्वतंत्र देशोंसे आते थे वह तो 'एलची' कहलाते थे और जिनको अधीन हिन्दू नरेश अपने प्रतिनिधि स्वरूप सम्राट्के दरबारमें छोड़ जाते थे वह 'वकील' कहलाते थे। यह नरेश एक दूसरेके दरबारमें जो दूत भेजते थे वह भी वकील ही कहलाते थे। आजकल भी कई देशी नरेशोंके वकील अंग्रेज सरकारकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। अब बेचारोंको राजदूत कहना इस शब्दकी हँसी उड़ाना है। कुछ काल अब भी आपसमें वकील भेजते हैं।

यूरोपमें दूत भेजनेकी प्रथा निश्चित रूपसे लगभग छः सौ वर्षसे निकली है। पहिले पहिले राजदूत थोड़े दिनोंके लिये और किसी विशेष कार्यके लिये नियुक्त किये जाते थे। राजदूतका काम उस कामके हो जाने पर वह अपने देश लौट जाते थे। (अध्ययणीय सबसे पहिले फ्रांसके ग्यारहवें लुई (१५१८-१५४०) ने परराजोंमें स्थायी रूपसे दूत भेजे। यूरोपमें)

इन दूतोंको उन देशोंमें रहकर वहाँका सारा वृत्त लुईके पास भेजना पड़ता था। वस्तुतः इनका वही काम था जो आजकलमें 'चारों' का होता था। भेद केवल इतना था कि चार

'निष्पार्थ', जो अपना काम पूरा करनेके बाद चुप हो जाय, उत्तर-प्रत्युत्तर न करे, वह मितार्थ और जो लिखित पत्रादि ले जाय वह कालसन्धारक। कौटिल्यने अमात्यके गुणोंसे युक्त दूतको निष्पार्थ, और गुणोंसे हीन दूतको परिमितार्थ, और आधे गुणोंसे हीन दूतको कालसन्धार माना है—सं०

गुप्त रहते थे, यह दूत प्रकट थे। लुईने इनको आज्ञा दे रखी थी “यदि लोग तुमसे झूठ बोलें, तो तुम उनसे और अधिक झूठ बोला करो”। उस समयके राजदूतोंको देख कर ही एक लेखकने लिखा था “राजदूत उस व्यक्तिको कहते हैं जो अपने देशके हितके लिये विदेशमें झूठ बोलने भेजा जाता है”। ❀ यद्यपि उपचार-दृष्टिसे आदर करना ही पड़ता था पर कोई राज पराये राजोंके दूतोंका अपने यहाँ बहुत दिनों तक टिकना पसन्द नहीं करता था। इसका प्रधान कारण यही था कि राजदूत जासूसी करनेके लिये ही नियुक्त होते थे। धीरे धीरे यह परिस्थिति बदली। अब तो एक राजमें अन्य राजोंके दूतोंका रहना एक साधारण बात हो गयी है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि जिस समय यह प्रथा पहिले पहिले यूरोपमें निकली उस समय प्रायः सभी प्रधान और बलशाली देश नरेशाधीन थे। इसलिये जो दूत दूतोंके भेद भेजा जाता था वह न केवल राजका वरन् नरेशका भी प्रतिनिधि होता था। उसको अपने नरेशकी प्रतिष्ठाके अनुसार ठाटबाटसे रहना पड़ता था। पीछेसे इसमें एक अड़चन पड़ने लगी। इस ठाटबाटसे काममें रुकावट पड़ने लगी। इसलिये दूतोंके दो भेद किये गये। एक तो वह जो नरेशकी व्यक्तिके प्रतिनिधि होते थे, दूसरे वह जो उसके व्यावहारिक प्रतिनिधि (अर्थात् राजके प्रतिनिधि) होते थे। पर इतनेसे भी काम न चला। इन दूतोंमें पौर्वापर्यका बड़ा झगड़ा रहता था। प्रत्येक दूत अपनी कुर्सी और अपनी सवारी औरोंसे भागे रखना चाहता

*An ambassador is a person who is sent to lie abroad for the benefit of his country—Sir Henry Wotton.

था। इस बातके पीछे झगड़े हो जाते थे। प्रत्येक राज अपने दूतका पक्ष लेना चाहता था इसलिये इस बातके पीछे राजोंमें युद्ध छिड़नेका भवसर आ जाता था। १७१८ में लन्दनमें एक जलूस निकला। उसमें अपनी गाड़ी आगे रखनेके लिये फ्रांस और स्पेनके राजदूत लड़ पड़े। एक स्पेनवालेने फ्रेञ्च राजदूतके घोड़ोंके गलोंमें रस्सी डालकर फांसी लगा दी। उस समय तो स्पेनकी गाड़ी आगे निकल गयी पर समाचार पाते ही फ्रेञ्च नरेशने स्पेनसे युद्धकी ठान ली। अन्तमें हानिपूर्तिके लिये रुपया देकर स्पेनने पिण्ड छुड़ाया।

संवत् १८७२ में वियना नगरमें वियनाकी कांग्रेस नामी एक राजसभा हुई। उसमें भिन्न भिन्न राजोंके प्रतिनिधि दूतोंका पौर्वापर्य्य एकत्र हुए थे। उस समय राजदूत निम्नलिखित तीन वर्गोंमें बाँट दिये गये—

(क) निःशेष दूत* और नशिभो†—यह लोग नरेश‡ की व्यक्ति और राज—दोनोंके प्रतिनिधि होते थे।

(ख) मितार्थदूत ¶, विशिष्ट दूत † इत्यादि।

(ग) उपदूत §।

यह नियम कर दिया कि ' क ' वर्गवाले ' ख ' वर्ग वालोंसे ओर ' ख ' वर्गवाले ' ग ' वर्ग वालोंमें ऊपर होंगे। यदि किसी स्थानमें एक ही वर्गके दो तीन दूत हों तो उनमें जो अधिक कालसे आया हुआ हो वह ऊपर हो।

*Ambassadeurs † Nuncio=पोपके दूत।

‡ नरेशके स्थानमें अब अध्यक्ष कहना चाहिये, चाहे वह नरेश हो चाहे राष्ट्रपति।

¶ Envoys † Ministers Plenipotentiary

§ Charges d' Affaires

यह वर्गीकरण भी सन्तोषप्रद न निकला। 'ख' वर्गमें अङ्घने पड़ें। ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया, रूस उस समय महाशक्ति गिने जाते थे। इनको नियमानुसार आगे पोछे होनेमें तो कोई आपत्ति न थी पर छोटे राजाओंके पीछे जाना इन्हें स्वीकार न था। कभी कभी ऐसा होता था कि किसी राजाके दरबारमें एक तो किसी छोटे राजका बहुत दिनोंसे आया हुआ 'ख' वर्गका दूत और एक किसी महाशक्तिका थोड़े दिनोंसे आया हुआ 'ख' वर्गीय दूत होता था। अब नियमानुसार उस छोटे राजाके दूतको ऊपर बैठना चाहिये पर महाशक्तियाँ इसमें अपना अपमान समझती थीं। उनको सन्तुष्ट करनेके लिये १८७५ में एकमला शैपेलकी कांग्रेसमें पुनः वर्गीकरण हुआ। उसने पुराने 'ग' वर्गको 'घ' बनाकर एक नया 'ग' वर्ग बनाया। इस नये वर्ग और 'ख' वर्गके अधिकारादिमें कोई भेद नहीं है। है तो इतना ही कि 'ख' में महाशक्तियों और 'ग' में छोटे राजाओंके प्रतिनिधि होते हैं।

वर्तमान वर्गीकरण इस प्रकार है—

(क) निःशेष दूत और नशिओ।

(ख) मिताथ दूत, विशिष्ट दूत इत्यादि।

(ग) परामितार्थ दूत।

(घ) उपदूत।

राजोंमें बराबरीका ही व्यवहार रहता है अर्थात् वह एक दूसरेके यहाँ बराबर वर्गके ही दूत भेजते हैं। 'क' वर्गवाले दूतोंकी प्रतिष्ठा स्वभावतः अधिक होती थी। पहिले तो यह प्रथा थी कि जब किसी देशमें किसी परराजका 'क' वर्गका दूत आता

*Resident Ministers

†वस्तुतः—अन्य वर्गोंके दूत तो जिस देशमें जाते हैं उसके अध्यक्षके पास भेजे जाते हैं, पर 'घ' वर्गवाले उस देशके परराज-सचिवके पास जाते हैं।

था तो उसका स्वागत बड़े समारोहके साथ किया जाता था । अब यह प्रथा उठ गयी है । उनको यह भी अधिकार था कि जिस राज-में भेजे गये हों उसके अध्यक्षसे भेंट कर सकें । अब प्रायः सभी वर्गोंके दूतोंको यह अधिकार प्राप्त है । इससे अब कोई विशेष लाभ भी नहीं है क्योंकि अब अध्यक्षसे मिलनेसे ही राजकार्य नहीं हो सकते । यह अधिकार तब उपयोगी था जब नरेश अध्यक्ष हुआ करते थे ।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि कोई राज इस बातके लिये बाध्य है कि वह परराजोंके दूतोंको अवश्य ही अपने यहा स्थान दे पर पारस्परिक सौजन्य यही है कि स्वतंत्र राजोंके दूत एक दूसरेके यहां रहें । बड़े राजोंका अधिकार तो इसके बिना काम ही नहीं चल सकता और छोटे राज इसमें अपना गौरव समझते हैं । जब कोई राष्ट्र स्वतंत्र होता है तो उसका पहिला प्रयत्न यह होता है कि बड़े बड़े राजोंसे उसका दौत्य-सम्बन्ध स्थापित हो जाय । अभी हालकी ही बात है कि अफ़गानिस्तान अंशतः ब्रिटिश सरकारके अधीन था । स्वतंत्र होते ही उसने प्रयत्न करके फ्रांस, अमेरिका, इटली इत्यादिसे दौत्य-सम्बन्ध स्थापित किया ।

एक बार स्थापित हो जानेके बाद यह सम्बन्ध बराबर जारी रहता है । किसी राजसे अपने दूतको हटा लेना उस राजसे अप्रसन्नताका सूचक माना जाता है । यह हो सकता है कि कभी किसी आकस्मिक घटनाके कारण कोई राज थोड़े दिनोंके लिये अपना दूत किसी अन्य राजसे हटा ले फिर भी कोई विशेष आपत्ति न हो पर ऐसा बहुत कम होता है । १८६० में सर्बियामें एक छोटी सी क्रान्ति हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि सर्बियन नरेश अलेक्जैण्डर मारे गये । इसके बाद खूनियोंमें-

से कुछ लोगोंको उच्च सरकारी पद मिले । इससे रुष्ट होकर सब्से बड़े राजोंने सर्वियासे अपने दूत हटा लिये । इससे सर्वियाकी क्षति हुई क्योंकि वह सम्य समजमें अलूत सा हो गया । अब फिर यह अपराधी लोग पदच्युत कर दिये गये तब जाकर सम्बन्ध फिर स्थापित हुआ । ब्रिटेनने १८६३ में फिर दूत भेजा ।

परन्तु सर्विया छोटा देश है । उससे और राजोंका विशेष काम नहीं रहता । इस लिये उसके साथ तीन वर्ष तक अप्रसन्नता दिखलाना सम्भव था । बड़े राजोंके विषयमें ऐसा नहीं हो सकता । उनका पारस्परिक व्यवहार बहुत दिनों तक अनिश्चित रूपमें नहीं रह सकता । उनमें या तो खुलकर लड़ाई ही होती है या शान्ति ही रहती है । इस लिये प्रचलित प्रथा यह है कि जब दो राजोंमें वैमनस्य इतना बढ़ जाता है कि शान्तिसे काम चलनेकी आशा नहीं रह जाती तो एक राज दूसरेके दूतको बिदा कर देता है । इसका अर्थ यही है कि अब युद्ध छिड़ेगा । कभी कभी भेजने वाला राज अपने दूतको आप ही बुला लेता है । सन्धि हो चुकनेके बाद पहिला काम इस सम्बन्धका पुनः स्थापन करना होता है ।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह साधारण सम्बन्धके विषयमें था । राजोंको यह अधिकार सदैव प्राप्त है कि किसी मित्र राजके भेजे हुए किसी दूत विशेषको, जिसका आचार्य किसी दूतविशेष- उन्हें पसन्द न हो, अपने यहाँ न आने दें । इसके बर्ताने को स्वीकार न उदाहरण मिलते हैं । १९४२ में अमेरिकन सरकारने करनेका अधिकार काइली नामक एक सज्जनको इटलीमें दूत बना कर भेजा । इसके पहिले यह एक बार रिकार्डो सार्वजनिक सभामें इस आशयका व्याख्यान दे चुके थे कि इटलीका वह भाग जो पोपके अधीन है उनके अधीन ही रहने

देना चाहिये । इस भाषणके कुछ ही दिनोंके बाद इटलीकी सरकारने बलप्रयोग द्वारा पोपके सारे शासनाधिकार छीन लिये थे । अब श्रीयुक्त काइलीकी नियुक्तिपर उसने इसलिये आक्षेप किया कि वह उसकी आभ्यन्तर नीतिकी विरोधपूर्ण आलोचना कर चुके थे । उसके आक्षेपपर काइली महाशयका जाना रुक गया ।

इसी प्रकार यदि किसी राजदूतका आचरण अनुचित हो तो वह लौटाया भी जा सकता है । १९४५ मे लार्ड सैक्विल अमेरिकामें इंग्लैण्डके राजदूत थे । उस साल वहां राष्ट्रपतिका चुनाव होनेवाला था । राजदूतको ऐसे आभ्यन्तर प्रश्नोसे पृथक् रहना चाहिये । यह तो उसका कर्तव्य है कि स्वदेशके हितकी दृष्टिसे उन सब बातोंको ध्यानपूर्वक देखता रहे जो उस राजमे हो रही हों जहां वह भेजा गया हो पर उसे स्वयं किसी दल या वर्गका पक्ष न लेना चाहिये । सैक्विलने एक व्यक्तिको एक पत्र लिखा जिसमे उन्होंने एक वर्गविशेषके साथ सहानुभूति प्रकट की । वह पत्र था तो निजी अतः उसको प्रकाशित करना सरासर अशिष्टता थी पर जिसके नाम लिखा गया था उसने उसे छपवा ही दिया । इससे उनका एक वर्गका साथ देना सिद्ध हो गया । १० कार्तिक (२७ अक्तूबर) को अमेरिकन सरकारने ब्रिटिश सरकारको इस आशयका तार दिया सैक्विल लौटा लिये जायं । उसने उनके दोषका प्रमाण मांगा । प्रमाण मिल जाने पर ब्रिटिश सरकारने उनको लौटाया ही नहीं वरन् निकाल भी दिया ।

यदि किसी राजसे यह प्रार्थना की जाय कि आपके दूतका आचरण सन्तोषजनक नहीं है, इसे लौटा लीजिये तो वह इस प्रार्थनाको स्वीकार करनेके लिये बाध्य नहीं है । पहिले उसे दूतके अपराधका प्रमाण मिलना चाहिये । पर बिना पुष्ट प्रमाणके ऐसी

प्रार्थना की ही नहीं जाती। इसी प्रकार, उधरसे आग्रह होनेपर भी अपने दूतको न हटाना अच्छा नहीं है। दूत वहाँ भले ही जमा रहे पर जब उससे उस देशके मन्त्रिगण सब प्रकारका सम्बन्ध परित्याग करके असहयोग ही कर लेंगे तो वह वहाँपर रहकर ही क्या कर लेगा। इसलिये ऐसी प्रार्थनाएँ प्रायः स्वीकार ही कर ली जाती हैं। वस्तुतः ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं।

दूतोंके आने और जानेके समय कई प्रकारके उपचार बरते जाते हैं। पहिले इन उपचारोंकी सख्या बहुत अधिक थी पर अब इनमेंसे कई छाड़ दिये गये हैं। जब कोई व्यक्ति दूत नियुक्त दूतोंके आने और जाने होता है तो सबसे पहिले उसको अपने यहाँसे जानेके समयके निर्देश पत्र मिलते हैं जिनमें उसे यह बतलाया जाता है कि उसे जाकर क्या क्या करना होगा।

सबसे महत्वका वह कागज होना है जिसे अधिकार-पत्र^१ कहते हैं। यदि दूत 'क' 'ख' या 'ग' वर्गका हो तो पत्र भेजनेवाले राजके अध्यक्षकी ओरसे दूसरे राज (अर्थात् जहाँ दूत जायगा) के अध्यक्षके नाम होता है, पर यदि यह अध्यक्ष स्थायी बरेश न होकर कुछ कालके लिये चुना गया राष्ट्रपति हो तो पत्र उसके नाम नहीं प्रत्युत उसके राजके ही नाम जाता है। 'घ' वर्गके दूतोंके लिये परराज-सचिव परराज-सचिवके नाम पत्र भेजता है। इन पत्रोंमें दूतका नाम, उसकी उपाधि और उसके भेजे जानेका उद्देश्य लिखा रहता है और यह प्रार्थना रहती है कि उसके साथ सद्भव्यवहार किया जाय और उसकी बातोंपर पूरा पूरा विश्वास किया जाय। जो दूत किसी एक विशेष उद्देश्यसे भेजे जाते हैं, अर्थात् जो किसी एक कामको समाप्त करके लौट आनेके लिये जाते हैं, उनको एक अधिकार-पत्र दिया जाता है जिसे उनका

* Letter of Credence or Credentials

पूर्णाधिकार ❀ कहते हैं। इसपर भेजनेवाले राजके अध्यक्ष और परराज-सचिव दोनोंके हस्ताक्षर होते हैं। जब किसी स्थानपर कोई अन्ताराष्ट्रिय परिषद् एकत्र होती है उस समय जो राज-प्रतिनिधि आते हैं वह अपने साथ जो अधिकार-पत्र लाते हैं वह सामान्य पूर्णाधिकार-पत्र† होते हैं। यह किसी व्यक्तिविशेषके नाम नहीं लिखे होते। सब प्रतिनिधि एक दूसरेके पत्र देख लेते हैं। इन पत्रोंके अतिरिक्त प्रत्येक दूतको एक निर्देश पत्र‡ दिया जाता है। इसमें उसे यह बतलाया रहता है कि उसे किस अवसरपर किस प्रकार काम करना होगा। इन सबके साथ उसे एक यात्राधिकार (पास-पोर्ट॥) भी मिलता है। इसमें उसका नाम और पदवी लिखी होती है ताकि मार्गमें किसी देशमें उसके साथ किसी प्रकारकी रोक टोक न की जाय।

राजधानीमें पहुँच कर दूत अपने पहुँचनेकी सूचना परराज-सचिवको देता है और यदि वह 'व' वर्गका है तो उससे मिलनेकी प्रार्थना करता है। यदि वह ऊपरके तीनों वर्गोंका है तो राज-के अध्यक्षसे मिलनेका अधिकारी है। 'क' वर्ग वालोंका स्वागत खुले दरबारमें होता है, शेष दोनों वर्गवाले एकान्तमें मिलते हैं। भेंट होने पर वह अपना अधिकारपत्र पेश करता है और दोनों ओरसे सौहार्द-सूचक छोटी छोटी वक्तृताएँ होती हैं। यही उपचार लौटते समय होता है। उस अवसरपर उसे वह पत्र पेश करना पड़ता है जिसमें उसके अध्यक्षकी ओरसे उसे स्वदेश लौटनेकी आज्ञा दी गयी होती है। पहिले ऐसे अवसरोंपर लौटते हुए दूतोंको कुछ भेंट देनेकी प्रथा थी पर अब यह उठ सी गयी है। यदि भेजनेवाले देशका या जिस देशमें दूत भेजा गया है उस देशका अध्यक्ष नरेश हो तो उसकी मृत्युपर नये दूतकी नियुक्ति (या पुराने दूतकी पुनर्नियुक्ति)

❀ Full Powers

† General Full Powers. ‡ Instructions. ॥ Pass-port

होती है। प्रजातंत्रोंके लिये यह नियम नहीं है। यदि दूतकी वार्गिक उपाधि बढ़ जाय अर्थात् यदि वह किसी नीचेसे ऊपर वर्गमें रख दिया जाय तब भी वही सब उपचार होते हैं जो नयी नियुक्ति-के समय होते हैं। भेंटके समय वह अपने एक पदसे बुलाये जाने और दूसरेपर नियुक्त होनेके पत्र साथ ही साथ प्रेश करता है।

राजदूतको अपने कर्तव्यके पालन करनेमें कई प्रकारकी सुविधाओंकी आवश्यकता होती है। इस लिये राजदूतोंके उनको कई प्रकारके विशेषाधिकार प्राप्त हैं। यह विशेषाधिकार अधिकार दो प्रकारके होते हैं—

(क) शरीर सम्बन्धी (ख) सम्पत्ति सम्बन्धी ।

(क) शरीर-सम्बन्धी विशेषाधिकार ।

पहिला अधिकार यह है कि दूत चाहे जिस धर्मको माने, उसे इस बातका अधिकार है कि अपने आवासस्थानमें अपने धार्मिक विचारोंके अनुसार उपासना करे। पर उसको अपनी उपासना निजी रूपसे करनी चाहिये, सार्वजनिक रूपसे नहीं और यदि वह धर्म उस देशमें, जहाँ वह भेजा गया है, निषिद्ध है तो उपासनाके समय उस देशके निवासियोंको न उपस्थित रहने देना चाहिये। मान लीजिये किसी देशमें मुसलमानी धर्म निषिद्ध है। यदि वहाँ कोई मुसलमान दूत पहुँच जाय तो उसे नमाज़ पढ़नेका पूरा अधिकार होगा पर नमाज़के समय उस देशके किसी निवासीको न आने देना होगा और अज्ञान देकर नमाज़की सार्वजनिक सूचना न देनी होगी।

दूत अवध्य तो होता ही है वह स्थानीय कानूनकी परिधिकेभी बाहर माना जाता है। वह किसी दीवानी फौजदारी अपराध-के लिए पकड़ा नहीं जा सकता। उसपर किसी प्रकारका अभियोग नहीं चल सकता। साक्ष्य देनेके लिये भी उसे न्यायालयमें जाने-

पर विवश नहीं कर सकते । पर यदि वह स्वयं किसीपर अभियोग चलाये तो उसे न्यायालयमें जाना ही होगा । कई अवसरोंपर न्यायमें सहायता देनेके लिये राजदूत स्वतः अपनी इच्छासे साक्ष्य दे जाते हैं । अग्रहताके लिये भी एक अपवाद है । यदि दूत उस राजके विरुद्ध, जिसके पास वह भेजा गया है, कोई षड्यंत्र करे तो वह पकड़ा जा सकता है पर पकड़ कर भी उसे दण्ड नहीं दिया जाता प्रत्युत स्वदेश लौटा दिया जाता है । पर बिना अति पुष्ट प्रमाण और अत्यन्त अनिवार्य आवश्यकताके ऐसा न करना चाहिये ।

इसी प्रकारके अधिकार दूतकी स्त्री और बच्चों, पुजारी और ग्राइवेट सेक्रेटरी तथा निजी भृत्योंको भी प्राप्त हैं क्योंकि यह माना गया है कि इनका अस्तित्व दूतके भारामके लिये आवश्यक है । पर दूतके पिता, माता, भाई इत्यादि इस कोटिमें नहीं आते । १७१० में इंग्लैण्ड-स्थित पुर्तगाली दूतके भाई डान पन्तेलिअन साने एक अंग्रेजकी हत्या कर डाली । अंग्रेज सरकारने उसे पकड़वाया और हत्या सिद्ध होनेपर फाँसी दी । नौकरोंके लिये किसी किसी देशमें तो यह प्रथा है कि उनपर दीवानी अभियोग नहीं चल सकता पर यदि वह दूतावासके बाहर कोई फौजदारी अपराध करें तो अभियोग चल सकता है । किसी किसी देशमें उन्हें दोनों प्रकारकी रक्षावटोंसे स्वतंत्रता दी जाती है । ऐसी कठिनाइयाँ थोड़ी सी बुद्धिमत्तासे टल जाती हैं । समझदार दूत अपने नौकरोंपर दीवानी अभियोग चलानेकी आप ही अनुज्ञा दे देते हैं ताकि पुलिस उन्हें पकड़ सके ।

अपने आवासस्थानके भीतर दूतको कई अधिकार प्राप्त होते हैं । वह स्वदेशवासियोंके दस्तावेजोंकी रजिस्टरी करता है और उनके विवाहादि भी स्वदेशी प्रथाके अनुसार कराता है ।

यदि उसके मातहतोंमें छोटे फौजदारी या दीवानी सगडे हों तो उनका निर्णय करता है और बड़े मामलोंकी मिसिल तैयार करके वादी प्रतिवादीको न्यायके लिये स्वदेश भेज देता है। इस विषयमें मतभेद है कि दूतोंको न्याय करने और दण्ड देनेका कहाँ तक अधिकार है। पहिले उनके अधिकार बहुत विस्तृत थे पर अब ऐसा नहीं है।

(ख) सम्पत्ति-सम्बन्धी विशेषाधिकार ।

जब पहिले पहिले स्थायी दूत भेजे जाने लगे तो यह कहा गया कि दूतका आवासस्थान, जिसे यूरोपमें प्रायः होटेल कहते हैं, उसके स्वदेशका एक टुकड़ा है। आजकल इतना बड़ा अधिकार तो नहीं मांगा जाता पर यह नियम है कि बिना किसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारणके किसी दूतके आवासमें स्थानीय पुलिस प्रवेश नहीं कर सकती। यदि किसी गम्भीर अपराधके लिये उसके किसी भृत्यको पकड़ना ही हो तो पहिले दूतको सूचना दे कर उससे अनुज्ञा ले ली जाती है। दूतकी सम्पत्ति किसी कारणसे कुर्क नहीं हो सकती, न ऋण आदिके परिशोधमें नीलाम करायी जा सकती है। दूतके कामके लिये जो माल बाहरसे आता है उसपर जकात या महसूल नहीं लगता। उसे किसी प्रकारका सकारी या म्युनिसिपल टिकस नहीं देना पड़ता पर बहुधा दूत रोशनी, पानी, सफाई आदिके म्युनिसिपल टिकस आप ही दे देते हैं।

पहिले दूतोंको यह भी अधिकार था कि अपराधियों, विशेषतः राजनीतिक अपराधियों, को शरण दे पर अब यूरोपमें यह अधिकार जाता रहा है। हाँ एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिकामें यूरोपियन और अमेरिकन राजोंके दूत इस अधिकारमें लाभ लेते हैं। चीनमें आये दिन छोटी बड़ी क्रांतियाँ होती रहती हैं और क्रान्तिकारी भाग कर दूतावासोंमें शरण लेने चले जाते हैं। इससे

कुछ तो लाभ होता है क्योंकि जिन देशोंकी शासनपद्धति अव्यवस्थित हो उनमें राजनीतिक आन्दोलनकारियों और देशभक्तोंकी रक्षाका यही एकमात्र साधन होता है पर इसमें यूरोपियन राजोंकी कुछ न कुछ चाल भी होती है। वह शरण देनेका प्रलोभन देकर राजमें दलोंको उभाड़ा और एक दूसरेसे भिडाया करते हैं।

एक राज दूसरे राजमें जिन प्रतिनिधियोंको भेजता है वह सबके सब राजदूत ही नहीं होते। एक और प्रकारके प्रतिनिधि भी होते हैं जो दूतोंके किसी भी वर्गमें नहीं आ सकते क्योंकि इनके कर्तव्य और अधिकार दूतोंसे सरासर भिन्न होते हैं। इन प्रतिनिधियोंको वकील^१ कहते हैं। वकीलोंके भी कई भेद होते हैं। इनका प्रधान काम अपने देशके व्यापारको सहायता देना है। व्यापारियोंको स्थानीय नियमोपनियमोंके पालन करनेमें सहायता देना, नाविकोंको सहायता देना, स्वदेशवासियोंकी स्थानीय न्यायालयोंमें रक्षा करना, उनको यात्रा करनेकी सुविधाएँ दिलवाना, उनके कानूनी कायजोंकी रजिस्टरी करा देना—यही उनके काम हैं। उनको समय समयपर स्थानीय व्यापारी और आर्थिक दशापर रिपोर्ट भेजना पड़ता है। प्रत्येक वकील एक नगर या अन्य परिमित क्षेत्रके लिये नियुक्त होता है। जिस देशमें वह रहता है वहाँका परराजविभाग उसे एक अनुज्ञापत्र^२ देता है। इसके आधारपर वह स्थानीय शासकोंसे पत्रव्यवहार कर सकता है।

वकीलको वह सब विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते जो दूतको

* Consul — यह इस शब्दका पारिभाषिक प्रयोग है। जैसा कि आरम्भमें लिखा जा चुका है, मुसल्मानी कालमें वकील एक प्रकारका राजदूत ही होता था।

† Exequatur

होते हैं। वह पकड़ा भी जा सकता है, उसकी सम्पत्ति भी कुर्क हो सकती है। वह किसीको शरण नहीं दे सकता। उसे इतनी ही सुविधा होती है कि उसे अपने आवासके लिये टिकस नहीं देना पड़ता और उसके सरकारी कागज जब्त नहीं किये जाते।

कभी कभी सन्धि द्वारा वकीलोंको इससे अधिक अधिकार भी दे दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, एशिया और अफ्रीकाके दुर्बल राज्योंमें वकीलोंके भी बहुतसे विशेष अधिकार होते हैं। उनके स्वदेशवासियोंके किये अपराधोंका निर्णय उनके ही यहाँ होता है, स्थानीय न्यायालयोंमें नहीं। उनको शरण देनेका भी अधिकार प्राप्त है और उनके आवासोंमें बिना अनुज्ञा पाये स्थानीय अधिकारी प्रवेश नहीं कर सकते। इन सब बातोंका केवक एक कारण है—इन प्राच्य राज्योंकी दुर्बलता। जापान सबल है इस लिये उससे कोई ऐसी शर्तें नहीं कर सकता।

वकीलोंके गमनागमनका कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। बहुधा तो कोई बड़ा व्यापारी नियुक्त कर दिया जाता है। कभी कभी तो ऐसा होता है कि जिस देशमें वकील भेजना होता है उसी देशके किसी विश्वस्त निवासीको यह काम सौंप दिया जाता है।

द्वितीय खण्ड—सन्धि-कालीन विधान

पहिला अध्याय ।

स्वातन्त्र्यसम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ।

हम स्वातन्त्र्यकी परिभाषा पहिले भी कर आये हैं। बिना किसी अन्य राजके दबावके अपने सारे बाह्य और आभ्यन्तर कामोंको सम्पादित करनेके अधिकारको स्वातन्त्र्य स्वातन्त्र्यका अर्थ कहते हैं। इस परिभाषा और प्रभुत्वकी परिभाषा-और उसका स्वरूप में विशेष अन्तर नहीं है। वस्तुतः जो राज पूर्णप्रभु है वह स्वतन्त्र है। अन्ताराष्ट्रिय विधानके सारे पात्र पूर्णप्रभु अर्थात् स्वतन्त्र होते हैं।

स्वातन्त्र्य शब्दके तात्त्विक अर्थपर भी थोड़ा सा विचार कर लेना आवश्यक है। साधारणतः स्वतन्त्रका अर्थ होता है 'अपने मनका'। यह समझ लिया जाता है कि जो स्वतन्त्र है वह जो चाहे सो कर सकता है। यह भी कहा जाता है कि स्वाधीनता मनुष्यका नैसर्गिक अधिकार है।

यदि यह बात सच है तो फिर वही मनुष्य स्वतन्त्र हो सकता है जो संसारके और सब मनुष्योंसे पृथक् और दूर रहता हो। पर जो सबसे पृथक् रहता है वह मनुष्योंके से हाथ पांव शरीर रखते हुए भी मनुष्य नहीं है। जैसा कि कार्लाइलने कहा है 'जो एकान्त-वासको पसन्द करता है वह या तो देवता है या पशु है।' यह सच है। या तो ब्रह्मभूत ऋषि मुनि और देवकल्प तपस्वीगण ही पूर्णतया एकान्तवासी हो सकते हैं या पशुचराचारी पागल। पर इन दोनों कोटिके मनुष्योंका साधारण मनुष्योंसे बहुत कम ।

साधर्म्य है। जङ्गलमें अधिक लोग प्रायः ग्राम बना कर नहीं रहते। पर जहाँ केवल दो प्राणी—स्त्री और पुरुष—भी साथ रहते हैं वहाँ वह मनमानापन जाता रहता है। एकको दूसरेका लिहाज करना ही पड़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि दो प्राणियोंके साथ रहनेसे भी पूर्ण स्वातन्त्र्यका लोप हो जाता है। पर मनुष्यका स्वभाव ऐसा है कि वह बिना कुटुम्ब, बिना समाज, बनाये रह ही नहीं सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य कभी पूर्णतया मनमाना अर्थात् पूर्णतया स्वतन्त्र रह ही नहीं सकता।

यदि हम स्वातन्त्र्यका अर्थ 'मनमानापन' कर लें तो हम उपर्युक्त विचित्र परिणामपर पहुँचते हैं। वस्तुतः हमारी परिभाषा ही अयुक्त है। यह असन्दिग्ध है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यह भी निश्चय है कि समाजमें मनमानापन चल नहीं सकता। ऐसी दशामें यह कहना पड़ेगा कि स्वातन्त्र्य मनुष्यका नैसर्गिक गुण होनेके स्थानमें उसकी प्रकृतिके विरुद्ध है और मनुष्य तब ही स्वतन्त्र हो सकता है जब वह अपनी स्वाभाविक सामाजिकता त्याग कर अमनुष्य बन जाय। ऐसी उलटी बात न कह कर हम यह कहेंगे कि "अपनी शक्ति और मनःप्रवृत्तिके अनुसार अपनी इच्छाओंको तुष्ट करनेके उस अधिकारको स्वातन्त्र्य कहते हैं जिसकी सीमा यह है कि हम दूसरोंके इसी प्रकारके अधिकारमें विघ्न न डालें।" सबकी ही इच्छाएँ हैं और सभी अपनी अपनी इच्छाओंको पूरा करना चाहते हैं। यदि सब मनमाना काम करे तो किसीकी कोई इच्छा पूरी न हो और निरन्तर मात्स्यन्याय युद्ध लगा रहे। इसलिये यदि इच्छाओंकी पूर्ति करनी है तो इस प्रकार काम करना चाहिये कि हम एक दूसरेके मार्गमें बाधा न डालें। यह बात पृथक् पृथक् रहनेसे सिद्ध न होगी क्योंकि बहुत सी इच्छाएँ ऐसी हैं जिनकी पूर्ति समाजके सिवाय हो ही

नहीं सकती। फिर भी लोग आपसमें टकरा ही जाते हैं। इसी लिये 'राज' और 'दण्ड' की सृष्टि हुई है। एव-विशिष्ट परिमित मनमानापन ही सच्चा स्वातन्त्र्य है और यह स्वातन्त्र्य नर-समाजके भीतर ही सम्भव है। जो समाजके बाहर है वह स्वतन्त्र नहीं है।

जो नियम मनुष्योंके लिये लागू हैं वही नर-समूहों अर्थात् राष्ट्रों और राज्योंके लिये लागू हैं। सम्भव है किसी घने जंगलमें या किसी टापूपर बस्तीसे सैकड़ों कोस दूर कुछ मनुष्य रहते हों। उनका समुदाय एक राज होगा। वह चाहे जैसे विधान बनाये, चाहे जैसी शासन-पद्धति रखे, अपने द्वीपमें चाहे जो करे। उसपर किसी दूसरेका दबाव नहीं है। पर इस राजको हम स्वतन्त्र नहीं कह सकते। इसकी अवस्था उन अल्पप्रभु राज्योंसे भिन्न नहीं है जो आभ्यन्तर शासनमें स्वाधीन हैं। जब किसी बाहर वालेसे सरोकार ही नहीं है, फिर स्वातन्त्र्य कैसा? कारण भिन्न होते हुए भी प्रत्यक्ष फल यही देख पड़ता है कि ऐसा द्वीपस्थ राज अल्पप्रभु राज्योंकी भाँति अन्य राज्योंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखता। जब वह राज-समाजमें सम्मिलित होगा उस समय दो बातें होगी। वह अपने मनमाने ढङ्गसे रहना पसन्द कर सकता है पर मनमाने ढङ्गसे रहनेका जितना अधिकार उसे है उतना ही अन्य राज्योंको भी है। परिणाम यह होगा कि जहाँ सभी मनमाने ढङ्गसे रहना चाहेंगे वहाँ किसीके भी मनकी बात न होगी। 'मन'की कई बातें ऐसी हैं जो बिना मन मारे, बिना औरोंसे मिलकर रहे, बिना समाजका अङ्ग बने, पूरी हो ही नहीं सकतीं। अतः अपने हितकी दृष्टिसे ही उसे निरन्तर लड़ाई, निरन्तर मनमानापन, से हाथ खींचना पड़ेगा। इसी अवस्थामें, जब कि मनमानापनमें कुछ कमी हो जाती है, स्वातन्त्र्य देख पड़ता है। यहाँ भी स्वातन्त्र्यकी वही परिभाषा

करनी चाहिये जो ऊपर व्यक्तियोंके लिये की गयी है। वस्तुतः स्वतंत्र राज वही है जो अपनी इच्छा और शक्तिके अनुसार व्यवहार करता है पर इस बातको नहीं भूलता कि अन्य राजोंको भी ठीक वैसा ही अधिकार है। इस जगत्में अन्य किसी प्रकारका स्वातन्त्र्य सम्भव नहीं है। अतः जब कहीं स्वातन्त्र्यका उल्लेख हो तो यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वातन्त्र्य और मनमानापनका एक ही अर्थ नहीं है वरन् मनमानापनको त्यागकरही स्वातन्त्र्यका सुख मिलता है।

व्यक्ति और समाजमें एक बड़ा भेद है जो ध्यान देने योग्य है। जैसा हम ऊपर कह आये है व्यक्तियोंके हितोंमें सघर्ष हो ही जाता है पर राज इस सघर्षको मिटाता है। ऐसे किसी समयके ऐतिहासिक अस्तित्वका पता नहीं चलता जब कि मनुष्योंमें किसी प्रकारका राज रहा ही न हो। जबसे मनुष्य हैं तबसे ही राज है क्योंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतः राजका अस्तित्व मनुष्यकी प्रकृतिका एक अनिवार्य परिणाम है। इसीसे बहुत से दार्शनिक और प्रायः सभी धर्मशास्त्र राजसत्ताको दैवी मानते हैं। पर राजोंके लिये यह बात नहीं है। राजोंमें भी हितसघर्ष होता है पर अभी तक सिवाय लड़नेके उसको मिटानेका और कोई उपाय नहीं रहा है। कई बड़े बड़े बहुदेशशासक नरेश हो गये हैं पर आज तक कोई ऐसा सार्वभौम नहीं हुआ जो सब राजोंका शासन करे। यह एक कविकल्पना ही रही। सम्भव है राष्ट्रसंघके ढंगकी कोई संस्था यह स्थान आगे चल कर ले पर यह संस्था एक प्रकारसे कृत्रिम ही होगी या यों कहिये कि राज तो मनुष्यकी मूल प्रकृतिका परिणाम है परन्तु राष्ट्र (या राज) संघ की उत्पत्ति उसकी संस्कृत प्रकृतिसे होती है। अस्तु, यह सब कहनेका तात्पर्य यह

है कि यद्यपि हमने परिभाषा यह की है कि बिना किसी अन्य राजके दबावके अपने सारे बाह्य और आभ्यन्तर कामोंको सम्पादित करनेके अधिकारको स्वातन्त्र्य कहते हैं पर कई दबाव ऐसे हैं जो स्वातन्त्र्यके अन्तर्गत है। बिना उन दबावोंके स्वातन्त्र्य ही नहीं हो सकता। शुद्ध स्वेच्छाचार स्वातन्त्र्यका रूप होना तो दूर रहा उसका बाधक है क्योंकि वह उस सामाजिकता, उस सहति-भाव, का विरोधी है जो मनुष्यताका एक प्रधान लक्षण और स्वातन्त्र्यका उपयुक्त क्षेत्र है।

यह तो तात्त्विक बात हुई। समय समयपर पूर्णप्रभु राज अपनी स्वाधीनताको आप भी किसी किसी अंशमें बढ़ कर देते हैं। यह बन्धन सुविधाकी दृष्टिसे हाते हैं और प्रभुराजोंके इनसे उन राजोंके स्वातन्त्र्य या प्रभुत्वमें कोई स्वनिमित्त बन्धन हास नहीं होता। इस प्रकारके बन्धन सन्धियों द्वारा स्वीकार किये जाते हैं। ऐसी सन्धियोंके कई उदाहरण हैं। हम नीचे उस सन्धिसे कुछ अंश उद्धृत करते हैं जो १९०७ में ब्रिटेन और अमेरिकामें इस विषयमें हुई थी कि इन दोनोंमें से कोई भी मध्य अमेरिकामें अपना राज्य न बढ़ावे। इस सन्धिको बहुधा क्लेटन-बुलवर सन्धि कहते हैं।

प्रथम धारा

संयुक्त राज और ग्रेटब्रिटेनकी सरकारें यह बात घोषित करती हैं कि दोनों से एक भी उक्त सामुद्रिक नहरपर अपना एकाकी अधिकार न कभी प्राप्त करेगी न स्थापित करेगी, दोनों एक भी उसके किनारे या आस पास किसी प्रकारकी किलाबन्दी न बनवायेगी, न स्थापित करेगी, न निकारागुआ, कॉस्टारिका, मस्कीटो कोस्ट या दक्षिण अमेरिकाके किसी भागपर अपना राज्य स्थापित करेगी—इत्यादि।

इसी प्रकार १९६४ में ब्रिटेन, फ्रांस और स्पेनमें इस प्रकार-की सन्धि हुई कि इन तीनों राज्योंका भूमध्य सागरमें उस समय जितना जितना राज्य था उसमें वृद्धि करनेका प्रयत्न न किया जाय । १९४३ में ब्रिटेन और जर्मनीने सन्धि-द्वारा यह निश्चय किया कि प्रशान्त महासागरके किस भागमें कौन अपना राज्य तथा प्रभाव बढ़ावे । जब भारतमें अंग्रेज आये थे उस समय उनसे देशी राज्यों-से इस प्रकारकी कई सन्धियां हुई थीं ।

स्वनिर्मित बन्धनोंसे तो स्वातन्त्र्यमें कभी नहीं होती पर कभी कभी स्वतन्त्र राज्योंपर अन्य बलवान् राजो द्वारा भी बन्धन डाल दिये जाते हैं । इन बन्धनोंसे वास्तविक स्वातन्त्र्य प्रभुराजोंके पर- और प्रभुत्वमें निःसन्देह कुछ कमी पडती है पर निर्मित बन्धन जब तक उस राजको बिना परायी मध्यस्थताके अन्ताराष्ट्रिय जगत्में व्यवहार करनेका अधिकार

रहता है तब तक व्यवहारमें उसे स्वतन्त्र ही गिनते हैं । ऐसे बन्धन प्रायः युद्धके पीछे विजेताके द्वारा विजितपर डाले जाते हैं । गत महासमरके बाद जर्मनी, आस्ट्रिया, तुर्की आदि पर बड़े बड़े बन्धन डाले गये । तुम्हारी सेनामें इतनेसे अधिक सिपाही न होने पावें, पुलिसमें इतनेसे अधिक मनुष्य न हों, इतनेसे अधिक सैनिक जहाज मत रखना, अमुक अमुक समुद्रमें तुम्हारे जहाज न रहने पावेंगे, तुम अमुक अमुक शर्तोंपर ही व्यापार कर सकोगे, इत्यादि ।

ऐसी शर्तें बहुत दिनों तक निभती नहीं । इतिहासमें इसके कई उदाहरण हैं । १८६५ में नैपोलियनने प्रशाको यह शर्त मान-नेपर विवश किया कि प्रशाकी सेनामें ४०,००० से अधिक सैनिक न रहेंगे । प्रशाने शर्त तो मान ली पर उसे एक ऐसी युक्ति सूझी जिसके आगे नैपोलियनकी नीति निष्फल हो गयी । प्रशाने नरेशने पहिले ४०,००० सैनिक रक्खे । जब यह लोग काम सीख गये तो

इनको पृथक् करके नये ४०,००० भर्ती किये गये, इनके बाद फिर तीसरे ४०,००० की बारी आयी। क्रमशः सारे देशके युवक सैनिक शिक्षा पा गये पर कागजपर सेना ४०,००० ही रही। ब्रिटिश सरकारने इस घटनासे लाभ उठाया है। उसने देशी राजोंकी सेनाओंको सीमाबद्ध करनेके साथ साथ उनसे यह भी शर्त कर रखी है कि कोई ऐसी युक्ति न की जायगी जिससे सभी नवयुवक रणशिक्षा प्राप्त कर लें। इसी प्रकार १९१३ में पेरिसकी सन्धिकी १३ वीं धारा द्वारा रूस और तुर्की इस बातके लिये विवश किये गये कि कृष्णसागरमें न तो सैनिक जहाज रखें न उसके तटपर शस्त्रागार या किले बनवावें पर १९२८ में यह धारा तोड़ दी गयी। गत महायुद्धकी सन्धियाँ भी टूट रही हैं। अभी जर्मनी, आस्ट्रिया इत्यादि तो दुर्बल हैं पर तुर्कीने यूरोपियन राजोंके छक्के छुड़ा दिये हैं और उन सब शर्तोंको जो उनके स्वातन्त्र्यमें बाधा डाल रही थीं रद्दकी टोकरीमें डाल दिया है।

जब स्वातन्त्र्यका यह अर्थ ही है कि एक राज दूसरेके दबावमें न हो तो यह भी स्पष्ट है कि एक राजको दूसरेके कामोंमें किसी प्रकारकी छेड़छाड़ न करनी चाहिये। युद्धकी एक राजका अवस्था तो अस्वाभाविक है। उसका उद्देश्य, या दूसरेके राज्यमें कमसे कम परिणाम, यही होता है कि दूसरेके अधिकारभाव स्वातन्त्र्यमें बाधा डाली जाय। पर इस अस्वाभाविक अवस्थाको छोड़ कर प्रत्येक राजको दूसरे राजोंके स्वातन्त्र्यको अपने स्वातन्त्र्यके समान ही पवित्र और अखण्ड्य मानना चाहिये। इस सिद्धान्तकी एक निष्पत्ति यह है कि एक राज दूसरेके राज्यमें किसी प्रकारका अधिकार नहीं रखता। दूसरेके राज्यमें किसी प्रकारका अधिकार स्थापित करनेका प्रयत्न करना अमैत्रीका सूचक माना जाता है। एक उदाहरणसे

जो हम भारतवासियोंके लिये विशेषतः रोचक है, यह बातें भली भाँति समझमें आ जायंगी।

१९६६ में विनायक सावरकर पर राजद्रोहका अभियोग चलाया गया। किसीने मुज़फ्फरपुरके जज श्री किंग्सफोर्डके धोखेमें श्री केनेडीकी पत्नी और कन्या को मार डाला। उसी वर्ष नासिकके मजिस्ट्रेट श्री जैक्सन भी मार गये। इन हत्याओंके लिये उत्तेजना देने, इनकी प्रशंसा करने तथा सरकारके प्रति अशान्ति फैलानेके अपराधमें सावरकर बन्धु तथा लोकमान्य तिलकपर अभियोग चला। गणेश सावरकरको आजन्म कालापानी और लोकमान्यको ६ वर्ष कारावासका दण्ड दिया गया। विनायक सावरकर उन दिनों इंग्लैण्डमें थे। वह वहाँसे पकड़ कर भारतलाये गये। मार्गमें जहाज फ्रांसके मार्सेलज नौस्थानमें ठहरा। सावरकर उसपरसे कूद पड़े और तैर कर नगरमें पहुँचे। जहाज वालोंने फ्रेंच पुलिसको सूचना दी। सावरकर पकड़ कर उनको सौंपे गये। भारतमें आकर उन्हें भी कालापानीका दण्ड मिला। इसके बाद फ्रेंच सरकारने यह आरोप किया कि जब सावरकर एकबार फ्रांसकी भूमिपर पहुँच गया तो फिर वह बिना फ्रेंच सरकारकी आज्ञाके नहीं पकड़ा जा सकता था और न अंग्रेजी जहाजको सौंपा जा सकता था। ऐसा करना फ्रांसके प्रभुत्वके विरुद्ध हुआ अतः सावरकर एक बार फ्रेंच सरकारको लौटा दिया जाय और फिर उससे उसे सौंपनेकी प्रार्थना की जाय। ब्रिटेनने इसका विरोध किया। अन्तमें १९६७ में हेगकी अन्ताराष्ट्रिय पञ्चायतने ब्रिटेनके पक्षमें निर्णय किया। उसने कहा कि यह भूल अवश्य हुई कि फ्रांससे नियमित प्रार्थना नहीं की गयी पर सावरकरको फ्रेंच पुलिसने ही पकड़ा और अंग्रेजोंके सपुर्ह किया। अंग्रेजोंने उसे स्वयं नहीं पकड़ा अतः उन्होंने फ्रेंच प्रभुत्वके विरुद्ध जान बूझ कर कोई काम नहीं किया।

स्वातंत्र्यका तो यह अर्थ ही है कि एक राज दूसरेके ऊपर दबाव न डाले क्योंकि जिसपर दबाव डाला जायगा या यों कहिये कि जिसे दबावमें पड़कर काम करना होगा उस-
हस्तक्षेप को स्वतंत्र कह ही नहीं सकते पर व्यवहारमें कभी कभी इस सिद्धान्तकी अवहेलना भी हो जाती है। एक राज दूसरे राजके ऊपर दबाव डालता है और सारा जगत् जानता है कि दूसरा राज दबावमें पड़कर काम कर रहा है फिर भी उसके स्वातंत्र्यमें विच्छेद नहीं माना जाता।

इस प्रकारके दबाव डालनेको हस्तक्षेप^१ कहते हैं। हस्तक्षेप परामर्श देनेसे भिन्न है। एक राज दूसरे राजको मित्रभावसे सदैव सत्परामर्श दे सकता है और यह भी बहुधा होता है कि जो बात करनेकी इच्छा नहीं होती वह भी कभी कभी दूसरेके सुझानेसे की जाती है पर इसको दबाव नहीं कह सकते। मित्र किसी प्रकारकी धमकी नहीं देता। वह हितकी बात कह देता है, मानना न मानना हमारी इच्छापर निर्भर है। पर हस्तक्षेप इस प्रकारका परामर्श नहीं होता। हस्तक्षेप करनेवाला राज अवसर विशेषपर किसी विशेष आभ्यन्तर या बाह्य नीतिपर आग्रह करता है। उसके शब्द चाहे कैसे ही मधुर हों पर उनके भीतर एक धमकी होती है। यदि हमारी बात न मानी जायगी तो हम उसे बलात् मनवा लेंगे। जब बलात् मनवानेका समय आ जाता है तब तो युद्ध ही छिड़ पड़ता है पर उसके पहिले सन्निकाल ही कहा जा सकता है।

हस्तक्षेपका सार है शक्ति या शक्तिप्रयोगकी धमकी। प्रायः होता यही है कि पहिले तो नीतिका निर्देश करके धमकी दी जाती है और फिर यदि वह नीति तत्काल न मानी गयी तो बलप्रयोग किया

जाता है। अतः हस्तक्षेप और युद्धमें बहुत कम अन्तर होता है। इस लिये यह विषय बड़ा ही जटिल है और इसके सम्बन्धमें बहुत कुछ मतभेद है।

हस्तक्षेप कई अवसरोंपर और कई बहानोंसे किया जाता है। जो राज हस्तक्षेप करता है उसे ही अपने इस कामके लिये समुचित कारण दिखलाना पड़ता है ताकि लोकमत उसके विरुद्ध न हो जाय। जिसपर दबाव डाला जाता है उसकी भी विचित्र स्थिति होती है। जो राज हस्तक्षेप करता है वह प्रायः यही कहता है कि मैं इसके प्रभुत्वमें विघ्न नहीं डालना चाहता पर केवल इस एक बातमें हाथ डालनेके लिये विवश हूँ। अतः जिसपर दबाव पड़ता है वह दूसरेकी इच्छाके अनुसार चलते हुए भी स्वतंत्र माना जाता है।

बहुधा तो हस्तक्षेप केवल नीतिका परिणाम होता है पर कभी कभी उसका आधार न्याय्य होता है। यदि दो राजोंमें किसी प्रकारकी सन्धि हो गयी हो और उनमेंसे एक हस्तक्षेपका राज उसके विरुद्ध आचरण करता हो तो न्याय्य अवसर दूसरेको यह अधिकार है कि उसकी रक्षा करे। कभी कभी सन्धिमें ही हस्तक्षेप करनेका अधिकार दिया रहता है। सन् १९५८ में संयुक्तराज और क्यूबामें एक सन्धि हुई थी जिसके अनुसार संयुक्तराजने क्यूबाके स्वातन्त्र्यकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया था। १९६३ में क्यूबामें सशस्त्र विद्रोह हुआ। क्यूबन सरकार उसका दमन न कर सकी। क्यूबाके राष्ट्रपतिने संयुक्त राजकी सरकारको बार बार लिखा कि आकर शान्ति स्थापित कीजिये और स्वयं त्यागपत्र देने पर प्रस्तुत हुए। यदि दशा शीघ्र न सुधरती तो अपनी प्रजाओंकी रक्षाके लिये यूरोपियन राज सेनाएं भेजते।

विवश होकर अमेरिकन राष्ट्रपति रूज़वेल्टने अमेरिकन नौसेना भेजी। उसके जाते ही विद्रोह शान्त हो गया। विद्रोहियोंने हथियार डाल दिये। राष्ट्रपतिने पदत्याग कर दिया। पर शासन ठीक न हुआ। नयी कांग्रेस (पार्लमेण्ट) बुलायी गयी पर लोग जान बूझकर न आये। तब विवश होकर एक अमेरिकन प्रान्ता-धीश नियुक्त किया गया और थोड़ी सी अमेरिकन सेना रक्खी गयी। पर यह प्रबन्ध अस्थायी था। अमेरिकन सरकारने स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा कर दी कि ज्यों ही क्यूबामें पार्लमेण्टका बयान चुनाव हो जायगा और नयी सरकार स्थापित हो जायगी, त्योंही अमेरिकन प्रबन्ध हटा लिया जायगा।

यह पूर्ण हस्तक्षेपका उदाहरण है। बलप्रयोगकी धमकी देना अनावश्यक था क्योंकि क्यूबन सरकार आप ही हस्तक्षेप करनेकी प्रार्थना कर चुकी थी अतः बलप्रयोगके सिवाय कोई गत्यन्तर न थी। परन्तु हस्तक्षेप न्याय्य था क्योंकि १९५८ की सन्धिके अनुसार सयुक्त राजका कर्तव्य था कि वह क्यूबाके स्वातन्त्र्यकी रक्षा करे। यदि हस्तक्षेप न किया जाता तो कोई यूरोपियन राज हस्तक्षेप करता ही। क्यूबाके स्वातन्त्र्यमें कोई स्थायी क्षति इस लिये नहीं हुई कि अमेरिकन सरकारने यह घोषित कर दिया कि नयी क्यूबन सरकारके स्थापित होते ही अमेरिकन प्रबन्ध हटा लिया जायगा।

यदि कोई राज अन्तराष्ट्रिय विधानके किसी सर्वसम्मत और आधारस्वरूप सिद्धान्तकी अवहेलना करे तब भी उसके साथ हस्तक्षेप करना न्याय्य समझा जायगा। इसका भी एक अच्छा उदाहरण मिलता है। १९५७में चीनमें ईसाइयोंके विरुद्ध कुछ आन्दोलन चल पड़ा था जिसका फल यह हुआ कि एक अंग्रेज पादरी मारा गया। इस सम्बन्धमें चीन और ब्रिटिश सरकारमें लिखापढी हो ही रही थी

कि दो और अंग्रेज पादरी मारे गये। उन्हीं दिनों चीनमें 'बाक्सरों' का जोर था। बाक्सरका अर्थ है 'घूसा मारनेवाला'। बाक्सर दलमें वह लोग थे जो चीनसे सारे विदेशियोंको निकाल देना चाहते थे। उन लोगोंने इस अवसरपर सिर उभारा, चुन चुन कर चीनी ईसाई तथा विदेशी मारे जाने लगे। इन लोगोंने चीनकी राजधानी पेकिंगके उस भागमें शरण ली जिसमें विदेशी राजदूत रहते थे। विद्रोहियोंने वहां भी पीछा न छोड़ा। ११ जूनको जापानी दूतावासका चांसलर और २० जूनको जर्मन राजदूत मारा गया।

अभी तक चीन सरकार चुपचाप थी। २० जूनको स्वयं सरकारी सेनाने विदेशी दूतावासोंपर गोले चलाये और एक घोषणा-द्वारा प्रजाको यह आज्ञा दी गयी कि सब विदेशी मार डाले जायें। एक तो यह बड़ी मूर्खताका था क्योंकि ऐसा करके चीनने सारे सभ्य जगत्से लड़ाई मोल ले ली, दूसरे यह अन्ताराष्ट्रिय विधानके सर्वथा विरुद्ध था। जङ्गली तक दूतको अवध्य मानते हैं पर चीन सरकारने दूतोंपर ही गोले चला दिये।

इस व्यवहारसे रष्ट होकर ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, रूस, जापान, अमेरिका, आस्ट्रिया-हंगरी इटली, इंग्लैण्ड, बेलजियम और स्पेन-ने चीनपर आक्रमण किया। इस आक्रमणमें इनमें से कइयोंका और भी स्वार्थ था, इसमें सन्देह नहीं पर इनको बहाना अच्छा मिला था। दूतोंपर हाथ उठा कर चीनने सारे सभ्य जगत्को अपना शत्रु बना लिया था। भला वह इतने राष्ट्रोंसे क्या लड़ता, पांच छ महीनेके भीतर सारा युद्ध समाप्त हो गया। राजवश तथा सरकारने पेकिंग खाली कर दिया। शत्रु-सेनाका राजधानीपर कब्जा हो गया। अन्तमें सन्धि हुई। चीनने १ अरब ३५ करोड रुपये कई किस्नोंमें हर्जानेमें देना स्वीकार

किया, कई चीनी उच्च कर्मचारियोंको फांसी तकका दण्ड दिया गया। पेकिंगके जिस भागमें विदेशी दूत रहते हैं वसमें उन्हें किलाबन्दी करनेका अधिकार दिया गया, इत्यादि।

यद्यपि चीनकी बहुत क्षति हुई और उसे बहुत अपमान सहना पड़ा पर विदेशी राजोंका इस अवसरपर हस्तक्षेप करना न्याय्य था। चिट्टी-पत्रीका समय ही न था इस लिये हस्तक्षेपने धमकी की कक्षाका अतिक्रमण करके तत्काल बलप्रयोगका रूप धारण कर लिया।

दूसरेके अनुचित हस्तक्षेपको हटानेके लिये जो हस्तक्षेप किया जाता है वह भी न्याय्य होता है। १९१८ मे ब्रिटेन, फ्रांस तथा स्पेनने मेक्सिकोमें कुछ सेना भेजी। कारण यह था कि मेक्सिकन सरकारपर कुछ ऋण था जिसे चुकानेमें वह कुछ बहाना कर रही थी तथा कुछ और भी शिक्कयतोंके दूर करनेमें सुस्त कर रही थी। यह तो खुला उद्देश्य था पर वस्तुतः फ्रांसकी और ही इच्छा थी। वह मेक्सिकोके आभ्यन्तर शासनमें हाथ डाला चाहता था। इस बातका पता लगनेपर ब्रिटेन और स्पेनने अपनी अपनी सेनाएं हटा लीं। अब फ्रांस अकेला रह गया। उसने मेक्सिकोमें एक नये सम्राट्को सिंहासनारूढ किया और स्वयं उसका रक्षक बना। यह सर्वथा अनुचित था। इसको दूर करनेके लिये अमेरिकाके संयुक्तराजने १९२२ मे फ्रांससे बातचीत आरम्भ की। उसने फ्रांसको खुली धमकी दी कि यदि फ्रेञ्च सेना न हटायी गयी तो हम उसे हटानेके लिये बल-प्रयोग करेंगे। सब बातचीत गुप्त रक्खी गयी पर पीछेसे खुल गयी। फ्रांस युद्धके लिये तैयार न था अतः फ्रेञ्च सम्राट्को अपनी सेना हटानेपर विवश होना पड़ा। १९२४ के वैशाखमें फ्रेञ्च सेनाने मेक्सिको खाली कर दिया। इस अवसरपर बल-

प्रयोग करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। धमकीसे ही काम चल गया।

ऊपर जो तीन उदाहरण दिये गये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि अन्ताराष्ट्रिय विधान किस किस अवस्थामें हस्तक्षेपको न केवल क्षम्य वरन् वैध समझता है। पर यह सम्भव है कि कोई काम वैध होते हुए भी अनुचित और अन्याय्य हो। ऊपर क्यूबाका ही उदाहरण लीजिये। यदि क्यूबाकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके बहाने अमेरिका थोड़ी थोड़ी सी बातपर हस्तक्षेप करने लग जाय तो उसका यह कार्य वैध परन्तु अनुचित होगा।

क्या व्यक्ति, क्या समुदाय, आत्मरक्षा सबका ही अनिवार्य कर्तव्य है। 'आत्मान सतत रक्षेत्' की नीति सर्वोपरि मानी गयी

है। धर्मशास्त्रोंने आत्मरक्षाके लिये धर्मके आत्मरक्षाके प्रमुख सिद्धान्तोंमें अपवाद बनाकर आपद्धर्म लिये हस्तक्षेप स्थिर किये हैं। परन्तु व्यक्तियोंके लिये एक

नियम है जो राजोंके लिये नहीं है। व्यक्तियोंकी रक्षाका भार राजपर होता है अतः बहुधा उनको निश्चिन्त रहना पड़ता है। फिर भी यदि कोई ऐसी घटना आ पड़े जब राज रक्षा न कर सके तो जो कुछ किया जाता है वह ठीक माना जाता है। स्त्री यदि अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये हत्या भी कर डाले तो वह क्षम्य मानी जाती है। राजोंके ऊपर कोई दूसरा रक्षक नहीं है, अतः उनको सदैव सावधान रहना पड़ता है।

कभी कभी किसी राजको किसी पड़ोसी राजकी ओरसे आशका हो जाती है कि यह हमारे ऊपर आक्रमण करनेकी तय्यारी कर रहा है या हमारे राज्यमें हस्तक्षेप करनेवाला है। ऐसी अवस्थामें भावी हस्तक्षेप या आक्रमणको रोकनेके लिये वह आप ही अप्रसर हो कर तय्यारीको रोक देता है। जो हस्तक्षेप करनेवाला है उसके

यहाँ आपही हस्तक्षेप किया जाता है ताकि उसके दाँत तोड़ दिये जायं। यह तो निश्चय है कि साधारण सन्देहपर ऐसा नहीं करना चाहिये। जिसने देखनेमें अपनी कोई क्षति नहीं की उसके साथ छेड़छाड़ करना उचित नहीं है। अपने सन्देहको जगत्के सामने सहैतुक सिद्ध करना बड़ा कठिन होता है। यदि हस्तक्षेप किया भी जाय तो उतना ही जितना आत्मरक्षाके लिये अत्यन्त आवश्यक हो, उससे रती भर अधिक नहीं। इस सम्बन्धमें अमेरिकाके एक भूतपूर्व रूचव श्रीवेन्स्टरने कहा था कि जो राज हस्तक्षेप करे उसे यह प्रमाणित करना चाहिये कि 'उसकी आत्मरक्षाकी आवश्यकता तात्कालिक और अति प्रबल है और उसमें न तो साधनान्तरका स्थान है, न सोचनेका अवसर है' ❀ और उसे कोई ऐसा काम न करना चाहिये 'जो अयुक्त या आवश्यकतासे अधिक हो क्योंकि जो काम आत्मरक्षाके नामपर किया जाय वह उस आवश्यकता तकही परिसीमित रहना चाहिये'। ❀ १८६४ में ब्रिटेन और फ्रांसमें लड़ाई थी। रूस भी फ्रांसकी ओर था। उन दिनों डेन्मार्ककी नौसेना बहुत अच्छी थी। ब्रिटेनको पता चला कि डेन्मार्क उसके शत्रुओंसे मिल जानेवाला है। यदि डेन जहाज फ्रांसको मिल जाते तो उसका पक्ष बहुत प्रबल हो जाता। ब्रिटेनने यकायक एक बेड़ा डेन्मार्क भेजा और डेन सरकारसे कहा कि अपने जहाज हमें दे दीजिये, हम युद्धके पीछे इन्हें ज्योंका त्यों लौटा देंगे। डेन सरकारके नहीं करनेपर वल-

* 'A necessity of self-defence, instant, overwhelming and leaving no moment for deliberation,'
 'nothing unreasonable or excessive, since the act justified by the necessity for self-defence must be limited by that necessity and kept clearly within it'

प्रयोग द्वारा बेड़ा छीन लिया गया और लड़ाई समाप्त होनेपर लौटाया गया। इस घटनाके सम्बन्धमें आज तक मतभेद चला आता है। एक पक्ष कहता है कि ब्रिटेनने सरासर बलात्कार किया, दूसरेका कहना है कि उसने जो कुछ किया वह केवल आत्मरक्षा-की दृष्टिसे किया। हां, यदि उसने बेड़ा लेकर डेन्मार्कके साथ कुछ और छेड़छाड़ की होती तो निःसन्देह बलात्कार होता।

पर इतना ध्यान रखना चाहिये कि हस्तक्षेप करना वहीं उचित होगा जहाँ कि यह सबल सन्देह हो कि यदि हस्तक्षेप न किया गया तो इस राज द्वारा हमारी आत्मरक्षाको धक्का लगेगा। ऊपरके उदाहरणमें ब्रिटेनको यह आशंका थी कि डेन नौसेना फ्रेंच नौसेनासे मिल जायगी और फिर दोनों मिलकर ब्रिटेनपर आक्रमण करेंगे। गत महायुद्धमें इस प्रकारके कई ग्रन्थ उठे। जर्मनीने फ्रांसपर आक्रमण करनेके लिये बेल्जियमसे मार्ग मागा। उसने अपने राज्यमेंसे मार्ग देना अस्वीकार किया। इसपर जर्मन सेनाने बेल्जियमपर आक्रमण किया और बलात् मार्ग निकाला। यह हस्तक्षेप सर्वथा अनुचित हुआ। अपने शत्रुपर आक्रमण करना आत्मरक्षा नहीं है। कोई राज इस बातको पसन्द नहीं करेगा कि उसका राज्य दो शत्रु-सेनाओंके लिये सड़क बन जाय। पर कई जर्मन नीतिज्ञोंका यह कहना है कि फ्रांस स्वयं जर्मनीपर आक्रमण करने वाला था और ब्रिटेन उसके साथ था। बेल्जियमने फ्रेंच सेनाके लिये मार्ग देना भी स्वीकार कर लिया था। यदि जर्मनी अग्रेसर न होता तो पहिले उसपर ही आक्रमण हो जाता। यह कहना कठिन है कि इस वक्तव्यमें कहाँतक सत्यका अंश है। कोई प्रमाण प्रकाशित नहीं हुआ है। जर्मनी हार गया है नहीं तो स्यात् कुछ प्रमाण देख पड़ता। यदि यह बात सही है कि बेल्जियमकी ओरसे फ्रेंच सेना जर्मनीपर आक्रमण

करनेवाली थी तो जर्मनीका बेरिजियममें हस्तक्षेप करना उचित था।

यों तो प्रत्येक प्रभुराज अपने आम्बन्तर शासनमें स्वतन्त्र है पर कभी कभी इस स्वातन्त्र्यमें अपवाद भी होता है। यदि

कोई मनुष्य अपने लडकेको निर्दयतासे पीड़ रहा मनुष्यताके नाते हो तो उससे कुछ कहनेका किसीको वैध अधिकार हो या न हो पर नैतिक कर्तव्य अवश्य है।

किसीको अनाचार करते देख कर रोकना एक ऐसा धर्म है जो मनुष्यके बनाये सब कानूनोंके ऊपर है। इसी प्रकार यदि कोई राज कोई ऐसा काम कर रहा हो जो मनुष्यताके सर्वथा विपरीत हो तो दूसरे राजोंका यह नैतिक कर्तव्य है कि हस्तक्षेप करके उसे रोकें।

कई बार ऐसा किया भी गया है। मनुष्यताके नामपर यूरोपियन राजोंने कई बार अन्य राजोंके शासनमें हस्तक्षेप किया है। पर इस प्रकारका कोई ठीक उदाहरण देना कठिन है। सिद्धान्त समुचित है पर कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जिसे सर्वथा साधु कह सकें। इसका प्रधान कारण यह है कि यूरोपके राज इतने स्वार्थी, कूटाचारी और दम्भी हैं कि उनका विश्वास नहीं होता। वह चाहे जितना मनुष्यताका नाम लें पर सन्देह यही होता है कि भीतर कोई न कोई गुप्त चाल है। तुर्कीके लेबानन प्रदेशमें ईसाइयोंकी हत्या हो रही थी और उनके साथ घोर अत्याचार किये जा रहे थे इसलिये १९१७ में प्रधान यूरोपियन शक्तियोंने तुर्कीपर दबाव डालकर इस बुराईको दूर कराया। तुर्कीकी ईसाई प्रजाकी रक्षा और भी दो तीन बार की गयी है। पर इन हस्तक्षेप करने वालोंमें ही रूस था जहां प्रति वर्ष कई सौ यहूदी जातकी बातमें केवल यहूदी होनेके कारण मार डाले जाते

वे। लूटपाट तथा अन्य अत्याचारोंकी तो कोई गणना ही न थी। अमेरिका ऐसे सम्बन्ध देशमें सैकड़ों हवशौ बों ही लात झूँसोंसे पीट कर पानीमें डुबा कर तथा गोलियोंसे मार डाले जाते हैं पर न तो किसीने अमेरिकामें हस्तक्षेप किया न रूसमें। इससे अनुमान यह होता है कि मनुष्यताका ध्यान तो कम था, तुर्कोंको दबाना और उसकी ईसाई प्रजाको उभारना ही मुख्य उद्देश्य था।

१८८४ में यूनानबालोंने तुर्कोंके विरुद्ध विद्रोह किया। तुर्क प्रबल थे, उन्होंने विद्रोहको दबा दिया। पर यूरोपके महारथियोंसे न देखा गया। उन्होंने मनुष्यताके नामपर हस्तक्षेप किया और हारे हुए यूनानियोंको १८८९ में स्वाधीन करा दिया। पर सैकड़ों वर्षों तक पोल जाति आस्ट्रिया, जर्मनी और सर्वोपरि रूसमें दुःख भोगती रही, उसकी सहायता किसीने न की। आज भी भारत, मिश्र या इराककी ओरसे मनुष्यताके नामपर कोई ब्रिटेनमें हस्तक्षेप नहीं करता। मनुष्यताका पवित्र नाम स्वार्थ-सिद्धिका साधन मात्र है।

यूरोपके प्रधान राजों—जर्मनी, रूस, फ्रांस, नवीन इटली, ब्रिटेन—का अभ्युदय गत दो सौ वर्षोंके प्रायः भीतर ही हुआ।

इनमें फ्रांस पुराना है। ब्रिटेनका उदय फ्रांसके शक्ति-साम्यकी पीछे पर जर्मनी आदिके पहिले हुआ। इन रक्षाके लिये उन्नतिशील राजोंमें स्पर्धा और अविश्वासका हस्तक्षेप होना स्वाभाविक था। अतः व्यवहार चलानेके लिये शक्ति-साम्यका सिद्धान्त निकला। इस-

का तात्पर्य यह था कि कोई एक राज इतना प्रबल न हो जाय कि दूसरोंको उससे क्षति पहुंचनेकी सम्भावना हो। यदि कोई

❀ Balance of Power

राज बहुत बढने लगता था तो कई राज मिलकर उसे दबानेका प्रयत्न करते थे। इस कारण बहुत से दीर्घकालभ्यापी युद्ध हुए परन्तु प्रत्येक युद्धके पीछे शक्तिसाम्यके रूपमें अन्तर पड जाता था। जो जीतता था उसका राज्य और बल कुछ न कुछ बढ ही जाता था, जो हारता था उसका राज्य और बल घट ही जाता था। वस्तुतः प्रबल राज दुर्बलोंको दबानेके लिये शक्तिसाम्यकी रक्षाका बहाना करते थे। फ्रांसके अन्तिम सम्राट् तृतीय नैपोलियनने यह नियम निकाला कि यदि यूरोपके किसी राजके राज्यकी वृद्धि हो तो शक्ति-साम्य बनाये रखनेके लिये फ्रांसकी भी उतनी ही वृद्धि होनी चाहिये।

इस सिद्धान्त या नीतिके मूलमें एक सत्य है। यह पूर्णतया ठीक है कि किसी राजके लिये यह उचित नहीं है कि दूसरोका क्षति करे। यदि कोई राज ऐसा करना चाहे तो यह उचित है कि और सबल राज मिलकर उसे रोकें। सब दुर्बल राजोंको भी चाहिये कि मिलकर उसका सामना करें। पर शक्ति-साम्यका तो यह अर्थ था कि यूरोपके बड़े बड़े राजोंकी शक्ति तुल्यप्राय रहे। यदि मैत्री भी हो तो इस प्रकार कि यदि एक ओर दो या तीन मित्र राज हों तो दूसरी ओर भी उतने ही बल वाले मित्रराज हों। इससे दुर्बलोंकी रक्षा नहीं होती थी। यदि कभी रक्षा हो गयी होगी तो वह अकस्मात् हो गयी होगी। रक्षाकी कौन कहे यहाँ तो यह होता था कि यदि एकने एक दुर्बल देश दबा लिखा तो दूसरा उसकी बराबरी करनेके लिये तत्काल ही दूसरा दुर्बल देश दबा बैठता था। प्रान्तों और छोटे देशोंकी जनता खिलौने-की भाँति इस हाथसे उस हाथ फेंकी फिरती थी। आजकल ऐसा होना बहुत कठिन है। प्रजाओंकी देशभक्ति नीतिज्ञोंकी चालोंसे प्रबल हो गयी है।

अभी तक हस्तक्षेपके जिन कारणोंका उल्लेख हुआ है वह ऐसे कि इनको किसी न किसी दृष्टिसे न्याय्य कह सकते हैं और किसी न किसी प्राजाणिक आचार्यने उनका समर्थन भी अनुचित हस्त- किया है। परन्तु दो ऐसे कारण हैं जो सर्वथा अयुक्त, क्षप अन्याय्य और अनुचित हैं। किसी भ

उनका समर्थन नहीं हो सकता। वस्तुतः कारण दो नहीं एक ही है पर बहुधा एकके ही दो भेद करके उनका पृथक् विचार किया जाता है, इसलिये हम भी पृथक् ही उल्लेख करेंगे

पहिला कारण है विद्रोहका शमन करना। यह निश्चय है कि नरेशाधीन राज अपनी शासन-पद्धतिको अच्छा समझते हैं

और प्रजातन्त्र अपनीको, पर प्रत्येक स्वतन्त्र राज-विद्रोह-शमनके का यह स्वत्व है कि अपने यहां चाहे जैसी शासन-

लिये हस्तक्षेप पद्धति रखे। दूसरेको इस विषयमें बोलनेका अधिकार नहीं है। यदि किसी प्रजातन्त्रमें

किसी नरेशको सिंहासनारूढ करनेके लिये विद्रोह हो तो अन्य प्रजातन्त्र राजोंको हस्तक्षेप न करना चाहिये, इसी प्रकार यदि

किसी नरेशाधीन राजकी जनता नरेशको उतार कर प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहती है तो अन्य नरेशाधीन राजोंको हस्तक्षेप

न करना चाहिये। यदि किसी देशकी जनता, जिसपर विदेशियोंका शासन हो, विदेशियोंको निकाल कर स्वराज्य स्थापित करना

चाहती हो तो अन्य राजोंको तटस्थ रहना चाहिये। प्रायः ऐसा ही होता है पर कभी कभी अपवाद भी हो जाता है अर्थात् कभी कभी परराज विद्रोह-शमन करनेके लिये हस्त-

क्षेप कर बैठते हैं। प्रायः इसमें उनका भी कोई न कोई स्वार्थ होता है और सम्य जगत् उनके व्यवहारको अच्छा नहीं समझता।

१८४० में फ्रांसकी प्रसिद्ध राजक्रान्ति हुई। फ्रेन्च प्रजाते

नरेशको प्राणदण्ड दे डाला और प्रजातन्त्र स्थापित किया। इसका उसे पूर्ण अधिकार था पर ब्रिटेन, प्रशा इत्यादि उससे लड़ पड़े। उन्होंने इस बातका पूर्ण प्रयत्न किया कि फ्रांसका राजवंश फिर अधिकार पा जाय। यह काम नि स्वार्थ भावसे नहीं किया गया था। ब्रिटेन आदि स्वयं नरेशाधीन थे और इन्हें डर था कि कहीं फ्रांसका रोग हमारे देश तक संक्रमण करके हमारे राजवंशोंको भी सत्ता-हीन न कर दे। १९०६ में आस्ट्रियाकी हंगेरियन प्रजाने स्वाधीन होनेके लिये विद्रोह किया पर रूसने आस्ट्रियाकी सहायता की। इसका कारण यह था कि आस्ट्रियाकी भाँति रूस भी कई देशोंको बलात् दबाये बैठा था और उसे डर था कि हंगरीकी देखादेखा हमारे यहां भी विद्रोह न होने लगे।

‘पवित्र मैत्री’ का इतिहास भी बड़ा ही रोचक है। १८७२ में आस्ट्रिया, रूस और प्रशामें एक सन्धि हुई जिसके द्वारा यह तीनों राज मित्र राज हुए। इनकी मैत्री ‘पवित्र मैत्री’ कहलायी। उस सन्धिके कुछ अक्ष देखने योग्य हैं—

उन घटनाओंको देख कर जो गत तीन वर्षोंसे यूरोपमें हो रही हैं और विशेषतः उन उपकारोंपर दृष्टि डाल कर जिनको जगन्मन्यन्ताने दया करके उन राजोंमें वितरित किया है जिन्होंने उस (ईश्वर) को ही अपनी श्रद्धा और आस्थाका एक मात्र आधार बनाया है, आस्ट्रियाके सम्राट्, प्रशाके महाराज और रूसके सम्राट्को इस बातका पूर्ण विश्वास हो गया है कि राजोंको चाहिए कि अपने परस्पर सम्बन्धोंका आधार उन दिव्य सत्त्वोंको बनायें जिनकी शिक्षा पवित्र बाता (ईसा) के सनातन धर्मसे मिलती है।.....इत्यादि।

सारी सन्धि इसी ढङ्गपर लिखी गयी है। बात बातमें ईश्वर, ईसा, ईश्वरके उद्देश (बाइबिल) तथा धर्मका नाम आता है।

मनुष्योंमें प्रेम और आतृभाव फैलाना ही सन्धिका उद्देश्य बत-
लाया गया है। शब्दोंको देखकर तो सचमुच 'पवित्र मैत्री' कहने-
को जी चाहता है, पर इस शब्दाडम्बरके भीतर उद्देश्य कुछ
और ही था। यह तीनों नरेश शासन-सुधारके कट्टर विरोधी थे।
इनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि सारा शासनाधिकार नरेशोंके
ही हाथमें रहे, इसलिये यूरोपके जिस किसी देशमें प्रजा सिर
उठा कर शासन-सुधार कराना चाहती वहीं पवित्र मित्रोंके सिपाही
पहुंच जाते। तीनों ही राज प्रबल थे इसलिये इनके हस्तक्षेपका
विरोध करना कठिन था। धीरे धीरे इन्होंने अपना क्षेत्र बढ़ाना
चाहा। उन दिनों स्पेनके दक्षिणी अमेरिका वाले उपनिवेश
स्वाधीन होकर प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहते थे। १८८० में
मित्रोंने स्पेनकी सहायताके लिये दक्षिण अमेरिकामें सेना भेजनी
चाही। पर संयुक्त राजसे यह न देखा गया। उसने स्पष्ट शब्दोंमें
कह दिया कि यदि कोई यूरोपियन राज अमेरिका महाद्वीपके
किसी देशकी घरेलू बातोंमें हस्तक्षेप करेगा तो संयुक्त राज उसका
सशस्त्र विरोध करेगा। इस धमकीके आगे मित्र रुक गये क्योंकि
अमेरिका इतना दूर था कि वहां संयुक्त राजका सामना करना
इनके लिये असम्भव था। जैसा कि हम कह चुके हैं अब विद्रोह-
शमनके लिये हस्तक्षेप करना अच्छा नहीं समझा जाता।

हस्तक्षेपका दूसरा अयुक्त कारण भी इसका रूपान्तर मात्र
है। कभी कभी किसी राजमें शासनाधिकारके लिये दो दलोंमें
युद्ध होता है और उनमेंसे एक किसी बाह-
यादवीयमें रीकी सहायतार्थ बुलाता है। ऐसे अवसरपर हस्त-
हस्तक्षेप क्षेप न करना ही उचित है। बाहरवालोंको देखना
चाहिये कि यादवीय (आपसकी लड़ाई)
कौन दल जीतता है, जो जीतता है वही सकार चलायेगा। कुछ

लोगोंकी सम्मति है कि यदि स्थापित सरकारके विरुद्ध विद्रोह हुआ हो और सरकार सहायता मांगे तो देना चाहिये पर विद्रोहियोंको न देना चाहिये। यह नीति अधिकांश आचार्योंको सम्मत नहीं है और प्रायः सम्य जगत् इसे बुरा समझता है। जैसा कि हाल कहते हैं “विदेशी सहायता मांगना ही यह सिद्ध करता है कि उसके बिना युद्धका परिणाम अनिश्चित प्रतीत होता है इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि कौनसा दल अन्तमें राजका दृष्टप्रभु बन सकेगा”। ऐसे अवसरपर विदेशियोंका तटस्थ रहना ही उचित है। प्रायः ऐसा होता भी है पर इसके भी अपवाद मिलते हैं। १९७६ में रूसमें सोविएत सरकार स्थापित हुई। यूरोपके सभी पूंजीपति बोल्शेविज्मसे घबराते हैं अतः पूंजीपतियोंके प्रमुख ब्रिटेनने सोविएतके उन्मूलनका बीड़ा उठाया। नयी सरकार तो थी ही उसके विरोधी भी थे। डेनिकिन, कालचक आदि कई सेनापतियोंने बारी बारी सिर उठाया और ब्रिटिश सरकारने सबकी पूरी पूरी सहायता की। रूसका सौभाग्य था कि ब्रिटेनकी एक न चली। जिस ब्रिटिश सरकारने १८७८ में पवित्र मैत्रीके उत्तरमे कहा था “जहां किसी राजके आभ्यन्तर कामोंसे अन्य राज या राजोंकी तात्कालिक रक्षा या प्रधान हितोंको आघात पहुंचता हो वहां ब्रिटिश सरकार हस्तक्षेप करनेके अधिकारका सबसे पहिले समर्थन करनेको तैय्यार है पर उसकी यह धारणा है कि इस अधिकारसे अत्यन्त आवश्यकताके समय ही और आवश्यकताके अनुसार ही काम लेना चाहिये”* वही रूसमें हस्तक्षेप करने लगी। स्वार्थ

*Though no government could be more prepared than the British Government was to uphold the right of any State or States to interfere where their own immediate

ऐसी बुरी वस्तु है कि वह बड़े बड़े सिद्धान्तोंकी विस्मृति करा देता है।

अभी तक ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह विदित हो गया होगा कि स्वाधीनता क्या वस्तु है। फिलिमोरने उसकी

दस अधिकारोंमें इस प्रकार व्याख्या की है—

स्वाधीनता

१. बिना किसी विदेशी राजके हाथ डाले,

और हस्तक्षेप

अपनी शासनपद्धतिको जब जैसी इच्छा हो तब

वैसी बनाने और परिवर्तन करनेका अधिकार।

२. अपने राज्यको अखण्ड रखने और सम्पत्तिके उपभोग करनेका अधिकार।

३. सर्वप्रकारेण आत्मरक्षा करनेका अधिकार।

४. व्यापार द्वारा राष्ट्रीय सम्पत्तिकी वृद्धि करनेका अधिकार।

५. नवान राज्य और अधिकार प्राप्त करनेका अधिकार।

६. अपने राज्यके भीतर, और विशेष अवस्थाओंमें बाहर, के सब मनुष्यों और वस्तुओंपर एक मात्र और अनियन्त्रित शासन करनेका अधिकार।

७. अपनी प्रजावर्गके मनुष्य चाहे कहीं हों, उनकी रक्षा करनेका अधिकार।

८. विदेशी राजों द्वारा अपनी राष्ट्रीय सरकारको स्वीकृत करानेका अधिकार।

security or essential interests are seriously endangered by the internal transactions of another State, it regarded the assumption of such a right as only to be justified by the strongest necessity, and to be limited and regulated thereby'—Lord Castlereagh's Circular

९. (राष्ट्र-समुदायमें समत्व-सूचक) प्रतिष्ठा पानेका अधिकार ।

१०. अन्ताराष्ट्रिय सन्धियों और इकारनामोंके लिखनेका अधिकार ।

हस्तक्षेपसे इन अधिकारोंमें से कइयोंमें बाधा पडती है । उपचार-दृष्टिसे स्वातंत्र्यमें कमी न मानी जाय पर वस्तुतः जिस राजके साथ हस्तक्षेप किया गया उसकी स्वाधीनतामें अवश्य कमी आती है । वह अपने पूर्ण प्रभुत्वसे काम नहीं ले सकता । इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हस्तक्षेप कभी किया ही न जाय । जैसा कि हमने ऊपर दिखलाया है कभी कभी हस्तक्षेप करना परमावश्यक होता है पर जब तक हस्तक्षेप करनेवाला अपने सद्भाव और हस्तक्षेप करनेकी अनिवार्य आवश्यकताको प्रमाणित न कर दे तब तक वह अन्ताराष्ट्रिय विधानको दृष्टिमें अपराधी है । सम्भवतः भविष्यका राष्ट्रसंघ पूर्णतया निष्पक्ष हस्तक्षेप कर सकेगा ।

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं वह पाश्चात्य जगत्के हैं पर भारतको हस्तक्षेपके नियमके हाथों भयानक क्षति उठानी पडी है । अंग्रेजी राज्यकी अधिकांश वृद्धि हस्त-भारत क्षेपके द्वारा ही हुई है । कहीं मनुष्यताके नामपर हस्तक्षेप करके पीड़ित प्रजाकी सहायता की गयी, कहीं विद्रोह-शमन करनेके लिये हस्तक्षेप करके नरेशके गले भारी ऋण बाँध दिया गया, कहीं आपसकी लड़ाईमें भाग लिया गया, कहीं आत्मरक्षाका बहाना पेश किया गया । देशी राज दुर्बल थे, जो कुछ बल था वह आपसके कलहमें लग रहा था, ब्रिटेनची चाल सदैव फलवती रही और भारतका बहुत बड़ा हिस्सा उसके कब्जेमें आ गया ।

दूसरा अध्याय ।

समत्व-सम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ।

यह बात बहुत दिनोंसे मानी चली आती है कि सब राज एक दूसरेके बराबर है पर इस स्थलपर 'बराबरी' शब्दका अर्थ विचारने योग्य है । यह तो कोई कह नहीं सकता कि राज्य धन, बल, या प्रभावमें सब बराबर हैं । कुछ लोग इसका अर्थ यह लगाते हैं कि राजनीतिक दृष्टिसे असम होते हुए भी वैध दृष्टिसे यह सब बराबर हैं अर्थात् कानूनके सामने इनमें कोई बड़ा छोटा नहीं है । सबके स्वत्व और कर्तव्य एकसे हैं । जिस प्रकार प्रत्येक सभ्य समाजमें कानूनके सामने धनी-निर्धन, बलवान्-दुर्बल सभी बराबर होते हैं, उसी प्रकार अन्तराष्ट्रिय विधानके सामने सब राज बराबर हैं ।

पर यह उदाहरण भी ठीक नहीं है । साधारण समाजमें राज सर्वोपरि होता है । उसके हाथमें दण्डाधिकार होता है, इसलिये वह अपने बनाये विधानकी मर्यादा रख सकता है । इसी लिये वैध समता सब विषमताओंको दबा देती है । राज-समाजमें यह बात नहीं है । अन्तराष्ट्रिय विधान राजोंकी इच्छा-मात्रपर निर्भर है । उसका कोई पृथक् रक्षक नहीं है, इसलिये जो बात राज-समाजमें चलती हो उसीको वैध कहना चाहिये । यदि इस दृष्टिसे देखा जाय तो बराबरीका कहीं पता नहीं चलता । बात बातमें विषमता है । जैसा कि प्रसिद्ध जर्मन नीतिविशारद ट्राइट्स्के ने कहा है ' तुल्यप्राय क्षेत्रफलके बड़े राजोंमें ही

अन्ताराष्ट्रिय विधान बरता जा सकता है क्योंकि इतिहास दिख-
लाता है कि अवनत छोटे राजोंसे बड़े राज बराबर ही बनते रहते
हैं। बेल्जियम ऐसा छोटा राज यदि अपनेको अन्ताराष्ट्रिय
विधानका क्षेत्र समझे तो यह हास्यास्पद बात होगी।^१

इस सम्बन्धमें राजोंकी वर्तमान अवस्था और कार्यप्रणाली-
पर एक दृष्टि डालनेसे लाभ होगा क्योंकि इससे पता चलेगा कि
व्यवहारमें बराबरी कहाँ तक बरती जाती है।

सबसे पहिले हम यूरोपका ही विचार करते हैं क्योंकि आज-
कलके अन्ताराष्ट्रिय विधानका यूरोपमें ही जन्म हुआ है। आरम्भमें
हम जो उदाहरण देंगे वे सब महायुद्धके पहिलेके
शक्ति-गोष्ठी ही होंगे। १९ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें
फ्रांसमें राजक्रान्ति हुई। तब तक यद्यपि कोई
राज बड़ा कोई छोटा था पर उपचारतः सब बराबर कहे जाते थे।
फ्रेञ्च राजक्रान्तिका परिणाम यह हुआ कि फ्रांससे प्रायः सारे
महाद्वीपसे लड़ाई छिड़ गयी। नैपोलियनके उदयने फ्रांसको
एकबार सर्वजेता बना दिया पर अन्य राज उसक पीछे पड़ गये
और अन्तमें उसे हरा कर ही छोड़ा। इस काममें आस्ट्रिया, रूस,
प्रशा और ब्रिटेन अग्रणी थे। अतः इन चारोंका प्रभाव बढ़ जाना
स्वाभाविक था। यह चारों महाशक्ति^२ कहलाये। महाशक्तियोंके
गुटको शक्ति-गोष्ठी † कह सकते हैं। फ्रांस हार तो गया था पर
अब भी वह बहुत बलवान् था। अतः १८७५ में वह भी महा-
शक्ति माना गया। १९२४ में इटली भी इस कोटिमें आ गया।
अतः यूरोपकी शक्ति-गोष्ठीमें ब्रिटेन, रूस, जर्मनी (जब प्रशा और
जर्मनीके अन्य छोटे राजोंके मिलनेसे जर्मन साम्राज्यकी सृष्टि हुई
तो प्रशाका स्थान जर्मनीने लिया), फ्रांस, आस्ट्रिया और इटली-

की गणना थी। यह स्मरण रखना चाहिये कि महाशक्तियोंमें गिने जानेकी कोई विशेष रीति नहीं है। जो राज बलवान् और प्रभावशाली हो जाय और जिसे अन्य महाशक्तियां अपने बराबर मानकर अपने परामर्शमें सम्मिलित करने लगे वही महाशक्ति गिना जायगा।

शक्ति-गोष्ठीका यह अर्थ नहीं है कि इन राजोंमें आपसमें लड़ाइयां नहीं हुई हैं। लड़ाइयां तो कई हुई हैं पर कई काम ऐसे हैं जिन्हें इन्होंने मिलकर किया है और इनके निर्णयको यूरोपके अन्य राजोंने मान लिया है। यदि सब राज बराबर हों तो कोई राज उसी बातको माननेके लिये बाध्य होगा जो उसकी सम्मतिसे किया जाय पर ऐसा होता नहीं। यह छ राज मिलकर जो बात कर डालते हैं उसे आगे पीछे सभी राज मान लेते हैं। १८८९ मे इन्होंने मिलकर तुर्कीपर दबाव डाल कर यूनानको स्वतन्त्र कराया और १८९६ में बेल्जियमको हालैंडसे पृथक् करके उसे एक तटस्थीकृत राज बनाया। बाल्कन-प्रायद्वीपके प्रबन्धमें बहुधा इनका हाथ रहा है यद्यपि वह इनमेंसे किसीके राज्यमें नहीं है।

इस गोष्ठीका कार्यक्षेत्र यूरोप तक ही परिमित नहीं है। अफ्रीकाका बहुत बड़ा भाग यूरोपवालोंके ही अधिकारमें है और वहां भी शक्ति-गोष्ठीके मतके अनुसार काम होता है। स्वयम् अफ्रीकामें कोई सबल राज नहीं है। हब्श स्वतन्त्र है पर वह अर्ध-सम्य भी नहीं कहा जा सकता। मिश्र इस योग्य था कि वह अफ्रीकामें प्रमुख स्थान लेता पर वह अभी अपने आपको भी स्वतन्त्र नहीं कर सका है।

एशियाकी दशा अफ्रीकासे अच्छी है पर सन्तोषजनक नहीं है। नामको जापान, चीन, इयाम, फारस, अरब, अफगानिस्तान

स्वतन्त्र हैं पर वस्तुतः एक जापान ही ऐसा राज है जिसका एशियाके बाहर कुछ आतंक है। रूसको हरानेके पीछे जापानकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी। १९६४ में उसकी भी गणना महाशक्तियोंमें हुई। एक समय था जब कि भारत, चीन और फारस एशिया ही नहीं सारे सभ्य जगत्के गुरु थे। आज भारत पराधीन पड़ा है। स्वतन्त्र होना चाहता है पर अभी तक अपनी बेड़ियोंको काटनेमें समर्थ नहीं हुआ है। फारस स्वतन्त्र परन्तु अत्यन्त दुर्बल है। चीन स्वतन्त्र है पर यादवीयमें फंस कर आत्महत्या करनेको प्रस्तुत प्रतीत होता है। जापान अपने स्वार्थमें उन्मत्त हो रहा है। उसे स्यात् यह ज्ञात नहीं है कि एक दिन उसे अपने एशियाई बन्धुओंकी सहायताकी आवश्यकता होगी। इस समय वह ऐसा कोई काम नहीं कर रहा है जिससे यह विदित हो कि उसे भारत, चीन या अन्य किसी एशियाई देशसे कुछ सहानुभूति है। यदि ईश्वर अच्छे दिन दिखाये तो भारत, फारस, चीन और जापान ही अनतिदूर भविष्यमें एशियाकी शक्तिगोष्ठी होंगे। यह गोष्ठी एशिया ही नहीं सारे जगत्में मान्य होगी। इन चारोंकी जनसंख्या ८५ करोड़के लगभग है और इनके पास अटूट वैभव है। इनका सामना करनेवाला कोई संघ हो ही नहीं सकता।

अमेरिकाकी अवस्था और सब महाद्वीपोंसे भिन्न है। वह सबसे दूर है। उसके कुछ भागोंको छोड़कर शेषमें छोटे बड़े स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज हैं। सिद्धान्तदृष्ट्या यह सब बराबर हैं। पर एक ऐसी बात है जो यह सिद्ध करती है कि समता सिद्धान्त इनके लिये एक प्रकारसे नहीं लगता। हम बतला चुके हैं कि १८८० में पवित्र मैत्री (अर्थात् आस्ट्रिया, प्रशा और रूस) ने यह चाहा कि स्पेनको उसके दक्षिणी अमेरिकाके उपनिवेशोंको दबानेमें सहायता दें। उन दिनों संयुक्त राज्‍यके राष्ट्रपति श्री

मनुरो थे। उन्होंने एक विज्ञप्ति द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि 'यूरोपियन राजोंका पश्चिमी गोलार्द्ध अर्थात् अमेरिकामें अपना विस्तार करनेका प्रयत्न करना अमेरिकाकी शान्ति और रक्षाके लिये अत्यन्त समझा जायगा।' एक दूसरी विज्ञप्तिमें यह कहा गया कि अमेरिकन महाद्वीपके दोनों भाग अब इस प्रकार स्वाधीन हो गये हैं कि उनमें यूरोपियन शक्तियोंको उपनिवेश स्थापित करनेका क्षेत्र नहीं है।

इन दोनों विज्ञप्तियोंको मिलानेसे जो नीति निर्धारित होती है उसे मनुरो सिद्धान्त कहते हैं। उसका सारांश यह है कि भविष्यत्में (अर्थात् १८८० के बाद) कोई मनुरो सिद्धान्त यूरोपियन राज अमेरिकन महाद्वीपके किसी भागमें न तो नया उपनिवेश स्थापित कर सकेगा, न अपना राज्य बढ़ा सकेगा। यदि कभी ऐसा प्रयत्न किया गया तो संयुक्त राज उसका विरोध करेगा।

वह सिद्धान्त अच्छा हो या बुरा पर समताके विरुद्ध है। संयुक्त राज अपने आप ही अमेरिकाके सब राजोंका संरक्षक बन बैठा है। यदि कोई अमेरिकन राज हार कर या किसी अन्य कारणसे अपने राज्यका कुछ भाग किसी यूरोपियन राजको देना चाहे तो स्वाधीनताका यह अर्थ है कि वह ऐसा कर सकता है पर संयुक्त राज ऐसा करने नहीं देता। यूरोपियन राजोंने इस नियमको प्रायः स्वीकार कर लिया है, कमसे कम इसका व्यावहारिक विरोध किसीने नहीं किया है, इससे यह सिद्धान्त अन्ताराष्ट्रिय विधानका एक अंग हो गया है।

संयुक्त राजने कई अवसरोंपर इससे काम लिया है। १८८१ में रुसने अमेरिकन महाद्वीपके वायव्य कोणमें एक उपनिवेश स्थापित करना चाहा पर संयुक्त राजकी सरकारने उसे रोक दिया।

१९५२ में ब्रिटेन और वेनेज़ुएलामें सीमा-सम्बन्धी झगड़ा था । वेनेज़ुएला ब्रिटिश गियाना, नामी अंग्रेजी उपनिवेशसे मिला जुला है । वह स्वतन्त्र राज था पर संयुक्त राज बीचमें पड़ गया । उसने कहा कि हम अंग्रेजोंकी सीमा न बढ़ने देंगे । युद्ध होते होते बच गया । पीछे यह निश्चय हुआ कि इस प्रश्नका निर्याय निष्पक्ष पक्षोंपर छोड़ दिया जाय पर पक्षोंके सामने भी वेनेज़ुएलाकी ओरसे संयुक्त राज ही वकालत करता रहा ।

इस काममें बड़ा दायित्व उठाना पड़ता है । इसी वेनेज़ुएला-के ऊपर बहुत सा ऋण हो गया था । १९५८ में ब्रिटेन, जर्मनी और इटलीने तंग आकर उसपर शस्त्र-प्रयोग करनेकी ठानी । उस अवसरपर राष्ट्रपति रूजवेल्टने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि ' हम (अर्थात् संयुक्त राज) यह नहीं कहते कि यदि कोई राज दुराचारी हो जाय तो उसे दण्ड न दिया जाय । हम इतना ही चाहते हैं कि उसे चाहे और जो दण्ड दिया जाय, पर उसके राज्यका कोई अंश किसी अमेरिकन राजके कब्जेमें न जाय ।' इसी प्रकार साण्टो बोमिंगोपर बहुत ऋण हो गया था और उसमें ऐसी अराजकता सी फैली हुई थी कि उस ऋणके चुकानेकी कोई आशा न थी । विवश होकर यूरोपियन राज हस्तक्षेप करने । इसलिये संयुक्त राजने उसका शासन स्वयं संभाला और आभ्यन्तर प्रबन्धमें बाधा न डालते हुए भी यह इन्तिजाम किया कि जकात (बाहरसे आये मालपर कर) का $\frac{4}{5}$ भाग ऋण चुकानेमें लगाया जाय ।

इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि संयुक्त राजने अपनेको एक प्रकारसे अमेरिकाके सभी राजोंसे बड़ा ठहराया और उनके बाह्य सम्बन्धोंको निश्चित करनेका अधिकार अपने आप ही ले लिया । वह महाशक्ति तो था ही, उसकी नीति भी हितकर थी, इसलिये कुछ दिनों तक तो अमेरिकाके अन्य राजोंने इस विषयमें कोई

आपत्ति न की। पर धीरे धीरे अमेरिकामें भी ब्रैजिल, मेक्सिको, चिली आदि बल-वैभवयुक्त राजोंका उदय हुआ। इनको संयुक्त राजका यह प्राधान्य सहा न था। यह स्वतंत्र तो थे ही अतः इस बातको माननेके लिये सम्मत न थे कि संयुक्तराजको इनके बीचमें बोलनेका कोई अधिकार है। संयुक्तराजने भी देखा कि अब नीतिमें परिवर्तन करना ही श्रेयस्कर है। अतः अब एक नये भावका जन्म हुआ है। इसे अभ्यमेरिकन (अभि + अमेरिकन) भाव ॐ कहते हैं। धीरे धीरे अमेरिकन राजोंमें मैत्री बढानेका प्रयत्न हो रहा है। चार अन्ताराष्ट्रिय अमेरिकन महासभाएँ हो चुकी हैं जिनमें सभी अमेरिकन राजोंके प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इन सभाओंने आपसके कई प्रश्नोंको सुलझाया है और एक स्थायी समिति भी वाशिंगटन (संयुक्तराजकी राजधानी) में स्थापित कर दी गयी है। यह एक प्रकारकी अमेरिकन शक्ति-गोष्ठीका जन्म हो रहा है।

ऊपरके संक्षिप्त वर्णनसे पता चलता है कि कुछ बड़े बड़े राज प्रधान स्थान पाते रहे हैं और बहुत सी बातोंमें अन्य राजोंको उनका परामर्श और नियंत्रण मानना पडा है। एक वर्तमान युग यूरोपियन शक्ति-गोष्ठी थी ही जो यूरोपमें कर्ता हर्ता बनी हुई थी, एक जगच्छक्तिगोष्ठी भी थी। इसमें ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, रूस, आस्ट्रिया, इटली, संयुक्तराज और जापान सम्मिलित थे। यह आठों महाशक्तियाँ थीं और अन्य राजोंपर इनका आतंक था। बहुत से अवसरोंपर इस गोष्ठीने जप-योगी काम भी किये। रेल, तार, डाकके लिये अन्ताराष्ट्रिय नियम बनाये गये, अफीम रोकनेका अन्ताराष्ट्रिय प्रयत्न किया गया, कुछ रोगोंके प्रतिकारका अन्ताराष्ट्रिय प्रबन्ध किया गया। इसके साथ

हीं सारा अफ्रीका भी आपसमें बाँट लिया गया, यह प्रश्न भी न उठा कि अफ्रीकावालोंकी क्या इच्छा है।

यह दशा १९७१ तक रही। उस साल महायुद्ध छिड़ा युद्धका परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया आर जर्मनी छिन्न भिन्न हो गये। ब्रिटेन, फ्रांस, इटली अब भी महाशक्ति हैं। संयुक्त राज और जापान भी महाशक्ति हैं। रूस पतनान् होनेमें कोई सन्देह नहीं क्योंकि उसने अकेले इन सब महाशक्तियोंके बलप्रयोग और आर्थिक कौटिल्यको नीचा दिखाया है पर अभी वह राजसुनाजसे बहिष्कृत है। बेल्जियमका जलाधारण अन्युदय हुआ है और वह यूरोपके लिये तो एक प्रकारसे महा शक्ति हो गया है।

अवस्था बड़ी ही अनिश्चित है। सन्धि हो गयी है पर लड़ाई होती जाती है। जो महाशक्ति हैं उनमें आपसमें ऐक-मत्य नहीं है। हाँ, राष्ट्रसंघका जन्म आशा-जनक है। इसके संगठनमें छोटे राजोंको भी स्थान है, इसलिये यह अयम्भव नहीं है कि आगे चलकर यही सच्ची शक्ति-गोष्ठी हो जाय। पर यह तभी होगा जब या तो यूरोपके बड़े राज अपना लोभ स्वरण कर सकें या उनका बल ही टूट जाय।

ऊपर जितने उदाहरण दिये गये हैं उनसे यह तो स्पष्ट है कि वास्तविक समताका कहीं पता नहीं है। बड़े राजोंका प्रभाव छोटोंसे अधिक होता है और छोटोंको बड़ोंकी समता और बात माननी ही पड़ती है। छोटे बड़ेका भेद विषमता एक प्रत्यक्ष सत्य है। पर समता सिद्धान्तसे दो लाभ हुए हैं। एक तो यह कि उसने बृहन्मताको कुछ न कुछ रोका। यों तो जो प्रबल होता है उसे कोई रोकता नहीं, फिर भी प्रबलसे प्रबल राजको दुर्बलसे दुर्बल राजपर आक्रमण करनेके पहिले कुछ न कुछ बहाना ढूँढ़ना

पडता था । किसी बराबरवालेकी स्वाधीनता नष्ट करना अपराध है और लोकमतके सामने कोई अपराधी नहीं बनना चाहता, इससे कोई न कोई कारण, हेतु नहीं तो हेत्वाभास ही सही, दिखलाना पडता था, इससे छोटोंकी कुछ रक्षा हो जाती थी । दूसरी बात यह हुई कि यद्यपि सामूहिक रूपसे महाशक्तियोंको कई अलिखित अधिकार प्राप्त थे पर व्यक्तिगत अवस्थामें इनके वही अधिकार थे जो छोटे राज्योंमें थे । युद्ध, सन्धि, ताटस्थ्य, दौल्य, सलामी इत्यादिमें सबके लिये एकसे ही नियम थे, यह दूसरी बात है कि जो बलवान् हो वह किसी नियमकी अवहेलना करके भी अदृष्टित रह जाय । जब तक मनुष्यके स्वभावमें ही कोई प्रचण्ड परिवर्तन न हो जाय तब तब ससारसे विषमताका सर्वतः उठ जाना कठिन ही प्रतीत होता है ।

आपसके मिलने जुलने, पत्र-व्यवहार और सलामी आदिके नियम सब बराबरीकी नींवपर बने हैं । सिद्धांत यह है कि सब स्वतंत्र राज बराबर हैं पर कभी कभी व्यावहारिक उपचारोका महत्व उपचारोंमें इसे बरतनेमें अडचन पडती है । पहिले

इस बातके पीछे ही युद्ध छिड़ जाते थे । सभी देशोंमें उपचारोंका बड़ा आदर रहा है । भारतके राजोंमें भी बहुत से नियम हैं । किसका स्वागत कमरेके बाहर तक आकर किया जाय, किसके लिये आधे कमरे तक आया जाय, किसके लिये केवल खड़ा हुआ जाय, कौन आगे चले, किसको छत्र और डकेके साथ निकलनेका अधिकार है, यदि दो नरेश मिलें तो कब कौन दाहिने बैठे, कौन बाये बैठे—यह सब बड़े टेढ़े प्रश्न हैं । आज कल पाश्चात्य जगत्में इनपर कम ध्यान दिया जाता है पर दिया अवश्य जाता है । किसी नियमके उल्लङ्घनके लिये युद्ध चाहे न हो पर कुछ सबमुदाव अवश्य होगा ।

आजकल एक दूसरेसे मिलनेके समय प्राय निम्न-लिखित क्रमसे पौर्वापर्य्य बरता जाता है ।

(१) सबसे पहिले पूर्णप्रभु राज आते हैं ।
सम्मिलन-कालके (२) यदि किसी स्थलपर पाप उपस्थित उपचार हो तो रोमन कैथलिक सम्प्रदायानुयायी राजोंके ऊपर उनका स्थान होगा । अन्य अतावलम्बी उनको यह प्रतिष्ठा नहीं देते ।

(३) स्वतंत्र राजोंमें भी जिनके मुख्याधिष्ठाता अभिषिक्त नरेश होते हैं उनका स्थान दूसरोंसे पहिले होता है । जहापर अभिषिक्त नरेशोंके साथ छोटे अनभिषिक्त नरेश जैसे (ड्यूक, एलेक्टर या भारतमें ठाकुर या सदार) मिलते हैं वहा तो यह नियम चलता है पर सयुक्तगज और फ्रांस ऐसे प्रबल प्रजातंत्र इसे नहीं मानते । उनका स्थान बड़े नरेशाधीन राजोंके साथ ही होता है ।

इन नियमोंका पालन उन सब स्थलोपर होता है जहा कि कई राजोंके प्रतिनिधि किसी कार्य्यविशेषसे सम्मिलित होते हैं, चाहे वह प्रतिनिधि स्वयं मुख्याधिष्ठाता (नरेश या राष्ट्रपति) हों या कोई मुख्य कर्मचारी ।

सन्धिपर हस्ताक्षर करनेके समय किस क्रमसे हस्ताक्षर किये जाय इसका भी बड़ा झगड़ा था । कभी तो यह करते थे कि चिट्ठी डालकर क्रम निश्चित होता था पर सन्धिको जो सन्धिपर हस्ताक्षर प्रति जिस राजमें रहती थी उसपर उस राजके करनेके नियम प्रतिनिधिका हस्ताक्षर सबसे ऊपर होता था ।

आजकल प्राय दूसरा नियम बरता जाता है । यह देखा जाता है कि राजोंके नामके प्रथम अक्षर फ्रेञ्च वर्णमालाके अनुसार किस प्रकार आगे पीछे आते हैं और फिर इसी क्रमसे उन

राजोंके प्रतिनिधि हस्ताक्षर करते हैं। इससे आपसकी बराबरीकी बात बनी रहती है।

जहाजों तथा जहाजों और किलोकी सलामीके नियम भी बहुत महत्व रखते हैं। पहिले तो यह सर्वथा अनिश्चित थे और इनके पीछे झगडा हा जाता था। इस सलामीके नियम आये दिनके झगडेसे तग आकर १८४४ मे फ्रांस और रूसने आपसकी सलामी बन्द ही कर दी। आजकल यह नियम प्रचलित हैं—

(१) यदि कोई लडाईका जहाज किमी विदेशी बन्दरमें प्रवेश करता है या उसके सामनेसे निकलता है तो वह पहिले सलाम करता है। पर यदि उसपर उसके राजका मुख्याधिष्ठाता या राजदूत हो तो पहिले बन्दर सलामी देता है। फिर सलामीका जवाब दिया जाता है। यदि बन्दरमे कोई किला हो तो वह सलामी देता है नहीं तो कोई लडाईका जहाज देता है। जवाबमे भी उतनी ही बार तोप दागते हैं।

(२) यदि कई राजोंके जहाज मिलते हैं तो पहिले वह जहाज सलाम करता है जिसका नायक छोटे दर्जेका होता है

(३) यदि सैनिक जहाज और व्यापारी जहाजका सामना हो तो व्यापारी जहाज सलाम करता है। यदि उसपर तोप न हो तो वह अपना टापसेल (ऊपर वाला मस्तूल) झुका देता है।

(४) सलामी २१ तोपसे अधिककी नहीं होती।

प्रत्येक राजको अधिकार है कि वह अपने प्रधान अधिष्ठाताको जो उपाधि चाहे दे। उपाधिसे अधिकारमें कोई भेद नहीं पड़ता। भारतमे ही महाराणा, महाराजा, राजा, राणा, ठाकुर, नवाब, महारावल आदि अनेक प्रकारकी उपाधियाँ हैं पर अन्य राज इस बातके लिये बाध्य नहीं है कि किसी अधिष्ठाताकी

नयी उपाधिको अङ्गीकार करके पत्र-व्यवहारादिमें उसका ही प्रयोग करें। बहुधा ऐसा होता है कि यदि उपाधियोंकी नयी उपाधि पुरानी उपाधिके ही दर्जेकी होती स्वीकृति है तो वह अंगीकार कर ली जाती है पर यदि सन्देह होता है तो यह स्पष्ट कह दिया जाता है कि हम उपाधिको माने लेते हैं पर इससे आपके पदमें कोई वृद्धि न होगी। १७५२ में रुमके नरेशोंने ज़ार (सम्राट) की उपाधि धारण की पर कई राजोंने लगभग ६० वर्ष तक उसे न माना। फ्रांसने १८०२ में उसे माना भी तो उपयुक्त शर्त लगा कर।

तीसरा अध्याय ।

सम्पत्ति-सम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य ।

फ्रान्स चीनकालसे ही यह माना गया है कि राज्योंको सम्पत्ति रखनेका अधिकार है । जिस समुदायका किसी भूमि-विशेषपर कब्जा न हो उसे राज ही नहीं कहते । पर राज्योंकी सम्पत्ति भूमिके अतिरिक्त अन्य प्रकारकी भी होती है । उनके पास घर, मकान, मशीन, रुपया पैसा, पशु, शस्त्र, पुस्तकें, कुर्सीयां, इत्यादि, अनेक वस्तुएं होती हैं । इनका क्रयविक्रय प्रत्येक देशके घरेलू कानूनके अनुसार होता है जिससे अन्ताराष्ट्रिय विधानसे कोई सम्बन्ध नहीं है पर यदि युद्धके समय शत्रुसेना इनपर कब्जा कर लेती है तो अलबत्ता अन्ताराष्ट्रिय विधान उनके उपयोग और उपभोगके नियम बताता है ।

इन फुटकर वस्तुओंके अतिरिक्त राजकी सम्पत्तिमें भूमि, जल और वायु सम्मिलित हो सकते हैं । इन तीनोंपर पृथक् पृथक् विचार करना होगा, फिर अन्तमें यह निश्चय हो सकेगा कि राजकी सम्पत्तिकी क्या सीमा हो सकती है ।

भूमिपर अधिकार ।

सबसे पहिले यह देखना है कि राज्योंकी भौम सम्पत्ति किस प्रकार बढ़ती है । इसके दो प्रकार हैं, प्राथमिक और गौण । प्राथमिकके भी दो भेद हैं, अधिकृति और प्राकृतिक वृद्धि †

* Original, derivative † Occupation, accretion.

और गौणके तीन भेद हैं हस्तान्तर, विजय और उपभोग §। दोनोंमें भेद यह है कि जो भूमि किसी अन्य सभ्य राजके कब्जेमें नहीं थी या यदि कभी बहुत पहिले थी भी तो अब उसपर किसी सभ्य राजका न तो कब्जा है न स्वत्व, उसपर अधिकार प्राप्त करनेके प्रकारको प्राथमिक कहते हैं और किसी अन्य सभ्य राजके कब्जेकी भूमिपर कब्जा करनेके प्रकारोंको गौण कहते हैं।

अधिकृति ।

जो भूमिखण्ड किसी अन्य सभ्य राजके अधिकारमें न हो उसे अपने हाथमें लेनेको अधिकृति कहते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि वह निर्जन हो। इतना ही पर्याप्त है कि अधिकृतिका उसके निवासी किसी ऐसे राजकी प्रजा न हों जो प्रकार अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र हो। जब पहिले

पहिले अमेरिका महाद्वीपका पता लगा तो यूरोपके राजोंके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इसपर किसका और किस नियमके अनुसार अधिकार हो। अन्तमें प्राचीन रोमन विधानकी शरण ली गयी। उसमें एक नियम था कि यदि सड़कपर कोई लावारिस चीज पड़ी हो तो जिसके हाथ वह पहिले लगे वह उसे ले सकता था। इस नियमका विचार इस प्रकार किया गया कि जो पहिले अमेरिका पहुँचा अर्थात् जिस राजके जहाजने अमेरिकाका पहिले पता लगाया वही उसका स्वामी होगा। पर इससे काम न चला। स्पेनवाले कहते थे कि १५५५ में अमेरिगो वेस्पूची^१ जो स्पेन-वासी था उत्तरी अमेरिकाके तटपर सबसे पहिले उतरा था इसलिये उत्तरी अमेरिका हमारा है। अंग्रेज कहते थे जान केबट यहा १५५४ में ही आ चुका था।

§ Cession, conquest, presumption * Amerigo Vespuce

फ्रांस और पुर्तगाल भी इसी प्रकारकी बातें कहते थे। तत्कालीन पोप षष्ठ सिकन्दरने सारे अमेरिकाको स्पेन और पुर्तगालमें बांटना चाहा पर उनकी बात कौन सुनता। फ्रेञ्च नरेशने स्पेनके पञ्चम चार्ल्ससे इस प्रयत्नकी हसी उड़ाते हुए पूछा था “आप और पुर्तगालके नरेश किस अधिकारसे सारी पृथ्वीके स्वामी बनना चाहते हैं ? क्या बाबा आदमने आपको ही अपना एकमात्र उत्तराधिकारी बनाया है ? यदि ऐसा है तो वसीयतनामेकी प्रतिलिपि तो दिखलाइये । कहनेका तात्पर्य यह है कि किसी स्थान विशेषका पहिले पहिले पता लगा लेना पर्याप्त नहीं है। केवल इतनेसे ही उसपर स्वाम्य नहीं होता, हां पहिले पता लगाना एक गौण प्रमाण नि सन्देह है। आजकल केवल इतनेसे अधिकार नहीं मिलता पर प्रचलित प्रथा यह है कि यदि किसी राजका जहाज किसी नये भूखण्डका पता लगाता है तो अन्य राज थोडे दिन ठहर कर देखते हैं कि वह उसपर कब्जा करता है या नहीं। उसको ऐसा करनेका पर्याप्त अवकाश दिया जाता है।

अस्तु, तो पता लगाना ही कब्जा नहीं है। जिस राजका जहाज पता लगाये या जो अन्य राज कब्जा करना चाहे उसे चाहिये कि यह स्पष्ट प्रकट कर दे कि इस स्थानपर कब्जा करनेकी हमारी इच्छा है। इसका साधारण नियम यह है कि वहाँपर राजका झण्डा गाढ़ दिया जाय और कब्जेकी घोषणा कर दी जाय। पर यह घोषणा उस राजकी सरकारकी ओरसे ही होनी चाहिये। कोई अन्य व्यक्ति, चाहे वह राजका उच्च कर्मचारी ही क्यों न हो, घोषणा नहीं कर सकता। इसलिये ऐसे अवसरपर एक कर्मचारी, विशेष अधिकार देकर, इसी कामके लिये भेजा जाता है। १७५६ में डैम्पियर नामक एक ब्रिटिश नाविकने

आस्ट्रलियाके निकट न्यूब्रिटेन और न्यूआयरलैण्ड नामक दो नये द्वीपोंका पता लगाया। १८२४ में कप्तान कोर्टरेडने ब्रिटेनके नामपर इनमें कब्जेकी घोषणा कर दी। वह ब्रिटिश जल-सेनाके ऊँचे दर्जेके अफसर थे पर उन्हें ब्रिटिश सरकारकी कोई विशेष आज्ञा नहीं अतः उनकी घोषणा अन्य राजोंके लिये मान्य नहीं। १९४१ में जर्मनीने इन द्वीपोंपर अपना अधिकार जमा लिया। कभी कभी ऐसा होता है कि अधीन सस्थाएँ या कर्मचारी बिना आज्ञाके ही किसी प्रदेश विशेषपर कब्जेकी घोषणा कर देते हैं पर ऐसी अवस्थामें यथामुम्भव शीघ्र ही उनकी सरकार उनके ऐसा करनेका स्वयं समर्थन करती है। यदि वह ऐसा न करे तो घोषणा निरर्थक होती है।

पर केवल घोषणासे ही काम नहीं चलता। जिस प्रकार माधारण कानूनमें दाखिल खारिज अर्थात् सम्पत्तिपर नाम चढ़ानेके लिये यह देखा जाता है कि वस्तुतः उस सम्पत्तिका उपभोग कौन करता रहा है उसी प्रकार अन्तराष्ट्रिय विधान भी यह देखता है कि वस्तुतः उस भूखण्डका कोई उपभोग भी हुआ है या नहीं। इसलिये अब घोषणाके बाद ही थोड़ी बहुत बस्ती बसाना पड़ती है। यदि जगह छोटी हो तो कुछ सरकारी कर्मचारी ही रख दिये जाते हैं नहीं तो शीघ्र ही कृषकों और व्यापारियोंको बसानेकी चेष्टा की जाती है। बस्ती भी निरन्तर होनी चाहिये। थोड़े दिनोंके लिये हट जाना दूसरी बात है पर यदि कुछ काल तक बस्ती इस प्रकार हटा ली जाय कि इस बातका कोई प्रमाण न रह जाय कि फिर आकर बसना है तो दूसरे राजोंको वहा कब्जा करनेका पूर्ण अधिकार है। यह स्मरण रखना चाहिये कि बस्तीमें कुछ सरकारी कर्मचारियोंका, जो वहींके लिये नियुक्त हुए हों, रहना परमावश्यक है। केवल व्यापारियों या

पकाय बसनेगे सकारी कब्जा नहीं होता । बहुधा पहिले सकार कब्जा जमा लेती है फिर बस्ती बसाती है, पर कभी कभी इसके विपरीत भी होता है । दक्षिणी अफ्रीकाके नेटाल प्रदेशमें १८८१ में ही कुछ अंग्रेज बस गये थे पर सकारी घोषणा १९०० में हुई । इसमें ढर यही रहता है कि यदि बीचमें कोई और राज उसे अधिकृत करना चाहता तो अंग्रेज सकार उसे वैध रूपसे नहीं रोक सकती थी ।

अतः यह निश्चय हुआ कि किसी लावारिस भूमिपर पूर्ण अधिकार जमानेके लिये यह आवश्यक है कि अधिकार जमानेकी घोषणा करके उसके शासनके लिये कुछ सकारी कर्मचारी नियुक्त किये जाय जो वहीं रहें ।

इस समय यह प्रश्न बड़े महत्व का इसलिये नहीं प्रतीत होता कि पृथ्वी इस प्रकार छान डाली गयी है कि स्वात् कोई ऐसा देश ही नहीं बच गया है जिसपर किसी अधिकृत भूमिका किसी सभ्य राजका अधिकार न हो । कभी कभी क्षेत्रफल भूकम्प आदिके कारण प्रशान्त महासागरमें एकाध छोटासा द्वीप भले ही उत्पन्न हो जाय पर किसी बड़े द्वीप या देशके मिलनेकी आशा नहीं है । पर दो बातें ध्यानमे रखने योग्य हैं । एक तो अब भी अफ्रीकाके बहुत बड़े भागपर किसी सभ्य राजका कब्जा नहीं है, दूसरे यह असम्भव नहीं है कि जिन देशोपर आज सभ्य राज अधिकार जमाये बैठे हैं वहासे भविष्यत्में उनका अधिकार उठ जाय । किसी समय ब्रिटेनपर रोमका अधिकार था पर जब रोमके पतनका समय आया तो वह इतना दुर्बल हो गया कि उसे ब्रिटेनसे हाथ खींचना पड़ा और ब्रिटेन लावारिस हो गया । यह कौन कह सकता है कि यदि फिर कोई भीषण महायुद्ध हुआ तो ब्रिटेन, फ्रांस,

हालैण्ड इत्यादि एशिया और आस्ट्रेलियाके पासके द्वीपोंपर अपना अधिकार स्थिर रख सकेंगे। यदि यह द्वीप एक बार इनके हाथसे निकल गये तो फिर लावारिस हो जायँगे और अन्य सभ्य राजाको उनपर कब्जा करनेमें कोई रुकावट न होगी। उस समय यह नियम काम देंगे।

एक बड़े महत्त्वका प्रश्न यह है कि एक बार घोषणा करने और कुछ कर्मचारी नियुक्त कर देनेसे कितनी भूमिपर अधिकार हो जाता है। इसमें तो सन्देह नहीं कि छोटे द्वीप या द्वीपसमूहपर एक साथ ही कब्जा हो जाता है पर समूचे महाद्वीपपर इस प्रकार कब्जा नहीं हो सकता। फ्रांस या स्पेन चाहते थे कि सारा अमेरिका ही उन्हें मिल जाय पर उनकी बात किसीने न मानी। एक दो नहीं दस पाँच बस्तियाँ बसानेसे भी महाद्वीप या बड़ा देश नहीं अपनाया जा सकता। आज आस्ट्रेलियाका द्वीप, जो एक महाद्वीप कहा जा सकता है, ब्रिटेनका हो गया है। कारण यह है कि उसके चारोओर समुद्रतटपर ब्रिटिश बस्तियाँ हैं और किसी अन्य राजने उसमें अपना उपनिवेश बसाया ही नहीं। पर यह अवस्था बहुतोको अच्छी नहीं लग रही है। देश बहुत बड़ा है और अग्नेज बहुत थोड़े हैं। भारतीय, चीनी, जापानी अभी उसमें घुसने नहीं पाते हैं यद्यपि आस्ट्रेलिया एशियाके निकट है और एशियावासियोंके लिये सर्वथा उपयुक्त है। सम्भवतः एक दिन उसमें भारत, चीन और जापानके ही उपनिवेश होंगे।

विधान शास्त्रका यह एक सिद्धान्त है कि स्थलसे संलग्न जल होता है, जलमे संलग्न स्थल नहीं। स्थलपर स्वाम्य होनेमें जलपर स्वाम्य हो जाता है परन्तु जलपर स्वाम्य होनेसे स्थलपर स्वाम्य नहीं होता। यदि किसी नदीके मुहानेपर कब्जा कर

लिया जाय तो उस सारे भूखण्डपर कब्जा नहीं माना जायगा जिसमें से वह नदी या उसकी सहायक नदिया बहती है पर यदि समुद्र-तटके पासके बड़े भूखण्डपर कब्जा हो जाय तो उस ऊँची भूमि या पहाड़ी तक कब्जा माना जाता है जहाँसे नदिया इस तटकी ओर झुकती है। यदि दो राजोंकी बस्तिओके बीचमेंसे नदी बहती है तो दोनोंका नदीक अपने अपने तट तक कब्जा माना जाता है और नदीके जिस भागसे नाव चल सकती है उसके मध्यकी कल्पित रेखा दोनों बस्तियोंकी सीमा मानी जाती है। जहाँ नदी, पहाड़ इत्यादि प्राकृतिक सीमाएँ नहीं मिलती वहाँ कल्पित और कृत्रिम सीमाएँ बनानी पड़ती है। बहुधा यह करते हैं कि दोनों ओरकी अन्तिम इमारतोंके बीचकी भूमिके बीचो बीचकी कल्पित रेखाको सीमा मान लेते हैं।

इन नियमोंका पालन करनेसे झगड़े बहुत कम हो जाते हैं पर उनके लिये अवकाश निकल ही आते हैं। इसीको बचानेके लिये अफ्रीकाके विषयमें ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, पुर्तगाल इत्यादिने आपसमें समझौता कर यह निश्चय कर लिया कि कौन देश कहां तक कब्जा करेगा। आजकल तो यह नियम हो गया है कि कब्जा करने वाला राज स्वयं पहिलेसे ही कह दे कि वह कहां तक कब्जा करना चाहता है। १९४५ में लोसानमे अन्ताराष्ट्रिय विधान परिषद्ने पहिले पहिले यह परामर्श दिया था। यह कहना अनावश्यक है कि यदि वह राज बहुत बड़े भूखण्डको दबाना चाहेगा तो अन्य राज उसकी एक न सुनेंगे। साथ ही यह भी शर्त है कि वह जितनी भूमिपर कब्जा करे उसमें ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न न होने दे जिससे सम्य मनुष्य उसमें बस ही न सकें या वहाँ व्यापार, कृषि आदि करना असम्भव हो जाय।

हम देख चुके हैं कि जिन देशोंपर किसी सभ्य राजका शासन न हो उनपर कब्जा हो सकता है । यदि वह देश निर्जन हो तो कोई अडचन नहीं होती पर यदि वहाँ आदिम निवासी कुछ मनुष्य पहिलेसे बसे हो तो एक प्रश्न उठता है । माना कि यह लोग असभ्य हैं पर हैं तो मनुष्य । क्या इनका इस भूमिपर कोई अधिकार नहीं है ? आजसे सौ दो सौ वर्ष पूर्व तो यह प्रश्न किसीको नहीं सनाता था पर आजकल लोगोकी विवेक-बुद्धि कुछ तीक्ष्ण हो गयी है अतः यह बात खटकनी है । पहिलेके लोगोका तो यह भाव था कि आदिम निवासियोंका कोई अधिकार नहीं है । आजकल ऐसा नहीं कहा जाता । उत्तरी अमेरिकामे अंग्रेजोंने जो वस्तियाँ स्थापित कीं उनके सम्बन्धमे फिलिमोर कहत है—‘उत्तरी अमेरिकाके आदिम निवासियोंको यह अधिकार था कि अपनी आखेट-भूमियोमे अंग्रेज व्यापारियोंको न बसने दें, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया । इसलिये यह समझना चाहिये कि भूमिके स्वाभ्यमे अंग्रेज भी सम्मिलित कर लिये गये । फिलिमोर इस बातको छिपाते हैं कि उन जंगलियोंने प्रेमवश होकर अंग्रेजोंको अपना हिस्सेदार (!) नहीं बनाया वरन् तोप बन्दूक और शराबके आगे उनकी एक न चली । अस्तु, आजकल बहुधा यह मत है—कोई विधान हो वह अपने पात्रोंका ही नियंत्रण कर सकता है, उन्हींके अधिकारों और कर्तव्योंका निर्णय कर सकता है । सभ्य राज अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र हैं अतः वह विधान उनके ही लिये नियम बना सकता है । उसने कब्जा करनेके सम्बन्धमे कुछ नियम बनाये हैं । यदि उसके पात्र अर्थात् सभ्य राज उन नियमोंका पालन करते हैं और उनके अनुसार कब्जा करते हैं तो वह सन्तुष्ट है । असभ्य या अर्द्ध-सभ्य समुदाय उसके पात्र नहीं हैं इसलिये वह न तो उनके

अधिकारोंको जानता है न कर्तव्योंको। इसलिये यदि सभ्य राज इस प्रकारके देशोंपर कब्जा कर लेते हैं तो उनका ऐसा करना पूर्णतया वैध है। परन्तु विधानके अतिरिक्त धर्म भी एक वस्तु है और न्याय धर्मका एक प्रधान अंग है। धर्म यह कहता है कि जो समुदाय, चाहे वह कैसा ही जंगली हो, किसी भूखण्ड-पर बस गया है उसका उसपर अधिकार हो गया है। अतः सभ्य राजोंपर वैध नहीं तो नैतिक दबाव अवश्य है। इसलिये आजकल यह चाल चल पड़ी है कि एक बार अन्ताराष्ट्रिय विधानके अनुसार कब्जा करके फिर तत्रस्थ जंगली सर्दारोंसे सन्धियां की जाती हैं। इन सन्धियोंके अनुसार उस भूखण्डका कुछ भाग तो आदिम निवासियोंके लिये छोड़ दिया जाता है, कुछ उनसे ले लिया जाता है। जो भाग लिया जाता है उसका मूल्य भी उन्हें दिया जाता है। इस युक्तिसे यूरोपकी सभ्यता अपनी धर्मपरताका परिचय देती है। पर यह स्मरण रखना चाहिये कि यह सर्दार जंगली होते हैं। यह बेचारे लिखित सन्धियोंके ढंगसे अपरिचित होते हैं, कानूनी शब्दोंके दावपेचसे सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं, धनके महत्त्वको समझते नहीं, पाश्चात्य सभ्यताकी शक्तिसे घबराते हैं और उसके प्रलोभनोंमें फँस जाते हैं। अतः उन्हें बहकाकर ऐसी सन्धियां लिखवायी जाती हैं कि थोड़ेसे ही कालमें सारा देश यूरोपियनोंका हो जाता है और वह बेचारे या तो अन्नादिके कष्टसे प्रायः सारे नष्ट हो जाते हैं या गुलामोंसे भी बुरी दशामें जा गिरते हैं। दक्षिणी और पूर्वीय अफ्रीका तथा उत्तरी अमेरिकाका इतिहास ऐसी घटनाओंसे परिपूर्ण है। आजकल जिन राज्योंको राष्ट्रसंघने शासनादेश दिये हैं उनसे यह शर्त की है कि इन देशोंका शासन इस प्रकार करो कि आदिम निवासी सभ्य हो जायें और उनको किसी सरक्षककी आवश्यकता ही न रहे। देखा चाहिये

क्या होता है। अभी तो सर्वत्र ऐसा ही शासन रहा है कि यदि कल यूरोपियन सभ्यता उन देशोंसे उठ जाय तो वहाँके 'निवासी हर्षोत्फुल्ल होकर परमात्माकी वन्दना करेंगे और मनायेंगे कि हे भगवन्, अब हमें इन सभ्य सृष्टियोंके दर्शन न दीजिये। यूरोपियन राज कहते अवश्य हैं कि हम जब कहीं कब्जा करते हैं तो केवल अपने बलवैभवकी वृद्धि या उपनिवेश स्थापित करनेके उद्देश्यसे नहीं प्रत्युत आदिम निवासियोंको सुसभ्य बनाना भी हमारा एक प्रधान लक्ष्य रहता है, पर आजतक ऐसी बातें देखनेमें नहीं आयीं जिनसे इस कथनकी सत्यतापर विश्वास हो।

प्राकृतिक वृद्धि।

यह कोई बहुत महत्त्वका विषय नहीं है क्योंकि इस प्रकार राज्यवृद्धि बहुत कम होती है और यदि कभी होती है तो उसके विषयमें प्रायः मतभेद और विवाद भी नहीं होता। प्राकृतिक वृद्धि समुद्र या नदी तटपर ही सम्भव है। कभी कभी पानी हट जाता है और इस प्रकार कुछ नयी भूमि बढ़ जाती है। यह उसी राजकी सम्पत्ति होती है जिससे मिली होती है। यदि पानीमें कुछ नये द्वीप बन जायें तो वह भी उसी राजकी सम्पत्ति माने जाते हैं जिसके राज्यके निकट होते हैं। यदि दो राज्योंके बीचमें पानी पड़ता हो और ठीक बीच धारमें ही नयी भूमि निकल आये तो वह बीच धारकी उस कल्पित रेखा द्वारा, जो दोनों राज्योंकी सीमा मानी जाती है, दी भागमें बाँट दी जाती है। पर यदि दो राज्योंके बीचमें कोई नदी या झील हो और वह किसी दैवी दुर्घटनाके कारण यकायक अपना मार्ग ही छोड़ दे या विलुप्त हो जाय तो दोनों राज्योंके राज्योंमें कुछ भी वृद्धि-शासन होगा प्रत्युत उनकी सीमा पुरानी अदृष्ट धाराकी कल्पित मध्यरेखा ही मानी जायगी और इसीके अनुसार पानीके हट जानेसे जो नयी

भूमि निकल आयेगी वह आपसमें बांट ली जायगी। प्रायः इसी प्रकारके नियम सभी देशोंमें खेतों और उन जमोनदारियोंके लिये प्रचलित है जो नदीके किनारे होती है

हस्तान्तर ।

एक सभ्य राजसे दूसरे सभ्य राजके हाथमे बहुधा हस्तान्तरित होकर ही भूखण्ड जाया करते हैं। इसका अर्थ तो यह है कि भूखण्ड अपनी इच्छासे दिया जाय पर कभी कभी ऐसा होता है कि भूखण्ड लिया तो जाता है बलात् ही पर दिखलानेको, ताकि देनेवालेकी अप्रतिष्ठा न हो, हस्तान्तरका स्वरूप दिया जाता है। हस्तान्तर सन्धि द्वारा होता है। सन्धिपत्रमे यह लिखा जाता है कि नये अधिकारीको पुराने अधिकारीके ऋणका कौनसा भाग अपने ऊपर लेना होगा, हस्तान्तरित प्रदेशकी प्रजाके किन किन स्वत्वोंकी विशेष रक्षा की जायगी, इत्यादि। हस्तान्तर कई प्रकारोंसे होता है। उनमें विक्रय, भेंट और विनिमय मुख्य है।

आजकल विक्रय कम होता है क्योंकि राजोंके पास ऐसी परती भूमि ही नहीं है जिसे अनावश्यक समझ कर बेच डाला जाय। पर कभी कभी अब भी विक्रय होता है। १९२४ में संयुक्त राजने रूससे उत्तरी अमेरिकाके वायव्य कोणका अलास्का प्रान्त ७२,००,००० डालर (अर्थात् लगभग २,४०,००,००० रुपये) में खोल ले लिया। भेंट आपसके सौहार्दकी द्योतक है। इस प्रकारकी भेंट स्यात् ही कभी होती है। पहिले होती थी। १८१९ मे फ्रांसने स्पेनको लूइजीआनाका उपनिवेश भेंट कर दिया था। बम्बईका द्वीप ब्रिटिश नरेश प्रथम चार्ल्सको पुर्तगालसे अपने विवाहके उपलक्ष्यमें मिला था। जबरदस्तीकी भेंट अब भी होती है। यदि दो राजोंमें युद्ध होकर एक हार जाता है और उसे कुछ

भूखण्ड विजेताको देना पड़ता है तो इसे भी भेंट ही कहते हैं। १९२८ में फ्रांसको जर्मनीने हराया। परिणाम यह हुआ कि फ्रांसने अल्सास और लारेन दो प्रान्त जर्मनीको भेंट किये। यह भेंट फ्रांसको कभी न भूली। उसीका प्रतिकार वह जर्मनीसे अब ले रहा है। कभी कभी भेंट और विक्रयको मिला कर हस्तान्तर होता है। १९५५ में संयुक्त राजने स्पेनको हराया और उसे फिलिपाइन द्वीपसमूह भेंट करनेपर विवश किया पर स्वतः द्वीपके लिये २,००,००,००० डालर (७,००,००,००० रुपये) स्वीकार किया। इसे जबरदस्तीका विक्रय कह सकते हैं। कभी कभी आपसमें विनिमय भी होता है। १९४७ में जर्मनीने ब्रिटेनको अपने पूर्वीय अफ्रीकाके राज्यका एक भाग दे दिया जिसके स्थानमे ब्रिटेनने जर्मनीको हेलिगोलैंड दे दिया।

विजय।

जब किसी राजके राज्यके किसी भागमें किसी दूसरे राजकी सेना उसकी सेनाओंको हरा कर अपना अधिकार जमा लेती है तो वह राज जिसकी सेना जीत गयी होती है उस प्रदेशका विजेता कहलाता है अर्थात् यह कहा जाता है कि उस प्रदेशमे उसकी विजय हुई है। पर यह सैनिक विजय मात्र है, इससे वह विजेता उस प्रदेशका स्वामी नहीं हो जाता। गत युद्धमें तीन चार वर्ष तक बेल्जियम तथा फ्रांसका बहुत बड़ा भाग जर्मन सेनाओंके अधीन था पर जर्मनी उन भूखण्डोंका स्वामी नहीं हुआ। ऐसे प्रान्तोंमें विजेताकी सेना तो रहती है पर शासन पुरानी सरकारके कर्मचारी ही करते हैं। उसीके बनाये कानून बरने जाते हैं, उमीके न्यायालय होते हैं, उसीका सिक्का चलता है। यह अवश्य होता है कि विजेता सरकारी कोषका स्वरूप उपयोग कर लेता है और सैनिक सुविधाके लिये कुछ नियमोपनियम बना देता है पर वह

आभ्यन्तर शासनमें हस्तक्षेप नहीं करता । यदि वह जबरदस्ती कुछ हस्तक्षेप कर दे, कुछ निरपराधियोंको दण्ड दे दे, अपराधियोंको छोड़ दे, किसीकी सम्पत्ति कुर्क कर ले, तो जब युद्धकी समाप्ति पर यह प्रान्त फिर पुराने स्वामीके अधीन जायगा तो वह बातें वैध न मानी जायँगी और उलट दी जायँगी ।

यदि विजेता उस भूखण्डको अपने राज्यमें मिलाना चाहे तो उसे चाहिये कि इस बातकी स्पष्ट घोषणा कर दे और अन्य राज्योंको इसकी सूचना दे दे । फिर उसको अपनी ओरसे शासक नियुक्त करना होगा, अपने बनाये कानून चलाने होंगे, अपने न्यायालय नियुक्त करने होंगे, अपना सिक्का चलाना होगा अर्थात् वह सब काम करने होंगे जो एक सभ्य सरकार करती है । कभी कभी ऐसा होता है कि विजेता न तो घोषणा करता है न सूचना देता है पर शासन करने लग जाता है । कुछ दिनों तक ऐसा करते जाना सूचना देनेके बराबर ही है । कानूनकी दृष्टिमें इसीका नाम विजय है । इस प्रकार विजयके द्वारा किसी भूखण्डको अपने राज्यमें मिला लेना वैध माना जाता है । ऐसी अवस्थामें विजेता जो कानून बनाये, जो और सरकारी काम करे, सब वैध है । यह निश्चय है कि कोई राज तभी अपना शासन बैठाता है जब उसे इस बातका दृढ़ निश्चय हो जाता है कि युद्धमें मेरी ऐसी पक्की जीत होगी कि फिर यह प्रान्त मेरे हाथसे न निकलेगा । जहाँ ऐसा निश्चय नहीं होता या सचमुच राज्यवृद्धिकी इच्छा नहीं होती वहाँ युद्धके अन्त तक सैनिक अधिकार मात्र रक्खा जाता है ।

विजय और हस्तान्तरमें एक बड़ा भेद है । हस्तान्तर चाहे बलात् ही कराया जाय पर वह लिख पद कर होता है । रुन्धिपत्रपर दोनों ओरके हस्ताक्षर होते हैं, कुछ शर्तें होती हैं । यदि बलका प्रयोग या धमकी हुई भी हो तो वह छिपी रहती है । विजय शुद्ध

शक्तिकी मूर्ति है। विजेता अपनी इच्छामात्रसे उस प्रान्तका स्वामी हो जाता है। यदि शत्रुका सारा राज्य ही मिला लिया जाय तो कोई सन्धि करनेवाला रह ही नहीं जाता, पर यदि एक टुकड़ा ही इस प्रकार मिलाया जाता है—और प्रायः यही होता है—तो युद्धके अन्तमें जो सन्धिपत्र लिखा जाता है उसमें बहुधा उस प्रदेशका नाम ही नहीं लिखा जाता। लज्जा छिपानेके लिये विजित राज उस विषयमें चुप रह जाना ही पसन्द करता है।

कुछ लोगोंका मत है कि विजय द्वारा राज्य-वृद्धि करना अनैतिक है। छोटे राज बहुधा ऐसा कहते हैं पर अभी तक अन्ताराष्ट्रिय विधान विजयको वैध मानता आया है। प्रबल राज बराबर इस प्रकार अपना राज्य बड़ाते आये हैं। हाँ, यह अशुभ हुआ है कि कभी कभी बड़े राजोंने छोटे राजोंको विजय द्वारा राज्य-वृद्धि करनेसे रोक दिया है।

उपभोग।

अन्ताराष्ट्रिय विधानमें भी उपभोग या दखलका वही स्थान है जो साधारण विधानमें है। यदि कोई मकान या ज़मीन किसी मनुष्यके पाम बहुत दिनोंसे चली आनी हो तो वह उसकी ही हो जाती है, चाहे उसका उसपर कोई स्वत्व हो चाहे न हो। यदि किसीका घर गिर जाय और बहुत दिनों तक लोग उसमें से आने जाते रहें तो वह सड़ककी गिनतीमें आ जाता है। इसी प्रकार यदि कोई भूखण्ड बहुत दिनो तक किसी राजके दखलमें रहे तो चाहे उसका उसपर कोई न्याय्य स्वत्व हो या न हो पर वह उसकी ही सम्पत्ति हो जाता है। एक अन्तर है। साधारण विधानमें कुछ नियम होता है कि इतने वर्षोंके दखलके बाद स्वाम्य मिल जाता है पर राजोंपर कोई अविष्टाता न होनेसे इस प्रकारका कोई नियम नहीं है। बस इतना ही देखा जाता है कि बहुत दिनोंसे दखल चला आता है।

जो प्रदेश उपयुक्त किसी भी प्रकारसे किसी राजके राज्यका अंश बन जाता है उसपर तो वह राज अपने पूर्ण प्रभुत्वसे काम लेता है पर आजकल बड़े राजोंके अधीन कई ऐसे भी भूखण्ड हैं जो उनके राज्यके अंश नहीं हैं। उनके सम्बन्धमें यह विचारणीय होता है कि उन राजोंका उनपर कहां तक स्वाम्य है और क्या क्या अधिकार हैं। पुरानी राजनीति स्वाम्य और प्रभुत्वके विच्छेदसे परिचित न थी। जो राज जिस भूखण्डका प्रभु था, वही उस भूखण्डका स्वामी था। ऐसा अवश्य होता था कि एक बड़े राजके अधीन कई छोटे राज होते थे। इसका तात्पर्य केवल इतना ही था कि इन छोटे राजोंने अपने प्रभुत्वका कुछ अंश बड़े राजको सौंप दिया था। पर राज्यपर वह स्वयं प्रभु थे और स्वयं स्वामी थे, बड़ा राज अपनेको स्वामी नहीं समझता था। आजकल स्वाम्य और प्रभुत्वमें अन्योन्याश्रय नहीं रहा। कहीं तो एक राज किसी भूखण्डका स्वामी और प्रभु दोनों है, कहीं प्रभु है पर स्वामी नहीं है, कहीं स्वामी है पर प्रभु नहीं है। यह विचित्र अवस्था चार पांच प्रकारके उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगी।

सबसे पहिले संरक्षणको लीजिये। आजकल संरक्षण तीन प्रकारका होता है। पहिला संरक्षण तो वह है जो एक सभ्य और प्रभु राज दूसरे सभ्य और प्रभु राजके ऊपर सरक्षण और करता है। इस व्यापारके दोनों पक्ष अन्ताराष्ट्रिय सरक्षित प्रदेश विधानके पात्र होते हैं पर इनमे से एक किसी कारण अपने प्रभुत्वका कुछ अंश दूसरेको सौंप देता है, इसीलिये यह दूसरा संरक्षक कहलाता है। १९७१ से चारसाल तक ब्रिटेन और मिश्रका इसी प्रकारका सम्बन्ध था।

दूसरा संरक्षण, वहा होता है जहां संरक्षक तो पूर्ण प्रभु होता पर संरक्षित राज, सभ्य होते हुए भी अन्ताराष्ट्रिय विधानका पात्र

नहीं होता। १९४७ में ब्रिटेनने इसी प्रकारका संरक्षण जंजवारपर स्थापित किया।

उपस्थित दोनों प्रकारोंमें यह स्पष्ट है कि भूमिपर स्वाम्य संरक्षित राजका ही रहता है। यदि वह बलवान् हो गया तो धीरे धीरे स्वतंत्र भी हो जाता है। मिश्र अब स्वतंत्रप्राय हो रहा है।

१९५३ में हब्शका अर्ध-सभ्य राज इटलीके संरक्षणसे निकल गया, पर यदि संरक्षित राज बहुत दुर्बल हुआ तो वह धीरे धीरे संरक्षकमें ही मिल जाता है और संरक्षकको आशिक प्रभुत्वके साथ पूर्ण प्रभुत्व और पूर्ण स्वाम्य भी प्राप्त हो जाता है।

भारतके देशी राज भी ब्रिटिश संरक्षणमें है। एक समय था जब कि इनमेंसे कई अन्तराष्ट्रिय विधानके पात्र थे। उस समय यदि इनपर ब्रिटिश संरक्षण था भी तो मिश्र आदिके ढङ्गका, पर पीछेसे इनका पात्रत्व जाता रहा। यह नितान्त दुर्बल हो गये। ब्रिटिश सरकारने कह दिया कि यह अन्तराष्ट्रिय विधानके पात्र नहीं है और इन्होंने एक बार उफ भी न किया। अतः अब यह मानना चाहिये कि इनका संरक्षण उसी प्रकार हो रहा है जिस प्रकार कि जंजवार आदि अर्धसभ्य राजोंका होता है। यह इस पतित अवस्थासे सन्तुष्ट प्रतीत होते हैं। यदि १९१३ के सिपाही-विद्रोहके बाद ब्रिटिश सरकारने अपनी नीति न बदल दी होती तो आज इनका पता भी न होता। सभी 'ब्रिटिश भारत' में मिल गये होते।

तीसरे प्रकारका संरक्षण वह है जिसे औपनिवेशिक संरक्षण कहते हैं। जैसा कि हम पहिले खण्डमें ही दिखला चुके हैं कई राजोंने अफ्रीकामें इस प्रकारके संरक्षण स्थापित किये हैं। एक बड़ा प्रदेश अपना लिया जाता है। यह कह दिया जाता है कि यह हमारे संरक्षणमें है। वहाँ कोई सभ्य या अर्द्ध-सभ्य राज तो होता नहीं जिसका संरक्षण किया जाय। प्रदेशके प्रदेश-

का ही संरक्षण किया जाता है। इच्छा तो वहाँ उपनिवेश स्थापित करनेकी होती है परसुविधा या सामग्री न होनेसे आरम्भमें ऐसा नहीं किया जाता। बस इस संरक्षणका इतना ही अर्थ है कि अब इस प्रदेशमें कोई और पांव न रखे।

ऐसे प्रदेशोंके सम्बन्धमें कई प्रश्न उठते हैं। नाम है संरक्षण अतः कोई संरक्षित भी होना चाहिये। यदि वहाँ रहने वाले आदिम निवासियोंको संरक्षित मानें तो फिर प्रदेशका स्वामी कौन हुआ। और जगहोंमें तो संरक्षित ही स्वामी होता है। यदि संरक्षकसे किसी अन्य राजसे युद्ध हो तो वह राज इस प्रदेशपर आक्रमण करेगा या नहीं? यदि यह संरक्षककी सम्पत्ति नहीं है, तो आक्रमण न होना चाहिये? यहाँके निवासी किसकी प्रजा है, संरक्षककी या अपने सदाँरोंकी? इन प्रश्नोंका उत्तर किसी सिद्धान्तपर नहीं दिया जा सकता पर यूरोपियन राजोंके व्यवहारको देखकर यह कह सकते हैं कि ऐसी अवस्थामें संरक्षक सभी बातोंमें स्वामी सा ही आचरण करता है और अन्य राज भी उसके साथ उस प्रदेशके स्वामी सा ही व्यवहार करते हैं। औपनिवेशिक संरक्षण एक निरर्थक नाम मात्र है। वह उपनिवेशका पूर्वरूप है और अपनेको पूर्ण स्वामी कहनेका रूपान्तरमात्र है। जैसा कि हालने कहा है, औपनिवेशिक संरक्षण और पूर्णप्रभुत्वमें वही सम्बन्ध है जो तिलक (या मँगनी) और विवाहमें है।

प्राचीन कालमें प्रभाव क्षेत्रोंका भी पता न था। इनकी उत्पत्ति भी अफ्रीकामें ही हुई है। आपसमें समझौता करके बड़े बड़े यूरोपियन राजोंने इस महाद्वीपको अपने अपने प्रभाव-प्रभावक्षेत्र क्षेत्रोंमें बाँट लिया है। यह बात बिना समझौते-के ही भी नहीं सकती थी। अब भी जिन राजोंने समझौतेमें भाग नहीं लिया है वह उसे माननेके लिये बाध्य नहीं

हैं। प्रभाव-क्षेत्रका अर्थ यह है कि इतनी दूर तक कोई हमारे कार्भोमें बाधा न डाले। हमारे जीमें आयेगा यहां औपनिवेशिक संरक्षण स्थापित करेंगे, जीमें आयेगा उपनिवेश स्थापित करेंगे, जीमें आयेगा कुछ न करेंगे।

प्रभाव-क्षेत्र सम्पत्ति नहीं है। यदि उसपर स्वाम्य स्थापित करना हो तो शीघ्र ही कमसे कम औपनिवेशिक संरक्षण स्थापित करना चाहिये। केवल प्रभावक्षेत्रका अर्थ हुआ—न आप उपभोग करना न दूसरोंको उपभोग करने देना। कुछ दिनों तक प्रतीक्षा कर अन्य सभ्य राज कोरे प्रभावक्षेत्रमें प्रवेश करनेसे कभी न बूझेंगे।

निजी सम्पत्तिकी भांति राज्यको बाँटने और दान देनेकी प्रथा तो बहुत दिनोंसे चली आती है पर राज्य या उसके कुछ अंश-को दूसरे राजके यहाँ भोगबन्धक रख देना या दायमी पट्टा उसका दायमी पट्टा लिख देना अबही प्रचलित-हुआ है। जब सबल राज दुर्बल राजोंके राज्यका कुछ अंश दबाना चाहते हैं तो मसारको दिखलानेके लिये यह चाल चली जाती है। उसका दीर्घकालीन पट्टा लिखवा लिया जाता है। कहा यह जाता है कि यह भूमि अब भी अपने पुराने स्वामीकी है और वही इसका प्रभु है पर जितने दिनों तककी शर्त है उतने दिनोंतक पट्टा लिखानेवाला इससे काम लेगा। सबसे अधिक चीनपर हाथ साफ किया गया है। १९५५ में जर्मनीने किआउचाउका ९९ वर्षका पट्टा लिखाया, फिर तो फ्रांस, रूस, ब्रिटेन सभी पट्टे ले लेकर दौड़ पड़े। पूर्वीय समुद्र तटके कई अच्छे अच्छे बन्दर इन पट्टोंमें निकल गये। २५ वर्षसे कमका कोई पट्टा न था।

कहनेके लिये तो केवल कुछ नियत वर्षोंके लिये पट्टा लिखा गया था, वस्तुतः चीन ही स्वामी और प्रभु था पर यह केवल

कहनेकी बात थी। जब रूस और जापानमे युद्ध आरम्भ हुआ तो जापानने रूसके पट्टे वाली भूमिके साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा कि शुद्ध रूसी राज्यके साथ हो सकता था। यह किसीने चीनसे पूछना आवश्यक न समझा कि यह भूमि आपकी है, इसपर आपका पूर्ण प्रभुत्व है अत यदि आप अनुज्ञा दें तो हम इसपर अपनी सेना रखें और युद्ध करें। युद्धके पीछे रूसने अपना पट्टा जापानके हाथ हस्तान्तरित कर दिया, चीनसे यह न पूछा गया कि वह जापानको पट्टा देना चाहता है या नहीं। महायुद्धके समय जापानने फ़िआउचाउपर, जिसका पट्टा जर्मनीके नाम था, कब्जा कर लिया। सच्ची बात यह थी कि पट्टा तो एक बढ़ाना था, चीन बेचारेसे उन भूखण्डोंका स्वाम्य और प्रभुत्व छीन लिया गया था। बहुत दिनोंकी लिखा-पढ़ीके बाद अब कहीं जापानने चीनको फ़िआउचाउ पुन लौटा दिया है।

ऊपर जिस प्रकारके पट्टेका उल्लेख किया गया है वह ऐसा है जो समझमें आता है पर कभी कभी अन्ताराष्ट्रिय जगत्मे ऐसी विलक्षण बातें हो जाती हैं जिनका कुछ ठीक अर्थ ही नहीं होता। १९५१ में ब्रिटेनने अपने पूर्वी अफ्रीकाके प्रभावक्षेत्रके कुछ भागका पट्टा बेल्जियमके नाम लिख दिया। फ्रांसको यह बात न भायी। उसने बेल्जियम देशको किसी प्रकार राजी करके उन्हें इस बातपर सम्मत किया कि वह इस पट्टेवाली भूमिके अधिक भागपर अपना कब्जा न करें। इसके कुछ काल बाद उस प्रान्तमे मेहदीने विद्रोह किया। विद्रोहके शान्त होने पर बेल्जियमने फिर उस पुराने पट्टेके अनुसार उस भूमिपर अधिकार जमाना चाहा परन्तु ब्रिटेनने कहा कि तुमने फ्रांससे जो समझौता किया था उससे पट्टा रद्द हो गया। इसपर दोनों

औरसे सात वर्ष तक गरमागरम विवाद होता रहा, अन्तमें ब्रिटेनकी ही बात रही।

विवादका तो अन्त हो गया। सम्भवत इसका एक कारण यह भी था कि ब्रिटेन बड़ा राज है, बेल्जियमने चुप रहना ही उचित समझा। पर यहाँपर कई महत्त्वके प्रश्न उठ सकते हैं। प्रभाव-क्षेत्रपर स्वाम्य नहीं होता, फिर ब्रिटेनने उसका पट्टा बेल्जियमको कैसे दे दिया? क्या ऐसी वस्तुका भी पट्टा लिखा जा सकता है जो अपनी है ही नहीं? इस प्रदेशमें जो विद्रोह हुआ था उसका दमन करना किसका कर्त्तव्य था, ब्रिटेनका या बेल्जियमका? इन प्रश्नोंका कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दिया गया है। पर इस घटनासे एक लाभ यह हुआ कि अब स्यात् कोई राज ऐसी भूल न करेगा जैसी ब्रिटेन और बेल्जियमने की।

गत महायुद्धके बाद शासनादेशोंकी उत्पत्ति हुई। कई विस्तृत भूखण्डोंको राष्ट्रसंघने अपने अधिकारमें लेकर उनके शासनके निरीक्षणका भार कई भिन्न भिन्न शासनोदेश राजोंको दिया। इन राजोंको यह आदेश दिया गया कि इन देशोंके निवासियोंको स्वायत्त-शासनके योग्य बनाओ जिससे कि शीघ्र ही यह स्वतन्त्र कर दिये जाय।

शासनादिष्ट देश दो प्रकारके हैं। प्रथम कोटिमें इराक ऐसे देश है जिनकी जनता सभ्य है। वहाँके लोग विदेशी निरीक्षण स्वतः नापसन्द करते हैं अतः वहाँ किसी प्रकारका स्वराज स्थापित हो ही जाता है और निरीक्षकका अधिकार क्षीण होता ही जाता है। ऐसे देश बहुत शीघ्र स्वाधीन हो सकते हैं। इराकको ही लीजिये, नाम तो यह था कि ब्रिटेनको राष्ट्रसंघने उसका शासनादेश दिया था पर ब्रिटिश नीतिसे यह प्रकट होता था

कि ब्रिटेन उसे अपना ही करना चाहता है। पर अरबोने उसे ऐसा करने न दिया। सम्भवत थोड़े ही दिनोंमें ब्रिटेन अपना पिण्ड छुड़ा कर निकल भागेगा।

हम पहिले देख चुके हैं कि यूरोपियन राज बहुधा व्यापारियोंको इस बातका अधिकार दे देते हैं कि वह जाकर नये देशोंमें व्यापार करें और अपनी रक्षाके लिये स्वतः समु-
 व्यापारियोंके चित्त प्रबन्ध कर लें। धीरे धीरे इस प्रकारकी अधीन देशोंपर कई व्यापारिक मण्डलियोंके हाथमे बड़े बड़े राज्य अधिकार आ जाते हैं। भारत ईस्ट इण्डिया कम्पनी नामक व्यापारि-मण्डलीके द्वारा ही ब्रिटिश सरकारके हाथमें गया। जब तक व्यापारि-मण्डल शासन करता है तब तक उस भूमिका स्वामी वही है पर यह प्रबन्ध बहुत दिनों तक नहीं चलता। किसी न किसी कारण उस राजको स्वयं शासनकी डोर अपने हाथमे लेनी पडती है। १९१४ में ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी मूर्खतासे ही भारतमे सिपाही-विद्रोह हुआ और ब्रिटिश सरकारने कम्पनीको हटाकर स्वयं शासन संभाला। ब्रिटिश साउथ अफ्रीकन कम्पनीने ही ट्रान्सवालसे छेड़छाड़ करके बोअर युद्धकी नींव डाली जिसमें ब्रिटिश सरकारको भाग लेना पड़ा। अत जिस जिम्मेदारीसे बचनेके लिये कम्पनियोंको इस प्रकारके अधिकार दिये जाते हैं वह जिम्मेदारी घूम फिर कर आ ही जाती है। कोई व्यापारिमण्डल अन्तराष्ट्रिय विधानका पात्र नहीं हो सकता इसलिये परराज उस राजको ही दायी ठहराते हैं जिसकी ओरसे कम्पनीको अधिकार मिला होता है।

कभी कभी एक ही भूखण्डके दो दो (सम्भवतः और अधिक) स्वामी हो जाते हैं। जब कभी एक ही भूमिके दो या अधिक हकदार होते हैं जो न तो आपसमें यह निश्चय कर पाते हैं कि

सचमुच किसका हक है, न बटवारा करना चाहते हैं और न लड़ना ही चाहते हैं तो वह उस राजके सम्मिलित सम्मिलित स्वामी (और प्रभु) के रूपसे काम करते हैं। स्वाम्यक्ष मिश्रके दक्षिणमें जो सूदान प्रदेश है उसको किसी समय मिश्रके नरेशोंने विजय किया था, पीछेसे वहा मेहदी आदिने उपद्रव उठाया और वह अराजकतामें जा पड़ा। फिर ब्रिटिश और मिश्री सेनाने मिलकर उसे विजय किया। अब ब्रिटेन कहता है कि सूदान मेरा है, मिश्र कहता है मेरा है। जब तक इसका कुछ निर्णय नहीं होता तब तक वह इन दोनोंके सम्मिलित स्वाम्यमें है।

भूमिपर स्वाम्यका एक और प्रकार है जो पट्टेवाली रीतिसे मिलता जुलता है। १९३५ में तुर्कीने साइप्रसका द्वीप ब्रिटेन-को ९९ वर्षके लिये दे दिया। सन्धिमें स्पष्ट भोगबन्धक शब्दोंमें लिख दिया गया कि ब्रिटेनको इस द्वीप-पर शासन करनेका पूर्ण अधिकार होगा परन्तु यह माना जायगा तुर्की राज्यका टुकड़ा। यह भी निश्चय हुआ कि उस समय शासनका सारा व्यय चुका कर जितनी बचत होगी उतना रुपया ब्रिटेन तुर्कीके प्रतिवर्ष देता जायगा। इस प्रकारके शर्तनामोंका वास्तविक अर्थ क्या है यह इसी बातसे प्रकट है कि उन्नी साल तुर्कीने बोस्निया और हर्जेगोवीना नामक दो प्रान्त इन्हीं शर्तोंपर आस्ट्रियाको दिये थे पर १९५५ में आस्ट्रिया उन्हें अपना बैठा। तुर्की देखता ही रह गया।

अन्तमें एक और प्रकारके अधिकारका उल्लेख करना है। इसे प्रतीक्षात्मक अधिकार कह सकते हैं। संवत् १९४३ में

फ्रांसने कांगो राजसे यह शर्तनामा लिखाया कि यदि आप कभी अपने राज्यका कुछ भाग निकाले तो पहिले हमसे कहें, हम उसे मोल लेंगे । १९५५ में चीनने प्रतिज्ञा की कि यागत्सीकियांग नदीके पासकी भूमि किसी प्रतीक्षात्मक अधिकार† शर्तपर ब्रिटेनके सिवाय अन्य किसीको न दी जायगी । जिन राजोंके हितमें यह शर्तनामे लिखे गये उनको तत्काल तो कुछ नहीं मिला पर उन्हे यह प्रतीक्षा करनेका हक मिल गया कि एक न एक दिन इस भूमिपर हमारा ही अधिकार होगा ।

जलपर अधिकार ।

इस प्रश्नपर विचार कर लेनेपर कि भूमिपर किस किस प्रकारका स्वत्व होता है और वह किस किस प्रकार प्राप्त होता है हमें यह देखना है कि जलपर कहाँतक अधिकार होता है ।

खुला समुद्र आजकल स्वतन्त्र समझा जाता है । इसका तात्पर्य यह है कि खुला समुद्र किसी राजकी सम्पत्ति नहीं हो सकता । जो राज चाहे अपने सैनिक और व्यापारी जहाज खुले समुद्रके चाहे जिस भागमें ले जाय । पर पहिले यह बात नहीं मानी जाती थी । वह राज जिनकी नौ-सेना प्रबल थी सैकड़ों कोस लम्बे चौड़े जलखण्डोंको अपनी सम्पत्ति मानते थे । परराजोंके जो जहाज उनमें से होकर जाते थे उनसे कुछ कर लेनेका प्रयत्न किया जाता था और उन्हें उस राजके झण्डेको सलाम करना पड़ता था । ऐसा न करनेसे लड़ाइयाँ हो जाती थीं । वेनिस सारे भूमध्यसागरका स्वामी बनता था, हालैण्ड आइसलैण्डके पासतक ऋक्षसागर तथा उत्त-

†Expectant Power

रीय सागरका, पुर्तगाल भारतीय महासागरका, और स्पेन प्रशान्त महासागरका । ब्रिटेन सबसे बड़ा चढ़ा था । जैसा कि द्वितीय चार्ल्स के समयके एक उच्च अधिकारी (सर लीओलीन जेड्डिस) ने कहा था “ईश्वरने अपने विधानके अनुसार अपने प्रतिनिधि श्रीमान् नरेशको इतनी विशाल भुजा दी है” ❀ कि “सारी पृथ्वीमें जहाजोंकी रक्षाकी व्यवस्थाको कायम रखना और सार्वजनिक शान्तिकी रक्षा करना” । उनका स्वत्व और कर्तव्य था । ब्रिटिश अधिकारी यह तो मान लेते थे कि दूर दूरके समुद्रोंके तटपर जो राज थे उनको भी अपने निकटके समुद्रोंपर कुछ अधिकार था पर वह यह नहीं मानते थे कि ब्रिटेनके पासके समुद्रमें किसी अन्यका कुछ अधिकार था ।

यह सब बातें आजकल नहीं मानी जातीं । समुद्रपर सबका अधिकार समान है, हा युद्धकालमें योद्धा राजोंको अब भी कुछ विशेष अधिकार प्राप्त है जिनका बल्लेख उचित स्थलमें होगा । प्राचीनकालमें इनसे एक लाभ भी होता था । उन दिनों समुद्रमें डकैती बहुत होती थी । जो राज जिस जलखण्डके स्वामी बनते थे उसमें पुलिसका काम करना उनका कर्तव्य था । जो कर वह परराजोंके जहाजोंसे लिया करते थे वह इसी काममें व्यय होता था । इससे यह होता था कि समुद्रके एक एक भागकी रक्षाका भार एक एक राजने ले लिया था । समुद्रमात्रमें तो कोई क्या प्रबन्ध करता पर जिन मागोसे व्यापारी पोत प्राय आया जाया करते थे उनकी रक्षा बहुत कुछ हो जाती थी ।

“ So long an aim hath God by the Laws given to His vice-regent the King ” [To preserve the public peace and to maintain the freedom and security of navigation all the world over] —Sir Leoline Jenkins.

ऊपर हम बराबर लिखते आये हैं कि खुला समुद्र किमीकी सम्पत्ति नहीं है पर समुद्रका जो भाग तटसे मिला होता है वह उसी राजकी सम्पत्ति माना जाता है जिसके तटलग्न समुद्र राज्यमें वह तट होता है। समुद्रके इस भागको या जल तटलग्न समुद्र या तटलग्न जलक कहते हैं।

इसमें शान्तिकालमें अन्य राज्योंके जहाज आजा सकते हैं परन्तु युद्धके समय तटवर्ती राजको अथेच्छ नियम बनानेका अधिकार रहता है।

इस प्रश्नपर पहिले बहुत मतभेद था कि तटलग्न जलका क्षेत्र कितना हो। कोई कोई ५० कोस तक इसकी सीमा रखना चाहते थे। बादको यह सिद्धान्त निकला कि तटवर्ती किलेसे जितनी दूर तककी रक्षा हो सके उतनेको तटलग्न जल मानना चाहिये। उन दिनों तोपका गोला डेढ़ कोसके आगे नहीं जाता था अतः तटवर्ती किला डेढ़ कोसके आगे रक्षा नहीं कर सकता था। इस लिये यह निश्चय हुआ कि तटसे डेढ़ कोस तकका जल तटलग्न अर्थात् तटवर्ती राजकी सम्पत्ति माना जायगा। पहिले पहिले विङ्गरशोएक नामक विधानशास्त्रीने यह सम्मति दी थी। धीरे धीरे सभी राज्योंने इसे मान लिया। आजकल फिर इसके विषयमें कभी कभी विवाद होता है क्योंकि अब तोपके गोले बहुत दूर तक जा सकते हैं। किसी किसीकी सम्मति है कि अब तटलग्न समुद्रकी सीमा ढाई या तीन कोस कर दी जाय। सिद्धान्तकी दृष्टिसे तो यह ठीक है पर अभी तक अन्तराष्ट्रिय व्यवहारमें डेढ़ कोस वाला नियम ही चलता है। सम्भव है आगे चलकर कुछ परिवर्तन हो। १९५१ में अन्तराष्ट्रिय विधान समिति ने

* Territorial, marginal, jurisdictional or littoral waters, † Institute of International Law.

यह परामर्श दिया था कि अब सीमा दूनी अर्थात् ३ कोस कर दी जाय ।

इस नियमके होते हुए भी स्वास्थ्य आदिकी दृष्टिसे तथा कर वसूल करनेके लिए कई राजोंने ऐसे नियम बनाये हैं जिनके अनुसार डेढ़ कोसके बाहर भी उन्होंने अपना अधिकारक्षेत्र दिखलाया है ।

खाड़ियों और उपसागरोंके लिये नियम तो यह है कि इनका तटलग्न या मुक्त होना इनकी चौड़ाईपर निर्भर है परन्तु कुछ खाड़ियां ऐसी हैं जो बहुत चौड़ी होने पर भी खाड़ी और तटलग्न ही मानी जाती हैं । इसका कारण केवल उपसागर यही है कि इनके तटपर बलवान् राजोंके राज्य हैं । इस समय चाहे जो दशा हो पर फारसकी खाड़ाको फारसके लिये तटलग्न ही मानना चाहिये । बंगालकी खाड़ी इतनी चौड़ी है कि उसे भारत तटलग्न नहीं कह सकता ।

खाड़ी किसे कहना चाहिये इस विषयमें भी मतभेद है । भूगोलकी पुस्तकोंमें तो यह परिभाषा दी रहती है कि खाड़ी जलके उस भागको कहते हैं जिसके तीन ओर भूमि हो । यह परिभाषा ठीक है पर इससे अन्तराष्ट्रिय विधानमें कुछ विशेष सहायता नहीं मिलती । बंगालकी खाड़ी इस परिभाषाके अनुसार तो खाड़ी है पर वह इतनी चौड़ी है कि उसके लिये वहां नियम लगते हैं जो खुले समुद्रके लिये लगते हैं । किसीने यह कहा है, खाड़ीका लक्षण यह है कि उसके एक तटसे दूसरे तट तक गोला जा सकता हो अर्थात् वह डेढ़ कोस चौड़ी हो । कोई उमका ३ कोस चौड़ा होना मानता है । तात्पर्य यह है कि इस विषयमें मतभेद है ।

भीलों और चारों ओर स्थलसे घिरे हुए संसुद्रोंके लिये जो नियम है वह बहुत ही सरल है । यदि वह भील या समुद्र एक

राजके राज्यमें है तो वह उस राजकी सम्पत्ति है पर यदि उसके किनारेपर कई राज हो तो ग्रन्थेक राजका अपने मील और स्थल-तटलग्न जलपर अधिकार होगा। कभी कभी से घिरा समुद्र विशेष अवस्थामे इसके विपरीत भी होता है।

कश्यपायन सागरके किनारे फ़ारस और रूसका राज्य है पर गुलिस्ताँ और तुर्क मनशाई (१८७० और १८८५) की सन्धियोंद्वारा फ़ारसने अपने अधिकार रूसको दे दिये। अब इसमें अकेले रूसके सैनिक जहाज रह सकते हैं।

यदि समुद्रका कोई भाग तीन ओर स्थलसे घिरा हो और एक ओर जलडमरूमध्य द्वारा खुले समुद्रसे मिला हो तो अवस्थानुसार उसकी व्यवस्था कई प्रकारकी होगी। यदि इसके तीनों तटों और डमरूमध्यके दोनों ओर किसी एक ही राजका राज्य है तो उसे बन्द समुद्र अर्थात् उस राजकी सम्पत्ति मान सकते हैं। यदि तटपर कई राज हैं तो उसपर सबका बराबर अधिकार है और जो राज डमरूमध्यके मुहानेपर हो उसे चाहिये कि किसीके साथ अनावश्यक रोकटोक न करे। जहाँ डमरूमध्य बहुत चौड़ा हो वहाँ तो उस समुद्रको खुला समुद्र मानना चाहिये पर 'बहुत चौड़ा' के ठीक अर्थके विषयमें मत-भेद है। कोई कहता है कि चौड़ाई तीन कोसकी होनी चाहिये। कोई कहता है कि वह इतनी होनी चाहिये कि उसके एक सिरेसे, दूसरे सिरे तक किले गोले न फेंक सके।

साधारणतः डमरूमध्योंके लिये निम्नलिखित नियम व्यवहारमें आते हैं—

जलडमरूमध्य

(क) यदि वह डमरूमध्य किसी बन्द समुद्रमें निकलता है और उसके दोनों किनारे तथा वह समुद्र किसी एक राजकी सम्पत्ति है तो वह डमरूमध्य भी

उस राजकी हो सम्पत्ति है परन्तु शान्तिकालमें परराजोंके व्यापारी जहाजोंको उसमें जाने देना चाहिये ।

(ख) यदि वह डमरूमध्य खुले समुद्रमें निकलता है और उसके दोनों किनारे किसी एक राजकी सम्पत्ति है तो उस राजको यह अधिकार है कि अपनी रक्षाकी दृष्टिसे युद्धकालमें उसमें से परराजोंके सैनिक जहाजोंका आना जाना बन्द कर दे ।

(ग) यदि ऐसा डमरूमध्य जो तीन कोस या इससे अधिक चौड़ा है दो भिन्न राजाओंके बीचमें पड़ता हो तो प्रत्येक राज अपने अपने तटलग्न जलका स्वामी होगा । यदि चौड़ाई तीन कोससे कम हो तो मध्य धाराकी रेखाके दोनों ओर दोनोंका तटलग्न जल माना जायगा ।

(घ) जहां शान्तिकालमें परराजोंके जहाजोंको आने जानेका अधिकार हो वहां उनसे किसी प्रकारका कर न लेना चाहिये । बहुधा तटवर्ती राजोंको ऐसे डमरूमध्योंमें प्रकाशालय स्थापित करना पड़ता है और प्रवेश करने वाले जहाजोंकी सुविधाके लिये अन्य कई उपयोगी प्रबन्ध करने पड़ते हैं । इन आवश्यक कामोंका व्यय पूरा करनेके लिये कर लेना नहीं मना है ।

यह तो सामान्य शर्तें हैं पर कुछ डमरूमध्योंके लिये विशेष शर्तें हैं । इनमें कई दृष्टियोंसे दरेदानियाल और वास्फरस विशेष महत्व रखते हैं । इन्हींके द्वारा कृष्णसागर दरेदानियाल भूमध्यसागरसे मिलता है । तुर्क साम्राज्यकी और वास्फरस राजधानी कुस्तुन्तुनिया इन्हींके पास है ।

कुस्तुन्तुनियाके हाथमें कृष्णसागरकी कुन्जी तो है ही, यूरॉपने एशिया आनेके द्वारपर भी उसका पहरेदार है । इस लिये यूरोपके राजाओंका बहुत दिनों से इसपर दृष्टि

है। पहिले तो कृष्णसागरके चारोंभोर तुर्कोंका साम्राज्य था, इस लिये तुर्क उसे बन्द रखते थे, पीछेसे जब वहां रूसका भी कुछ राज्य आया तो उसमे रूसी सैनिक जहाज भी रहने लगे। तुर्कोंने अन्य राजोंके व्यापारी जहाजोंको तो दरेदानियालसे आने जानेकी अनुज्ञा दे दी पर लड़ाईके जहाजोंको नहीं। इस नियमको यूरोपियन राजोंने स्वीकार कर लिया। उधर रूसकी निरन्तर यही इच्छा रही है कि किसी तरह कुस्तुन्तुनियापर कब्जा किया जाय, पर दूसरे यूरोपियन राज ऐसा नहीं होने देते थे क्योंकि वह जानते थे कि इससे रूसका बल बहुत बढ़ जायगा। गत महायुद्धमें तुर्कोंने गीबेन और ब्रेस्लाउ नामक दो जर्मन जहाजोंको दरेदानियालके मार्गसे जाने और तुर्कों तटलग्न जलमें मित्रराष्ट्रोंके जहाजोंपर आक्रमण करने दिया। उस समय तक वह प्रत्यक्ष रूपसे युद्धमें सम्मिलित नहीं हुआ था। इन बातोंसे मित्रराष्ट्र कुंठे। कुछ गुप्त कागजोंसे, जो अब धीरे धीरे प्रकट हो रहे हैं, यह भी पता चलता है कि ब्रिटेन और फ्रांसने रूसको यह प्रलोभन दिया था कि यदि तुम हमारी सहायता करो तो हम तुम्हें कुस्तुन्तुनियापर कब्जा करनेसे न रोकेंगे। अस्तु, युद्धके समाप्त होनेपर तुर्कोंकी शक्ति तो नष्ट ही प्रतीत होती थी, विजेताओंने यह निश्चय किया कि कुस्तुन्तुनियापर कब्जा कर लिया जाय—यद्यपि वह नामको तुर्कोंकी राजधानी कहलाता पर तुर्क सरकारके अधिकार नहींके बराबर थे—और दरेदानियालपर अन्ताराष्ट्रिय शासन रहे। इसका अर्थ यह होता कि यूरोपके दो चार प्रबल राज जो चाहते सो करते। पर कमाल पाशाकी जीर्तोंने इन आशाओंपर पानी फेर दिया। अब कुस्तुन्तुनिया तो खाली करना ही पड़ा, दरेदानियालपर से भी मित्रों (अर्थात् तुर्कोंके मित्रों) का शासन उठ गया। इस डमरूमध्यके सम्बन्धमें जो

नया समझौता हुआ है उसे 'दरेदानियालका समझौता' ❀ कहते हैं ।

जलडमरूमध्य तो सागरोंको मिलाते हैं, कुछ ऐसे जलमार्ग भी हैं जो महासागरोंको मिलाते हैं । इनमे दो विशेष महत्व रखते हैं, स्वेज नहर और पनामा नहर । दोनों कृत्रिम महोदवियोजक है । स्वेज पहिले एक संकीर्ण स्थलडमरूमध्य नहर था जो एशिया और अफ्रीकाके महाद्वीपोंको जोड़ता था और भूमध्यसागर (और तट्टारेण अटलाण्टिक महासागर) तथा भारत महासागरको पृथक् करता था । इसी प्रकार पनामा भी स्थलडमरूमध्य था जो उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकाको मिलाता तथा अटलाण्टिक और प्रशान्त महासागरोंको पृथक् करता था । अब यह दोनों डमरूमध्य काट दिये गये हैं । परिणाम यह हुआ है कि एशिया और अफ्रीका तो पृथक् हो गये पर भूमध्यसागर और भारत महासागर मिल गये एवं उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका पृथक् हो गये पर अटलाण्टिक और प्रशान्त महासागर मिल गये । इससे समुद्र-यात्राको बड़ा लाभ पहुँचा है । भारतसे यूरोप जानेका समय आधेसे भी कम हो गया ।

स्वेज नहरके लिये यह शर्तें सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुई हैं—
 (क) यह नहर सभी राजोंके सब प्रकारके जहाजोंके लिये खुली रहेगी, (ख) कोई राज इसके भीतर या इसके दोनों सिरोंके डेढ़ डेढ़ कोसके भीतर कोई युद्धात्मक काम न करेगा, (ग) नहरके दोनों सिरें सदा खुले रहेंगे अर्थात् कोई राज उन्हें किसी प्रकार बन्द करनेका प्रयत्न न करेगा, (घ) नहरके पास कोई किलाबन्दी न की जायगी, (ङ) बिना अत्यन्त आवश्यकताके किसी युद्धकारी

राजके जहाज न तो नहरमे २४ घण्टेसे अधिक ठहरेंगे न अपने खाद्यभण्डारकी पूर्ति करेंगे न सैनिकोंको चढ़ायेगे या उतारेंगे, (विशेष आवश्यकताके अवसरोंके लिये विशेष नियम बने हुए है।) (च) यदि नहरमें या उसके किसी बन्दरमें एकही समय दो युद्धकारी राजोंके जहाज हों तो दोनों एक साथ न चलेंगे। एकको दूसरेके जानेके २४ घण्टे बाद जाना होगा, (छ) नहरमे लड़ाईके जहाज स्थायी रूपसे नहीं रक्खे जा सकते पर जो राज युद्ध न कर रहे हो वह स्वेज या पोर्ट सईदमें दो जहाज रख सकते हैं।

नहर मिश्र, तुर्की, व अरबसे घिरी हुई है अतः अपने अपने राजोंकी रक्षाके लिये इन देशोंको अत्यन्त आवश्यकताके समय इन नियमोंका उल्लङ्घन करनेका भी अधिकार है। उसका प्रबन्ध एक व्यापारी कम्पनी करती है जिसने मिश्र सरकारकी विशेष अनुज्ञासे इसे खुदवाया था। इस कम्पनीके मूलधनमे सबसे बड़ा हिस्सा ब्रिटिश सरकारका है।

पनामा नहरकी शर्त भी प्रायः वही हैं जो स्वेज नहरकी है। पर उनमे दो विशेषताएँ हैं। एक तो यह नहर पूर्णतया सयुक्त राजके शासनमें है। इसके आस पासकी भूमि पनामा राजकी है। पनामाने सयुक्त राजको एक पाँच कोस चौड़ा भूखण्ड दे दिया और निकटस्थ टापू भी दे दिये। इसके लिये सयुक्त राजने इसे एक करोड़ डालर (लगभग साढ़े तीन करोड़ रुपये) तत्काल दिये और नव वर्ष बादसे अढ़ाई लाख डालर (लगभग पौने नव लाख रुपये) प्रति वर्ष देनेका वचन दिया। दूसरी विशेषता यह है कि संयुक्तराजको नहरके पास किलाबन्दी करने और सेना रखनेका अधिकार प्राप्त है।

प्रत्येक राजके तटलग्न जलके भीतर केवल उसीकी प्रजाको मछली मारनेका अधिकार होता है परन्तु इसके बाहर सभी राज

बाले मछली मार सकते हैं। कभी कभी कोई राज किसी दूसरे राज वालोको अपने राज्यके किसी विशेष मछली मारनेके भागके तटलग्न जलमें मछली मारनेका अधिकार अधिकार दे देता है। आरम्भमें तो यह बात मैत्रीके कारण की जाती है पर पीछेसे बड़े झगड़े होते हैं।

१८४० में संयुक्त राज और ब्रिटेनमें एक सन्धि हुई जिसमें एक शर्त यह भी थी कि न्यूफाउण्डलैण्डके जिस तटपर अग्रेज मछुआहे मछली मारें वहीं संयुक्त राजके मछुआहे भी मछली मार सकेंगे। १८६९ में दोनों राजोंमें युद्ध हुआ। उस समय इस अधिकारसे काम न लिया जा सका। १८७१ में पुन सन्धि हुई पर उसमें इस अधिकारका उल्लेख न था, तबसे ८७ वर्ष तक इस विषयमें विवाद होता चला आया। अन्तमें इसका निर्णय हेग न्यायालयपर छोड़ा गया। विवादका कारण यह था कि ब्रिटेनका यह कहना था कि संयुक्त राजके मछुआहोंके हमारे तटलग्न जलमें मछली मारनेका जो कुछ अधिकार था वह १८४० की सन्धिके कारण था। युद्ध होनेसे वह सन्धि नष्ट हो गयी और १८७१ की सन्धिमें इस अधिकारके उल्लेख न होनेका कारण यह था कि हमने पुन यह अधिकार नहीं दिया। संयुक्त राजका कहना यह था कि हमारे मछुआहे इस जलमें उस समयसे मछली मारते आते हैं जब हम ब्रिटेनके अधीन थे। अतः १८४० की सन्धिने हमको कोई नया अधिकार नहीं दिया। केवल हमारे पुराने अधिकारका उल्लेख कर दिया। युद्धके दिनोंमें हम अपने उस अधिकारसे काम न ले सके पर वह ज्योंका त्यों बना रहा। उसके बार बार जतानेकी आवश्यकता न थी इस लिये १८७१ की सन्धिमें उसका पुनः उल्लेख नहीं किया गया। इसी प्रकारके झगड़े अन्य राजोंके बीचमें भी उठ चुके हैं।

जो नदियाँ एक ही राजके भीतर बहती हैं उनके विषयमें कोई मतभेद हो ही नहीं सकता, वह तो उस राजकी सम्पत्ति हैं ही, पर जो नदियाँ ऐसी हैं कि उनके दोनों नदियाँ किनारोंपर भिन्न भिन्न राज हैं उनके लिये यह नियम है कि उनकी मध्य धारा, या कभी कभी सबसे वेगवती धाराके मध्यसे, दोनों राजोंकी सीमा मानी जाती है। यह बातें आपसके समझौतेसे तय होती हैं। कभी कभी दोनों तटोंपर दो राज होते हुए भी मारी नदी एक ही राजको दे दी जाती है।

जो नदियाँ कई राजोंमें से होकर बहती हैं उनके विषयमें बहुत कुछ मतभेद रहा है। जो लोग नदीके उद्गमस्थानके निकट होते थे अर्थात् उसके ऊपरी तटोंपर बसते थे वह प्रकृत्या यही चाहते थे कि उनको बेरोक टोक नदीके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक आने जाने दिया जाय पर जो राज मुहानेके निकट होते थे अर्थात् उसके नीचेके तटोंपर बसे थे वे ऊपरसे आने वाली नावोंको प्रायः कर लिये बिना जाने नहीं देते थे। जिसको अड़चन पड़तो थी वह नदियोंको खुली रखनेके लिये जोर लगाता था पर ऐसा क्यों किया जाय इसका कोई कारण नहीं बताया जाता था। १८४० में संयुक्त राज और स्पेनमें मिसिसिपी नदीको खुली रखनेके विषयमें विवाद चल रहा था। इस समय संयुक्त राजकी ओरसे कहा गया था कि 'नदी-कूल वासियोंके लिये' नदियोंको खुली रखना 'एक ऐसा भाव है जो गहरे अक्षरोंमें मनुष्यके हृदयपर लिखा हुआ है'। मनुष्यके हृदयपर चाहे जो लिखा हो पर अन्ताराष्ट्रिय व्यवहार नदियोंका खुला रहना मनुष्यका नैसर्गिक स्वत्व नहीं मानता था। जहाँ जहाँ नदियाँ खुली थीं वहाँ आपसके विशेष समझौतेके कारण।

एशियामें ऐसी नदियां कम है जो कई राज्योंमें होकर बहती हों, हां, यदि भारतके सब प्रान्त स्वतन्त्र राज होते तो गंगा, सिन्धु, सतलज, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा इत्यादि कई नदियां इस प्रकारकी होतीं। यूरोपमें राइन, रूल्ड, डैन्यूब, आदि कई नदिया इस प्रकारकी हैं। इसी प्रकार अमेरिकामें सेण्टलारेन्स और अफ्रीकामें कांगो तथा नाइजर हैं। अब यूरोपियन राज्योंमें इन सबके सम्बन्धमें आपसमें समझौते हो गये हैं और यह नदिया मुक्त कर दी गयी हैं। सभी राष्ट्रोंकी नावें इनपर आ जा सकती हैं। पर यह मुक्ति केवल शान्तिके समय और व्यापारी नावोंके लिये है। सैनिक नावोंके लिये मुक्ति नहीं है। युद्धके दिनोंमें प्रत्येक राजको अधिकार है कि नदीके उस भागमें जो उसके राज्यमें पड़ता है यथेच्छ नियम प्रचलित करे पर यह नियम ऐसे होने चाहिये जिनसे तटस्थोंको अनावश्यक कष्ट न हो।

वायुपर अधिकार ।

आज कल यह प्रश्न बड़े महत्वका हो गया है कि किसी राजका अपने राज्यके ऊपरकी वायुपर अधिकार है या नहीं और यदि है तो क्या। हवाई जहाज बनने जाते हैं, उनके द्वारा शत्रुको बहुत क्षति पहुंचायी जा सकती है। किसी किसीका मत यह है कि वायु मुक्त है। खुले समुद्रकी भांति उसपर सबका अधिकार है। जहाँ तक सांभ लेनेका प्रश्न है वहाँ तक तो इस सिद्धान्तको सभी मान लेंगे पर आगे मनभेद है। दूसरोंका कहना यह है कि प्राचीन रोमन विधानके अनुसार प्रत्येक मनुष्यको अपने घरके ऊपरकी सारी वायुपर स्वत्व था। पर यहा प्रश्न वायुका नहीं है क्योंकि उसे तो कोई छीनता नहीं, प्रश्न तो यह है कि परायोंको उस वायुमें से मार्ग निकाल कर आने जानेका स्वत्व है या नहीं।

धीरे धीरे नियम बनते जा रहे हैं पर इ १ समय तकके व्यवहारको देखते हुए और निष्पक्ष विचार करनेसे यही समझमें आता है कि भूमिके ऊपरके वायुमण्डलपर देशके स्वामीका अधिकार है। कुछ लोग यह सम्मति देते हैं कि जिस प्रकार तटसे कुछ दूर तक तटलग्न जलछ होता है उसी प्रकार भूमिसे कुछ ऊँचाई तक भूलग्न वायु मानी जाय। पर यह नियम व्यर्थ है। तटलग्न जलछे बाहरसे शत्रु तटवासियोंको क्षति नहीं पहुँचा सकता पर भूलग्नवायुसे ऊपरका शत्रु क्षति पहुँचा सकता है क्योंकि ऊपरसे फेंका हुआ बम नीचेके सिवाय और कहीं जा ही नहीं सकता। अतः यह उचित है कि शान्ति कालमें तो चाहे सभी राजाओंके वायुयान आते जाते रहे पर प्रत्येक राजाको यह अधिकार रहे कि यह आज्ञा निकाल दे कि उसके राज्यके ऊपरसे कोई विदेशी यान न जाने पावे।

ऊपर जो वर्णन दिया गया है वह बहुत विस्तृत नहीं है पर उसमें प्रायः सभी महत्वपूर्ण सिद्धान्त और नियम आ गये हैं। उससे यह विदित हो जाता है कि राजाका भूमिपर किस किस प्रकारका स्तत्व होता है और वह किन किन उपायोंसे प्राप्त होता है। यह भी दिखला दिया गया है कि जल और वायुपर कहा तक स्वाम्य होता है। इन बातोंको मिलानेसे यह समझमें आ जाता है कि राजाओंके स्वाम्यकी सीमा क्या है।

* पृष्ठ १७४ में हमने लिखा है कि तटलग्न जल डेढ़ कोस तक होता है, वास्तविक विस्तार ३ लीग (३ सगुंदी मील) अर्थात् ६००० फुट है।

चौथा अध्याय ।

शामनाधिकार सम्बन्धी स्वत्व और कर्तव्य

इस सामनाधिकारके सम्बन्धमें दो मुख्य सिद्धान्त हैं, इनमेंसे किसी एकके आधारपर वह नियम निकल सकते हैं जो आजकल प्रायः प्रचलित हैं। एक सिद्धान्त तो यह है कि प्रत्येक राजका अपनी प्रजाओंपर अधिकार बना सामनाधिकारक रहता है चाहे वह कहीं हों। दूसरा यह है कि दो सिद्धान्त प्रत्येक राजका अपने राज्यके भीतरके सभी व्यक्तिओं और वस्तुओंपर अधिकार है। इनमें द्वितीय अधिक व्यापक है अतः हम उसे ही प्रधान मानते हैं पर पहिला गौण होते हुए भी त्याज्य नहीं है।

किसी राजके राज्यके निवासियोंमें से जो लोग उसकी असन्दिग्ध रूपसे प्रजा हैं उनमें प्रथम स्थान अनन्य प्रजा का है। अनन्यका अर्थ है जो दूसरेका न हो। अनन्य अनन्य प्रजा प्रजा वह है जो पहिले भी कभी किसी दूसरेकी प्रजा न थी अर्थात् जो जन्मसे ही प्रजा है। पर जन्मसे किसे प्रजा कहना चाहिये इस विषयमें मतभेद है। किसी देशमें तो यह नियम है कि बच्चा जहा जन्म लेता है वहींकी प्रजा होता है चाहे उसके मातापिता किसी राष्ट्रके हो। अन्य देशोंमें यह नियम है कि बच्चेके मातापिता की राष्ट्रियतापर बच्चेका प्रजा होना निर्भर है। किसी किसी देशमें केवल

यही देखा जाता है कि अकेले पिता या अकेली माता किस राष्ट्रकी है। जो लोग राजकी ही प्रजा हैं उनके उन बच्चोंके लिये जो राजके भीतर ही पैदा होते हैं कोई कठिनाई न होगी। वह तो अनन्य प्रजा होंगे ही, चाहे कोई नियम बरता जाय, पर दूसरे लोगोंके लिये इन भिन्न भिन्न नियमोंसे भिन्न भिन्न परिणाम होंगे। जो मनुष्य एक नियमके अनुसार एक राजकी प्रजा होगा वही दूसरे नियमके अनुसार दूसरे राजकी प्रजा हो जायगा।

ब्रिटेनमें यह नियम है कि ब्रिटिश प्रजाकी सन्तति ब्रिटिश ही रहती है चाहे उसका जन्म कहीं हो। संयुक्त राजमें भी ऐसा ही नियम है पर वहाँ एक शर्त यह है कि यदि उसका जन्म विदेशमें हुआ हो तो १८ वर्षका होनेपर उसे किसी अमेरिकन वकीलके सामने जाकर यह इच्छा प्रकट करनी चाहिये कि मैं अमेरिकन प्रजा रहना चाहता हूँ और २१ वर्षका हो जानेपर राजके प्रति भक्तिकी शपथ खानी पड़ेगी। इन दोनों देशोंमें यह भी नियम है कि विदेशियोंके बच्चे भी इनके राज्यमें जन्म लेनेसे इनकी ही प्रजा हो जाते हैं। फ्रेंच विधानके अनुसार फ्रेंच प्रजाकी सन्तति फ्रेंच ही रहती है चाहे उसका जन्म कहीं हो। विदेशियोंके लिये यह नियम है कि यदि माता पितामे से एकका भी जन्म फ्रांसमें हुआ हो तो बच्चा फ्रेंच माना जायगा पर यदि वह माताके फ्रांसमें जन्म होनेके कारण फ्रेंच माना गया है तो उसे अधिकार है कि अपनी इक्कीसवीं वर्षगांठके एक सालके भीतर यह कह दे कि मैं फ्रेंच प्रजा नहीं बनूँगा। ऐसी दशामें वह अपने माता-पिताके राष्ट्रका माना जायगा। स्वीडनमें यह नियम है कि यदि विदेशी माता-पिताकी सन्तति २२ वर्षके वयतक स्वीडनमें रह जाय तो वह स्वीड मानी जाती है। जर्मनी, स्वीजरलैण्ड, यूनान इत्यादि पिताकी राष्ट्रीयतापर सन्ततिकी राष्ट्रीयता निर्भर करते हैं।

इटलीमें नियम है कि जो पिता दस वर्ष तक इटलीमें बस चुका हो उसकी सन्तति इटालियन प्रजा मानी जायगी। आज कल प्रायः सभी देशोंमें दो नियम प्रचलित हैं। विदेशियोंकी सन्तति-को यह अधिकार रहता है कि पूर्णवयस्क (२१ वर्षकी) होनेपर यह निश्चित करे कि वह किस राजकी अर्थात् अपने जन्मस्थानकी या पिता-माताके देशकी प्रजा होकर रहेगी। दूसरे यह कि जो सन्तति विवाहेतर सम्बन्धसे पैदा होती है उसकी राष्ट्रीयता माता-की राष्ट्रीयतापर निर्भर मानी जाती है। विवाहिता स्त्रियोंकी राष्ट्रीयता प्रायशः पतिकी राष्ट्रीयताके अनुकूल मानी जाती है।

इन भिन्न भिन्न नियमोंसे कभी कभी अड़चनें पड़ सकती हैं। यदि कोई फ्रेञ्च दम्पति ब्रिटेनमें बसे हों या दस पांच दिनके लिये ही गये हों और वहां उन्हें बच्चा हो जाय तो वह ब्रिटिश-विधानके अनुसार तो ब्रिटिश और फ्रेञ्च विधानके अनुसार फ्रेञ्च प्रजा हुआ। यदि किसी बच्चेका, जिसके मां-बाप दोनों ब्रिटिश हों, फ्रांसमें जन्म हो तो वह दोनों देशोंके विधानके अनुसार ब्रिटिश ही होगा पर यदि बड़े होनेपर उसे भी दैवात् फ्रांसमें ही बच्चा हो तो वह ब्रिटिश विधानके अनुसार ब्रिटिश और फ्रेञ्च विधानके अनुसार फ्रेञ्च प्रजा हुआ। ऐसी बातोंसे बड़े भगड़े खड़े हो सकते हैं पर प्रायः राजोंकी बुद्धिमत्ता उन्हें उभड़ने नहीं देती। जो लोग सन्दिग्ध राष्ट्रीयताके हैं उनपर कोई राज अपने राज्यके बाहर अधिकार चलानेका प्रयत्न नहीं करता।

भारत परतंत्र देश है, यहां विदेशी होना ही महागुण है पर स्वतन्त्र देशोंमें अनन्य प्रजाके बड़े स्वत्व और कर्तव्य होते हैं। एक ओर देशकी प्रतिष्ठा और रक्षाका सबसे बड़ा भार उनपर ही होता है, दूसरी ओर राजसभाओंकी सदस्यता और सरकारी पदोंके सर्वांग अधिकारी वही होते हैं।

अनन्य प्रजाके बाद दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग अङ्गीकृत प्रजाके है। अनन्य प्रजा तो वह है जो जन्मसे ही प्रजा है पर अङ्गीकृत प्रजा वह है जो जन्मतः अपनी प्रजा न थी परन्तु अङ्गीकृत प्रजा पाछेमे मान ली गयी। जिस प्रक्रिया द्वारा ऐसा होता है उसे प्रजाङ्गीकरण^{*} कहते हैं। पर कुछ अवस्थाएं ऐसी हैं जिनमें बिना इस प्रक्रियाके ही कुछ व्यक्तियों-को अङ्गीकृत प्रजाकी स्थिति प्राप्त हो जाती है। जो भूभाग जीत कर या हस्तान्तरित होकर अपनाया जाता है उसके निवासी स्वतः अपनी प्रजा हो जाते हैं पर उनको कुछ समय दिया जाता है जिसमें वह निश्चय कर लें और यदि पुराने राजकी ही प्रजा हो कर रहना चाहते हों तो विजित या हस्तान्तरित भूखण्डको छोड़ कर चले जाय। स्त्रियां चाहे कहींकी निवासी हों, उनको विवाह होनेके उपरान्त बहुधा अपने पतिके राजका प्रजात्व मिल जाता है। कुछ राजोंने इसके लिये कुछ विशेष शर्तें लगा रखी हैं पर अधिकांश राजोंमें या तो शर्तें[†] है ही नहीं या बहुत ही नरम हैं।

भिन्न भिन्न देशोंमें प्रजाङ्गीकरणकी प्रक्रिया भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है पर सबका प्रधान अङ्ग होता है नये राजके प्रति भक्तिकी शपथ लेना और पुराने राजके प्रति भक्तिकी शपथको तोड़ना। किसी किसी देशमें तत्काल ही प्रजाङ्गीकरण हो जाता है, किसीमें कई वर्ष निवास करने पर। प्रायः सबमे एक शर्त यह होती है कि प्रार्थीको उस देशकी भाषा आती हो। अङ्गीकृत प्रजाके कर्तव्य वही होते हैं जो अनन्य प्रजाके होते हैं और न्यायकी बात यह प्रतीत होनी है कि उसके अधिकार भी वही हों पर कुछ देशोंमें उसके अधिकारोंमें कुछ न्यूनता होती है। अङ्गीकृत प्रजाकी सन्तति सभी देशोंमें पूर्णतया अनन्य प्रजा मानी जाती है।

*Naturalized subjects †Naturalization

कभी कभी प्रजाङ्गीकरणके सम्बन्धमें अन्ताराष्ट्रिय झगड़े खड़े हो जाते हैं। यह ता प्रत्येक स्वतंत्र राजको अधिकार है कि अपना बनायी शर्तोंपर विदेशियोंको अपनी प्रजा बनाये पर यह भी प्रत्येक स्वतंत्र राजको अधिकार है कि अपनी प्रजाको अपने अधिकारके बाहर न जाने दे। कुछ लोगोंका यह मत है कि मनुष्य अपनी मातृभूमिसे ऐसा बँधा हुआ है कि वह किसी अन्य राजका प्रजात्व स्वीकार कर ही नहीं सकता। दूसरोंका यह मत है कि प्रत्येक व्यक्तिको यह अधिकार है कि चाहे जिस राजका प्रजात्व स्वीकार करे।

अडचन उस समय पड़ती है जब कोई ऐसा मनुष्य जो एक देशकी अङ्गीकृत प्रजा हो गया है अपने पुराने देशमें फिर किसी कारण लौटता है। सम्भव है कि पुराना राज कुछ न बोले और उसे उस विदेशी राजकी प्रजा मान ले पर यह भी सम्भव है कि वह उसे अब भी अपनी प्रजा माने। आजसे लगभग १०० वर्ष पहिले ब्रिटेनमें यह प्रथा थी कि हट्टे कट्टे मनुष्य बलात् नौसेनामें भरती कर लिये जाते थे। इससे बचनेके लिये बहुत से युवक अमेरिका भाग जाते थे और सयुक्त राजकी प्रजा बन जाते थे। पर अंग्रेजी जहाज उन्हें जहाँ पाते थे वहीं पकड़ते थे। ब्रिटेन कहता था यह हमारी प्रजा हैं, सयुक्त राज कहता था हमारी प्रजा हैं। १८६९ में दोनोंमें लड़ाई हो गयी। अन्तमें ब्रिटेनने अपना आग्रह छोड़ दिया। फ्रांस इत्यादिमें नियम है कि अमुक वयके मनुष्यको सेनामें कुछ नियत काल तक काम करना ही होगा। यह देश ऐसा करते हैं कि यदि इससे बचनेके किये कोई मनुष्य भाग कर अन्यत्रकी प्रजा हो जाय तो अगसर पाने पर उससे फिर काम लेंते हैं। इसी प्रकार यदि वह स्वदेश छोड़नेके पाँहले कोई अपराध कर गया

हो तो अवसर मिलने पर उसे दण्ड दिया जाता है । यदि वह पुराने स्वदेशके विरुद्ध नये स्वदेशकी ओरसे शस्त्र उठाये तो पकड़े जाने पर प्राणदण्ड पाता है ।

अब भी नियमोंमें कोई समता नहीं है न कोई एक ऐसा सिद्धान्त है जो सर्वमान्य हो पर स्वतंत्र राजोंका व्यवहार ऐसा हो रहा है कि उनकी जो प्रजा बाहरकी अङ्गीकृत प्रजा हो जाती है उसपर से अपना स्वत्व शीघ्र नहीं हटाते और यदि उनके पास कोई ऐसा प्रमाण होता है कि उसने उनके प्रति किसी वैध कर्तव्यके पालन करनेसे जी चुराकर विदेशी प्रजात्व ग्रहण किया है तो अवसर मिलने पर उसे दण्ड भी देते हैं । पर विदेशियोंको अपनी प्रजा बनानेके नियम प्रायः सर्वत्र सुकर है । प्रत्येक राज अपनी अङ्गीकृत प्रजाकी रक्षा अन्य प्रजाके ही समान करता है पर यदि उसका पुराना राज अपने नियमोंके अनुसार अवसर पाकर उसपर शासन करता है तो उसका नया राज चुप रह जाता है जब तक कि कोई प्रत्यक्ष अन्याय न होता हो । यदि कोई मनुष्य कहीं अन्यत्र अङ्गीकृत होकर फिर स्वदेश आजाय और वहाँ कुछ दिन बस जाय तो उसका नया प्रजात्व जाता रहता है और वह फिर पुराने राजकी प्रजा हो जाता है । कितने दिन बस जाने पर ऐसा मानना चाहिये इसके लिये भी सब जगह पृथक् पृथक् नियम हैं । जर्मनीमें दो वर्षका नियम है । यदि कोई जर्मन जो अन्यत्र अङ्गीकृत हो गया हो पुनः जर्मनी लौट आये और दो वर्ष तक रह कर भी जर्मन प्रजा न बनना चाहे तो वह निकाल दिया जाता है ।

विदेशी यात्रियोंके लिये प्रायः वही नियम है जो उन विदेशियोंके लिये है जो विदेशमें बसते हैं पर वहाँकी अङ्गीकृत प्रजा नहीं हुए हैं । इन लोगोंको सब प्रकारके स्थानीय और सरकारी

कर देने होते हैं और प्रचलित दीवानी तथा फौजदारी विधान इनके लिये भी लागू होते हैं। इनको उस देशकी नसे विदेशी और रक्षाके लिये सैनिक कार्य नहीं करना पड़ता पर विदेशी यात्री यदि उसपर यकायक असभ्य जातियाँ आक्रम कर बैठें और उसके अस्तित्वको आघात पहुँचने की आशंका हो तो इन्हें सैनिक कार्य भी करना पड़ेगा। साधारण शान्तिरक्षाके लिये यह भी दायी है। यदि देशमें कुछ दङ्गा या अन्य प्रकारका उपद्रव हो जाय तो विशेष पुलिसका काम इन्हें भी करना होगा। यदि कोई बसा हुआ विदेशी अङ्गीकृत होनेकी इच्छा प्रकट कर दे तो इतनेसे ही उसकी रक्षा अङ्गीकृत या अनन्य प्रजाकी भाँति नहीं हो सकती। उसके पुराने राजको अधिकार है कि यदि वह उसे पकड़ पावे तो उसके साथ अपनी प्रजाका सा बर्ताव करे। पर संयुक्त राजका यह मत है कि यदि वह इच्छा प्रकट करनेके पीछे दीर्घकाल तक बसा रहे तो यह समझना चाहिये कि उसकी वास्तविक इच्छा यह थी कि अङ्गीकृत हो जाय और यद्यपि उसकी इच्छा पूरी न हुई अर्थात् अङ्गीकरणकी प्रक्रिया न हुई तो भी वह जिस देशमें जा बसा है उसकी प्रजाके ही तुल्य है और यदि अवसर पाकर उसका पुराना राज उसके साथ अपनी प्रजा जैसा बर्ताव करना चाहे तो उसकी रक्षा करनी चाहिये।

हम ऊपर कह आये हैं कि बसे हुए विदेशियों और विदेशी यात्रियोंको सब प्रकारके कर देने होते हैं और आवश्यकता पड़नेपर पुलिसका काम भी करना पड़ता है अपवाद तथा दीवानी और फौजदारी विधान उनपर भी लागू होते हैं। पर इस साधारण नियमके कुछ अपवाद हैं। कुछ अवस्थाओंमें बसे हुए विदेशियों

तथा विदेशी यात्रियोंके लिये यह सब नियम ढीले कर दिये जाते हैं ।

विदेशी नरेशोंको न तो कोई कर देना पडता है न उनपर कोई विधान लागू होता है । उनपर किसी प्रकारका अभियोग चल ही नहीं सकता । यदि कोई विदेशी नरेश किसी विदेशी नरेश प्रकारकी अनुचित कार्यवाही करे तो उसे अपने यहांसे बलात् विदा कर देनेके सिवाय और कोई युक्ति नहीं है । पर यदि कोई विदेशी नरेश विदेशमें कुछ सम्पत्ति या जमीनदारीका स्वामी है तो उसे उस उतने भूखण्डके लिये प्रजाकी भांति ही रहना पड़ेगा । यदि कोई विदेशी नरेश स्वयं न्यायालयमें किसीपर किसी प्रकारका आरोप करे तो फिर वह न्यायालयके क्षेत्रमें आगया । ब्रिटिश-साम्राज्यमें तथा उसके बाहर भी हमारे भारतीय नरेशोंके साथ भी यही नियम बरते जाते हैं अर्थात् इनपर किसी प्रकारका अभियोग नहीं चल सकता । दस ग्यारह वर्ष हुए एक व्यक्तिने गायकवाड़-पर इंग्लैण्डमें फौजदारीका अभियोग चलाना चाहा । उसका कहना था कि भारतीय नरेश ब्रिटिश-सर्कारके अधीन हैं अतः इनको स्वतन्त्र विदेशी नरेशोंके विशेषाधिकार नहीं मिल सकते, पर न्यायालयने स्वयं कहा कि यह विदेशी नरेश है और ब्रिटिश सर्कारके अधिपतित्वमें होनेपर भी अपने राजमें प्रभु हैं, अतः हमारे अधिकार-क्षेत्रके बाहर हैं । विदेशमें यात्रा करते समय नरेशोंको अपने भृत्योंपर भी अधिकार रहता है या नहीं इस विषयमें मतभेद है ।

यह पहिले ही लिखा जा चुका है कि विदेशी राजदूतोंपर जिस राजदूत देशमें वह भेजे जाते हैं, किसी प्रकारका अभियोग नहीं चल सकता ।

इस बातका अवसर बहुत ही कम आता है कि एक राजकी सेना दूसरे राजमेंसे होकर निकले पर यदि कभी ऐसा हो तो उसपर भी वह राज जिसके राज्यमेंसे विदेशी सेना होकर वह निकलती है किसी प्रकारका शासन नहीं करता ।

इसी प्रकार विदेशी सैनिक जहाजोपर जो किसी कारणसे कुछ कालके लिये अपने नौस्थानमें आ गये हों कोई शासन नहीं किया जाता । उनपर सर्वतः विदेशी सैनिक उनके अफमरोंका ही शासन रहता है पर यदि जहाज जहाजके अफमर या सिपाही जमीनपर उतरें तो उनके साथ विदेशी यात्रियोंकी तरह व्यवहार होता है अर्थात् उनपर पूर्णतया शासन हो सकता है । यदि कोई राजनीतिक अपराधी भागकर या तैर कर किसी विदेशी सैनिक जहाजपर चला जाय तो फिर वह रक्षाका अधिकारी हो गया । कुछ लोगोंका मत है कि सैनिक जहाज अपने राजके राज्यका एक टुकड़ा है ।

राज्यके बाहर अब हमको यह देखना है कि अपने राज्यके शासनाधिकार बाहर किस व्यक्तिपर और किस किस अवस्थामें शासन किया जाता है ।

सबसे पहिले अपनी विदेश-प्रवासी प्रजापर शासनाधिकार होता है । यह तो निश्चय है कि यदि अपनी प्रजामें से कोई व्यक्ति विदेशमें कोई अपराध करे तो उसे वह विदेशप्रवासी विदेशी सरकार दण्ड देगी पर किसी किसी स्वप्रजा राजका ऐसा विधान है कि यदि वह स्वदेश लौटे तो वहाँ भी उसे दण्ड दिया जाता है । पर यह सब नहीं बरन कुछ ऐसे अपराधोंके लिये होता

है जो बहुत ही दूषित समझे जाते हैं। यूरोपियन राज्यों ने दुर्बल एशियाई और अफ्रीकन राज्यों में अपने लिये विशेष शासनाधिकार रक्खे हैं। यदि कोई यूरोपियन इन देशों में कोई फौजदारी अपराध करता है तो उसको वहाँ की सरकार दण्ड नहीं देती वरन् वह यूरोपियन जिस राजका होता है या तो उसका कोई प्रतिनिधि, जिसे न्यायाधीशके अधिकार होते हैं, निर्णय करता है या उसे निर्णय और दण्डके लिये स्वदेश भेज देता है या कई यूरोपियन जजों का एक पचायती न्यायालय होता है वह निर्णय करता है। कभी कभी इस पचायती न्यायालय में उस देशका भी एक जज रक्ख दिया जाता है पर उस बेचारेकी सुनता कौन है। मिश्र में पचायती न्यायालय ही था। यदि किसी भारतीय राज में कोई अंग्रेज किसी प्रकारका अपराध करता है तो उसका फैसला स्थानीय न्यायालय नहीं करते वरन् अंग्रेजी न्यायालय करते हैं।

यह प्रथा इन प्राच्य राजोंकी दुर्बलता और पाश्चात्य राजोंकी ठठधर्मीकी सूचक तो है ही, इसमें अन्यायकी भी बहुत जगह है। जिस अपराधके लिए उस देशका निवासी कड़ा दण्ड पाता है वसी अपराधके लिये यूरोपियन बेदाग छूट सकता है। यह जानकर कि स्थानीय सरकार हमारा कुछ नहीं कर सकती यूरोपियनों का सिर भी चढ़ा रहता है।

चोरों, खूनियों, व्यभिचारियोंका सभ्य समाज में कहीं भी आदर नहीं होता। इसी लिये आजकलके सभ्य राजों में यह प्रथा है कि एक देशका अपराधी यदि दूसरे देश में अपराधिप्रत्यर्पण भाग जाय तो उसे पकड़ कर उसके देशकी सरकारके हवाले कर देते हैं। इसके लिये आपस में विशेष सन्धियाँ होती हैं। उनमें यह निश्चित हो जाता है कि किस किस प्रकारके अपराधी लौटाये जायँगे। सब सन्धियाँ एक

सी नहीं होती। ब्रिटेनमें इस सम्बन्धमें जो नियम हैं प्रायः वैसे ही नियम अन्य सभ्य देशोंमें भी हैं, इस लिये हम उनका सारांश देते हैं।

जब कोई अपराधी भाग कर ब्रिटेनमें आ जाता है तो उसके देशका राजदूत ब्रिटेनके स्वराष्ट्र-सचिवको लिखता है कि अमुक व्यक्ति अमुक अपराध करके भाग आया है, उसे हमें दे दीजिये। तब इस बातकी जांच की जाती है कि यह अपराध वन अपराधोंमेंसे है या नहीं जिनके विषयमें आपसमें सन्धि हुई है। राजनीतिक अपराधी नहीं दिये जाते। इसीलिये श्याम जी कृष्ण वर्मा, अरविन्द घोष, इत्यादि फ्रांसके राज्यमें शरण पा गये। यदि अपराधी यह सिद्ध कर सके कि मुझे राजनीतिक कामोंके लिये दण्ड देनेके उद्देश्यसे मागा जा रहा है तो वह नहीं दिया जाता। सम्मान्य ब्रिटिश जजोंकी सम्मति है कि जो अपराध राजनीतिक आन्दोलन और विद्रोहके आवश्यक अंग हो उनके लिये अपराधियोंका प्रत्यर्पण ❀ नहीं हो सकता परन्तु राजनीतिक आन्दोलनके समयके सभी अपराध क्षम्य नहीं हो सकते। राजक्रान्तिके समय सकारी कोषको हस्तगत करलेना, जहांसे और जैसे हो शस्त्र संप्रह करना, शत्रु, अर्थात् सकार, के सहायकोंको प्राणदंड तक देना, सकारी सेनाको उभाड़ना, यह सब आवश्यक हो सकता है। यदि कोई मनुष्य ऐसे काम करके किसी सभ्य देशकी शरण ले तो वह उसे कदापि न सौंपेगा। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि राजक्रान्तिके समय प्रत्येक प्रकारकी लूट और हत्या क्षम्य है। फ्रांस ही नहीं ब्रिटेनने बहुतसे राजनीतिक शरणागतोंकी रक्षा की है। इटलीके मत्सिनी और गैरिबान्डी, चीनके सुनयतसन इत्यादि

अनेक देश-भक्तोंने ब्रिटेनमें शरण पायी है। अस्तु, जब यह निश्चित हो जाता है कि वस्तुतः अपराध ऐसा है जिसके लिये ब्रिटिश विधानके अनुसार भी मनुष्य दंड्य होता है तो अपराधी-को ब्रिटिश पुलिस पकड़ कर हवालातमें डाल देती है। यहाँ वह पन्द्रह दिन तक रक्खा जाता है। यदि इस बीचमें कोई नयी बात न खुली तो वह अपने राजकी पुलिसको सौंप दिया जाता है पर यदि किसी कारणसे वह दो महीने तक न सौंपा गया तो हाईकोर्टका कोई भी जज अपनी आज्ञासे उसे सूक्त करा सकता है। प्रत्यर्पण करते समय एक शर्त यह भी रहती है कि जिस विशेष अपराधका नाम लेकर उसका प्रत्यर्पण कराया गया है उसके सिवाय किसी और अपराधके लिये उसे दण्ड न दिया जाय। यदि उसके देशकी सरकारको ऐसा करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो तो उसे चाहिये कि या तो उस अपराधी-को एक बार आपही ब्रिटिश राजके भीतर पहुँचा दे या उसे इतना अवकाश दे कि यदि वह चाहे तो ब्रिटिश राजके किसी अंशमें प्रवेश कर जाय। यह सब इस बातका सूचक है कि राजोंमें अभी इतना सौहार्द नहीं है कि अपराधियोंका प्रत्यर्पण अनिवार्य कर्तव्य समझा जाय। अभी तो केवल आपसके समझौतेके कारण ऐसा किया जाता है।

प्रत्यर्पण बराबरीके ढङ्गपर होना चाहिये। स्वतन्त्र राजोंमें ऐसा होता भी है। यह नहीं हो सकता कि एक राज तो अपराधियोंको सौंपना स्वीकार करे पर दूसरा ऐसा न करे। परन्तु भारतवर्षमें सभी बातें निराली हैं। यहाँ प्रत्यर्पण विषयक सन्धियाँ भी कई ढङ्गकी हैं। कुछ तो बराबरीकी हैं। यह वह सन्धियाँ हैं जो देशी राजोंमें आपसमें हुई हैं। पर इनमें भी कहीं कहीं एक विषमता देख पड़ती है। कुछ ऐसी बातें हैं जिनको एक

राज भीषण अपराध मानता है दूसरा नहीं। हिन्दू राजोंमें मोहत्या-
दण्ड है अतः आपसमें हिन्दू राज गोहंसकका प्रत्यर्पण करते हैं
पर मुसलमान राज ऐसा नहीं करते। पर ब्रिटिश राजके सामने सब
ही भारतीय राज एकसे है। उसकी सन्धियां बराबरी नहीं वरन्
ऊँचे नीचेकी दृष्टिसे लिखी गयी हैं। उदाहरणके लिये, यदि
ब्रिटिश सरकारका कोई सैनिक बिना नियमित रूपसे छुट्टी पाये
किसी भारतीय राजमें भाग जाय तो उस राजका कर्तव्य होगा
कि उसे पकड़ कर प्रत्यर्पित करे पर यदि किसी राजका सैनिक
भाग कर ब्रिटिश राज्यमें आजाय तो ब्रिटिश सरकार उसे पकड़ कर
सौंपनेका भार अपने ऊपर नहीं लेती।

अब धीरे धीरे सभी सभ्य देशोंके विधान एकसे होते जाते
हैं। यदि राष्ट्रसंघ सचमुच मजीब हुआ और किसी विश्वाम-योग्य
अन्तराष्ट्रिय न्यायालयकी स्थापना भी हो गयी तो अपराधियोंके
प्रत्यर्पणमें इतनी अड़चन न होंगी पर अभी उस दिनके आनेमें देर
प्रतीत होती है।

यह हम पहिले कह चुके हैं कि प्रत्येक राजको अपने सैनिक
जहाजोंपर पूर्ण अधिकार रहता है। यह एक प्रकारसे अपने अपने
राज्यके तैरते हुए टुकड़े माने जाते हैं और इनके
सैनिक जहाज प्रबन्धमें किसी प्रकारसे और किसी कारणसे
हस्तक्षेप करना उस राजके साथ हस्तक्षेप करना
और युद्धके लिये निमंत्रण देना है। यदि शान्ति-कालमें एक
राजका सैनिक जहाज दूसरेके नौस्थानमें जाकर किसी प्रकारका
उपद्रव करे तो वह राज उसे आप दण्ड न देगा प्रत्युत उसे यह
आज्ञा देगा कि हमारे तटके पाससे चले जाओ और फिर उसके
उपद्रवके कारण जो कुछ क्षति हुई होगी उसके लिये उसके राजसे

व्यापारी जहाजोंके लिये यह नियम नहीं है। जब तक वह खुले समुद्रमें है तब तक तो कोई दूसरा राज नहीं है जो उनपर शासन कर सके इस लिये उनके कप्तानको वह व्यापारी जहाज सब अधिकार प्राप्त रहते हैं जो स्थलपर एक मजिस्ट्रेटको रहते हैं और वह अपने राजके ही विधानोंको बरतता है। पर ज्योंही कि जहाज किसी सभ्य राजके भूलग्न जलके भीतर आजाता है त्योंही उसपर उस राजका शासनाधिकार हो जाता है। फिर तो इस राजको यह अधिकार होता है कि यदि भूलग्न जलके भीतर आनेके पहिले भी जहाज-पर किसी प्रकारका उपद्रव इत्यादि हुआ हो तो उसकी जांच पड़ताल करके यथोचित कार्यवाही करे। यदि भूलग्न जलके भीतर कुछ उपद्रव हो और फिर जहाज भाग जाय तो खुले समुद्रमें भी उसका पीछा करके पकड़ सकते हैं।

प्रत्येक राजको अपने जहाजों द्वारा पकड़े गये जलदस्युओंपर पूर्ण अधिकार होता है। केनीने जल-दस्युता (जलमें डकैती)

की परिभाषा इस प्रकार की है—प्रत्येक ऐसा

जल-दस्यु सशस्त्र हिंसात्मक काम जो युद्धका वैध अंग

न हो दस्युता है। दस्युता सभ्य समाज

मात्रकी दृष्टिमें अपराध है क्योंकि दस्युके कामोंसे सभी सभ्य राजोंके व्यापारको आघात पहुंच सकता है और सभी देशोंके यात्रियोंके चित्तमें आशंका उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अशान्ति-जनक वस्तुको दूर करना सबका हो कर्तव्य है, इस लिये प्रत्येक सभ्य राजको यह अधिकार है कि वह दस्युओंको पकड़े और दण्ड दे। अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारके अनुसार दस्युको प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये। कभी कभी कोई राज किसी विशेष कामको अपने विधानमें दस्युता मान लेता है। ब्रिटेनने कुछ दिनों तक अफ्रीकासे

गुलाम ले जाकर बेचनेको दस्युता घोषित कर दिया था। अंग्रेज सैनिक जहाज उन सब जहाजोंको पकड़ लेते थे जिनपर गुलाम होते थे, चाहे वह किसी देशके हों। पर अन्य राजोंने इसका विरोध किया और अन्तर्में ब्रिटेनको विवश होकर इस कामसे हाथ खींचना पड़ा।

अन्ताराष्ट्रिय विधान जिसे जलदस्युता कहता है उसके मुख्य लक्षण यह हैं—

(१) वह सशस्त्र और हिंसात्मक होनी चाहिये पर यह आवश्यक नहीं है कि सचमुच डकैती की जाय। यदि किसी जहाजके नाविक अपने अफसरोंके विरुद्ध सिर उठाये तो जब तक वह मसफल रहेंगे तबतक तो वह विद्रोहके अपराधी माने जायेंगे पर यदि उनका प्रयत्न सफल हो जाय तो वह दस्यु माने जायेंगे, चाहे अपने अफसरोंको दबानेके सिवाय वह फिर कोई भी अनाचार न करें।

(२) दस्युता उसी कामको कह सकते हैं जो ऐसे स्थानमें किया जाय जो किसी राजके भी शासनमें न हो। इसका तात्पर्य यह है कि दस्युता खुले समुद्रमें हो होती है। यदि किसी ऐसे द्वीप या अन्य भूखण्डपर जो किसी सम्य राजकी सम्पत्ति न हो कुछ लोग बसते हों और उन्हें लोग समुद्र-मार्गसे आकर लूट लें तो ऐसा करनेवाले जलदस्यु माने जायेंगे पर यदि किसी सम्य राजके भूलग्न जलके भीतर जहाजोंपर डाका पड़े या तटपर घुसकर लूटपाट मचायी जाय तो इसे दस्युता नहीं कहते। ऐसा करनेवाले लुटेरे साधारण विधानके अनुसार दण्ड्य हैं। जिस राजके भूलग्न जलमें या तटपर वह उपद्रव करें उसे चाहिये कि उन्हें दण्ड दे, अन्ताराष्ट्रिय विधानसे इससे कुछ सम्बन्ध नहीं।

(३) तीसरा और अन्तिम लक्षण यह है कि दस्युता बिना किसी सम्य राज या समाजकी आज्ञाके होती है। यदि को

राज्योंमें लड़ाई हो तो एकको दूसरेके सैनिक जहाजोंसे जो कुछ क्षति होगी उसे दस्युता नहीं कह सकते। कभी कभी सभ्य राज सैनिक जहाजोंके अतिरिक्त अन्य जहाजोंको भी यह अनुज्ञा दे देते हैं कि वह शत्रुसे लड़ें या उसे तग करनेका प्रयत्न करें। ऐसे जहाजोंके कामोंको भी दस्युता नहीं कह सकते।

हम प्रथम खण्डमें कह चुके हैं कि यदि कोई सभ्य समुदाय अन्ताराष्ट्रिय नियमोंका पालन करता हुआ किसी सभ्य राजके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करता है तो कुछ अशोंमें उसे भी अन्ताराष्ट्रिय विधानकी पात्रता मिल जाती है। स्वराजके लिये प्रयत्न करने वाले राष्ट्रोंकी आरम्भमें यही स्थिति होती है। ऐसे समुदायोंकी आज्ञासे जो जहाज विरोधी सर्कारसे लड़ते हैं वह दस्यु नहीं माने जाते पर एक बात ध्यान रखनेकी है। यदि इस प्रकारका समुदाय ह्मरकर हथियार रख दे तो फिर उसकी आज्ञा भी रद्द हो जाती है और जो जहाज उसकी आज्ञासे लड़ते रहे हों उन्हें चाहिये कि हथियार डाल दें नहीं तो उनकी गणना दस्युओंमें होने लगेगी।

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनसे सिद्धान्तों और मुख्य मुख्य नियमोंका ज्ञान तो हो जाता है पर कई अवस्थाएँ ऐसी हैं जो बड़ी ही सन्दिग्ध होती हैं। कभी कभी सन्दिग्ध अवस्थाएँ यह समझमें नहीं आता कि क्या किया जाय।

हम ऊपर लिख आये हैं कि राजनीतिक अपराधियोंका प्रत्यर्पण नहीं होता पर कभी कभी यह निश्चय करना बड़ा कठिन होता है कि कौन सा अपराध राजनीतिक है, कौन सा नहीं। प्रमुख ब्रिटिश जजोंकी यह सम्मति है कि राजनीतिक अपराध तब ही माना जा सकता है जब राजमें दो दल अपनी अपनी इच्छाके अनुकूल सर्कार स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे हों। परन्तु 'दल' शब्द भी सन्तोषजनक नहीं है। यह सम्भव

है कि कोई सच्चा देशभक्त यह समझता हो कि वर्तमान सकार अच्छी नहीं है और उसे दूर करना चाहता हो, इस प्रयत्नमें उससे कोई अपराध हो जाय। अब इस एक मनुष्यको दल नहीं कह सकते अतः वह राजनीतिक अपराधी न माना जायगा पर उसका उद्देश्य परम शुद्ध था। मनुष्योंके वास्तविक उद्देश्योंका पता लगाना कठिन है। यदि कोई मनुष्य अपने देशके भलेके उद्देश्यसे नरेश या किसी प्रधान कर्मचारीको विष या शस्त्र या बम द्वारा मार डालता है तो उसे राजनीतिक अपराधी समझें या सामान्य हत्यारा। ऐसी दशामें बहुतसे राज प्रत्यर्पण करनेमें सकोच नहीं करते।

यदि कोई मनुष्य विदेशमें अपराध करके अपने देश लौट आये और विदेशी सकार उसका प्रत्यर्पण चाहे तो ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये ? इस विषयमें एक मत नहीं है। कोई कोई राज तो ऐसी दशामें कुछ नहीं करते, कोई कोई प्रत्यर्पण तो नहीं करते पर उस आरोपकी अपने यहाँ जाँच करते हैं और यदि वह सच निकलता है तो अपराधीको दण्ड देते हैं। कोई कोई प्रत्यर्पण कर देते हैं। यदि एक दूसरेकी न्यायपरतापर विश्वास हो और आपसमें सौहार्द हो तो प्रत्यर्पण अवश्य कर देना चाहिये। कुछ न करना तो बुरा है ही, अपने यहाँ जाँच करना भी सन्तोषजनक नहीं हो सकता क्योंकि दूसरे देशमें प्रमाणादिका पहुँचना कठिन है।

पाँचवाँ अध्याय ।

सन्धिया ।

हम पहिले ही खण्डमें देख आये हैं कि सन्धियां कितने प्रकारकी होती हैं और उनका अन्ताराष्ट्रिय विधानमें क्या महत्त्व है । यदि स्थूल परिभाषा की जाय तो हम यह कह सकते हैं कि सन्धियोंका अन्ताराष्ट्रिय विधानमें वही स्थान है जो इकरारनामोंका सामान्य विधानमें है । जिस प्रकार दो या अधिक व्यक्ति इकरारनामा लिखकर किसी विशेष कामको करने या न करनेके लिये बाध्य कर देते हैं उसी प्रकार सन्धिपत्रके द्वारा दो या अधिक राज अपनेको बाध्य करते हैं ।

परन्तु इकरारनामों और सन्धियोंमें दो एक बड़े महत्त्वके भेद हैं । पहिली बात यह है कि इकरारनामा सदैव अपनी इच्छासे लिखा जाता है । यदि यह बात प्रमा-सन्धि और इकरारनामा-पणित की जा सके कि उसके लिखते समय एक रनामेमें भेद पक्षने दूसरेपर किसी प्रकारका दबाव डाला था तो वह रद्द कर दिया जायगा । सन्धियोंमें यह बात नहीं है । बहुत सी सन्धियां दबाव डालकर ही लिखवायी जाती हैं और सारा जगत् इस बातको जानता है । युद्धके पीछेकी सन्धियां तो सर्वथा इसी प्रकारकी होती हैं पर इस कारणसे वह रद्द नहीं की जा सकतीं, हां यदि हस्ताक्षर करते समय एक राज दूसरेके प्रतिनिधिको बन्द करके या मारपीटकी धमकी देकर उससे कुछ लिखवा ले तो वह रद्द समझा जायगा । राजपर दबाव

हाकना अवैध नहीं है पर उसके प्रतिनिधिपर शारीरिक या अन्य प्रकारका निजी दबाव डालना अवैध है।

दूसरा भेद यह है कि इकरारनामा तब ही टूट सकता है जब या तो एक पक्ष उसकी शर्तोंको न पूरा करे या दोनों पक्ष पृथक् होनेपर स्वतः सहमत हो जायं या एक पक्ष किसी न्यायालयको यह सिद्ध कर दे कि अब वह परिस्थिति नहीं है जो तब थी जब वह इकरारनामा लिखा गया था अतः मैं इसके पालनसे मुक्त कर दिया जाऊँ और न्यायालय इस प्रकारकी आज्ञा दे दे। पर सन्धियोंके लिये यह बात नहीं है। यदि एक पक्षकी समझमें परिस्थितिमें परिवर्तन हो गया हो तो वह पृथक् हो सकता है। सौजन्यकी बात यह है कि वह दूसरे पक्षको पर्याप्त सूचना दे दे। पर बलवान् राज ऐसा नहीं भी करते और उन्हें दबाने या दण्ड देनेवाला कोई है नहीं। आत्मरक्षाके नामपर सब कुछ किया जा सकता है। कूटनीतिके आचार्य मैकिआवेलीने यह उपदेश दिया है कि समझदार शासकको चाहिये कि जहाँ अपनी हानि होते देखे वहाँ प्रतिष्ठा तोड़ दे। इसी नीतिके अनुसार जर्मनीने उस सन्धिको जिसके द्वारा बेल्जियम तटस्थीकृत राज बनाया गया था और जिसपर स्वयं उसके प्रतिनिधिके हस्ताक्षर थे 'कागजका एक टुकड़ा' बतलाकर तोड़ दिया।

सन्धियोंके लिखे जानेके पहिले उनके विषयमें बहुत कुछ बातचीत और पत्र-व्यवहार होता है। जहाँ साधारण सन्धियोंका प्रश्न होता है वहाँ तो एक राजका राजदूत सन्धि लिखे जाने- दूसरेके परराज-सचिवसे मिलकर सब बातें ठीक का क्रम कर लेता है। बीच बीचमें वह अपनी सरकारसे भी परामर्श लेता जाता है। सब कुछ निश्चित हो जानेपर दोनों ओरसे हस्ताक्षर हो जाते हैं। यदि किसी

कारणसे राजदूतको अपनी सरकारका उत्तर ठीक समयसे न मिल सके और काम आवश्यक हो तो वह अपने दायित्वपर हस्ताक्षर कर देगा पर यह समझ लिया जायगा कि यह हस्ताक्षर तभी पक्का माना जायगा जब उसके पास उसकी सरकारकी अनुकूल आज्ञा आ जाय ।

विशेष अवसरोंपर साधारण राजदूतोंसे काम नहीं लिया जाता वरन् उस अवसर विशेषके लिये ही विशेष अधिकार देकर प्रतिनिधि नियुक्त होते हैं । युद्धके पीछे जो सन्धियां होती हैं उनमें प्रायः ऐसा ही होता है । ऐसे प्रतिनिधियोंको अपने अपने राजसे सन्धि करनेके पूर्ण अधिकार दिये जाते हैं क्योंकि यदि उन्हें कोई अधिकार ही न हो तो उनके साथ वादविवाद करना व्यर्थ है । १९७७ में रूस और पोलैण्डसे सन्धि होनेकी बातचीत चली परन्तु पोलैण्डवालोंने ऐसे प्रतिनिधि भेजे जिन्हें सन्धि करनेका पूर्णाधिकार ही न था । रूसी प्रतिनिधियोंने उनसे बातचीत करना अस्वीकार कर दिया । जब पोलिश सरकारकी ओरसे उन्हें अधिकार मिल गये तब बातचीत आरम्भ हुई ।

जब आपसकी बातचीतमें सन्धिकी मूल शर्तें निश्चित हो जाती हैं तो फिर वह लेखबद्ध की जाती है । यह बड़ा ही कठिन काम होता है क्योंकि अस्पष्ट भाषा आगे चलकर झगड़े उत्पन्न कर सकती है । यदि दोनों पक्ष भिन्न भिन्न भाषाओंका प्रयोग करते हैं तो काम और बढ जाता है क्योंकि सभी भाषाओंमें सन्धियां लिखनी पडती हैं और प्रत्येक राजके पास उसीकी भाषावाली प्रति रहती है । वह राज उसीको प्रामाणिक मानता है । अन्तमें जब यह सब झगड़े समाप्त हो जाते हैं और भाषाके विषयमें कोई मतभेद नहीं रह जाता तो सब प्रतिनिधि अपने अपने हस्ताक्षर कर देते हैं ।

पर इतनेसे ही संधि पक्की नहीं समझी जाती न उस अनुसार काम होने लगता है। प्रत्येक राजमें किसी न किसीको युद्धकी घोषणा करने और युद्ध बन्द करनेका अधिकार देना ही पड़ता है। यह अधिकार किसी व्यवस्थापक सभा या पार्लमेण्टको नहीं दिया जा सकता। ऐसी संस्थाओंमें सैकड़ों सदस्य होते हैं, यदि उनके सामने यह प्रश्न रखे जाय तो समय बहुत लगे और रहस्य खुल जाय। जिसको अधिकार रहता है वह सरकारका मुख्याधिष्ठाता होता है। राजतन्त्रोंमें नरेश, व प्रजातन्त्रोंमें राष्ट्रपति-को ऐसा अधिकार रहता है। ब्रिटेनको ही लीजिये, नरेशको अधिकार है जब जिससे चाहें युद्ध छेड़ सकते हैं। पर स्वेच्छाचारिताके लिये रोक भी है। बिना पार्लमेण्टकी अनुज्ञाके एक पैसा व्यय नहीं हो सकता, अतः नरेश ऐसा युद्ध कदापि नहीं छेड़ते जो पार्लमेण्टको अनुमत न हो। इसी प्रकार वह जब चाहें युद्ध बन्द कर सकते हैं पर सन्धि पार्लमेण्टके सामने पेश होती है और जब वह उसे स्वीकार कर लेती है तब पक्की होती है। अमेरिकामें सेनेटकी स्वीकृति आवश्यक है। स्वीजरलैण्डमें यह नियम है कि जिस सन्धिकी मीयाद पन्द्रह वर्ष या अधिक हो वह, यदि वोटोंकी एक नियत संख्या प्रार्थना करे, तो सारे देशके वोटोंके सामने पेश की जाती है। अस्तु, कहनेका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक देशकी शासन-पद्धतिने किसी न किसी संस्थाको यह अधिकार दे रखा है कि वह सन्धिपर विचार करे ताकि सरकार और उसके प्रतिनिधि मनमानी शर्तें न मान बैठें। इस रोकका फल यह होता है कि प्रत्येक सरकार पहिले तो ऐसे प्रतिनिधियोंको सन्धि-परिषद्में भेजती है जिनके ऊपर जनताका विश्वास होता है और फिर इनको आदेश देती है कि खूब सोच विचार कर तब हस्ताक्षर करें। कभी कभी बड़ी अड़चन पड़ जाती है। महासम-

रके बाद जर्मनीसे वर्सेल्सकी जो सन्धि हुई उसपर अमेरिकाके राष्ट्रपति विल्सनने हस्ताक्षर कर दिया । यह स्वयं अमेरिकन प्रतिनिधि बनकर गये थे । जब यह सन्धि अमेरिकन सेनेटके सामने आयी तो उसने उसे अस्वीकार कर दिया । परिणाम यह हुआ कि जर्मनी और अमेरिकामें युद्ध तो राष्ट्रपतिकी घोषणासे बन्द हो गया पर सन्धि न हुई । अन्तमें लगभग डेढ़ वर्षके बाद दोनोंके बीचमें एक पृथक् सन्धि हुई ।

जब इस प्रकार सन्धिका समर्थन हो जाता है तो उसकी एक एक समर्थित प्रतिका आपसमें विनिमय होता है । यह इस बातका प्रमाण है कि अब सन्धि दोनों राजोंको पूर्णतया स्वीकृत है । फिर प्रत्येक राज अपने यहां घोषणा कर देता है कि हमसे अमुक राजसे अमुक अमुक शर्तोंपर सन्धि हुई है और वह अमुक तिथिसे व्यवहारमें आयेगी । यहींपर सारी प्रक्रिया समाप्त हो जाती है ।

यह विचार करने योग्य प्रश्न है कि जो राज सन्धिके सम्बन्धमें उदासीन रहते हैं उनके लिये सन्धियोंका क्या परिणाम होता है । जो राज स्वतन्त्र है वह किसी ऐसी उदासीन राजोंके सन्धिसे नहीं बांधे जा सकते जिसपर उनके लिये परिणाम हस्ताक्षर न हों पर व्यवहारमें यह होता है कि

यदि नयी सन्धिमें कोई ऐसी बात नहीं है जिससे सन्धि करनेवालोंके अतिरिक्त और किसीका अपरक्ष हिताहित होता है या जो अन्तराष्ट्रिय विधानके किसी सर्वसम्मत सिद्धान्तके विरुद्ध है तो अन्य राज भी उसे मान लेते हैं । उनको मान लेना यही है कि उसके विरुद्ध किसी प्रकारका आचरण न करें ।

अब हमें यह देखना है कि सन्धियां किस प्रकार समाप्त होती हैं । कुछ सन्धियां तो ऐसी हैं जिनकी उत्पत्ति और समाप्ति

साथ हो साथ हती है। यदि एक राज दूसरे राजको अपने राज्यका कुछ भाग दे देता है या बेच देता है तो यह ऐसे काम हैं जो सन्धि लिखी जाने के बाद अति शीघ्र समाप्त हो जाते हैं अतः सन्धिपत्रकी फिर कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। कुछ सन्धियोंमें स्वतन्त्र मीमांसा दी रहती है कि यह सन्धि इतने दिनोंके लिये है। उतनी अवधि बीन जानेपर वह सन्धि आप ही समाप्त हो जाती है। यह दूसरी बात है कि दोनों पक्ष सहमत होकर अवधिको फिर बढ़ा लें।

कुछ सन्धियाँ दापारोप करके समाप्त कर दी जाती हैं। यदि सन्धि लिखे जानेके कुछ दिन बाद एक पक्षको यह देख पड़े कि उसमें कोई ऐसी शर्त है जो अन्ताराष्ट्रीय वधा विरुद्ध, या लिखते समय प्रतिनिधियोंपर अनुचित दबाव डाला गया था या दूसरा पक्ष उसका पालन नहीं कर रहा है तो उसे अधिकार है कि सन्धिको दूधन ठहरा कर उसका पालन करना अस्वाकार कर दे। यदि वह यह दिखाने सके कि जिस परिस्थितिमें सन्धि लिखी गयी थी वह अब नहीं रही या अब यह सन्धि उसकी सत्ताके लिये हानिकर प्रतीत हो रही है या जिस लाभकी अज्ञाने लिखी गयी थी वह नहीं हो रहा है तब भी सन्धि रद्द हो जायगी परन्तु ऐसी दशामें यदि दूसरा पक्ष यह दिखला सके कि सन्धिके यथायक तोड़ दिये जानेसे उसकी क्षति हागी तो पहिले पक्षको इस क्षतिकी पूर्ति करनी होगी।

सब ठीक राज जब चाहते हैं किसी न किसी बहाने सन्धियोंको रद्द कर डालते हैं। १९३१ में तुर्कीके बोस्त्रिया और हज़गोविना प्रान्त भास्त्रियाको इस्त्रालिये दिये गये कि वह उनपर शासन करे पर यह स्पष्ट लिखा दिया गया कि इनपर प्रभुत्व तुर्कीका रहेगा।

१९६५ में आस्ट्रियाने इन्हें अपने राज्यमें मिला लिया। कहनेको उसने कई बहाने बतलाये और यह दिखलानेका प्रयत्न किया कि सन्धिका उल्लंघन और लोग बहुत पहिलेसे करते आ रहे हैं और स्वयं तुर्की कई बातोंमें उसके विरुद्ध आचरण कर चुका है। जो कुछ हो, आस्ट्रियाकी कार्यवाही किसी दृष्टिसे न्याय्य न थी, यूरोपके अन्य राजाने भी उसकी निन्दा की। इसपर उसने तुर्कीको क्षतिपूर्ति स्वरूप कुछ धन देना तो स्वीकार किया पर दोनों प्रान्तोंको न छोड़ा। हम जर्मनी और बेल्जियमका उदाहरण दे चुके हैं। ऐसे उदाहरण बहुतसे होते रहते हैं। यदि आपसकी सन्धिके होते हुए भी एक राज दूसरेपर सहसा आक्रमण कर बैठे तो उसके बलात्कारसे सन्धि आप ही टूट जाती है।

पहिले तो यही विचार होता है कि युद्ध छिड़ते ही सन्धि-बॉका अन्त हो जाता होगा पर वस्तुतः ऐसा नहीं है। कुछ सन्धियाँ ऐसी हैं जिनका निःसन्देह लोप हो सन्धियाँ पर युद्धका जाता है पर सबका नहीं। कुछ सन्धियाँ युद्ध-प्रभाव कालके लिये ही लिखी जाती हैं। उनमें यह शर्त

होती है कि यदि हममें युद्ध छिड़ गया तो आप-समें कैसा बर्ताव होगा। यह सन्धियाँ स्वतः चालू रहती हैं। ऐसी सन्धियाँ भी चालू रहती हैं जिनमें दोनों योद्धा दलोंके अतिरिक्त कोई और भी सम्मिलित हो। १८७२ में रूस, ब्रिटेन और हालैंडमें एक सन्धि हुई। उस समय रूसका हालैंडपर क़ण था। सन्धिद्वारा ब्रिटेनने इसका आधा चुकाना स्वीकार किया और इसके बदले उसे डच उपनिवेशोंका एक अंश मिला। १९११ में क्रीमियन युद्ध हुआ जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस और तुर्की एक ओर थे, रूस दूसरी ओर था। ब्रिटिश पार्लमेण्टमें यह प्रश्न उठा कि ऐसी दशामें रूसको रुपया देना बन्द कर दिया जाय

पर अन्तमें यही निश्चय हुआ कि १८७२ की सन्धिको तोड़ना राष्ट्रीय मानके विरुद्ध होगा अतः युद्धके समय भी रूस सरकारको ब्रिटेनसे बराबर रुपया मिलता रहा ।

छठवाँ अध्याय ।

अन्ताराष्ट्रिय पञ्चायतें और न्यायालय ।

यदि राजोंमें झगड़े न हों या आपसके समझौतेसे उनका निपटारा हो जाय तो बहुत ही अच्छा हो पर सदैव ऐसा नहीं होता । कभी कभी बात इतनी बढ़ जाता है कि साधारण बातचीत या लिखा पढ़ीसे काम नहीं चलता । उस समय सिवाय युद्धके और कोई उपाय नहीं सूझता । पर यह सम्भव है कि यदि कोई तीसरा राज बीचमें पड़ जाय तो आपसमें फिर मेल हो जाय । यदि युद्ध छिड़ भी गया हो तो किसी तीसरेके बीचबिचाव करनेसे उसका शीघ्र समाप्त होना सम्भव है नहीं तो उभय पक्षमेंसे कोई भी लज्जाके मारे बन्द करनेका नाम न लेगा, जबतक कि दोनों या कमसे कम एक पूर्णतया निष्क्रमा न हो जाय ।

कभी कभी एक और युक्तिसे वैमनस्य दूर हो जाता है । जिन दो राजोंमें विवाद होता है वह एक अनुसन्धान मण्डल^१ नियुक्त करते हैं जिसमें दोनों ओरके तुल्य-संख्यक प्रतिनिधि होते हैं । इसका सभापति या तो अनुसन्धान मण्डल किसी तीसरे राजका निवासी होता है या मण्डलके सदस्योंको अधिकार दिया जाता है कि अपनेमेसे किसीको सभापति चुन लें या बारी बारी दोनों देशोंके प्रतिनिधियोंमे से सभापति चुने जाते हैं । यह मण्डल विवादग्रस्त विषयोंकी पूरा पूरी जाँच करता है । चूंकि इसमें दोनों ओरके

* Commission of Enquiry

प्रतिनिधि होते हैं इसलिये इसपर पक्षपातका आरोप नहीं लगाया जा सकता। इसकी रिपोर्ट देखकर आपसमें समझौता हो जाता है।

परन्तु यदि इन सब युक्तियोंसे काम न चला और युद्ध छिड़ ही गया या छिड़नेके लगभग हुआ तो अन्य राज्यों (एक या अनेक)

को बीचमें पड़ना पड़ता है। इसके दो प्रकार सत्सेवा आर हैं, एकको सत्सेवा † और दूसरेको मध्यस्थता † मध्यस्थता कहते हैं। इन दोनोंमें बहुत भेद है। यदि तीसरा

राज दोनों पक्षोंसे इतना ही कहता है कि आप लोग लड़िये मत, मैं अमुक स्थानपर प्रबन्ध कर देता हूँ, वहाँ अपने अपने प्रतिनिधियोंको भेज दीजिये, वह लोग मिलकर समझौतेकी शर्तें तय कर लें तो इसका ऐसा करना सत्सेवा कहलाता है। युद्धके समय दोनों पक्षोंमें आपसका पत्र-व्यवहार बन्द हो जाता है इसलिये सत्सेवा करनेवालेको ही यह कहना पड़ता है कि आप लोग जिन शर्तोंपर मेल करनेको राजी हों मुझे बतलाइये, मैं एककी बातें दूसरे तक पहुँचा दूँ। बस इसके आगे उसका दायित्व नहीं होता। वह मेलका बाझ अवसर उत्पन्न कर देता है, उसके आगे विवादी जो चाहें करें।

मध्यस्थका काम इससे गम्भीर है। वह केवल मार्ग बताकर नहीं रह जाता प्रत्युत मेल करानेका पूरा प्रयत्न करता है। वह दोनोंको समझा बुझाकर शर्तें तय कराता है, थोड़ा बहुत दबाव भी डालता है। इसलिये मध्यस्थ वही हो सकता है जिसकी निष्पक्षतापर उभय पक्षको विश्वास हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका कुछ भी स्वार्थ नहीं होता। एक तो शान्तिस्थापनमें सबका ही हित है, दूसरे यदि उसके पड़ासमें लड़ाई हो रही है

तो अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूपसे उसकी भी क्षति होती होगी या वह समझता होगा कि यदि युद्ध बहुत दिनोंतक चला गया तो एक या दोनों पक्ष इतने जर्जर हो जायेंगे कि वह व्यापार इत्यादिमें भाग न ले सकेगा जिससे अन्य देशोंकी भी हानि होगी। अस्तु, इस प्रकारका उदार स्वार्थ रखते हुए भी मध्यस्थता निष्पक्ष होना सम्भव है। उसका दायित्व बहुत बड़ा होता है। १९२८ में स्पेन में पेरू, चिली और ईक्वेडोरसे युद्ध हुआ। उसमें संयुक्त राज मध्यस्थ बना और उसने सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर तक किया। १९६२ में रूस जापानमें जो युद्ध हुआ था उसमें भी अमेरिका ही मध्यस्थ था।

सत्सेवा बहुधा मध्यस्थतामें परिणत हो जाती है। रूस-जापान युद्धमें भी पहिले अमेरिकाने सत्सेवाका ही प्रयत्न किया था। मध्यस्थताका सबसे विलक्षण उदाहरण गत महासमरमें मिलता है। एक ओर जर्मनी, आस्ट्रिया, तुर्की और बल्गेरिया लड़ रहे थे, दूसरी ओर ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, बेल्जियम और अमेरिका थे। युद्ध आरम्भ होनेके चार वर्ष पीछे १९७५ में जर्मनीने स्वीज़रलैण्डकी सत्सेवाके द्वारा अमेरिकासे, जो उस समय स्वयं विरोधी था, यह प्रार्थना कराया कि वह मध्यस्थ बनकर सन्धि करा दे। शत्रुको मध्यस्थ बनाना अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारमें एक सरासर नयी बात थी।

सत्सेवा या मध्यस्थता दो तीन अवस्थाओंमें हो सकती है। सबसे सरल तो वह है जिसमें दोनों पक्ष किसी तीसरेसे बीचमें पड़नेकी प्रार्थना करें। उसे अधिकार है कि इस प्रार्थनाको अस्वीकार कर दे पर बहुधा ऐसा नहीं होता। कभी कभी एक ही पक्षकी ओरसे प्रार्थना की जाती है। इस दशामें सफलता तभी हो सकती है जब कि दूसरा पक्ष भी सत्सेवा या मध्यस्थता स्वीकार करे।

कभी कभी कोई भी प्रार्थना नहीं करना वरन् तामरा राज स्वतः बीचमें पड़ता है। इस दशामें उसकी सफलता दोनोंकी स्वीकृति-पर निर्भर है।

हमारे भारतीय राजाओंके मज्जामें ब्रिटिश परकीर्षी मत्सेवा और मध्यस्थतासे तत्र होते हैं। विशेषता यह है कि वह इन सबकी अधिपति है, इसलिये उसकी बात कोई टाल नहीं सकता।

परन्तु कभी कभी कोरी मध्यस्थतासे काम नहीं चलता। दोनों पक्ष अपने अपने स्वार्थपर अडे रहते हैं, मध्यस्थ उनका ध्यान अन्ताराष्ट्रिय व्यवहार या नीति और न्यायकी पञ्चायत ओर भले ही आकर्षित करे पर उसकी सुनता

कौन है। विशेष करके, यदि एक पक्ष बलवान् है तो वह अपनी इच्छाके अनुसार ही सब कुछ चाहता है। इसलिये कई बार समझदार राज मध्यस्थ बनना अस्वीकार कर देते हैं। वह कहते हैं कि हमें पञ्च मान लो तो हम हाथ डालें। यदि उभय पक्ष सहमत हुए तो पहिले एक पञ्चनामा लिखा जाता है। पञ्च काय जागा, कहाँ और कब निर्णय होगा, किस प्रकार दोनों ओरसे प्रमाण उपस्थित किये जायंगे, किन किन भाषाओंका प्रयोग किया जायगा, इत्यादि निर्णय प्रश्नोंका पूरा विवरण इस पञ्चनामे में दिया रहता है। कोई राज पञ्चायतके सामने ऐसा प्रश्न नहीं रखना जिसका सम्बन्ध उसकी प्रतिष्ठा और स्वाधीनताने हो। अस्तु जब सब बात तय हो जाती है तो जो पञ्च चुने जाते हैं वह न्यायालयोंके समान पूरी कार्य-वाही करके अपना निर्णय सुनाते हैं। बू कि दोनों पक्ष पहिले ही वचन दे चुके होते हैं कि हम पञ्चोंकी बात मान लेंगे इसलिये

फिर कोई झगडा नहीं होता, कमसे कम इस समयतक इसका कोई स्पष्ट उदाहरण नहीं मिलता ।

अब पञ्चायत की प्रथा इतनी अच्छी प्रतीत होने लगी है कि बहुत सी पञ्चायत विषयक सन्धिवा हो गयी हैं । यह सन्धियां कई प्रकारकी है । किसी किसीमें तो दोनों पक्ष यह प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि भविष्यत्में हम दोनोंमें अमुक अमुक विषयोंपर (या अमुक अमुक विषयोंको छोडकर अन्य किसी भी विषयपर) विवाद हुआ तो हम उसका पञ्चायतसे निर्णय करायेंगे । किसी किसी सन्धिपर कई राजोंके इस विषयके हस्ताक्षर होते हैं कि हम अब अमुक अमुक प्रकारके सभी विवादोंका निर्णय पञ्चायतसे करायेंगे । इसे अनिवार्य पञ्चायत † कहते हैं ।

मध्यस्थता और पञ्चायतमें यह बड़ा अन्तर है कि मध्यस्थतामें कोई परम्परा नहीं होती । उसमें जो कुछ होता है वह दोनों पक्षोंके बलाबलको देखकर होता है परन्तु पञ्चायत न्यायालयके ढंगकी होती है । उसमें सिद्धान्त और विधान तथा परम्पराका ही विचार प्रधान होता है अतः उसका महत्त्व स्थायी होता है ।

पञ्चायतोंसे लाभ देखकर लोगोंके चित्तमें बार बार यह विचार उठता था कि कोई ऐसा प्रबन्ध होता जिससे युद्धकी सम्भावना ही मिट जाय और सब झगडे पञ्चायत-
हेगका स्थायी तस ही तय हुआ करें । १९५६ मे हेगमें जो न्यायालय सन्धि-परिषद् बैठी थी उसने इसपर विचार किया और एक स्थायी न्यायालय § की योजना की ।
पर न्यायालय नाममात्रको ही स्थायी था । प्रत्येक देशके कुछ प्रमुख नीतिज्ञों और विधानशास्त्रियोंकी एक सूची प्रकाशित की

† Ooligatory arbitration § Permanent Court of Justice

गयी और यह निश्चय हुआ कि भविष्यत्में वादी प्रतिवादी इसी सूचीमेंसे पञ्च चुना करें। पंचायतकी कार्यवाहीका क्रम भी ठीक कर दिया गया इस प्रकार कई अच्छे ऋगढ़े निपटाये भी गये। १९६४ में फिर सभा हुई। नियमोंका कुछ संशोधन हुआ। सरपच चुननेका नियम बनाया गया। यह भी निश्चय कर दिया गया कि किन किन विषयोंपर न्यायालय विचार किया करेगा।

यह सब हुआ पर कुछ कारणोंसे न्यायालयकी उतनी सफलता न प्राप्त हुई जितनी कि होनी चाहिये थी। एक तो वह स्थायी था नहीं। जब कोई विवाद हो तो दोनों पक्ष पञ्च चुनें, फिर पञ्च लोग एकत्र किये जाय। इसमें देर लगती थी। न्यायालयके सामने मुकदमा लड़नेमें व्यय भी बहुत होता था। इससे मुकदमे कम जाते थे। दूसरी बड़ी त्रुटि यह थी कि इसको अनिवार्य अधिकार प्राप्त न था। यदि ऐसा नियम हो जाता कि सभी राजाके सभी विवाद इसके सामने अवश्य लाये जाय तो इसे बड़ी सफलता होती। १९६४ में यह प्रश्न छेड़ा गया पर विरोध बहुत हुआ। एक ओर तो छोटे राजोंने विरोध किया। यद्यपि युद्धकी अपेक्षा पंचायतमें उनका अधिक लाभ था पर उन्हें व्यय घबराता था, दूसरे यह भी डर था कि न्यायालयपर बड़े राजोंका प्रभाव होगा, हमारी कोई सुनेगा नहीं। जमनी, जापान, इटली, आस्ट्रिया ऐसे बड़े राज भी विरोध कर रहे थे। इनकी महत्वाकांक्षा बढा हुई थी, अपने अपने राज्यक विस्तारकी प्रबल भूख थी। यह सोचते थे कि यदि सब विवाद न्यायालयमें ही तय होंगे तो युद्धका द्वार ही बन्द हो जायगा और हमारी राज्यवृद्धि असम्भव हो जायगी। १९७१ में युद्ध छिड़ा, उसके समाप्त होनेपर राष्ट्रसंघ स्थापित हुआ। इसके साथ ही यह विचार हुआ कि एक स्थायी न्यायालय स्थापित हो। इस बारका न्यायालय सचमुच

स्थायी होनेको था। उसके न्यायाधीश बराबर एक निश्चित स्थानपर रहते और उनके चुननेके ढंग और उनकी संख्याका ऐसा प्रबन्ध किया गया कि छोटे राजोंका यह आश्रेय जाता रहा कि बड़े राजोंका अनुचित दबाव पड़ेगा इसलिये अब उन्हें ऐसे न्यायालयके अधिकारको स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं। अनिवार्य पञ्चायतका प्रश्न फिर छिड़ा। संघकी कौन्सिलने दस विद्वानोंकी उपसमिति बनायी और उसे यह काम सौंपा कि वह न्यायालयके लिये नियम बनाये। उपसमितिने एक नियम यह बनाया कि यदि एक पक्ष न्यायालयके सामने विवादको रख दे, अर्थात् मुकदमा दायर कर दे, तो दूसरे पक्षको न्यायालय इस बातकी सूचना दे दे पर यदि वह स्वीकार न भी करे तो भी निर्णय कर दिया जाय। इसका अर्थ यह होता कि सभी विवाद न्यायालयके सामने हठात् आते और युद्धका स्यात् नाम ही मिट जाता। इस बार ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जापानने घोर विरोध किया। कारण स्पष्ट ही है। यह चारों युद्धमे विजयी हुए थे और शत्रुको दबाकर बहुत कुछ लाभ उठा चुके थे, बहुत कुछ उठानेकी आशा रखते थे। यदि सब काम न्यायालयसे हो होने लगे तो इनको अन्धेर करनेका अवसर कैसे मिलता। इन महाशक्तियोंके विरोधके कारण बात जहाँकी तहाँ रह गयी। फिर वही हेगवाली शर्त रह गयी कि यदि दोनों पक्ष चाहें तो पञ्चायत या न्यायालयसे निर्णय हो।

वस्तुतः यह बड़े महत्त्वका विषय है। यदि सब राजोंको यह बात सम्मत हो जाय कि अपने झगड़े न्यायालय द्वारा निपटारा करें तो ससारसे खून खराबा उठ जाय और राष्ट्रोंमे सौहार्द और भ्रातृभावका उदय हो। पर अभी इसमें देर प्रतीत होती है एक तो अन्तराष्ट्रिय विधानके सिद्धान्त ही अभी अनिश्चित रूपमें

हैं, दूसरे परस्परकी ईर्ष्या और भविश्वास भागे बढ़ने नहीं देता। परन्तु इससे हमें हताश न होना चाहिये। इन सब भड़कनोंके होते हुए भी मनुष्य उन्नति कर रहा है। यह असम्भव नहीं है कि एक दिन राजसमाजमें द्वेष और भविश्वासके स्थानमें स्नेह और विश्वास देन पढ़ने लगे।

तृतीय अण्ड- युद्ध-कालीन विधान

पहिला अध्याय ।

अन्ताराष्ट्रीय जीवनमें युद्धका स्थान ।

मानव समाजके आरम्भसे ही युद्ध होता आया है इसमें तो कोई सन्देह नहीं पर युद्ध करना अच्छा है या बुरा इसपर बहुत कम विचार किया गया है । एक ओर दादि धर्म-ग्रन्थ और बुद्धादि धर्मप्रवर्तक अहिंसाकी महिमा गाते चले आते हैं, दूसरी ओर युद्धकरनेवालोंकी प्रशंसा भी होती चली आयी है । लड़नेवालसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा जाना है कि जीत जानेपर तुम्हें पृथ्वीपर नाना प्रकारके सुख मिलेंगे और यदि लड़ाईमें मारे गये तो सीधे स्वर्ग जाओगे । युद्ध एक आवश्यक या अनिवार्य विपत्ति नहीं समझा जाता था प्रत्युत धर्मका एक प्रधान अङ्ग था । केवल इतना ही नहीं था कि जब कोई दुष्ट हमारे ऊपर आक्रमण कर ही दे तो उससे लड़ा जाय वरन् यह भी भाव था कि यदि अपनेमें बल हो तो अकारण भी दूसरोंको जीतना चाहिये । स्वयं वेदमें 'योऽस्मान् द्वेष्टि, यच्च वयं द्विष्म.' (जो हम लोगोसे द्वेष करता है, जिससे हम लोग द्वेष करते हैं) के ऊपर विजयकी प्रार्थना की जाती है । बलवान् नरेश राजसूय यज्ञ करते थे और उसके लिये घूम घूम कर दूसरे नरेशोंसे लड़ाई करते थे । कहनेका तात्पर्य यह है कि युद्ध करना युद्धमें कुशल होना, पराक्रम दिखलाना, बड़ी प्रशंसाकी बात समझी जाती थी । क्षात्रधर्म केवल स्वरक्षात्मक न था, परायेपर आक्रमण करना उसका मुख्य अंग था ।

पाश्चात्य जगत्में भी बहुत कुछ ऐसे ही विचार थे। ऐसे भी लेखक और दार्शनिक हुए हैं जो युद्धको बुरा, कह गये हैं पर उसकी प्रशंसा करनेवालोंकी सख्या भी कम नहीं है। आधुनिक जर्मनीके कई प्रसिद्ध दार्शनिकोंने युद्धका समर्थन किया है। उभय पक्षकी सम्मतिर्था पढ़ने योग्य हैं। हम कुछ अवतरण दोनों ओरके देते हैं।

हरेज़मसने कहा है “यदि मनुष्योंके जीवनमें कोई ऐसी वस्तु है जिसका प्रतिवाद करना, जिससे हर प्रकार बच, जिसे रोकना और बन्द करना हमारे लिये पूर्णतया उचित है तो वह युद्ध ही है। इससे अधिक बुरी, हानिकारक, विनाशकारक और घृणित और कोई वस्तु नहीं है। इसको दूर करना अत्यन्त कठिन है। ईसाइयोंका तो कहना ही क्या है, मनुष्यमात्रके लिये यह अत्यन्त निच वस्तु है।” हाब्ज कहते हैं “युद्धके समय व्यवसायके लिये कोई स्थान नहीं रहता क्योंकि उसका फल अनिश्चित होता है, कृषि बन्द हो जाती है, समुद्रयात्रा बन्द हो जाती है और समुद्रमार्गसे आनेवाली वस्तुका आयात बन्द हो जाता है; बड़े बड़े घर नहीं बनने, पृथ्वीतलका ज्ञान नहीं होता, समाजका अभाव हो जाता है, सबसे बुरी बात यह है कि आकस्मिक मृत्युका बराबर भय बना रहता है; और मनुष्यका जीवन अकेला, अल्प, दुःखमय और पशुवन हो जाता है।”

दूसरे पक्षवालोंके विचार इसमें नितान्त भिन्न प्रकारके हैं। जनरल बर्नहार्डि कहने हैं “यदि युद्ध न हो तो निम्न और पतित जातियाँ स्वस्थ और उन्नत जातियोंको दबा लें और सबकी ही अवनति हो जाय। युद्ध नीति धर्मका एक आवश्यक अंग है।” ट्राइट्स्केला कहना है “युद्ध ही वास्तविक राजनीतिशास्त्र है। युद्धमें ही राष्ट्रोंमें सचमुच राष्ट्रायता आती है। युद्धसे ही नये

राजोंका जन्म होना है और स्वतन्त्र राजोंके विवादोंका निपटारा होता है। युद्ध राष्ट्रीय अनैक्यकी रामबाण औषध और वीरोचित गुणोंका प्रधान शिक्षक है। शस्त्रप्रयोग द्वारा अपने नागरिकोंकी रक्षा करना प्रत्येक राष्ट्रका पहिला कर्तव्य है। इसलिये इतिहास (अर्थात् मानवसमाज) के अन्त तक युद्ध होने लगेंगे। सभी राजोंमें भी यही ऐसा न्यायालय है जिसमें उनके पृथक् और परस्पर विरोधी स्वत्वोंका निर्णय हो सकता है। क्या 'मनुष्य-जातिसे वीरभावको निर्मूल करनेका प्रयत्न उन्नी नीति नहीं है? यदि भविष्यत्में युद्ध कम भी हो जाय तो 'विराजिताके लिये नागरिकोंकी सेवा अपनी चरित्रे।' ए- साक्षर वह कहते हैं 'पृथक् राजोंका निरन्तर संपर्क वी इतिहासकी ओभा है। शक्ति ही स्वयंसे बड़ा धर्म है और धर्म या न्याय क्या है इसका निर्णय युद्धसे होता है।"

यह तो विद्वानोंकी सम्मतियां हुईं। यदि व्यवहारकी ओर दृष्टि डाली जाय तो वह बहुत कुछ द्वितीय पक्षकी ओर भी रहा है। इसका कारण यह था कि आपसमें इतना अविश्वास और द्वेष था कि किसी अन्तराष्ट्रिय न्यायालयकी कल्पना भी नहीं हो सकती था। आत्मरक्षा तथा सम्मानरक्षाके लिये, स्वराज-स्थापनके लिये, दुर्बलकी सहायताके लिये, मित्राय युद्धके ओर कोई साधन ही न था।

अब धीरे धीरे समय बदल चला है। राष्ट्रसंघ और अन्तराष्ट्रिय न्यायालयकी स्थापना हो रही है अभी यह संस्थाएं सन्तोषप्रद अवस्थामे नहीं हैं परन्तु बीज अच्छा पड़ा है। युद्धके पूर्णतः बन्द हो जाने की नहीं तो कम हो जानेकी तो अवश्य सम्भावना है। अच्छा है, लोगोंमें यह भाव तो फैले कि आपसके झगड़े बिना युद्धके निपट सकते हैं। इधर महात्मा गांधी अहिंसात्मक असहयोगको

युद्धका स्थान दे रहे है। देखा चाहिये यह नया शस्त्र कहां तक हिंसात्मक शस्त्रोंका स्थान लेता है। यदि भारतवासी इसका प्रयोग करके स्वराज प्राप्त कर सके तो समस्त के सामने एक नया आदर्श आ जायगा।

इतना अब पाश्चात्य देशोंके समझदार मनुष्य मानने लगे हैं कि युद्ध मनुष्यकी चरित्रोन्नतिका साधन नहीं है और न वह राज्योंका अपरिह्य कर्तव्य है। अब यह धारणा होने लगी है कि युद्ध करना मनुष्योचित प्रवृत्ति नहीं किन्तु हीन प्रवृत्ति है। जैसा कि 'दि स्टेट इन पीस ऐण्ड वार'मे अध्यापक वाटसन कहते हैं "राज वह सत्त्व है जिसका उद्देश्य उस परिस्थितिको स्थापित करना है जिसमें उसके नागरिक सर्वश्रेष्ठ जीवन जी सकें। लोग ऐसा समझते हैं कि यह उद्देश्य दूसरे राज्योंको क्षति पहुँचाये बिना पूरा नहीं हो सकता पर यह धारणा सत्यके विपरीत है। यह सच है कि राजका पहिला कर्तव्य अपने नागरिकोंके प्रति है पर ऐसा मानना अतः है कि यदि और राज्योंके साथ उदार व्यवहार किया जाय तो इस कर्तव्यका पालन नहीं हो सकता। प्रत्येक राष्ट्रके सामने पृथक् पृथक् प्रश्न हैं पर उनको सुलझानेके लिये यह माननेकी आवश्यकता नहीं है कि उसकी और राष्ट्रोंके साथ अनिवार्य शत्रुता है। एक राजका हित दूसरे राजके हितसे पृथक् नहीं किया जा सकता। राज्योंका अन्योन्याश्रित होना ही सत्य है"।

यों उ्यों समस्त राज इस बातको समझते जायगे कि वह एक दूसरेके आश्रित है त्यों त्यों लड़ाई कम होती जायगी। जब एकके बिना दूसरेका काम ही नहीं चल सकता तो आपसमे मिलकर रहनेमें ही लाभ है। पर अभी इन विचारोंके अनुसार काम नहीं हो रहा है। युद्ध बुरी चीज सही पर उसे अभी मिटा नहीं

सकते । ऐसी दशामें यही सम्भव और उचित है कि उसकी भीषणता कम की जाय, उसे ऐसे नियमोंसे बांधा जाय कि लोग एक दूसरेको अनावश्यक कष्ट न दें और जो नागरिक शान्तिमय कामोंमें लगे हों उनके साथ व्यर्थकी छेड़छाड़ न हो तथा जो तदस्थ हों उनके स्वत्वोंकी रक्षा होती रहे ।

प्राचीन कालमें भी इस प्रकारके नियम बने जाते थे । मनु-स्मृतिके सातवें अध्यायमें बहुतसे नियम दिये हुए हैं, उनमें से कुछको हम उदाहरणार्थ यहां उद्धृत करते हैं:—

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून् ।

न कर्णिभिर्नापिदिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥

न च हन्यात्स्थलारूढं न बलीवन् कृताम्जलिम् ।

न मुक्तकेशन्नासीनं न तवास्मीतिवादिनम् ॥

न सुप्तं न विसन्नाहन्नं नग्नं निरायुधम् ।

नायुध्यमानं पश्यन्तश्च परेण समागतम् ॥

नायुधव्यसनप्राप्तञ्चातञ्चातिपरीक्षितम् ।

न भातश्च परावृत्तं सतान्धर्ममनुस्मरन् ॥

(मनु ७ ९०, ९१, ९२, ९३)

अर्थात् विषसे बुझे हुए, अग्निसे तप्त, शरीरको फाड़ देनेवाले शस्त्रों द्वारा शत्रुसे युद्ध न करे । जो भूमिपर खड़ा हो, नपुसक हो हाथ बांधे हुए हो, जिसके सिरके बाल बिखरे हों, बैठा हो, 'मैं आपका ही हूँ' कहकर अभयदान मांगता हो, सोया हो, निःशस्त्र हो, केवल तमाशा देख रहा हो, दूसरेके साथ युद्धस्थलमें यों ही आ गया हो, जिसके शस्त्र छिन गये हों, घायल हो, दुःखी हो, डर गया हो या भाग गया हो, इन सभीको सद्धर्मका जाननेवाला न मारे ।

यह नियम बहुत ही उदार हैं और जिन दिनों युद्ध करना केवल क्षत्रियोंका काम था उन दिनोंके लिये पर्याप्त थे । आर्य

मरेशोंकी केवल आपसमें लड़ाइयां होती थीं । कोई ऐसा प्रबल राज न था जो आर्य सभ्यतासे टकर लेता । जब मुसलमानोंका सामना हुआ तो एक नयी ही परिस्थिति उत्पन्न हो गयी । उनके लिये सभी आर्य एकसे थे, गोब्राह्मणकी उन्हें कोई प्रतिष्ठा न थी, मन्दिरोंपर उनका हाथ पहिले बढता था, उस समय यह नियम भी भूरे ठहरे ।

पर आर्यकालमें भी कई ऐसी बातें होती थीं जो बहुत अच्छी नहीं प्रतीत होतीं । युद्धमें जीते हुए मनुष्य बराबर 'दास' बनाये जाते थे, लूट भी होती थी, स्त्रियां तक पकड ली जाती थीं । स्वयं मनुजी कहते हैं:—

रथाश्वं हस्तिनं क्षत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रिय ।

मर्चं द्रव्याणि कुप्यञ्च यो यज्जयति तस्य तत् ॥

(मनु ७-१६)

अर्थात् रथ, घोडा, हाथी, खेत, धन, धान्य, पशु, स्त्री, सब प्रकारके धात्वादि द्रव्य—इन सबको जो जीते वही इनका स्वामी होता है ।

आजकल ऐसे नियम नहीं है । घुराइयां अब भी बहुत हैं, जब मनुष्यकी पाशव प्रवृत्तियोंको खुल खेलनेका अवसर मिलता है तो सब नियम रक्खे रह जाते हैं पर यह मानना पड़ता है कि फिर भी पहिलेसे बहुत कुछ आशाजनक सुधार हुआ है ।

दूसरा अध्याय ।

असामरिक्त ब्रह्मप्रयोग, और रण-घोषणा ।

समर एक ऐसा शब्द है जो सुननेमें बड़ा साधारण प्रतीत होता है पर इसकी परिभाषा बहुत सरल नहीं है। समरका पर्याय लड़ाई समझा जाता है परन्तु प्रत्येक लड़ाई समर नहीं है। अन्ताराष्ट्रिय विधानने इस शब्दके अर्थ-समरकी परिभाषा को सङ्कुचित कर दिया है। समरके दो मुख्य लक्षण हैं —

(क) वह एक ऐसी लड़ाई है जिसके दोनों पक्ष या तो राज है या एक पक्ष राज है और दूसरा पक्ष एक ऐसा समुदाय है जो इस लड़ाईको अन्ताराष्ट्रिय विधानके नियमोंके अनुसार लड़ रहा है और जिसे इस लड़ाईके लिये वह सब अधिकार दे दिये गये हैं जो राजोंको प्राप्त होते हैं ।

(ख) वह एक ऐसी लड़ाई है जिसके दोनों पक्ष आपसके शान्तिमय सम्बन्धको तोड़कर अपने विवादका निर्णय शस्त्रप्रयोग द्वारा करना चाहते हैं ।

इनमें दूसरा लक्षण कुछ अनावश्यक सा प्रतीत होता है क्योंकि साधारण धारणा यह है कि जहां लड़ाई अर्थात् शस्त्र-प्रयोग होगा वहां शान्तिमय सम्बन्धको तोड़नेकी इच्छा भी अवश्य ही होगी । पर वस्तुतः ऐसा नहीं है । कई ऐसी दशाएँ हैं जिनमें शस्त्रप्रयोग होता है पर दोनों पक्ष एक दूसरेके प्रति अरिता की अवस्थामें नहीं माने जाते अर्थात् उनका सम्बन्ध अरिओं

(शत्रुओं) जैसा नहीं माना जाता । लड़ाई होती है पर उसे समर नहीं कहते । इसका विस्तृत वर्णन आगे होगा । पहिला लक्षण भी महत्वका है । पहिले समयमें प्राच्य और पाश्चात्य सभी देशोंमें ऐसी लड़ाइया होती थीं जिनसे किसी राजका कोई सम्बन्ध न था । यदि दो बड़े ठाकुरों या धनिकोंका आप-समे मनमुटाव होता था तो दोनों सैनिक भर्ती करके आपसमें लड़ पड़ते थे । आजकल यदि ऐसी लड़ाइयाँ हों तो उन्हें समर नहीं कहेंगे और जो लोग ऐसी लड़ाइयोंकी आयोजना करेंगे उनपर फौजदारीका अभियोग चलाया जायगा । अधीन सरकारोंके काम उनके अधिपतियोंके काम माने जाते हैं । भारत कोई स्वतन्त्र राज नहीं है पर भारतसरकार जो लड़ाइया लड़ती है वह ब्रिटिश राजके नामपर, अतः इन लड़ाइयोंको समर कह सकते हैं । यही नियम व्यापारिक कम्पनियोंके लिये भी लागू है ।

असामरिक बलप्रयोग कई प्रकारसे किया जाता है । बलवान् राज दुर्बल राजोंके विरुद्ध बहुधा इस साधनसे काम लेते हैं । नामको लड़ाई नहीं होती परन्तु देखनेमें लड़ाईके सभी लक्षण विद्यमान रहते हैं । धन-जनकी हानि होती है, साधारण काम धन्धे रुक जाते हैं, पर कहा यही जाता है कि आपसमें समर नहीं हो रहा है । अमित्रावस्था भले ही हो परन्तु शत्रुभाव नहीं है ।

यों तो असामरिक बलप्रयोगके, जैसा कि ऊपर कहा गया कई प्रकार हैं पर यहाँपर हम उनमेंसे दो तीन मुख्य मुख्यका दिग्दर्शन कराना चाहते हैं ।

(क) प्रतिघात ।*

प्रतिघातका अर्थ है बदला । प्रतिघात भी कई प्रकारका होता

है। यदि एक राजने किसी दूसरे राजसे आनेवाले मालपर आयात कर बढ़ा दिया तो यह दूसरा भी ऐसा ही कर प्रतिघात सकता है। यह भी प्रतिघात है पर इसमें बल-प्रयोग नहीं है। बलप्रयोगात्मक प्रतिघातके भी कई उदाहरण हैं।

१९४१, १९४२ में फ्रांसवाले तांकिन प्रदेशपर अपना अधिकार स्थापित कर रहे थे। यह प्रदेश चीनके दक्षिणमें है और यद्यपि चीन साम्राज्य का अंग नहीं था परन्तु चीन सरकार बहुत दिनोंसे इसे अपने अधिकार और प्रभावक्षेत्रमें मानती आयी थी। तांकिन के स्वदेशरक्षक सिपाहियोंमें बहुत से चीनी भी देख पड़े। फ्रांसने चीनसे कहा कि आप इन बातको रोकिये। चीनने टालमटोल करना चाहा। क्योंकि उसे यह पसन्द भी न था कि तांकिनपर फ्रांसका आधिपत्य हो। इसपर फ्रांसके एक बेड़ेने फू-चाङके किलेपर गोलाबारी की और फार्मोसा द्वीपके कुछ स्थानोंपर कब्जा कर लिया। इस प्रकार चीनपर दबाव डाला गया पर नामको फ्रांस और चीनमें शत्रुभाव नहीं माना गया। अन्तमें फ्रांसकी विजय रही और चीनने उसकी बात मान ली।

अभी हालकी ही बात है कि छ इटालियन अफसरोंको किसीने यूनानी सीमाके भीतर मार डाला। इटालीने यूनानके सामने कई कड़ी शर्तें रखीं जिनको अपमानजनक समझकर यूनानने अस्वीकार किया। तत्काल ही इटालियन सेनाने यूनानके काफूर् नगरपर कब्जा कर लिया और इटालियन सरकारने यह घोषणा कर दी कि जबतक यूनान सरकार उसकी शर्तोंको न पूरा करेगी तबतक वह काफूर् न खाली करेगी।

रूर प्रान्तका उदाहरण भी इसी प्रकारका है। महायुद्धके पीछे यह निश्चय हुआ कि जर्मनी अपने विजेताओंको हर्जाना देगा।

पर उससे जो मांगा गया वह इतना अधिक था कि उसका चुकाना जर्मनीकी सामर्थ्यके बाहर था। उसने कई बार यह बात पेश की परन्तु फ्रांस और बेल्जियमको विश्वास न होता था। उनका बराबर यही कहना था कि जर्मनी बहाना करता है। जर्मनी निरत समयपर मांगकी किस्ते पूरी न कर सका इसपर फ्रांस और बेल्जियमने उसके रूर और राइनलैण्ड प्रदेशोंपर कब्जा कर लिया। बहुत स जर्मन जेलमें ठूँसे गये, कितने हताहत हुए, कितनोंकी सम्पत्तियाँ जब्त कर ली गयी। उन प्रदेशोंमें ठीक वही परिस्थिति देख पड़ती है जो विजित प्रदेशोंमें युद्धके पीछे देख पड़ती है। वहाँकी जनता फ्रेञ्च सरकारकी भद्र अवज्ञा करने लगी। फ्रांसका कहना था कि जब भद्र अवज्ञा बन्द कर दी जायगी और जर्मनी हमारे कथन और निर्देशके अनुसार हजाना देने लग जायगा और हमारे हाथमें ऐसी जमानतें रख देगा जिनसे हमें यह विश्वास हो जाय कि वह भविष्यत्में हमें धोखा न देगा तब हम इस प्रान्तको खाली कर देंगे। यह सब कुछ है पर जर्मनी और फ्रांसमें अरितावस्था नहीं मानी जाती। मैत्री नहीं है पर शत्रुता भी नहीं है। फ्रांस और बेल्जियम जर्मनीके साथ समर नहीं वरन् केवल असामरिक बलप्रयोग कर रहे हैं।

१९६५ मे हालैण्ट और बेनेज्वीलामें कुछ मतभेद हो गया। हालैण्डकी कई शिकायतें थीं जो पत्रव्यवहारसे दूर न हो सकीं। अन्तमें उसने बेनेज्वीलामें दो तटरक्षक जहाजोंको पकड़ लिया और उनको तबतक न छोड़ा जबतक शिकायतें दूर न हो गयीं।

इन उदाहरणोंसे प्रतिघातके स्वरूपका कुछ कुछ अनुमान हो सकता है। प्रतिघात और समरमें प्रधान भेद यही है कि प्रतिघातकी अवस्थामें पहिलेकी सन्धियोंका पूरा पूरा पालन होता है,

आपसमें पत्रव्यवहार जारी रहता है आर जो कुछ झगडा होता है उसका क्षेत्र परिमित और सकुचित होता है ।

(ख) नाववरोध । §

नाववरोधका अर्थ है जहाजोंको रोकना । यह दो प्रकारका होता है—शान्तिमय * और युद्धात्मक † । जब कोई राज किसी कारण विशेषसे कुछ कालके लिये अपने देशके जहाजोंको नाववरोध बन्दरमें रोक देता है तो उसे शान्तिमय नाववरोध कहते हैं । इससे बलप्रयोगसे कोई सम्बन्ध नहीं है । युद्धात्मक नाववरोध वह है जिसमें कोई राज किसी परराजके व्यापारिक जहाजोंको अपने बन्दरमें रोक लेता है ।

१८६० में फ्रांस और ब्रिटेनमें लडाई हो रही थी । ब्रिटेनको यह आशंसा हुई कि हालैण्ड शीघ्र ही फ्रांससे मिल जायगा । उन दिनों हालैण्डके बहुतसे व्यापारिक जहाज ब्रिटेनके बन्दरोंमें पड़े हुए थे । ब्रिटेनने उन सबका बाहर जाना बन्द कर दिया । बस यहाँतक नाववरोध है । यदि आपसमें समझौता हो जाय तो जहाज छोड दिये जाते हैं, यदि समझौता न हुआ वरन् समर छिड गया तो उन जहाजोंके साथ वैसा ही बर्ताव किया जाता है जैसा समन्कालमें शत्रु-सम्पत्तिके साथ किया जाता है । इसका वर्णन आगे होगा ।

१९ वीं शताब्दीके आरम्भमें यह प्रथा सी चल पड़ी थी कि जब कोई राज किसी अन्य राजसे समर ठानना चाहता था तो वह उसके जितने जहाज मिलते थे उन्हें पहिलेसे ही रोककर जप्त कर लेता था । पर आजकल ऐसा करना अनुचित और अन्याय्य समझा जाता है । इतना ही नहीं, युद्ध छिड जानेपर

§ Embargo

* Pacific

† Hostile

भी शत्रु-राजके जहाजोंको दो चार दिनका अवकाश दिया जाता है कि वह चाहें तो चले जायं । १९६४ की हेग कान्फरेंसमें यह निश्चय कर दिया गया कि व्यापारिक जहाज जब्त न किसे जाय । परन्तु जिन जहाजोंकी बनावट ऐसी हो कि इनको सुगमतासे युद्धके जहाजोंमें परिणत कर सकते हैं उन्हें अब भी जब्त कर सकते हैं ।

नावरोधकी विशेषता यह है कि इसमें राजपर सीधे दबाव न डालकर उसकी प्रजाके एक अंशपर दबाव डाला जाता है ताकि उसके द्वारा राजपर दबाव पड़े ।

(ग) तटावरोध । *

तटावरोधका अर्थ है रोकना या रास्ता बन्द करना । इसके भी दो प्रकार हैं, शांतिमय और युद्धात्मक । युद्धात्मक तटावरोधका वर्णन आगे चलकर होगा, यहाँ शांतिमय तटावरोध तटावरोधसे तात्पर्य है । जब एक राज दूसरे राजके बन्दरोके सामने अपने सैनिक जहाजोंको खड़ा करके उनमेंसे आना जाना बन्द कर देता है तो उसे तटावरोध कहते हैं ।

पहिले पहिले १८८४ में ब्रिटेन, फ्रांस और रूसने यूनानके बन्दरोंका अवरोध किया । उन दिनों यूनान तुर्कोंके अधीन था पर स्वाधीन होना चाहता था । उपर्युक्त तीनों राज उसकी सहायता करना चाहते थे पर तुर्कीसे लड़ना भी नहीं चाहते थे । अवरोध करनेका उद्देश्य यह था कि तुर्की सैनिकोंको किसी प्रकारकी रसद न पहुँच सके और तुर्क सरकार विवश होकर इन लोगोंकी बात मानकर यूनानको स्वाधीन कर दे ।

इसके बाद अवरोधकी युक्तिसे कई बार काम लिया गया है । आरम्भमें इसका स्वरूप अनिश्चित था । ब्रिटेनका कहना था

कि केवल उसी राजके जहाजोंको रोकना चाहिये जिसके विरुद्ध अवरोध किया गया है, फ्रांसका कहना था कि सभी राजोंके जहाजोंको भीतर आने जानेसे रोकना चाहिये। अधिकांश राज ब्रिटेनसे सहमत थे। १९४४ मे अन्ताराष्ट्रिय विधानसमिति^३ने निम्नलिखित तीन नियम प्रकाशित किये—

(१) अवरोधकी अवस्थामें भी अन्य राजोंके जहाज भीतर जा सकते हैं।

(२) अवरोधकी पर्याप्त घोषणा करनी चाहिये और घोषणाके पीछे उसको समुचित बल द्वारा स्थापित रखना चाहिये। (केवल घोषणामे काम नहीं चल सकता। अवरोध करनेकी सामर्थ्य भी होनी चाहिये और उस सामर्थ्यमे काम भी लेना चाहिये।)

(३) अवरोध राजके जो जहाज भीतर घुसना चाहे उन्हें रोक लेना चाहिये पर अवरोधकी समाप्तिपर उन्हें उतारकर लौटा देने के स्वामियोंको लौटा देना होगा।

इस तीसरी शर्तपर कुछ विशेष ध्यान देना होगा क्योंकि यह उतनी स्पष्ट नहीं है जितनी कि प्रतीत होती है। १९६४ में हेगमें यह निश्चय हुआ कि यदि किसी राजकी तीसरी शर्तका प्रजाका रुपया किसी दूसरे राजके ऊपर बाकी अर्थ हो तो ऋण वसूल करनेके लिये बलप्रयोग न किया जायगा पर यदि ऋणी राजसे समझौतेके लिये या किसीको मध्यस्थ बनानेके लिये कहा जाय और वह इस बातपर ध्यान न दे या मध्यस्थकी बात न माने तो महाजन राजको अधिकार है कि जो चाहे करे। इस नियममें बलवान् राजोंके लिये बहुत अवकाश है। यदि वह समझौता करने या किसीको मध्यस्थ बनानेका नाम ही न ले प्रत्युत किसी दुर्बल

राजपर यह कहकर कि तुम्हारे यहाँ हमारा रुपया चाहिये आक्रमण कर दें तो इसके लिये कोई रोक नहीं है। वह चाहे बल-प्रयोग करें चाहे अवरोध करके जहाजोंको जलत कर लें। लारेसका मत है कि यदि रुपयेके लिये विवाद हो तो अवरोधकको अधिकार है कि उतने मूल्यके जहाजोंको पकड़ कर जलत कर ले जितना रुपया कि उसको मिलना चाहिये।

हम यह देख चुके हैं कि असामरिक बलप्रयोगमें वास्तविक समरके कई अश वर्तमान हैं। प्रधान भेद यही है कि इसका क्षेत्र छोटा होता है और भीषणता भी कम होती असामरिक बल-प्रयोगका औचित्य बड़े राज इसके द्वारा छोटे राजोंको तंग कर सकते और उपयोग हैं और उनको अपनी अनुचित मांगोंको पूरा कर-

नेपर विवश कर सकते हैं। पर इसका एक महान् उपयोग है। चाहे औचित्य हो या न हो परन्तु नर पीड़ा अवश्य कम होती है। उदण्ड राज समर करके भी छोटोको सता सकते हैं परन्तु समरमें जितनी भीषणता होती है उतनी इसमें नहीं है।

यह तो स्पष्ट ही है कि अल्प-बल वाले राजोंके विरुद्ध ही इसका सफल प्रयोग हो सकता है। बलवान् राज तत्काल ही इसके उत्तरमें रण-घोषणा कर देंगे क्योंकि इस प्रकारके दबावको मान लेना उनके स्वार्थिमानके विरुद्ध समझा जायगा।

यह प्रश्न बहुत दिनोंसे विवादग्रस्त चला आता है कि समर आरम्भ करनेके पहिले रण-घोषणा करनी चाहिये या नहीं।

पुराने आचार्योंकी सम्मतिमें तो ऐसा करना रण घोषणा आवश्यक था परन्तु जैसा कि एक लेखकने दिख-

लाया है १७५७ से १९२९ अर्थात् १७२ वर्षोंमें लगभग १२० समर हुए जिनमें स्यात् १० में उचित रण-घोषणा

हुई। घोषणाका अर्थ तो यह है कि लडाई छिड़नेके पहिले स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया जाय कि अब हमसे तुमसे लडाई होगी। ऐसा न करके यह नि सन्देह किया जाता था कि लडाई छिड़ जानेके पीछे इस आशयकी विज्ञप्ति निकाल दी जाती थी। फ्रांस और ब्रिटेनमें १८११ में समर आरम्भ हुआ पर उसकी विज्ञप्ति १८१३ में निकाली गयी। १९ वीं शताब्दीके अन्तमें कुछ प्रसिद्ध समरोंमें विज्ञप्तिया दी गयीं परन्तु कोई निश्चित नियम न बना। रूस और जापानमें १९३० के अषाढमें लिखा-पढी हो रही थी। २४ माघको जापानी राजदूतने रूसी परराज सचिवको एक पत्र दिया जिसमें स्पष्ट लिखा था कि “अब हमारा आपका मैत्री-सम्बन्ध विच्छिन्न होता है और जापानकी सरकारको यह अधिकार रहेगा कि अपनी शकामय स्थितिको सुरक्षित और सुदृढ बनानेके लिये चाहे जिस उपायका अवलम्बन करे”। इसका यही अर्थ हो सकना था कि लडाईं शीघ्र ही छिड़ेगी पर कोई स्पष्ट घोषणा नहीं की गयी। जब जापानी बेडेने रूसी बेडेपर धावा किया तो रूसने शिकायत की कि बिना सूचना दिये ही जापानने धोखेसे आक्रमण किया है। रण-घोषणा की गयी परन्तु इस आक्रमणके दो दिन बाद। जापानका उत्तर यह था कि पर्याप्त सूचना दी जा चुकी थी, पहिलेसे घोषणा करनेका कोई नियम नहीं है।

१९६४ की अन्ताराष्ट्रिय हेग कांफरेंसने इस प्रश्नपर सविस्तर विचार किया। वस्तुतः लडाईं छिड़ जानेपर रण-घोषणा निकालना एक व्यर्थ सी बात थी। अन्तमें कांफरेंसने दो उपयोगी नियम निर्धारित किये। पहिला नियम यह है, “सहेतुक रण घोषणा, अथवा पराश्रयी रणघोषणायुक्त अन्तिम पत्र, के द्वारा पहिलेसे और स्पष्ट रूपसे सावधान किये बिना” लडाईं आरम्भ न

की जाय। 'सहैतुक रणघोषणा' उसे कहते हैं जिसमें यह लिखा हो कि अमुक अमुक कारणोंसे हम लड़ाई छेड़ते हैं। 'पराश्रयी रणघोषणा युक्त अन्तिम पत्र' वह पत्र है जिसमें यह लिखा होता है कि तुमको हमारी अमुक अमुक शर्तें पूरी करनी होगी, यदि ऐसा न होगा तो हम इतने घण्टोंके भीतर लड़ाई छेड़ देंगे। हालैंड चाहता था कि इतना और बड़ा दिया जाय कि घोषणाके कमसे कम २४ घण्टे पीछे युद्ध आरम्भ हो पर यह प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ। घोषणा करनेके (अर्थात् जिससे लड़ना है उसे सूचित करनेके) एक क्षण पीछे भी लड़ाई छिड़ सकती है।

दूसरा नियम यह है कि "तटस्थ राज्योंको समरावस्थाकी सूचना तत्काल देनी चाहिये। सूचना तारके द्वारा भी दी जा सकती है पर जबतक सूचना न दी जा ले तबतक उनके साथ वैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता जैसा कि समरावस्थामें तटस्थोंके साथ किया जाता है।" इसके साथ एक उपनियम भी लगा हुआ है कि यदि यह प्रमाणित हो जाय कि अमुक तटस्थ राजको समरावस्थाका पता था तो उसके साथ सब नियम बत जायगे, चाहे उसके पास सूचना न भी पहुँची हो।

इन नियमोंमें प्रकाशित होनेके पीछे यूरोपमें दो समर हुए। १९१८ में इटलीने तुर्कीसे युद्ध ठना और १९७१ में महासमर आरम्भ हुआ। दोनोंमें यह नियम पालन किये गये।

जो राज बलवान् है और युद्धके लिये सन्नद्ध है उसे रणघोषणा करनेमें कोई अड़चन नहीं होती फिर भी यह नियम उपयोगी है। सम्य जगत् लड़ाईके कारण जान जाता है और तटस्थ राज सँभल जाते हैं। यदि असामरिक बलप्रयोगके लिये भी कुछ ऐसे ही नियम बन जायें तो अच्छा हो। आजकल यह प्रथा तो चल पड़ी है कि कुछ घण्टों (प्रायः २४ या ४८) का अवकाश दिया

जाता है और यह कह दिया जाता है कि यदि इतने घण्टोंमें हमारी बातें न मानोगे तो हम जो चाहेंगे करेंगे। लोगोंको राष्ट्रसंघसे बड़ी बड़ी आशाएँ थीं पर वह खषुष्पवत् मिथ्या निकलीं। अभी उसने इटलीको यूनानके विरुद्ध प्रतिघात करनेसे रोकना चाहा पर इटलीने उसकी बात मानना स्वीकार न किया। राष्ट्रसंघको इटलीसे दबना ही पड़ा।

मिसरा अध्याय ।

समरारम्भके तात्कालिक परिणाम ।

प्रत्येक प्रभु राजको यह अधिकार है कि वह अन्य राजोंसे युद्ध करे या शान्ति-सम्बन्ध बनाये रखे। आजकल राष्ट्रसंघ इस अधिकारको कुछ कम करना चाहता है पर उसे सफलता नहीं हुई है। सम्भव है भविष्यत्में अरिताकी स्वाकृति कोई वास्तविक राष्ट्रसंघ बने जो इस काममें समर्थ हो पर अभीतक स्वतंत्र राजोंपर कोई सच्ची रोक थाम नहीं है। ज्योंही कोई राज किसी अन्य राजसे लड़ाई आरम्भ करता है त्योंही उसे योद्धा या समरकारी राजोंके सब अधिकार प्राप्त हो जाते हैं और सब कर्तव्य लागू हो जाते हैं। अन्य राज इस विषयमें कुछ नहीं बोल सकते। उनको उस परिस्थितिको स्वीकार कर ही लेना पड़ता है।

परन्तु राजातिरिक्त समरकारी समुदायोंके लिये यह बात नहीं है। जिस समय किसी सभ्य राजका कोई टुकड़ा स्वाधीन होनेका प्रयत्न करता है उस समय उसे तत्कालीन सरकारसे लड़ना ही पड़ता है। बिना लड़ाईके स्वराज नहीं मिलता। प्रार्थना करने, तीव्र भाषामें लेख लिखने, लम्बे चौड़े व्याख्यान देनेसे स्वतंत्रताकी देवी प्रसन्न नहीं होती, वह नरबलिकी भूखी है। आजकल महात्मा गांधीने अहिंसात्मक असहयोगरूपी एक नया साधन बताया है। अभी यह अपरीक्षित है। सम्भव है इससे भारतको सफलता हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो समस्त पृथिवीके सामने एक नया आदर्श आ जायगा और समर विधानका रूप ही कुछ और हो

जायगा परन्तु अभी इस समय तकका अनुभव उसी लड़ाई-को स्वराजका साधन बताता है जिसमें बल-प्रयोग होता है। इसके साथ ही यह स्मरण रखना चाहिये कि अहिंसात्मक लड़ाईसे भी वही परिस्थिति उत्पन्न हो जायगी जो हिंसा द्वारा होगी अतः जिन नियमोंका यहाँ उल्लेख होगा वह सभी अवस्थाओंमें लागू होंगे।

अस्तु, जब कोई सभ्य समुदाय स्वतंत्र होनेका प्रयत्न करता है तो उसे अपने देशकी सरकारसे लड़ना पड़ता है। सरकार उस समुदायको विद्रोही दल कहती है। उसमें से जो पकड़ा जाता है उसपर राजद्रोहका आरोप होता है और फाँसी आदिका दण्ड दिया जाता है। यदि सरकारके भाग्य अच्छे हुए तो उसकी दमन-नीति सफल हो जाती है और विद्रोह शान्त हो जाता है परन्तु यदि प्रजा दृढ़सङ्कल्प हुई तो सहस्र सहस्र आपत्तियोंको झेलकर भी अपने स्वार्थ-प्रेमको मुरझाने नहीं देती। ऐसी दशामें सरकारके पूर्ण प्रयत्न करने पर भी विद्रोह बल पकड़ता जाता है और धीरे धीरे देशका एक अंश विद्रोहियोंके अधिकारमें आ जाता है। परराज यह सब चुपचाप देखते रहते हैं। विद्रोहियोंकी ओरसे बोलना पारस्परिक सौजन्यके विरुद्ध है। पर जब विद्रोहियोंका अधिकार देशके किसी भागपर हो जाता है और वह वहाँके निवासियोंसे कर लेने लगते हैं, पुलिस और न्यायको व्यवस्था करते हैं तथा अन्य बातोंमें भी एक सुस्थापित सरकारकी भाँति आचरण करने लगते हैं तो उनको साधारण विद्रोही नहीं कह सकते। पर-राजोंको यह निश्चय करना पड़ता है कि उन्हें क्या मानें। यदि उनका प्रांत किसी परराजकी सीमापर हुआ या समुद्रतटपर हुआ तो इस प्रश्नके निर्णयकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। अभी पुरानी सरकार लड़ रही है, सम्भव है, वह जीत जाय, इस लिये उन्हें स्वतंत्र राज नहीं कह सकते पर एक प्रान्तमें वह निःसन्देह

स्वतंत्र हैं और उस प्रान्तके लिये परराजोंको उन्हींसे बर्तना है। ऐसी अवस्थामें परराज विद्रोहियोंकी अरिताको स्वीकार कर लेते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वह विद्रोहियोंको स्वतंत्र राष्ट्र न मानते हुए भी उन्हें वह सब अधिकार देते हैं जो युद्धकालमें सभ्य राष्ट्रोंको प्राप्त होते हैं।

पुरानी सकार भी, जिसके विरुद्ध विद्रोह हुआ है, प्रायः इस बातको स्वीकार कर लेती है। इसमें उसका लाभ ही है। यदि वह विद्रोही सैनिकोंको फांसीपर लटकाती जायगी तो वह उसके सैनिकोंके साथ भी वैसा ही करेंगे। दूसरा बड़ा लाभ यह है कि यदि वह इस परिस्थितिको स्वीकार न करे तो उसे यह मानना पड़ेगा कि विद्रोही उसकी प्रजा हैं। ऐसी दशामें वह जो कुछ कूटमार करें अथवा अन्य प्रकारसे विदेशियोंको हानि पहुंचायें उसके लिये वही जिम्मेदार होगी। परन्तु जब उनकी अरिता स्वीकार कर ली गयी तो फिर अपने कामोंके लिये वह आप ही दायी हो जाते हैं। जो परराज उनकी अरिताको स्वीकार करते हैं वह उन्हींसे पूछताछ कर सकते हैं। यदि विद्रोह ठण्डा हो गया तो पुरानी सकार अपना पूर्व प्रभुत्व फिर पा जाती है, यदि विद्रोही सफल हो गये तो वह एक नया स्वतंत्र राज स्थापित कर लेते हैं। अरिताकी स्वीकृति ॐ तो एक बहुत बड़ी बात है। इसका अवसर उस समय आता है जब विद्रोहियोंका आधिपत्य एक निश्चित भूभागपर हो जाता है और वह विद्रोहित्वका उस भूभागपर एक स्थापित सकारकी भांति स्वीकृति बर्तने लगते हैं। इसके पहिले भी कभी कभी एक ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है जिसमें परराजोंको बोलना पड़ता है। कोई राज किसी अन्य

राजके घरेलू झगडोंमें नहीं बोलता पर यदि इस झगडेका प्रभाव बाहरवालोंपर पड़े या उसका किसी स्वतंत्र सिद्धान्तसे सम्बन्ध हो तो बोलना ही पड़ता है। यदि किसी राजमें विद्रोह हो जाय परन्तु विद्रोहियोंकी शक्ति इतकी न बढ़ गयी हो कि वह किसी भूभागपर अपना शासन स्थापित कर सकें तो उन्हें अरिताकी स्वीकृति तो दी नहीं जा सकती। पर यदि वह सभ्य नियमोंकी बर्तते हैं और यह भी निश्चय है कि उनका उद्देश्य शुद्ध राजनीतिक है तो उन्हें डाकू या लुटेरा भी नहीं कह सकते। यदि वह किसी परराजके शरणागत हों या उसके हाथमें पड़ जायं तब उन्हें चोर डाकुओंकी भाँति उनकी पुरानी सत्कारको, जिसके विरुद्ध उन्होंने विद्रोह किया है, सौंप देना मनुष्यताके विरुद्ध होगा। १९४८ में चिली राजमें विद्रोह हुआ। पहिले पहिले जहाजी बेइने विद्रोह किया। न उसके पास कोई स्थलसेना थी, न कोई राज्य था। पर उसने विदेशी जहाजोंसे किसी प्रकारकी छेड़छाड़ न की, केवल चिली सरकारके विरुद्ध सामरिक कार्यवाही की। ऐसी दशामें परराजोंने भी उसे समुद्री डाकुओंका बेड़ा नहीं कहा। उसे सत्कारसे लडने दिया, अन्तमें उसकी जीत भी हुई।

आजकल यही प्रथा सर्वप्रिय होती जाती है यद्यपि कोई निश्चित नियम नहीं हैं। इस प्रकारके विद्रोहियोंको आरम्भमें अरिताकी स्वीकृति नहीं दी जा सकती पर जब तक वह विदेशियोंके साथ छेड़छाड़ नहीं करते तबतक उनके काममें कोई विघ्न नहीं डालता। उनके राजनीतिक उद्देश्यकी उच्चता स्वीकार की जाती है। अभी कोई ठीक नियम नहीं है पर कई आचार्योंका सम्मति है कि उनको नियमानुसार सभ्य राजनीतिक विद्रोही मानकर विद्रोहित्वकी स्वीकृति † नियतरूपसे मिलनी चाहिये।

समर आरम्भ होते ही दोनों शत्रु राज्योंकी प्रजाओंके पारस्परिक सम्बन्धोंमें तात्कालिक अन्तर पड़ जाता है। व्यापारिक प्रतिनिधियोंका काम बन्द हो जाता है। दोनों ओरकी सेनाओंको अन्धोन्ध रात्रियोंमें युद्ध करनेका अधिकार बन्द हो जाता है। एक देशकी प्रजा दूसरे देशकी प्रजासे किसी प्रकारका व्यवहार नहीं कर सकती। शत्रुपक्षके किसी व्यक्तिको किसी प्रकारकी सहायता नहीं दी जा सकती। शत्रु-राजकी सरकारको न तो ऋण दिया जा सकता है न उसको किसी अन्ध प्रकारकी सहायता दी जा सकती है। कोई ऐसा पत्र नहीं लिखा जा सकता जिससे शत्रुको किसी प्रकारका सैनिक समाचार मिल सके।

व्यापारिक सम्बन्धपर भी तात्कालिक प्रभाव पड़ता है। पुराना नियम तो यही था कि व्यापार बन्द हो जाना चाहिये। एक शत्रु-राजकी प्रजा दूसरे शत्रुराजके न्यायालयमें किसी प्रकारका अभि-योग नहीं चला सकती। ऐसी दशामें जबकि धीवानीके मुकदमे बल ही नहीं सकते आपसमें इकरारनामे कैसे हो और व्यापार कैसे जारी रहे। पर आजकल यह नियम कुछ ढीले हो गये हैं। समरकालमें तो शत्रुराजकी प्रजापर मुकदमे नहीं चलते पर समाप्ति पर चलाये जा सकते हैं। यदि कोई साझेदा व्यापार हो तो साझा तत्काल तोड़ना होगा। यदि कोई कम्पनी एक राजमें स्थापित है और उसमें व्यवस्थापक भी उसी राजमें हैं तो वह अपना काम करने पायेगी चाहे हमने वास्तविक स्वामी शत्रुराजके ही निवासी हों पर यदि प्रबन्धक भी शत्रुराजमें रहते हों या यह सिद्ध हो जाय कि वह शत्रुओंके अधीन काम करते हैं तो उसका कारखाना बलात् बन्द कर दिया जायगा। विशेष अवस्थाओंमें

दोनों राज व्यापार करनेका परिमित अधिकार दे भी देते हैं। युद्ध आरम्भ होते ही प्रत्येक राज यह घोषित कर देता है कि वह किन किन अवस्थाओंमें शत्रुराजकी प्रजाके साथ कैसा व्यवहार करेगा। यों तो नियमतः युद्ध छिड़ते ही अपने राज्यमें बसी हुई सभी शत्रुप्रजाओंकी सम्पत्ति जब्त कर लेनी चाहिये और उन्हें बन्दी कर लेना चाहिये पर ऐसा किया नहीं जाता। जबतक यह प्रमाणित नहीं हो जाता कि वह चुपके चुपके अपनी सकारसे मिलकर कोई षड्यंत्र रच रहे हैं तब तक उनके कारबारमें बिगड़ नहीं डाला जाता। पर युद्ध आरम्भ होते ही ऐसे सब लोगोके नाम, पेशे और पते लिख लिये जाते हैं और पुलिसकी उनपर फटी देखरेख रहती है।

यद्यपि प्रजाका आपसमें ऋण-दान-आदान बन्द हो जाती है पर यदि एक राजने शत्रुराजके प्रजावर्गमें ऋण लिया है तो उसे यह नहीं कहना चाहिये कि हम ऋण न चुकायेंगे। सम्भव है समरकालमें ऋण न चुकाया जा सके और न उसपर ब्याज ही दिया जा सके पर उसका अस्तित्व बना रहता है।

युद्ध छिड़नेका सन्धियोंपर क्या प्रभाव पड़ता है यह हम द्वितीय भागमें दिखला चुके हैं। कुछ सन्धिया तो स्वतः टूट जाती हैं। यदि दो राजोंमें आपसमें मैत्रीकी सन्धियोंपर सन्धि है औ उनमें लड़ाई छिड़ गयी तो वह प्रभाव सन्धि आप ही टूट गयी। जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस इत्यादिने बेल्जियमको तटस्थीकृत राज बना कर उसकी स्वातन्त्र्य रक्षाका भार अपने ऊपर लिया था पर जब जर्मनीने महासमरके आरम्भमें बेल्जियमपर आक्रमण किया तो वह सन्धि नष्ट हो गयी। ऋण चुकाने या व्यापार या अपराधि-प्रत्यर्पण सम्बन्धी सन्धियोंके विषयमें कुछ मतभेद है पर बहुसम्मति यही

हे कि यह सन्धियां नष्ट नहीं होतीं वरन् समरकालमें स्थगित रहती हैं, उसके बन्द होते ही पुन चालू हो जाती हैं ।

इन सब विषयोंके सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम है ही नहीं । न तो बड़ी विधायक सन्धियोंने ही इनका ठीक ठीक निर्णय किया है, न हेगमें ही स्पष्ट नियम बने हैं और न महाशक्तियोंके व्यवहारमें ही किसी प्रकारकी समता है । समर छिड़ते ही प्रत्येक योद्धा राज अपने यहां कुछ घोषणाए कर देता है । दोनों ओरके शत्रुराज हसी बातको ध्यानमें रखते हैं कि बराबरी बनी रहे, जैसा बर्ताव पुराने वाले हमारी प्रजाके साथ करें, वैसा ही बर्ताव हम उनकी प्रजाके साथ करें । लड़ाईमें ऐसा होना अनिवार्य है परन्तु यदि कुछ मूल सिद्धान्त स्थिर हो जाय तो उभयपक्षों नियमोपनियम चलानेमें सुविधा हो । आजकल जो नियम प्रायशः व्यवहारमें आते हैं वह पहिलेकी अपेक्षा कहीं मृदु हैं । उनका तत्व यह है कि शत्रुराजकी प्रजाको शत्रु मानते हुए भी साधारण व्यापार और सम्बन्धमें यथासम्भव तबतक बाधा न डाली जाय जबतक कि अपने अनिष्टकी आशंका न हो ।

चौथा अध्याय ।

शत्रुवर्गीयोंके साथ बर्ताव-असैनिकोंके प्रति ।

शत्रुमरके आरम्भ होते ही उभयपक्षके कुल व्यक्तियोंको एक दूसरेके प्रति शत्रुरूप प्राप्त हो जाता है । यह रूप सबके लिये एकसा नहीं होता । लारेंस कहते हैं कि इसे एक धब्बेसे तुलना दे सकते हैं जो लगता सबको है पर किसीको गहरा, किसीको हलका । इस अध्यायमें हम यह दिखलायेंगे कि किस वर्गके व्यक्तियोंको कितना शत्रुरूप प्राप्त होता है ।

सबसे पहिला स्थान शत्रुराजके सैनिकोंका है । इनका शत्रुरूप सम्पूर्ण होता है । यह लड़ाईमें मारे जा सकते हैं और पकड़े जाने पर समरबन्दी बनाकर रक्खे जा सकते हैं । शत्रुराजके जल चाहे किसी देश या राष्ट्रका मनुष्य हो । यदि वह और स्थल तथा किसी शत्रुराजकी सेनामें नौकर हैं तो वह पूर्ण वायु सेनाओंके शत्रु है । जो लोग किसी कारणसे वेतन नहीं सैनिक लेते परन्तु दूसरी बातोंमें अन्य सैनिकोंकी भांति रहते हैं उनके साथ वेतनभोगी सैनिकोंका-सा ही बर्ताव होता है ।

इसका एक अपवाद है । यदि एक राजका कोई नागरिक शत्रुराजकी सेनामें भर्ती होकर अपने पितृराजके विरुद्ध लड़े तो पकड़े जाने पर वह उस सभ्य व्यवहारका अधिकारी नहीं माना जाता जो समर-बन्धियोंके साथ किया जाता है, वह सिपाही नहीं वरन् देशद्रोही माना जाता है और उसे तत्काल फांसी दी जाती है ।

हम यह कह चुके हैं कि किसी राष्ट्र के व्यक्ति हों, शत्रुसेनामें पाये जानेसे शत्रु माने जाते हैं। तदस्थ राजाके नागरिक भी कभी कभी लड़ाईके समय किसी एक सेनामें सम्मिलित हो जाते हैं पर यदि किसी एक तदस्थ राजा बहुत से नागरिक एक ही सेनामें भर्ती होते रहे तो दूसरा शत्रुराज उस तदस्थ राजसे शिकायत कर सकता है कि आप अपने भादमियोंको ऐसा करनेसे रोकते क्यों नहीं। आज नैपालके सहस्रों गुरखे अंग्रेजी सेनामें हैं और जिस किसीसे अंग्रेज सकार लड़ पड़ती है उसीसे लड़नेको तयार रहते हैं, यद्यपि नैपाल स्वतंत्र राज कहा जाता है। यदि नैपाल वस्तुतः स्वतंत्र होता और उसका अन्य स्वतंत्र राजोंसे सम्बन्ध होता तो ऐसा कदापि न हो सकता। सभी उससे बिगड़ जाते।

एक प्रश्न यह उठता है कि यदि किसी राजमें पर-राजोंके निवासी बसे हों तो वह लड़ाई छिड़नेपर उन्हें बलात् अपनी सेनामें भर्ती कर सकता है या नहीं। आजकल सभ्य राजोंका यही मत है कि ऐसा नहीं हो सकता। विशेष आवश्यकता पड़नेपर उन्हें पुलिस या चोर डकैत इत्यादिसे रक्षा करनेके लिये स्वयं-सेवक दलमें भर्ती किया जा सकता है पर सेनामें नहीं।

शत्रुराजके व्यापारिक जहाजोंके मल्लाह भी शत्रुओंमें ही गिने जाते हैं। पहिले तो यह नियम था कि पकड़ जानेपर उनके साथ समरबन्धियोंका सा बर्ताव होता था शत्रुराजके व्यापारिक जहाजों पर अब ऐसा नहीं होता। यदि कोई व्यापारिक जहाज स्वयं किसी सैनिक जहाजपर आक्रमण कर दे तो वह दण्डका भागी होगा ही पर यदि उसपर आक्रमण हो तो अपनी रक्षामें हथियार बढा सकता है। आजकल ऐसा करनेका साहस भी स्यात् ही किसी बणिक जहाजको हो सकता है। यदि जहाज सीधेसे

आत्मसमर्पण कर दे तो उसके नाविकोंसे यह कहा जाता है कि तुम समरकालमें युद्ध सम्बन्धी कोई काम न करो। यदि वह ऐसा लिख दें तो छोड़ दिये जाते हैं। यदि नाविक किसी तटस्थ राजके नागरिक हों तो उन्हें बिना कुछ लिखाये ही छोड़ दिया जाता है पर यदि जहाज़के अफ़्फ़र किसी तटस्थ राजके हों तो उनसे यह लिखाया जाता है कि हम समरकालमें शत्रु जहाज़पर काम न करेंगे। उच्युक्त नियमोंसे कहियोंको जापानियोंने पहिले पहिले १९६१-६२ के रूस-जापान समरमें बर्ता था। १९६४ में हेगमें इन्हें अन्तराष्ट्रिय रूप मिल गया।

सेनाओके साथ ऐसे बहुत से लोग रहते हैं जो उनके अग नहीं कहे जा सकते। यह लोग लडते नहीं अत इनके बिना सेनाकी पूर्णतामें कोई अन्तर नहीं पड़ता पर ऐसी कोई सेनाओके सहवता सेना नहीं होती जिसके साथ यह न रहते हों।

ठेकेदार, सवाद-दाता, बिसाती, मेवाफ़रोश इत्यादि इसी वर्गमें आते हैं। यदि यह पकड़ जाय तो शत्रुसेनाको अधिकार है कि इन्हें रखे या छोड़े। परन्तु हेगमें १९६४ में जो नियम बने थे उनमें से एक नियम यह है कि यदि इन्हें रोका जाय तो इनके साथ समर-सैनिकोंका सा बर्ताव करना होगा बशर्ते कि इनके पास उस सेनाके अधिकारियोंकी सर्टिफिकेट हो जिसके साथ यह पाये गये हों। बडे ठेकेदार, समाचारपत्रोंके सवाददाता सभी सर्टिफिकेट ले रखते हैं। सर्टिफिकेट इस बातका प्रमाण है कि यह सेनाके साथ वैध रूपसे हैं, योंहीं नहीं घूमते हैं।

परन्तु कभी कभी इसके बिना भी काम चलता है। छोटे छोटे बिसातियों और फल या शाक भाजी बेचनेवालोंको न कोई सर्टिफिकेट देता है न काई उनसे सर्टिफिकेट मांगता है। इसी प्रकार कभी कभी राजदरारेके व्यक्ति या बडे बडे मंत्री आदि निरीक्षण

करने या सिपाहियोंको प्रोत्साहित करनेके उद्देश्यसे सेनामें आ जाते हैं। इस कोटिके व्यक्ति सैनिक अफसरोंसे सर्टिफिकेट नहीं लिखाया करते। यदि ऐसे लोग पकड़ जाय तो शत्रुराजको अपने विवेकसे काम लेना होगा। यह असम्भव है कि कोई सभ्य राज इनके साथ अनुचित व्यवहार करे।

शत्रुराजके सभी नागरिक शत्रु गिने जाते हैं परन्तु जब तक वह स्वतः समरमें कोई भाग नहीं लेते तब तक उनके साथ शत्रुताका व्यवहार नहीं किया जाता। न वह मारे गुरुराजके नागरिक जाते हैं न बन्दी बनाये जाते हैं।

प्रत्येक राजमें उसके नागरिकोंके अतिरिक्त कुछ विदेशी भी रहते हैं। यह लोग भी सर्कारी कर देते हैं और इनके व्यापारादिसे भी राजकी श्रीवृद्धि होती है। इस लिये एक प्रकारसे यह लोग उस राजके सहायक हैं। यदि उस राजसे किसी परराजसे युद्ध छिड़ जाय और शत्रुराजकी सेना किसी ऐसे प्रान्तपर कब्जा करले जिसमें इस प्रकारके विदेशी, जो तटस्थ राजोंके नागरिक होंगे, बसे हो तो वह उनके साथ कैसा बर्ताव करे? जो लोग उस राजके निवासी होंगे उनसे तो वह रुपया वसूल करता है, भाति भातिकी सामग्री ले सकता है, कुछ न कुछ काम भी करा सकता है पर इन परदेशियोंके साथ भी ऐसा व्यवहार किया जाय या नहीं। अब तक व्यवहारमें कोई भेद नहीं था। १९६४ में जर्मनी और अमेरिकाने हेगमें इस बातपर आग्रह किया कि यह देखना चाहिये कि मनुष्य किस राजका नागरिक है, न कि उसका निवासस्थान कहाँ है। अतः इनका कहना था कि तटस्थ राजोंके नागरिकोंपर इस प्रकारका कोई दबाव न डालना चाहिये। परन्तु ब्रिटेन, फ्रांस, जापान और रूसने इस मतका विरोध किया। यद्यपि

बहुमतसे बात गिर गयी पर आजकल कई राज इसी विचारके होते जाते हैं ।

यह तो स्थलकी बात हुई । जलके लिये यह नियम है कि जहाजकी राष्ट्रीयता उसके झण्डेके अनुकूल होती है । जिस राष्ट्रका झण्डा होता है उस राष्ट्रका जहाज होता है । शत्रुराजके नागरिक यदि समुद्रपर पकड़े जायेंगे तो वह शत्रु ही माने जायेंगे और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायगी । पर विदेशी व्यापारियोंके सम्बन्धमें यहाँ भी ठेके प्रश्न उठते हैं यदि विदेशी व्यापारी शत्रुराजमें बसते हैं तो उनके जहाजोपर शत्रुराजका ही झण्डा लगा सकता है । ब्रिटिश और अमेरिकन मत यह है कि उनका व्यापार शत्रुको सहायता पहुँचाता है अतः उनका माल जब्त करना ही चाहिये परन्तु जर्मनी इत्यादिका कहना है कि मालकी राष्ट्रीयता उसके स्वामीकी नागरिकतापर निर्भर है । यदि स्वामी परराजका नागरिक है तो उसका माल न छीनना चाहिये, चाहे वह कहीं बसता और व्यापार करता हो ।

शत्रुसेनाके अस्थायी कब्जेमें जो स्थान भा जाते हैं उनके निवासी भी एक दृष्टिसे शत्रु समझे जाते हैं । कभी कभी एक राज दूसरे राजके राज्यके किसी भागको बलात् शत्रुके अस्थायी दबा लेता है । ऐसी दशामे पहिला राज इस बलात् कब्जेके भूभागके अधिकृत प्रदेशके निवासियोंके साथ कैसा बर्ताव करे, यदि उनकी सम्पत्ति उसके हाथ लगे तो उसे जब्त करे या न करे ? अंग्रेज नीतिज्ञोंकी सम्मति है कि जब तक ऐसा प्रदेश पूर्णतया शत्रुराज्यका अङ्ग न हो जाय तब तक उसके निवासियोंको अपनी ही प्रजा मानना चाहिये परन्तु कई अन्य देशोंके नीतिज्ञ इसके विरुद्ध हैं । उनका कहना है कि जब तक वह प्रदेश शत्रुके अधिकारमें है तब तक उसके निवा-

सियोंकी विभूतियोंमें शत्रुके बलकी वृद्धि होती है अतः उनके साथ शत्रुवत् आचरण करना शत्रुके बलको घटानेका एक साधन है। ज्योंही यह प्रदेश फिर अपने अधिकारमें आ जायेगा त्योही यह लोग फिर नागरिक मान लिये जायगें।

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनसे देख पड़ता है कि शत्रु-रूप निवास ❀ पर ही प्रायः निर्भर है। निवास नागरिकता† से भी प्रबल है परन्तु 'निवास'का क्या अर्थ है? समर 'निवास'का अर्थ न्यायालयोंने निवासकी दो परीक्षाएं स्थिर की हैं इच्छा और दीर्घकाल। यदि कोई मनुष्य किसी शत्रुराजमें अपनी इच्छाके विरुद्ध दीर्घ काल तक रख लिया गया है तो वह वहांका निवासी नहीं कहला सकता। यदि वह उसमें रहता है पर उसका वहां बस जानेका विचार नहीं है तो भी वह वहांका निवासी नहीं कहला सकता। इच्छाका पूर्ण निश्चय हो जानेपर कुछ घण्टोंका रहना भी पर्याप्त समझा जाता है। जहां इच्छा के विषयमें पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलता वहां यह देखा जाता है कि मनुष्य बहुत दिनोंसे बसा है कि थोड़े दिनोंसे। यदि उसका बहुत दिनोंसे बसना सिद्ध हो जाय तो वह निवासके तुल्य समझा जाता है।

जो लोग शत्रुराजके नागरिक नहीं हैं वरन् उसमें केवल बस गये हैं वह निवास दोषसे सुगमतासे युक्त हो सकते हैं। इसके लिये इतना ही पर्याप्त है कि युद्ध आरम्भ होनेके पहिले या उसके आरम्भ होते ही वह शत्रु राज्यको छोड़ कर स्वदेशमें रहनेके लिये चल पड़े। यात्रा समाप्त हो या न हो पर यदि यह निश्चय हो जाय कि वह व्यक्ति स्वदेशमें स्थायी रूपसे बसनेके लिये जा रहा है तो उसके साथ विरुद्धाचरण नहीं करते।

* Domicile †Citizenship.

इस बातका विचार तो हो चुका कि किन लोगोंको म्यूनाधिक शत्रुरूप दिया जाता है। अब यह देखना है कि भिन्न भिन्न प्रकारके शत्रुरूपप्राप्त व्यक्तियोंके साथ कैसा व्यवहार होता है।

सबसे पहिले हम उन लोगोंको लेते हैं जो एक शत्रुराजके निवासी हैं और समरारम्भके समय दूसरे शत्रुराजमें पाये जाते हैं। पुरानी प्रथा तो यह थी कि यह लोग एक शत्रुराजके बन्दी कर लिये जाते थे और इनकी सम्पत्ति निवासी समरा- जन्त कर ली जाती थी। पर धीरे धीरे यह प्रथा रम्भके समय उठ गयी और ऐसे लोगोंको स्वदेश लौट जानेका दूसरे शत्रुराजमें समुचित अवकाश दिया जाने लगा। पीछेसे यह भी अनावश्यक समझा गया। अब आज कल यह प्रथा है कि जब तक ऐसे लोग किसी प्रकारका उपद्रव न करें अथवा अपने स्वदेशके राजको किसी प्रकारकी गुप्त सहायता न दें तब तक इन्हे बसने दिया जाय और इनके साधारण कामोंमें किसी प्रकारकी बाधा न डाली जाय।

कभी कभी विवश होकर ऐसे लोगोंका अपने देशसे निकाल देना पड़ता है। १९२७ में जब फ्रांस और जर्मनीमें युद्ध हुआ उस समय फ्रांसमें बहुत जर्मन थे। फ्रेञ्च प्रजा जर्मनाक नामसे चिढ़ी हुई थी। फ्रेञ्च सरकारने देखा कि यदि यह जमन रह गये तो लोग क्रोधके आवेगमें इनपर हाथ छाड़ देगे, उस समय इनकी रक्षा न हो सकेगी। इस लिये उसने सबको निकल जानेकी आज्ञा दी। इसके पीछेके भी इस प्रकारके उदाहरण पाये जाते हैं। बोअर युद्धमें ट्रांसवाल और आरेंज़ रिवर प्रदेश प्रवासी सब अंग्रेज निकाल दिये गये थे।

आज कल एक बड़ी अडचन पड़ती है। बहुत से देशोंमें अनिवार्य सैनिक शिक्षाकी प्रथा है जिससे प्रत्येक युवक शस्त्र-

विद्याका जानकार बना दिया जाता है। युद्ध छिड़ने पर प्रत्येक सकारको यह सोचना पड़ता है कि यदि शत्रुराजके नागरिक रहने दिये जाय तो गुप्त रूपसे अपने राजको समाचारादि भेजते रहेंगे या अन्य षड्यंत्र करेंगे और यदि निकाल दिये जायगे तो सैनिक शिक्षा तो पाही चुके हैं शत्रु सेनाका बल बढ़ावेंगे। इस सम्बन्धसे किसी किसी ग्रंथकारकी सम्मति है कि पुराने समयकी भांति उनको बंदी बना लेना चाहिये। ऐसा करना अवैध न होगा, क्योंकि बन्दी बनानेका अधिकार अभी अन्ताराष्ट्रिय विधानने छीना नहीं है। किसी न किसी रूपमें गत महायुद्धके समयमें यही बात की भी गयी। दो चार नगरोंमें विशेष छावनियां बनायी गयीं और प्रायः सभी शत्रुनागरिकोंको—‘प्रायः’ इसलिये कि किसी किसीको विश्वस्त और निरपराध समझ कर इस आज्ञासे मुक्त भी कर दिया गया था—उन्हींमें रक्खा गया। वहां उनपर विशेष रूपसे पहरा बैठाया गया था। उनके काम धन्धे तो बन्द ही थे इसलिये जीवन-निर्वाहके लिये सबको अपनी अपनी स्थितिके अनुसार कुछ रुपया दिया जाता था।

लगभग इसी प्रकारका नियम जहाजोंके साथ भी बर्ता जाता है। सैनिक जहाज तो प्रकृत्या रोक लिये जाते हैं और उनके मरलाह बन्दी बना लिये जाते हैं। अब रहे एक शत्रुराजके व्यापारिक जहाज। इनमें दो भेद किये जाने जहाज दूसरेके हैं। जो जहाज शुद्ध व्यापारके लिये ही बने नौस्थानोंमें प्रतीत होते हैं उनको प्रायः जस्त नहीं करते प्रत्युत एक नियत अवधिके भीतर चले जानेकी अनुज्ञा भी दे दी जाती है। परन्तु कुछ जहाजोंकी बनावट ऐसी होती है कि वह थोड़ेसे ही उलट-फेरमें लड़ाईके कामके बनाये जा सकते हैं। उनके सम्बन्धमें ऐसी आज्ञा होती

है कि घर लौटकर यह शत्रुकी नौसेनाके अंग बन जायगे। ऐसे जहाज न केवल रोक लिये जाते हैं वरन् जब्त कर लिये जाते हैं। १९६४ की हेग कांफरेंसने इस बातकी स्पष्ट अनुज्ञा दी है।

ऊपरके नियम तो उन लोगोके लिये हैं जो युद्धकालमें स्वतः शत्रुके वशमें होते या पड जाते हैं। जो लोग लडाईके परिणाम-स्वरूप शत्रुके हाथमें पड जाते हैं उनके लिये भी कुछ विशेष नियम हैं। पहिले ऐसे नियम न थे। शत्रु सेना चाहे जिस नगर या गांवमें गोले बरसावे या आग लगा दे, घेरकर सिपाहियोके साथ साथ अन्य नागरिकोको भी भूखों मार डाले, जीते हुए प्रदेशोको यथेच्छ लूटे, स्त्रियोके साथ चाहे जैसा व्यवहार करे, कोई विशेष रोकटोक न थी। सभ्य और दयालु सेनापति पहिले भी यथासम्भव साधारण नागरिकोंकी रक्षा करनेका प्रयत्न करते थे। उनसे रुपया लेकर नगरकी लूट-पाट रोक दी जाती थी। सभ्य राष्ट्रोके सिपाही प्रायः स्त्रियोको न छेडते थे, देवस्थानोंका भी निरादर नहीं किया जाता था पर यह बातें अपवाद स्वरूप थीं। सामान्य रूपसे युद्धका स्वरूप बड़ा भयङ्कर होता था। प्राचीन आर्योंके यहां अच्छे नियम थे पर इस्लामके भोंकेमें वह बहुत कुछ बह गये। आजकल फिर सभ्यतामय नियम बने हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उनका उल्लङ्घन नहीं होता, गत महा-समरमें जर्मनीकी इस सम्बन्धमें बड़ी शिकायत सुनी गयी। इराकमें अहम्मन्य अग्नेजोने भी उसी प्रकारके बहुत से अत्याचार किये। ऐसा स्यात् कोई भी राष्ट्र नहीं है जो निर्दोष हो। पर हा नियमोंका अस्तित्व यह बतलाता है कि लोगोंकी बुद्धि कुछ सुधर रही है और भाव कुछ संस्कृत हो रहे हैं। इससे भविष्यतके लिये अच्छी आशा की जाती है। अब जो राज इन नियमोंके विरुद्ध चलते हैं उन्हें लज्जित होना पडता है। अपने अपने अवसरपर

चाहे सभी स्वार्थवश अन्धे हो जाय पर दूसरोंको अवश्य रोकते हैं। इस लोकमतका यह प्रभाव पड़ता है कि कदाचारकी मात्रा पहिलेसे कम हो गयी है। जो बातें की भी जाती है उन्हें छिपानेकी फिक्र होती है, पर रेल तारके युगमें घटनाओंको छिपा देना सुकर नहीं है अतः अपने हाथोंको पवित्र रखनेमें ही कल्याण देख पड़ता है।

जब एक राजकी सेना दूसरेके राज्यमें प्रवेश करती है तो अधिकृत प्रदेशके निवासियोंके साथ वर्तनेमें तीन बातोंका विशेष रूपसे ध्यान रक्खा जाता है।

पहिले यह होता था कि जब किसी नगरमें शत्रुसेनाका प्रवेश होता था तो उसके निवासी लूटे जाने थे और जो किञ्चिन्मात्र सुँह खोलता था वह मार डाला जाता था।

संयोजित स्थानोंके किसीके जानमाल तथा मर्यादाको सुरक्षित साथ व्यवहार नहीं कह सकते थे। इस प्रकारकी लूटपाट विजेताओंका स्वस्व समझी जाती थी। दिल्लीकी

नादिरशाही लूट और उसके सहस्रो निवासियोंका मारा जाना आज तक प्रसिद्ध है। यूरोपमें भी ऐसा बराबर होता ही आया है। पर अब यह बात रुक गयी है। कहते हैं कि गत महायुद्धमें जर्मन सिपाहियोंने ऐसी उच्छृङ्खलता दिखलायी पर यह आरोप अभी तक प्रमाणित नहीं हुआ है। किसी सभ्य राष्ट्रके सिपाहियोंका अपने नायकोंकी आज्ञाका उल्लंघन करके सामान्य डकैतों और बदमाशोंकामा आचरण करना अपमानजनक है। १९३१ में ब्रुसेल्समें जो अन्तराष्ट्रिय सम्मेलन हुआ उसमें यह नियम बना कि संयोजित नगरोंमें लूटपाट न हो। १९६४ में हेगमें जो युद्धसम्बन्धी नियम बने उनके भी तृतीय खण्डकी ४७ वीं धारामें स्पष्ट शब्दोंमें यही बात लिखी है। २८वीं धारामें लिखा है कि जहां कोई नगर

घावा मारकर जीता जाय वहाँ भी लूटमार न की जाय । लूटमार बन्द होनेसे सिपाहियों और नागरिकोंसे मुठभेड़के अवसर बहुत ही कम आते हैं और प्राण तथा मानपर आक्रमणके कम ही स्थल खड़े होते हैं ।

नगरोपर आक्रमण करते समय भी सेनाओंके लिये यह निर्देश है कि जान बूझकर अस्पतालों, देवालयों या उन मुहल्लों-पर गोलियां न बरसायें जिनमें साधारण नागरिक रहते हैं । यदि नागरिकोंके घरोंमें शत्रुके सिपाही भरे हों और अपने ऊपर शस्त्र चला रहे हों तो दूसरी बात है । जिन नगरों या ग्रामोंके पास पक्का कच्चा किसी प्रकारका दुर्ग न हो और शत्रु-सेनाका पड़ाव न हो उन-पर शस्त्र चलाना वर्जित है । बहुधा किलो और दुर्गरक्षित नगरोंमें सैनिकों तथा अन्य पुरुषोंके अतिरिक्त कुछ स्त्री बच्चे भी रहते हैं । अभी कोई निश्चित नियम नहीं बना है पर बहुधा घेरा डालने या गोलाबारी करनेके पहिले अ-शस्त्रधारियों, विशेषतः स्त्रियों और बच्चों, को निकल जानेका अवकाश दे दिया जाता है । हेगमें १९६४ में जो युद्ध-सम्बन्धी नियमावली बनी थी उसकी २४ वीं से २८ वीं धाराएँ इन बातोंके सम्बन्धमें हैं । २६ वां नियम तो यह कहता है कि, सिवाय उस दशाके जबकि यकायक घावा या आक्रमण करना है, शत्रु-सेनाके सेनापतिको चाहिये कि दुर्ग या नगरके अधिकारियोंको अवश्य सूचना दे दे कि हम इस स्थानपर आक्रमण करनेवाले हैं ताकि वह लोग अ-शस्त्रधारियोंको निकल जाने दें और अस्पताल इत्यादिपर ऐसे ऋण्डे या अन्य चिन्ह लगा सकें जिसमें भूलसे उनपर शस्त्रपात न हो । इन चिन्होंकी सूचना आक्रमणकारी सेनाको दे देनी होती है ताकि वह उन्हें पहिचान सके ।

जब एक बार आक्रमणकारी सेनाका कब्जा शत्रु-राज्यके किसी प्रदेशपर हो जाता है तो युद्धकी समाप्ति तक वह उसके शास-

नका निरीक्षण करती है पर नियम यह है कि अन्तःशासनमें यथासम्भव विघ्न बाधा न डाली जाय। जो कर्म-अधिकृत प्रदेशके चारी, अर्थात् न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट, पुलिस साथ व्यवहार आफिसर इत्यादि, पहिले काम करते थे उन्हींसे काम लेना चाहिये। हां, यदि वह काम करना अस्वीकार कर दें तो नये कर्मचारी, वह भी यथासम्भव स्थानीय, रखने ही होंगे। दीवानी फौजदारीके कानूनोंमें कोई परिवर्तन न किया जाय न विद्यालयों या देवालयोंके साथ छेड़छाड़ की जाय। यदि विजयी सेना सकारी टिकस वसूल करना चाहती है तो वह ऐसा कर सकती है पर टिकस वही होना चाहिये जो उस देशकी सकार पहिले लेती थी। सकारी इमारतों और सम्पत्तियोंपर शत्रुसेना कब्जा कर लेती है परन्तु हेग सम्मेलनकी नियमावलीकी ५६वीं धाराके अनुसार स्थानीय शासन संस्थाओं (अर्थात् म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों), देवालयों, धर्मालयों (जैसे अनाथालयों, सेवा-समितियों, धर्मशालाओं इत्यादि), शिक्षालयों तथा विज्ञान और कला सम्बन्धी संस्थाओं (जैसे प्रयोगशालाओं, वेधालयों, चित्रशालाओं इत्यादि) की सम्पत्तिपर हाथ नहीं डाला जा सकता। ऐतिहासिक स्मारकों या वैज्ञानिक यंत्रों तथा इस प्रकारकी अन्य वस्तुओंको हस्तगत करना जानबूझकर बिगाड़ना या नष्ट करना वर्जित है। यदि विजयी सेनाको खाने पीनेकी या अन्य चीजोंकी आवश्यकता है तो वह स्थानीय अधिकारियोंसे यह कह सकती है कि हमको अमुक अमुक चीजें चाहिये, उन्हें एकत्र कर दो, पर उन सब चीजोंके लिये नकद दाम देना होगा। यदि बहुत ही बड़ी आवश्यकता हो और नकद रुपया उपस्थित न हो तो रसीदें देनी चाहिये और यह प्रयत्न करना चाहिये कि जल्दीसे जल्दी उन रसीदोंका रुपया चुका दिया जाय। शत्रुसेनाके सेना-

पतिको यह अधिकार है कि अपने सिपाहियोंको नागरिकोंके घरोंमें यथास्थान ठहरा दे। जब तक अधिकृत नगर या प्रदेशके निवासी विजयी सेनाके विरुद्ध कोई ऐसा काम न करें जिससे यह प्रतीत होता हो कि इसे अधिकांश निवासियोंने मिल कर किया है या कमसे कम अधिकांश निवासी इस कामके करने वालोंके साथ सहानुभूति रखते हैं या उनकी गुप्त सहायता करते या करना चाहते हैं तबतक उनको कोई सामुदायिक दण्ड नहीं दिया जा सकता, केवल अपराधी ही दण्डित होगा। पर यदि विजयी सेनापति या अन्य अधिकारीको, जिसे शत्रुराजकी सकाराधिकृत प्रदेशका प्रधान शासक नियुक्त कर दे, यह विश्वास हो जाय कि उसकी सेनाके विरुद्ध जो काम किये गये हैं उनमें सामान्यतः सभी निवासियोंका अनुमोदन है तो वह सामुदायिक दण्ड दे सकता है। यह दण्ड कई प्रकारका होता है। मुख्य मुख्य नागरिक कैद कर लिये जाते हैं, यदि भीषण अपराध हो तो उनसे कहा जा सकता है कि इतने घण्टोंके भीतर असली अपराधियोंको पेश करो नहीं तो प्राणदण्ड दिया जायगा, इत्यादि। बहुधा जुर्माना किया जाता है। अमुक्त स्थानसे इतने दिनोके भीतर इतना रुपया मिलना चाहिये, चाहे सब निवासी चन्दा करके दें चाहे एक ही व्यक्ति दे दे। रुपया वसूल न होनेपर शत्रुसेनाको अधिकार है कि लूट छोड़कर उसे चाहे जैसे वसूल कर ले। इस विशेष अवस्थाको छोड़कर नागरिकोंकी निजी सम्पत्तिपर हाथ नहीं डाला जा सकता।

अधिकृत प्रदेशोके निवासियोंके साथ जो बर्ताव किया जाता है वह उनके व्यवहारपर निर्भर है। उनमें जो देशभक्त अपनी मातृभूमिका पराभव न देख सकते हों उन्हें चाहिये कि राष्ट्रीय सेनामें भर्ती हो जाय पर जो लोग ऐसा नहीं कर सकते या नहीं करना चाहने

उन्हें किसी प्रकारका उपद्रव न करना चाहिये। यह नहीं हो सकता कि वह अपना निजी कारबार भी करते रहें और अवकाशके समय देशभक्तिके आवेशमें शत्रु सेनाके सिपाहियोंपर शस्त्र भी चलावें। ऐसा करना सर्वथा वर्जित है। इसके साथ ही हेगमें स्वीकृत नियमावलीकी २३ वीं, ४४ वीं और ४५ वीं धाराओंने विजयी सेनाके अधिकारोंको भी परिमित कर दिया है। इन धाराओंके अनुसार कोई राज अपने शत्रुके प्रजाजनोको इस बातके लिये विवश नहीं कर सकता कि वह स्वदेशके विरुद्ध किसी सामरिक कार्यवाहीमें सम्मिलित हों, चाहे वह युद्धके पहिले उसके यहां नौकर भी रहे हों। प्रजाजनोको इस बातके लिये भी नहीं विवश किया जा सकता कि वह अपने राष्ट्रकी सेनाके सम्बन्धकी कोई बात बतावें या गुप्त मार्गों, छिपे शस्त्रागारों, इत्यादिका पता बतावें। उनसे शत्रु राजके प्रति राजभक्तिकी शपथ भी नहीं ली जा सकती। सेनाको रसद पहुंचाने या उसकी अन्य आवश्यकताओंको पूरा करनेमें उनसे सहायता ली जा सकती है।

इन नियमोंमें एक बात ध्यान देने योग्य है। यदि एक राजके कुछ नागरिक दूसरे राजकी सेनामें नौकर हो और इन दोनों राजोंमें युद्ध छिड़ गया तो उस समय यह सैनिक इस बातके लिये नहीं विवश किये जा सकते कि अपने देशके विरुद्ध लड़े। उनका लड़नेसे मुकर जाना अन्ताराष्ट्रिय विधानके सर्वथा अनुकूल है। अब एक विशेष अवस्थाको सोचिये। किसी देशपर विदेशियोंका शासन है। तूँकि अपनी कोई राष्ट्रीय सरकार नहीं है इसलिये उस देशके निवासी विदेशी सरकारकी सेनामें भर्ती होते हैं। पर यदि उस देशमें स्वराज्य आन्दोलन जोर पकड़े और क्रान्तिकारी अर्थात् स्वातन्त्र्यवादी दल कुछ प्रदेशपर अधिकार कर लेनेमें सफल हो कर एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित कर ले तो इन देशी

सिपाहियोंका क्या कर्तव्य होगा ? यदि विदेशी सरकार इन्हें स्वराज्य-सेनासे लड़नेकी आज्ञा दे तो इन्हें क्या करना चाहिये ? क्या वह इन्हें स्वदेशके विरुद्ध लड़नेकी भी आज्ञा दे सकती है, विशेषतः उस दशामे जब कि इनके देशमें उसकी प्रतियोगी एक स्वदेशी सरकार भी खड़ी हो गयी है ? यदि यह देशी सिपाही किञ्चिन्मात्र भी देशभक्त होंगे तो ऐसी अवस्थामे क्या करेंगे इसका तो अनुमान किया जा सकता है पर यह निश्चय है कि विदेशी सरकार उन्हें वागी और टण्डनीय ही समझेगी । अन्ताराष्ट्रिय विधान इस सम्बन्धमें अगत्या चुप है ।

ऊपर जो नियम दिये गये हैं वह आदर्शस्वरूप हैं । उनका पूरा पूरा पालन किसी भी युद्धमें नहीं होता । यदि जुर्माना लेने या अन्य प्रकारसे दण्ड देनेकी इच्छा हो तो एक चतुर सेनापति सैकड़ों बहाने ढूँढ सकता है । एकके अपराधके लिये एक नगरको फूँक सकता है । विद्यालय, देवालय, प्रयोगशाला, चित्रशाला, स्मारक किसीकी भी रक्षाका जिम्मा नहीं लिया जा सकता । गत महासमरमे यूरोपियन राजोंने, जो इन नियमोंके विधायक है, एक एक नियमको पाँव तले रौंटा है । पर यह रोग ऐसा है जिसकी औषध कोई नहीं कर सकता । सभ्य देशोंमे शान्तिकालमे पशुबल नीचे दबा रहता है, युद्धकालमे ही उसे सिर उठानेका अवसर मिलता है । ऐसे समयमें वह जी खोलकर मनमानी करता है । जब तक मनुष्यमात्र इतने सभ्य और सुमस्कृत न हो जायें कि जगतीतलसे युद्धका नाम ही मिट जाय तब तक हमको पाशविकताका ताण्डव देखनेके लिये प्रस्तुत रहना ही चाहिये । हम इतना ही कर सकते हैं कि कड़े कड़े नियम बनाकर उसको कुछ नियंत्रित कर दें । इस कार्यमें अन्ताराष्ट्रिय विधानको सफलता हुई है । अधिकृत प्रदेशोंके निवासियोंके साथ अत्याचार होते हैं,

भोषण अत्याचार होते हैं पर अत्याचारियोंको लज्जित होना पड़ता है, सभ्य जगत्का लोकमत उनके विरुद्ध हो जाता है, इससे उनकी क्षति होती है। इसलिये अत्याचारोंकी मात्रा पहिलेसे कम होती जाती है।

अधिकृत प्रदेशोंके जो निवासी रोगियों और घायलोंकी सेवा सुश्रूषाका भार अपने ऊपर लेते हैं उनके साथ विशेष रियायत की जाती है। १९६३ में जेनीवामें जो नियम सुश्रूषकोंके साथ बने उनके अनुसार सैनिक अधिकारियोंकी विशिष्ट रियायत इच्छापर यह बात छोड़ दी गयी है कि वह निवासियोंसे अपने घरोंमें आहत और रोगी सिपाहियोंको रखने और उनकी सेवा करनेके लिये अपील करें और जो लोग ऐसा करनेपर राजी हों उनके साथ यथोचित रियायतें करें। रियायतका रूप प्रायः यह होता है कि ऐसे लोगोंके घर सिपाही नहीं ठहराये जाते और यदि अन्य नागरिकोंसे दण्डस्वरूप कुछ जुर्माना लिया जाता है तो यह लोग उसके देनेसे मुक्त कर दिये जाते हैं। जेनीवामें स्वीकृत नियमावलीकी ५ वीं धारा इस प्रकार है—

“सैनिक अधिकारी निवासियोंकी दानशीलतासे इस बातकी अपील कर सकते हैं कि वह लोग, उनके निरीक्षणमें, सेनाओंके रोगियों और आहतोंको एकत्र करें और उनकी सेवा करें और जो लोग इस अपीलको स्वीकार करें उन्हें विशेष रक्षा और कुछ रियायतें प्रदान कर सकते हैं।”

पाँचवाँ अध्याय ।

शत्रुवर्गीयोंके साथ बर्ताव—सैनिकोंके प्रति ।

फ्राचीन आचार्योंमें शत्रुओंके साथ किस प्रकार बर्ताव करनेकी प्रथा थी इसका कुछ दिग्दर्शन हमने इस खण्डके आरम्भमें ही किया है । भीत, पलायमान, शस्त्रहीन अथवा 'त्रायस्व' (रक्षा करो) कहनेवालेपर आघात करना वर्जित था पर हम यह ठीक ठीक नहीं कह सकते कि रणबन्दिनोंको किस प्रकार रक्खा जाता था । मृतकोंकी अन्त्येष्टि धर्म्मानुसार की जाती थी । रावणकी मृत्युके उपरान्त विभीषणने कहा कि मैं ऐसे दुष्कर्म्मोंका मृतक सस्कार नहीं करूँगा । रामचन्द्रजीने उसे डाँटा और कहा 'मरणान्तानि वैराणि' ।

यूरोपमें आजसे तीन सौ वर्ष पहिले तक जो प्रथा प्रचलित थी वह सर्वथा क्रूरतामय थी । स्त्री बच्चों तकको मार डालना क्षम्य ही नहीं उचित समझा जाता था, सैनिकोंका तो कहना ही क्या है । धीरे धीरे अवस्था सुधरी । आचार्यों ने यह सम्मति दी कि असैनिकोंके साथ तो छेड़छाड़ करनी ही न चाहिये । यह सिद्धान्त मान लिया गया है । फिर धीरे धीरे इस ओर ध्यान गया कि सैनिकोंके साथ भी अनावश्यक क्रूरता करना अनुचित है । यह सिद्धान्त भी मान लिया गया है पर आवश्यक तथा अनावश्यक क्रूरताकी सीमा निर्धारित करना उतना सरल नहीं है । इस विषयमें आपसमें मतभेद है अतः जो नियम बने हैं वह अगूरे हैं । पहिले पहिल रूसके ज़ार द्वितीय सिकन्दरकी उक्तेजनासे कुछ नियम १९३१ में बने थे । इसके पीछे १९५६ और १९६४ के

हेग सम्मेलनोंमें इन्हींके आधारपर और विस्तृत नियमावलियाँ बनीं। इनमें जो बातें छूट गयी हैं उनका तात्कालिक निर्णय तो उभय पक्षके सेनापति ही करते हैं पर उनके निर्णयके लिये दायित्व उनकी सरकारोंका होता है। १९६४ की हेग नियमावलीकी भूमिका-में लिखा है कि जो प्रश्न छूट गये हैं उनका निर्णय सेनापतियोंकी मनमानी सम्मतिपर नहीं छोड़ा गया है प्रत्युत 'सैनिकों और निवासियोंकी रक्षा अन्ताराष्ट्रिय विधानके सिद्धान्तों द्वारा होती है जिनकी उत्पत्ति सभ्य राष्ट्रोंकी रीति नीति, मनुष्यताके सदुपचारों और सार्वभौम विवेक बुद्धिसे हुई है'। कहनेका सारांश यह है कि जहाँ कोई स्पष्ट लिखित नियम नहीं मिलता वहाँ यह देखना चाहिये कि न्यायसंगत तथा सभ्यतानुकूल कैसा आचरण होगा। अधिक सम्भावना यह है कि ऐसा आचरण प्रमुख सभ्य राष्ट्रोंके व्यवहारके अनुकूल ही होगा।

इस स्थलपर यह जान लेना भी उचित होगा कि ऊपर 'सैनिक' शब्द किस अर्थमें प्रयुक्त हुआ सैनिक कौन है ? है। हेगनियमावलीकी प्रथम तीन धाराओंमें सैनिकोंके लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

प्रथम धारा

युद्ध-सम्बन्धी नियम, स्वत्व और कर्तव्य न केवल सेनाके लिये है प्रत्युत उन मिलिशिया ❀ और स्वयंसेवक ❀ दलोंके लिये भी हैं जो निम्नलिखित शर्तोंके अनुकूल हो—

* बहुतसे देशोंमें साधारण सेनाके सिवाय ऐसे सैनिकदल होते हैं जो थोड़े थोड़े दिनोंके लिये वेतन लेकर सेनाके रूपमें काम करते हैं, फिर अपने अपने घर चले जाते हैं। इनकी भरती विशेष नियमोंके अनुसार होती है। युद्ध छिड़ने पर यह भी बुला लिये जाते हैं।

१. उनका नेता कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो अपने अधीनोंके लिये दायी हो ।
२. उनका कोई नियत परिचायक चिन्ह होना चाहिये जो दूरसे पहिचाना जा सके ।
३. उन्हें खुलकर शस्त्र धारण करना चाहिये ।
४. उनके सारे काम युद्ध सम्बन्धी नियमों और प्रथाओंके अनुकूल होने चाहियें ।

जिन देशोंमें मिलिशिया या स्वयसेवकदल ही सेना या उमके अंश हों, वहा उनकी भी सेना सजा होगी ।

द्वितीय धारा

यदि किसी ऐसे प्रदेशके निवासी, जिसपर शत्रुका अभी कब्जा नहीं हुआ है, आक्रमणकारी सेनाके विरुद्ध अपनी इच्छामे शस्त्र ग्रहण करलें पर समयाभावके कारण प्रथम धाराके अनुसार अपनेको संगठित न कर सके हों तो वह भी योद्धा माने जायेंगे, यदि वह खुलकर शस्त्र धारण करे और युद्धसम्बन्धी नियमोंका पालन करें ।

तृतीय धारा

शत्रुसेनाओंमें शस्त्रधारी और नि शस्त्र दोनों प्रकारके अनुषंग हो सकते हैं । शत्रुद्वारा पकड़े जाने पर दोनों रणप्रन्दियों जैसे व्यवहारके अधिकारी होंगे ।

जहाँ द्वितीय धाराके अनुसार किसी प्रदेश विशेषकी प्रजा शस्त्र लेकर उठ खड़ी होती है वहा तो किसी प्रकारकी वर्दी हो इन्हें मिलिशिया कहते हैं । स्वयसेवक वह हैं जो वेतन नहीं पाते, केवल स्वदेशरक्षाके निमित्त संगठित होते हैं ।

। जनताके इस प्रकार सशस्त्र उठनेको लेवी ग्रान मैसे (Levies en masse) कहते हैं ।

नहीं सकती पर यदि छोटी छोटी टुकड़ियाँ आक्रमणकारी सेनाका मार्गावरोध करती हैं तो उनसे ऐसी वर्दीकी प्रतीक्षा की जाती है जो स्पष्ट हो और दूरसे पहिचान पड़े। यदि ऐसी टुकड़ियोंको उनकी राष्ट्रीय सरकारकी आज्ञा न मिली हो, यदि उनकी गणना राष्ट्रीय सेनामें न होती हो और उनके सैनिक निरन्तर सैनिक काम न करते हों (अर्थात् बीच बीचमें अपने घर और गृहस्थीके काममें भी लग जाते हों) तो पकड़े जानेपर उनके साथ रणबन्धियों जैसा बर्ताव नहीं होता वरन् डकैतोंकी भाँति उन्हें कारावास, फाँसी, आदिका दण्ड दिया जाता है।

जलयुद्धके नियम भी सुबोध है। सरकारी जहाजोंके सभी अफसर और नाविक सैनिक हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राजको यह अधिकार है कि वह युद्धारम्भ होनेपर व्यापारियोंके जहाजोंको सैनिक काममें लगावे। यदि इन जहाजोंके नाविक युद्धके नियमोंका पालन करें और इनके अफसर सरकारी नौसेनाके अफसर हो तो इनकी गणना भी सैनिक जहाजोंमें ही होगी, नहीं तो उनके साथ डकैतों जैसा बर्ताव होगा।

इस सम्बन्धमें एक प्रश्न यह उठता है कि किसी राजको यह अधिकार है या नहीं कि युद्धकालमें जब जहा चाहे अपने देशके जिस किसी व्यापारिक जहाजको सैनिक जहाज बनाले। इस विषयपर घोर मतभेद है। एक पक्षका कहना है कि जब तक जहाज अपने राज्यकी सीमाके भीतर न हो तब तक उसका स्वरूप नहीं बदला जा सकता। दूसरा कहता है कि ऐसा सर्वत्र किया जा सकता है। अभी दूसरा ही पक्ष प्रबल है।

हेगनियमावलीकी तृतीय धारामें सेनाओंके निःशस्त्र अंगका कथन आया है। सेनाओंके साथ दो प्रकारके निःशस्त्र मनुष्य रहते हैं। एक तो रसद-विभागके कार्यकर्ता, डाक्टर इत्यादि।

यह क्लोग नियत वेतन पाते हैं और शस्त्र भी रखते हैं पर सिवाय आत्मरक्षाके किसी अन्य दशामें इनका प्रयोग नहीं कर सकत । दूसरे, समाचारपत्रोंके संवाददाता, व्यापारी इत्यादि जो सेनाके वेतन-भोगी अंग नहीं हैं । इनके पास भी सेनापतिका अनुज्ञापत्र रहता है ।

अब हम संक्षेपत उन नियमोंका दिग्दर्शन करायेंगे जिनके अनुसार सैनिकोंके साथ बर्ताव किया जाता है ।

जब कोई सैनिक लडना छोड़ कर दयाकी भिक्षा मांगता है उस समय वह अपने शत्रुके हाथमें है । विजयी शत्रु चाहे उसकी याचना स्वीकार करे या न करे । यदि याचना अभयदान स्वीकार कर ली जाय तो उसके प्राण बच जाते हैं ।

हथियार रखवाकर उसे बन्दी बना लिया जाता है । इसे अभयदान❀ कहते हैं । पहिले चाहे जो होता रहा हो पर आजकल यह सम्भव नहीं है कि शत्रु सैनिकोंको हथियार रखवाकर छोड़ दिया जाय । उन्हें प्राणदान देकर भी बन्दी बनाना ही पडता है ।

आर्योंमें तो यह प्रथा बहुत दिनोंसे चली आती है पर यूरोप-में थोडे ही दिनोंसे चली है । असभ्य और अर्ध-सभ्य जातियोंकी भांति यूरोपियन राष्ट्र भी विजित शत्रु सैनिकोंका वध न्याय्य समझते थे अब बात उलट गयी है । अभयदानसे वही शत्रु वञ्चित किये जा सकते हैं जो उसका दुरुपयोग करते हैं अर्थात् अभय देनेवालोंको धोखा देकर मारना चाहते हैं । कभी कभी ऐसा विश्वासघात होता है । कोई दुष्ट सिपाही आहत वन कर गिर जाता है या बन्दूक रखकर दया याचना करता है पर जब कोई प्रतिपक्षी सैनिक उसके पास नि शङ्क होकर जाता है तो किसी

छिपे शस्त्रसे उसपर चोट करता है। ऐसे मनुष्य अभयदानके पात्र नहीं हो सकते। हेग नियमावलीकी २३ वीं धाराके अनुसार, पहिलेसे ही 'यह घोषणा कर देना कि हम किसीको अभयदान न देंगे' या 'ऐसे शत्रुको जिसने हथियार डालकर या आत्मरक्षाके साधनोंसे वञ्चित होकर आत्मसमर्पण कर दिया हो, मारना या आहत करना' विशेषरूपसे वर्जित है।

इस सम्बन्धमें बहुत दिनों तक मतभेद रहा कि यदि कोई दुर्ग लडकर जोता जाय तो उसके रक्षकोंके साथ कैसा व्यवहार किया जाय। बहुत दिनों तक तो यही प्रथा थी कि यदि दुर्ग वाले सीधेसे हथियार रख दें तो उन्हें छोड़ दिया जाय नहीं तो विजय होनेपर सब मार डाले जाय। वह अभयदानके पात्र नहीं समझे जाते थे। परन्तु अब दुर्गरक्षकों और अन्य सैनिकोंमें कोई भेद नहीं माना जाता। उनको भी अभयदान दिया जाता है। यदि कोई विजेता सेनापति दुर्गरक्षकोंका वध कर डाले तो वह दोषी ठहराया जायगा।

रणबन्धियोंके साथ जो बर्ताव होता है उसमें और पहिले समयके बर्तावमें भी आकाश पातालका अन्तर है। बन्धियोंको मार डालना असाधारण बात न थी। धनवान् बन्धिरणबन्धियोंके साथ बर्ताव योंका तो मूल्य बाँध दिया जाता था। यदि वह अपने घरसे उतना रुपया मँगा सके तो छोड़ दिये जाते थे। साधारण सैनिक दास बना लिये जाते थे और विजेताओंमें बाँट दिये जाते थे। यदि दासोंकी सख्या अधिक हुई तो उन्हें भेड बकरीकी भाँति खुले बाजार बेच दिया करते थे। पीछेस यह प्रथा चली कि जिस राजके सैनिक बन्दी होते थे वह स्वयं उनके लिये रुपया देकर छुड़ा लिया करता था। इसके पीछे यह हुआ कि बराबरका बदला होने लगा अर्थात् जितने बन्दी एक

पक्ष छोड़ देता था। उतने दूसरा पक्ष छोड़ देता था। अब ऐसा प्रायः नहीं होता। जो लोग बन्दी बनाये जाते हैं वह युद्धके अन्त तक बन्दी ही रहते हैं। युद्ध समाप्त होनेपर उन्हें घर पहुँचानेका यथासम्भव शीघ्र प्रबन्ध कर दिया जाता है। तब तक अर्थात् बन्दी अवस्थामें, सैनिकोंके साथ जो बर्ताव किया जाता है वह १९६४ में निर्धारित हेग नियमावलीके अनुसार होता है। यह नियमावली जैसा कि हम आगे देखेंगे बहुत ही उदार है। यदि इसका ठीक ठीक पालन किया जाय तो बन्दियोंको शिकायत करनेका कोई अवसर नहीं मिल सकता। नियमावलीके दूसरे अध्यायमें इस सम्बन्धमें १७ धाराएँ हैं। उन्हींके आधारपर युद्धकालमें प्रत्येक युद्धा राजको अपने यहां प्रबन्ध करना पड़ता है और अपने सेनानियोंके निर्देश करना पड़ता है।

प्रत्येक राजको युद्ध आरम्भ होते ही अपने यहां एक समाचार-विभाग खोलना पड़ता है। इस विभागका यह काम है कि अपने यहां जितने बन्दी हों उनकी पूरी सूची रक्खे और शत्रुराजको भी यह सूची भेज दे। प्रत्येक बन्दोका पृथक् खाता रखना होता है। इसमें उसका पूरा नाम, पता, सैनिक मख्या, पलटन, पद, कहाँ कहाँ और कितने घाव लगे, किस दिन और किस स्थानपर बन्दी हुआ, कहाँ रक्खा गया, उसे कब क्या और क्यों दण्ड देना पड़ा, कब कब और क्यों अस्पताल भेजा गया, कब कब भागनेका प्रयत्न किया, कब और कैसे छूटा, (यदि मर जाय तो) कब और कैसे मरा इत्यादि लिखना पड़ता है और युद्ध समाप्त होनेपर यह सब ब्योरा शत्रुराजके पास भेज देना होता है। इस विभागको प्रत्येक बन्दोकी निजी सम्पत्ति, चिट्ठी पत्रों इत्यादिकी भी रखवाली करनी पड़ती है और उसके भाग जाने, छूट जाने या मर जानेपर यह सब सामग्री उसके घर भिजवानी होती है। समाचार-विभागसे

बन्दीयोंके विषयमें जो बातें चाहे पूछी जा सकती हैं। उनका उत्तर देना उस विभागका कर्तव्य होगा। इस प्रकार समरबन्दी-योंके घरवालोंको अपने सम्बन्धियोंका पूरा पूरा समाचार मिलता रहता है।

कैद होनेके बाद बन्दी लोग शत्रु राजके वशमें हो जाते हैं पर जब तक वह स्वयं उद्दण्डता न करें तब तक उन्हें यथासम्भव आराम ही दिया जाता है। बन्दी जेलखानोंमें नहीं रखे जाते। उन्हें या तो किलोंके भीतर या अन्य सुरक्षित स्थानोंमें नजरबन्द कर देते हैं अर्थात् उनके ऊपर पहरा बैठाया जाता है पर हथकड़ी बेड़ी आदि नहीं डालते। जो जगह दी जाती है वहाँका जलवायु उत्तम होना चाहिये और पड़ावमें अच्छा चिकित्सालय होना चाहिये। उनकी निजी सम्पत्ति उनके पास ही रहती है पर शस्त्र, घोड़े और सैनिक कागज ले लिये जाते हैं। यदि कोई बन्दी यह वचन दे कि मैं इस युद्ध भर आपके विरुद्ध शस्त्र न उठाऊंगा तो उसे छोड़ भी सकते हैं पर छोड़ना न छोड़ना बन्दी करनेवाली सरकारकी इच्छापर निर्भर है। इस प्रकारके वचनको पैरोल^१ कहते हैं। यदि कोई पैरोल देकर छूट जाय और शस्त्र धारण कर ले और फिर पकड़ा जाय तो उसे प्राणदण्ड तक दिया जा सकता है। यदि कोई बन्दी भागनेका प्रयत्न करे तो उसे दण्ड दिया जाता है, कुछ कालके लिये कैद तक कर दिया जाता है। भागते हुआको कभी कभी पीछा करनेवालोंके हाथ प्राणोंसे भी वञ्चित होना पड़ता है पर यदि कोई बन्दी भागनेमें सफल हो जाय अर्थात् शत्रु सेनाकी अधिकृत भूमिसे निकल जाय तो कभी फिर पकड़े जानेपर उसे पहिली बारके अपराधके लिये दण्ड नहीं दिया जा सकता। यदि कोई रणबन्दी किसी तटस्थ देशकी सीमाके भीतर पहुँच

जाय तो वह मुक्त हो जाता है। यदि किसी सेना या सेनाशक्तियों के सामनेसे भागना पड़े और वह अपने बन्दिनों को लिये दिये किसी तटस्थ देशमें पहुँच जाय तो वहाँ जाते ही सब बन्दी छूट जाते हैं।

यह नियम है कि बन्दी रखनेवाला राज बन्दी अफसरों और सैनिकों को ठीक वही वेतन तथा भोजन वस्त्र दे जो वह उसी दर्जेके अपने अफसरों तथा सैनिकों को देता है। कुछ उदार बड़े राज, जैसे ब्रिटेन, इसका सारा बोझ स्वयं उठाते हैं। अन्य राज युद्ध के अन्तमें शत्रुराजसे हिसाब करके सारा व्यय चुका लेते हैं। अफसरों को तो नहीं पर सैनिकों का काम भी दिया जा सकता है पर यह काम ऐसा न होना चाहिये जिससे तत्कालवर्ती युद्धसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो। बहुधा सैनिकों को कृषि, रेल, इमारत आदिमें लगा देते हैं। चाहे सर्कार स्वयं काम ले या किसी संस्था या नागरिक का काम करा दे, दोनों अवस्थाओंमें वेतन या मजदूरी वही दी जाती है जो स्वयं उस देशके सैनिक वैसेही काम करनेकी दशामें पा सकते हैं। इस रुपयेमेंसे उनके भरणपोषणका व्यय काट कर जो बचता है वह छूटते समय उन्हें दे दिया जाता है। बन्दिनोंके धार्मिक कृत्योंमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाली जाती। १९५९ में ब्रिटेनने अपने बोअर बन्दिनोंके लिये, जो लंका और सेण्ट हेलेनामें बन्द थे स्कूल खोले थे और विशेषरूपसे खेलकूदका प्रबन्ध किया था। रूस-जापान युद्धमें जापानियोंने रूसी बन्दिनोंके लिये यूरोपियन ढङ्गका भोजन बनानेके लिये बाहरसे रसोईदार बुलवाये थे। अन्य सम्य देश भी बन्दिनोंको सुख देनेका इसी प्रकार प्रयत्न करते हैं।

बन्दिनोंके घरसे रुपया नहीं आ सकता पर खाना कपड़ा, पुस्तकें या अन्य जो कुछ वस्तुएं आती हैं उनपर किसी प्रकारका

आयात कर, चुंगी या अन्य टिकस नहीं लिया जाता। सकारी रेलें उन्हें बे महसूल पहुँचाती हैं। उन्हें अपने पत्रोंपर स्टाम्प (टिकट) नहीं लगाने पड़ते। यदि वह अपना वसीयतनामा लिखना चाहें तो उन्हें पूरी कानूनी सुविधा दी जाती है। जिस प्रकार हमारे यहां सेवासमितियाँ खुली हुई हैं उसी प्रकार युद्धके समय ऐसी समितियाँ खुल जाती है जिनका उद्देश्य बन्दिओंको सहायता देना होता है। ऐसी समितियोंके प्रतिनिधियोंको बन्दिओं तरफ पहुँचने और सहायता देनेमें पूरी सुविधा दी जाती है।

इन सब नियमोंपर नियमोंके पालन करनेमें यह अवश्य ध्यान रक्खा जाता है कि अपने सैनिक आयोजनको किसी प्रकारकी क्षति न पहुँचे। यदि सेनाके पास स्वयं पर्याप्त खाना कपडा नहीं है तो बन्दिओंको कहासे देगी। यदि यह सन्देह हो कि सहायक समितियोंके सदस्य सहायता पहुँचानेके बहाने जासूसी करते फिरते हैं तो उनका आना जाना बन्द करना ही होगा; बन्दिओंको घूमने फिरनेकी इतनी स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती कि निरीक्षण करना कठिन हो जाय। १९५२ के युद्धमें बोअरोंने तो यहां तक किया कि जब वह अपने बन्दिओंका ठीक ठीक प्रबन्ध न कर सके तो उन्हें योही छोड़ दिया।

जलमेनाके लिये भी यही नियम है। सैनिक जहाजोंके सभी अफसर और नाविक रणबन्दी हो जाते हैं। व्यापारिक जहाजोंके नाविकोंसे यह लिखा लिया जाता है कि हम इस युद्धभर कोई युद्ध-सम्बन्धी काम न करेंगे। यदि लिखना अस्वीकार हो तो वह बन्दी किये जाते हैं नहीं तो छोड़ दिये जाते हैं। यदि व्यापारिक जहाजके नाविक किसी तटस्थ देशके नागरिक हों तो वह बिना कुछ लिखे लिखाये ही छोड़ दिये जाते हैं पर तटस्थ अफसरोंको लेखबद्ध प्रतिज्ञा देनी पड़ती है।

इस संक्षिप्त वर्णनसे विदित हो जायगा कि आजकल कितनी उदारता बर्ती जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि नियमोंका उल्लंघन भी होता है। गत महायुद्धमें जर्मनोंपर बन्दिनोंके साथ दुर्व्यवहार करनेके कठोर आरोप लगाये गये थे, सम्भवतः जर्मनीमें अंग्रेजोंके व्यवहारकी ऐसी ही आलोचना हुई होगी। फिर भी सम्भवता और सौजन्यकी वृद्धि ही हो रही है। जिन अंग्रेजोंने जर्मनोंकी शिकायत की उन्होंने ही तुर्कोंकी भूरि भूरि प्रशंसा की।

रोगियों और आहतोंकी भी अब पहिलेसे कहीं अच्छी सेवा होती है। पहिलेकी लड़ाइयोंमें आहतोंको लूट लेना तो साधारण बातें थीं। सिपाहियोंसे जो कुछ बचता था उसे रोगियों और घायलोंके भिखमंगे और लुटेरे उठा के आहतोंकी जानते थे। बड़े आदमियोंकी देखरेख तो वैद्य सेवा सुश्रूषा हकीम कर लेते थे, सामान्य सिपाही चीलों गिद्धों, कुत्तों और स्यारोंके शिकार होते थे। यूरोपमें पादरी लोग धार्मिक दृष्टिसे रोगियों और आहतोंकी सेवा करते थे पर सकार्मी प्रबन्ध न होनेसे अकेले उनका प्रयत्न पर्याप्त न होता था। आजकल प्रत्येक सभ्य सरकारके साथ बहुत से चिकित्सक रहते हैं और पर्याप्त सामग्री रहती है। १९२१ में स्विस् सरकारने जेनीवा नगरमें एक अन्तराष्ट्रिय परिषद् एकत्र की। उसको यह काम सौंपा गया कि रोगियों और आहतोंके सम्बन्धमें नियम बनाये। जो नियमावली उस समय बनी उसको धीरे धीरे अधिकांश सभ्य देशोंने स्वीकार कर लिया। १९५६ में देश सम्मेलनने उन नियमोंमें कुछ उलटफेर करके उन्हें जलयुद्धके अनुकूल बनाया। १९६३ में उनमें कुछ संशोधन किये गये। यह संशोधन भी जेनीवामें ही किये गये। समस्त नियमावलीको 'जेनीवा कंवेन्शन' (जेनीवाका इकरारनामा) कहते हैं। १९६४ में हेगमें

जलयुद्ध सम्बन्धी नियमोंका भी संशोधन किया गया। इन्हें सभी सम्य राजोंने मान लिया है।

यों तो जो रोगी या आहत सिपाही शत्रुसेनाके हाथमें पड़ जाते हैं वह रणबन्दी होते हैं पर सेनाओंको चाहिये कि रोगियों और आहतोंकी चिकित्सामें राष्ट्रका विचार न करें अर्थात् शत्रु-सैनिकोंके लिये भी अपने सैनिकोंकी भांति ही प्रबन्ध करें। प्रबन्ध पर्याप्त होना चाहिये। यदि किसी सेनाको शत्रुकी बढ़ती हुई सेनाके सामनेसे इस प्रकार हटना पड़े कि वह रोगियों और आहतोंको साथ न ले जा सके तो उसे चाहिये कि यथासम्भव कुछ चिकित्सक और चिकित्सा-सामग्री भी छोड़ जाय। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं रोगी और आहत भी रणबन्दी होते हैं पर आपसमें तय करके शत्रुराज यह भी करते हैं कि एक दूसरेके रोगियों और आहतोंको स्वस्थ हो जानेपर घर लौटा देते हैं या किसी तटस्थ राजको सौंप देते हैं कि युद्धकी समाप्ति तक वह उन्हें नजरबन्द रखे। प्रत्येक लड़ाईके पीछे विजयी सेनापतिका यह कर्तव्य है कि रणक्षेत्रकी पूरी पूरी जांच करावे ताकि कोई मनुष्य आहतों और हतोंको न लूटे या अन्य प्रकारसे उनके साथ दुर्व्यवहार न करे। शवोंको गाड़ने या जलानेके पहिले इनकी पूरी जांच कर लेनी चाहिये ताकि हतोंके साथ बेहोश आहत भी मृत न मान लिये जायें। उभयपक्षको चाहिये कि विपक्षी सरकारके पास हतोंके शरीरपर पाये गये परिचायक चिन्ह (जैसे नंबरका कागज, परतला इत्यादि) और रोगियों और आहतोंकी तालिका भेज दें। उभयपक्षको चाहिये कि एक दूसरेको समय समयपर इस बातकी सूचना देते रहें कि कितने रोगी या आहत अस्पतालमें रखे गये, कितने मर गये, कितने लूटे, कितने नजरबन्द हुए। हतों तथा अस्पतालमें मरे हुए रोगियों और आहतोंकी निजी सम्पत्तिको एकत्र करके शत्रु

अधिकारियोंके पास भेज दें ताकि वह इनके घर भेज दी जाय । सैनिक अधिकारियोंकी यदि इच्छा हो और आवश्यकता प्रतीत हो तो वह उस प्रान्तके निवासियोंसे रोगियोंकी सेवासुश्रूषामें सहायता करनेकी प्रार्थना कर सकते हैं और जो लोग सहायता दें उनके साथ कुछ विशेष रियायतें कर सकते हैं । यह सेवा-सुश्रूषा भी सैनिक अधिकारियोंके निरीक्षणमें ही होगी ।

अस्पतालोंकी इमारतों, सामग्रियों और कर्मचारियोंकी रक्षा करना उभय पक्षका कर्तव्य है पर यदि अस्पतालोंको धोखेकी दृष्टी बना कर उनसे कोई ऐसा काम लिया जाय जिससे शत्रु सेनाको क्षति पहुचती हो तो फिर वह रक्षाके अधिकारी नहीं रह जाते । डाक्टर, उनके सहायक, और अस्पतालोंके गार्ड (पहरेदार) उसी दशामें अपने शस्त्रोंसे काम ले सकते हैं जब उनपर या रोगियोंपर कोई सशस्त्र आक्रमण करे, अन्यथा शस्त्र चलानेसे वह विशेष रक्षाके पात्र नहीं रह जाते । जबतक अपना कर्तव्य पालन करते जाते हैं तबतक यह लोग और सेनाओंके धर्मोपदेशक शत्रुके हाथमें पडनेपर भी रणबन्दी नहीं बनाये जा सकते । यदि सेवा समितियां सेनाओंके अस्पतालोंमें काम कर रही हों और उन्हें ऐसा करनेकी अनुज्ञा उनके देशकी सरकारसे प्राप्त हो तो उनके उन कर्मचारियोंके साथ जो युद्ध-क्षेत्रमें होंगे वही बताव किया जायगा जो सरकारी डाक्टरोंके साथ किया जाता है । इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज शत्रुराजके पास युद्ध आरम्भ होनेके पहिले ही या आरम्भ होते ही या आरम्भ होनेके पीछे (परन्तु काम लेनेके पहिले) उन सब समितियोंके नाम भेज दे जिनसे वह सहायता लेना चाहता है । यदि किसी त-स्थ देशकी सेवा-समिति किसी सेनाका सहायता करना चाहती है तो उसे अपने देशकी सरकार और उस राजकी सरकारकी अनुज्ञा प्राप्त करनी होगी जिसकी सेनाकेसाथ वह रहना चाहती

है। इसकी सूचना शत्रुराजको भी मिलनी चाहिये। यदि डाक्टर और उनके सहायक (चाहे वह सक्कारी हों चाहे सेवा-समितियोंके) शत्रुके हाथमें पड़ जाय और वह उनको रखनेकी आवश्यकता न समझे तो वह उन्हें जब और जिस मार्गसे चाहें स्वदेश भेज सकता है। घर जाते समय वह अपनी निजी सम्पत्ति अपने साथ ले जायगे। जब तक किसी सेनाके सक्कारी डाक्टर और धर्मोपदेशक शत्रुसेनाके हाथमें पड़कर उसके अधीन काम कर रहे होंगे तबतक वह उन्हें वही वेतन और भत्ता देगी जो उस वर्जके अपने डाक्टरों और धर्मोपदेशकोंको देती है।

यदि किसी सेनाके रोगी और अस्पताल शत्रुसेनाके हाथमें पड़ जाते हैं, तो वह उनकी भीतरी सामग्री और हुलाईके साधनों (गाड़ी घोड़े, मोटर इत्यादि) तथा हाँकने वालोंको ज्योंका त्यों छोड़ देती है, परन्तु अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर शत्रु सेनापति इस सामग्रीका कुछ अंश अपने अस्पतालोंमें लगा सकता है। शर्त यह है कि यदि ऐसा किया जाय या किसी ऐसे अस्पतालसे डाक्टर हटाकर शत्रुके अस्पतालमें रखे जाय तो जितनी जल्दी हो सके उन्हें (अर्थात् डाक्टरोंको और सामग्रीको) लौटा देना चाहिये। अस्पतालोंकी इमारतों और सामग्रियोंसे सिवाय रोगियों और आहतोंकी सेवा सुश्रूषाके और कोई काम नहीं लिया जा सकता। यदि अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर कोई सेनापति उनसे अन्य काम लेनेपर विवश हो जाय तो उसे चाहिये कि रोगियों और आहतोंके लिये पहिले प्रबन्ध कर दे। सेवासमितियोंकी सामग्री निजी सम्पत्ति मानी जाती है (सक्कारी नहीं), अतः उसपर हाथ नहीं डाला जाता। परन्तु विशेष अवस्थाओंमें, जिनका उल्लेख अगले अध्यायमें होगा, निजी सम्पत्ति भी जब्त की जाती है। उन अवस्थाओंमें सेवासमितियोंकी सम्पत्ति भी जब्त हो सकती है।

यदि किसी सेनाके रोगी और आहत एक स्थानसे दूसरे स्थान (विशेषतः स्वदेश) भेजे जा रहे हों और बीचमें शत्रुसेनासे मुठभेड़ हो जाय तो उसे चाहिये कि किसी वस्तुपर हाथ न डाले। डाक्टर, सहायक, यंत्र, औषधे, सवारियाँ, हाँकनेवाले, रसद, पहरेदार सभी रक्षाके अधिकारी हैं। परन्तु युद्धमें आवश्यकता बढ़ी चीज है। यदि अत्यन्त आवश्यकता हो तो शत्रुसेनाका सेनापति इन सारी वस्तुओंपर कब्जा कर सकता है पर उसको आहतों और रोगियोंको भी अपने जिम्मे लेना होगा। ऐसी दशामें उसे चाहिये कि सब डाक्टरों, पहरेदारों, सहायकों, हाँकनेवालों आदिको स्वदेश भेज दे। इसी प्रकार उसे चाहिये कि काम निकल जानेपर सब सामग्री लौटा दे और जिन लोगोंसे नाव, रेल, घोड़ा गाड़ी, मोटर इत्यादि मंगनी, किरायेपर या पोंढ़ी ली गयी हों उनकी सम्पत्ति उन्हें लौटा दे।

सैनिक अस्पतालोंके लिये ईसाई देशोंमें जेनीवा क्रॉस या रेड-क्रॉस (लालसलेब) का चिन्ह होता है। तुर्कीमें लाल अर्धचन्द्र होता है। सम्भवतः स्वतंत्र भारतमें लाल स्वस्तिक होगा। जमीन सुफेद होती है उसीपर यह चिन्ह बना होता है। अस्पतालोंके झण्डेपर, गाड़ियोंपर, सन्दूकोंपर यही बना रहता है। उनमें काम करने वालोंमें बाएँ हाथपर एक पट्टी होती है जिसपर यह चिन्ह छपा रहता है। अस्पतालोंपर इस चिन्हसे अकेल झण्डेके अतिरिक्त उस राजका भी झण्डा रहता है जिसकी सेनाका अस्पताल है। तटस्थ देशोंसे आये हुए स्वयंसेवकोंको भी अपने साथ उसी राजका झण्डा रखना पड़ता है परन्तु शत्रुके हाथमें पड़ जाने पर केवल सेवा पताका (श्वेत जमीनपर लाल चिन्ह) रह जाती है।

* ऊपर बार बार सैनिक अस्पतालोंका उल्लेख हुआ है। यह अस्पताल दो प्रकारके होते हैं, एक तो, वह जो सेनाकी टुकड़ियोंके

तटस्थ राजोंको अधिकार है कि यदि वह चाहें तो अपने राज्य-में से रोगियों और आहतोंको जानै दे पर उनका यह कर्तव्य है कि युद्धसामग्री और सैनिकोंको इस बहाने न आने जाने दे । यदि किसी तटस्थ राजको कुछ रोगी या आहत स्वीप दिये जाय तो उसे यह देखना होगा कि अच्छे होकर यह लोग फिर युद्धमें सम्मिलित न हो जाय ।

यह तो स्थलयुद्धकी बातें हुईं । जलयुद्धमें भी प्रायः वही नियम काम देते हैं । अस्पताली जहाजोंके तीन भेद होते हैं । पहिली कोटिमें राजकीय जहाज होते हैं । इनका रंग श्वेत होता है और बीचमें लगभग सवागज चौड़ी एक आड़ी हरी पट्टी पड़ी होती है । दूसरी कोटिमें शत्रुराजके कतिपय दयालु व्यक्तियों या सेवासमितियोंके जहाज होते हैं । इनका रंग भी श्वेत होता है और बीचमें लगभग सवागज चौड़ी एक आड़ी लाल पट्टी होती है । ऐसे जहाजोंके पास उनकी राष्ट्रीय सरकारके लिखित अनुज्ञापत्र होने चाहियें और इनके नामोंकी सूची पहिलेसे ही शत्रुराजके पास भेज देनी चाहिये । वक्त दोनों प्रकारके जहाजों-पर सेवाभण्डा और राष्ट्रीय भण्डा रहता है । तीसरी कोटिमें वह जहाज हैं जो तटस्थ देशोंके नागरिकों या सेवासमितियोंके भेजे हुए होते हैं । इनपर भी श्वेत रंगके बीचमें लाल पट्टी रहती है पर इनके पास एक तो उस राजका अनुज्ञापत्र होना चाहिये जिसके बेड़ेके साथ काम करते हों दूसरा अपने राजका । इनपर सेवा-

साथ इधर उधर फिरा करते हैं । इन्हें field hospitals या mobile hospitals अर्थात् चल चिकित्सालय कहते हैं । जो जगहसे कुछ दूर एक जगह रहते हैं उन्हें fixed hospitals या अचल चिकित्सालय कहते हैं ।

भण्डा, "बेड़ेका राष्ट्रीय भण्डा" और अपने जहाजका राष्ट्रीय भण्डा रहता है। इन तीनों प्रकारके जहाजोंके साथ वही बर्ताव किया जाता है जो स्थलयुद्धमें अस्पतालोंके साथ होता है। इन परके काम करनेवाले रणवन्दी नहीं बनाये जाते पर उनको उभय पक्षके रोगियों और आहतोंकी सेवा सुश्रूषा करनी चाहिये। एक बातका सदैव ध्यान रखना चाहिये। इन जहाजोंसे सिवाय सेवाके और कोई काम न लेना चाहिये। यदि किसी ऐसे जहाजपर सवार होकर एक भी सिपाही या भक्त कहीं भावे जाय या इनके द्वारा एक भी पत्र कहीं भेजा जाय तो इनका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है और फिर यह किसी भी रियायतके अधिकारी नहीं रह जाते। उभयपक्षको इनकी तलाशी लेने, सम्बेद होनेपर इनपर अपना एक निरीक्षक बैठा दे, यदि इनके रहनेसे लड़ाईके काममें बाधा पड़ती हो तो हटा देने और विशेष अवस्थाओंमें रोक लेनेका भी अधिकार है। प्रत्येक जहाजमें कुछ जगह रोगियों और आहतोंके लिये पृथक् की रहती है। उभय पक्षको चाहिये कि लड़ाईके समय उस स्थानकी यथासम्भव रक्षा करें।

इनके अतिरिक्त और भी कई नियम हैं पर वह प्रायः भक्षरक्ष जैसे ही हैं जैसे स्थलयुद्धके नियम हैं। भेद यह है कि अस्पताल की जगह अस्पताली जहाजका प्रयोग हुआ है। डाक्टरों और सामग्रियोंसे दूसरा काम लेना, डाक्टरों और धर्मोपदेशकोंकी आवश्यकता न रहनेपर घर लौटा देना, एक दूसरेको सूचना देना, रोगियों और आहतोंको व्यापारियों या अन्य तटस्थ नागरिकोंको सौंपना या इनको किसी तटस्थ राजको सौंपना यह सब बातें उन्हीं शर्तोंपर होती हैं जो स्थलयुद्धके लिये होती हैं। एक बात बहल्लेख्य है। यदि कोई नौ-सेनापति चाहे तो वह किसी तटस्थ देशके व्यापारिक या यात्री लेजानेवाले जहाजसे अपने कुछ रोगियों और आहतोंको

वें देनेकी प्रार्थना कर सकता है। यदि वह जहाज चाहे तो इस प्रार्थनाको स्वीकार भी कर सकता है। पर यदि पीछेसे इस जहाजसे विरोधी पक्षके किसी सैनिक जहाजसे भेंट हो जाय तो इन रोगी आदमियोंकी क्या गति होगी ? कुछ लोगोंकी यह सम्मति है कि एक बार तटस्थ जहाजपर जानेसे वह उस तटस्थ देशके शरणागत हो गये अतः कैद नहीं किये जा सकते। पर हेतुमें बहुमत वें यही निश्चित हुआ कि यदि वह सैनिक जहाज चाहे तो उन्हें रणबन्दी बना सकता है पर उस जहाजको नहीं गिरफ्तार कर सकता। हां, यदि किसी तटस्थ देशके सैनिक जहाजके सुपुर्द आहत और रोगी हों तो वह सुरक्षित रह सकते हैं क्योंकि सैनिक जहाजोंकी तलाशी नहीं होती। उस तटस्थ राजका यह कर्तव्य है कि ऐसा प्रबन्ध करे कि स्वस्थ होकर यह लोग फिर युद्धमें सम्मिलित न हो जाय।

युद्ध ऐसी विकट वस्तुको इससे अधिक नरम बनाना बहुत कठिन है। मनुष्यकी स्वप्रोत्थित पाशविकताको अंकुश देनेके लिये यह नियम भी पर्याप्त हैं परन्तु जड़ नियमोंमें कोई सामर्थ्य नहीं है। उनके पालन करनेवाले जैपे होंगे उनका वैसा ही उपयोग करेंगे। बहुतसे नियम बनाकर युद्धक्षेत्रपर सेनापतिको जकड़नेका प्रयत्न करना बुरा है। प्रभावशाली लोकमत, सभ्यताका विकास, मनुष्यता और आत्मभावका प्रचार सेनापतियोंकी व्याशीलता और सैनिकोंकी उदारता तथा मर्कटोंकी सहानुभूति सब नियमोपनियमोंसे बढ़कर उपयोगी हैं।

छठवाँ अध्याय ।

शत्रुसम्पात्तक साथ व्यवहार-भूस्थित सम्पत्ति
(युद्धारम्भके समय) ।

यों तो शत्रुवर्गीयोंके साथ साथ कहीं कहीं शत्रु-सम्पत्तिका भी उल्लेख हो चुका है पर वस्तुतः यह विषय उससे कहीं गहन है । इसपर पृथक् विचार करना ही ठीक है । पहिले हमको यह देखना है कि शत्रु-सम्पत्ति कितने प्रकारकी होती है ।

सबसे पहिले तो शत्रु-राजकी सम्पत्ति शत्रु-सम्पत्ति है । उसके शस्त्र, उसके दुर्ग, उसके जहाज-यह सब शत्रु सम्पत्ति है और इनपर कब्जा करनेका पूरा अधिकार है । पर हम शत्रुराजकी सम्पत्ति आगे चलकर देखेंगे कि शत्रुराजकी कुछ ऐसी भी सम्पत्ति होती है जिसको जब्त करना वर्जित है, अतः परिभाषया उसे शत्रुसम्पत्ति नहीं कह सकते ।

शत्रुराजके नागरिकोंकी सम्पत्ति भी शत्रुसम्पत्ति है । यदि यह सम्पत्ति स्वदेशमें ही है तब तो कोई विवाद हो ही नहीं सकता पर यदि किसी तटस्थ देशमें बसकर उपा-शत्रुराजके नागरिकोंकी सम्पत्ति जित की गयी हो तो उसने रूपरे सम्बन्धमें मतभेद है । कुछ देशोंमें तो यह सिद्धान्त प्रचलित है कि सम्पत्तिका रूप उसके स्वामीकी राष्ट्रीयतासे अनुकूल होता है अतः शत्रुराजके नागरिककी सम्पत्ति

शत्रुसम्पत्ति है। अन्य देशोंमें यह सिद्धान्त चलता है कि सम्पत्तिका रूप उसके स्वामीके निवासस्थानके अनुकूल होता है अतः जो सम्पत्ति तटस्थ देशमें बसकर उपाजित की गयी है वह शत्रु-सम्पत्ति नहीं है। यह स्मरण रहे कि यह प्रश्न समुद्र-चारी वस्तुओंके विषयमें ही उठता है। स्थलपर, विशेष अवस्थाओंमें कुछ देनेके उद्देश्यको छोड़कर, शत्रु नागरिकोंकी निजी सम्पत्ति जप्त की ही नहीं जाती अतः इस प्रकारके प्रश्न स्वतः नहीं उठते।

बहुधा ऐसा होता है कि युद्ध आरम्भ होते ही या उसके आरम्भ होनेकी सम्भावना देखकर शत्रुराजोंके व्यापारी अपने जहाजोंको तटस्थ देशोंके नागरिकोंके हाथ बेच देते हैं। ऐसे विक्रयोंमें प्रायः ऐसी शर्त भी रहती है कि हम जब चाहेंगे फिर लौटा लेंगे। यह विक्रय वस्तुतः कृत्रिम होता है। इसका उद्देश्य केवल जहाजोंको युद्धकालमें जप्त होनेसे बचाना होता है। अतः यह देखनेकी आवश्यकता पड़ती है कि सचमुच क्रय-विक्रय हुआ है या झूठी कागजी कार्यवाही कर दी गयी है। आजकल इस सम्बन्धमें यह नियम प्रचलित है। यदि युद्ध आरम्भ होनेके पीछे बिक्री हुई है तो वह नहीं मानी जाती पर यदि खरीदनेवाला यह प्रमाणित कर सके कि वस्तुतः जब्तीसे बचनेके लिये नहीं बरन् शुद्ध व्यापारिक दृष्टिसे ही क्रय-विक्रय हुआ था तो इसकी बात मानी जा सकती है। पर यदि जहाज समुद्रयात्रा करते समय या किसी विरे बन्दरमें हस्तान्तरित किया गया हो या पुनः मील देनेकी शर्त लिखी हो तो फिर कोई प्रमाण नहीं सुना जाता।

यदि वह जहाज युद्ध आरम्भ होनेके एक मास या अधिक पहिले बेच दिया गया हो और उसपर विक्रय-पत्र भी हो तो जब

*Bill of Sale--वह रजिस्टरी दूआ कागज जिसपर बिक्रीका पूरा ब्योरा दिया रहता है।

तक गिरफ्तार करने वाले इस पत्रमें ही कोई दोष न निकाल सकें तब तक उसे जन्त नहीं कर सकते । यदि किसी पक्षका सैनिक जहाज़ उसे गिरफ्तार कर ले तो उस पक्षकी सरकारको मुभाविजा देना पड़ेगा । यदि बिक्रीको तीस दिनसे ऊपर तो हो गये हों पर साठ दिन न हुए हों और उसपर विक्रय-पत्र न हो तो उसे गिरफ्तार कर सकते हैं । यदि उसका नया स्वामी यह सिद्ध कर सके कि वस्तुतः जहाज उसका ही है और उसने उसे नियमानुसार ही मोल लिया है तो जहाज छोड़ दिया जायगा पर मुभाविजा नहीं मिल सकता । यदि सिद्ध न कर सके तो जहाज जन्त हो जायगा । यदि युद्ध आरम्भ होनेके साठ दिन पहिले बिक्री हो चुकी थी तो फिर किसी प्रकारकी जांच पड़तालकी आवश्यकता नहीं होती । जहाजोंपर जो व्यापारका माल लदा रहता है उसका शत्रुसम्पत्ति होना न होना उसके स्वामीके शत्रु होने न होनेपर निर्भर है । जहाज चाहे शत्रु देशका हो चाहे तटस्थ देशका, माल जिसके पास भेजे जानेके लिये लादा गया था उसीका माना जायगा ।

तटस्थ नागरिकोंकी वह सम्पत्ति जो शत्रुके हाथमें सौंप दी गयी हो शत्रुसम्पत्ति ही मानी जायगी । यदि किसी तटस्थ नागरिकके जहाजके अफसर और नाविक शत्रुगजके

तटस्थ नागरिक- निवासी हैं या वह जहाज शत्रुके राज्यमें उसकी कौकी वह सम्पत्ति विशेष अनुज्ञासे व्यापारादिके उद्देश्यसे चलता जो शत्रुको सौंप है तो वह शत्रुसम्पत्ति ही समझा जायगा । दी गयी हो इसी प्रकार शत्रु जहाजपर तटस्थोंका जो माल

होगा वह भी, बहुत ही प्रबल प्रमाणके मिले बिना, शत्रुसम्पत्ति ही समझा जायगा । यदि यह माल शत्रुके किसी लड़ाईके जहाजपर पाया जाय तब तो कोई प्रमाण सुना ही नहीं जाता । इसी प्रकार यदि किसी तटस्थ नागरिककी किसी

शत्रुदेशमें जमीनदारी या अन्य जायदाद हो तो उसकी उपज शत्रु-सम्पत्ति मानी जाती है ।

कभी कभी यह अडचन पड़ती है कि एक ही स्थानके प्रभु-स्वके दो हकदार होते हैं । एक शत्रु राज कहता है कि जगह मेरी है, एक तटस्थ राज कहता है कि मेरी है । यदि उस शत्रु राजको प्रभु मानें तो तत्रस्थ सम्पत्तिका एक रूप हो जायगा, यदि तटस्थ राजको प्रभु मानें तो उसका दूसरा ही रूप होगा । ऐसी दशामें हाँलने जो नियम बताया है वह सबसे अच्छा है । इस बातका निर्णय किये बिना कि प्रभु कौन है यह देखना चाहिये कि सम्पत्ति जिस किसीका भी उसपर कब्ज है वह उससे कैसा काम लेता है । इसीके अनुसार उसे शत्रु या तटस्थ मानना चाहिये ।

अब हमको यह देखना है कि उपर्युक्त विविध प्रकारकी शत्रु सम्पत्तियोंके साथ किस प्रकार व्यवहार किया जाता है । यह हो सकता है कि एक शत्रु राजकी सम्पत्ति दूसरे एक शत्रुराजकी शत्रु राजके राज्यके भीतर पायी जाय । इसकी सम्पत्ति दूसरे शत्रु विशेष सम्भावना नहीं है क्योंकि स्वतन्त्र राज राजके राज्यमें एक दूसरेके राज्यमें किसी प्रकारकी सम्पत्ति रखकर एक दूसरेके प्रजावर्गमें परिगणित होना अपमानजनक समझते हैं । कभी कभी राजदूतके रहनेका स्थान अलबत्ता राजका होता है । यदि युद्ध छिड़नेपर वह जब्त कर लिया जाय तो कोई विशेष क्षति नहीं हो सकती पर प्रायः ऐसा किया नहीं जाता । हाँ, यदि चल सम्पत्ति, जैसे जहाज, शस्त्र, कोष आदि, लड़ाई छिड़नेपर हाथ लग जाय तो वह नि सन्देह जब्त कर ली जायगी । चल सम्पत्तिमें भी धार्मिक कृत्य सम्बन्धी तथा चित्र, मूर्ति इत्यादि ललित कला सम्बन्धी वस्तुएँ

और पुस्तकें जब्त नहीं की जातीं प्रत्युत उस शत्रुराजको जो उनका स्वामी होता है लौटा दी जाती हैं ।

आजकल परस्पर सम्बन्धकी इतनी वृद्धि हो गयी है कि एक राजके निवासी बहुधा दूसरे राजमें व्यापारादिके लिये रहते हैं और स्वभावतः सम्पत्तिका भी संग्रह कर लेते हैं । युद्ध छिड़नेपर यह प्रश्न उठता है कि शत्रु अचल सम्पत्ति प्रजाकी जो सम्पत्ति अपने राज्यमें है उसके साथ क्या व्यवहार किया जाय । यहाँ हम अचल (जैसे घर, बाग, इत्यादि) और चल (रुपया, कपड़ा, बर्तन इत्यादि) पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे ।

पुराना नियम तो यह था कि युद्ध छिड़ते ही अचल सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी । इसके बाद धीरे धीरे यह प्रथा चली कि जायदूद जब्त न की जाय पर युद्धकालमें उसकी आय जब्त कर ली जाय । आजकल यह प्रथा भी क्रूर समझी जाती है । प्रचलित नियम यह है कि शत्रु राजके प्रजावर्गीय शान्तिपूर्वक अपना अपना काम करते रहें । ऐसी दशामें उनकी सम्पत्ति या उसको आयको जब्त करना अमानुषिक होगा । एक कठिनाई होती है । यदि कोई मनुष्य युद्धकालमें स्वदेशमें हो तो वह अपनी उस सम्पत्तिकी, जो शत्रु-राज्यमें है, आयका सुगमतासे उपभोग न कर सकेगा पर भविष्यत्में सम्भवतः यह कठिनाई भी न रह जायगी क्योंकि हेगमें यह नियम बना था कि शत्रु-प्रजाके कानूनी स्वत्वोंका अस्तित्व युद्धकालमें भी उ्योंका त्यों बना रहता है अतः मनुष्य चाहे कहीं रहे किसी कारिन्दा या एजेण्ट-के द्वारा अपनी शत्रुराज्यस्थ अचल सम्पत्तिका प्रबन्ध कर सकेगा । इस समय थोड़ी सी इस बातकी कठिनाई है कि कई राजोंने हेगके इस नियमको अपने अपने देशों के विधानोंमें स्थान नहीं दिया है ।

पहिले चक्र सम्पत्तिके लिये भी वही नियम था जो अचल सम्पत्तिके लिये प्रचलित था अर्थात् वह भी जब्त कर ली जाती थी। पीछेसे सन्धियोंमें यह बात लिख दी जाने शत्रु प्रजाकी चल लगी कि यदि उभय पक्षमें कभी युद्ध छिड़ जाय सम्पत्ति तो एक दूसरेके प्रजावर्गीयोंको व्यापारिक चल सम्पत्ति हटा लेनेके लिये नियत अवकाश देंगे।


इधर सौ वर्षसे अधिक हुए किसी सभ्य राजने इस अधिकारसे काम नहीं लिया है। आजकल तो जब्त करनेका प्रश्न ही प्रायः नहीं उठता क्योंकि शत्रु प्रजाको युद्धकालमें बसने और व्यापार करनेकी बराबर अनुज्ञा मिल जाती है। सभ्य राजाने किसी सन्धि या घोषणा द्वारा जब्त करनेका अधिकार छोड़ नहीं दिया है पर उनका उससे काम न लेना यह सिद्ध करता है कि धीरे धीरे अन्ताराष्ट्रिय विधानसे इसका निर्वासन हो रहा है। किसी किसीकी यह सम्मति है कि जब्तीकी प्रथा तो बन्द हो जानी चाहिये पर यह नियम रहना चाहिये कि युद्धकालमें यदि ऐसा आवश्यक प्रतीत हो तो शत्रु प्रजाकी चल सम्पत्ति रोक ली जाय अर्थात् उसका स्वामी उसके उपभोगसे वञ्चित रक्खा जाय। ऐसी दशामें युद्ध समाप्त होनेपर उसका स्वत्व पुनरुज्जीवित हो जायगा।

ऐसे बहुत कम सभ्य देश हैं जिनका काम विना ऋण लिये चलता हो। शान्तिकालमें जो ऋण लिया जाता है उसके लिये सरकारकी ओरसे स्टाक (या प्रामिसरों नोट) शत्रुवगाय उत्तम- निकाला जाता है। यह स्टाक ऋणकी हुण्डी खोँके पासका या प्रमाणपत्र है। सरकार प्रतिवर्ष इस ऋणपर स्टाक और डुडिया नियत दरसे व्याज देती है और नियत कालके पीछे सब रुपया चुका कर कागज लौटा लेती

है। जब ऋण लिया जाता है तो स्वप्रजाके अतिरिक्त विदेसी भी ऐसे कागज मोल लेते हैं। फलतः वह भी सरकारके उत्तमर्ण हो जाते हैं। अब यदि युद्ध छिड़ जाय तो प्रश्न यह होता है कि ऋणके जो कागज अर्थात् (प्रामिसरी नोट) शत्रुप्रजाके हाथमें हों उनको जब्त कर लिया जाय या नहीं। यदि जब्त किया जाय तो सम्भवतः सरकार बहुत से ऋणसे अनायास ही मुक्त हो जाय पर ऐसा कदापि नहीं किया जाता। शत्रुकी अन्य चलाचल सम्पत्तिके साथ चाहे जो व्यवहार किया जाय पर उसके पास जो अपने धनीकी हुण्डियाँ (या नोट) होती हैं वह कभी जब्त नहीं की जातीं। एक तो आजकल व्यापार-जगत्का रूप ऐसा है कि एक देशकी आर्थिक दशाका दूसरे देशपर तत्काल प्रभाव पड़ता है। जो राज अपने शत्रु देशके महाजनोंको ठगता वह घूम फिर कर अपने देशके महाजनोंपर ही आक्रमण करेगा। दूसरे, ऐसा करनेसे साख बिगड़ती है। यदि यह आशंका हो कि स्यात् युद्ध छिड़ जाय और यह नोट रद्दी कागज हो जाय तो या तो कोई सरकारोंको ऋण दे ही नहीं या व्याजका भाव बहुत बढ़ जाय। इसलिये नियम यह है कि ऐसे कागजोंपर हाथ नहीं डाला जाता और जो कागज शत्रुवर्गीयोंके हाथमें होते हैं उनपर भी बराबर व्याज दिया जाता है। एक बार १८०९ में ब्रिटेन और प्रशामें इस सम्बन्धमें विवाद उठा था। वह उपयुक्त नीतिके अनुसार ब्रिटेनके पक्षमें निर्णित हुआ, तबसे फिर कभी ऐसा प्रश्न नहीं उठा। महायुद्धके पीछे रूसकी बोक्षोवी सरकारने ब्रिटेन आदिके व्यापारियोंका ऋण चुकाना अस्वीकार कर दिया था पर अब उसने भी इस सिद्धान्तको मान लिया है।

सातवाँ अध्याय ।

शत्रुसम्पत्तिके साथ व्यवहार—भूस्थित सम्पत्ति
(युद्धकालमें) ।

 ठवें अध्यायसे हमने उस भूस्थित सम्पत्तिके सम्बन्धमें विचार किया है जो युद्धारम्भमें शत्रुके हाथ लग जाती है या लग सकती है । इस अध्यायमें हमें उस सम्पत्तिके सम्बन्धमें विचार करना है जो युद्धकालमें हाथ लगती है । यह सम्पत्ति दो ही अवस्थाओंमें हाथ आ सकती है । कुछ तो शत्रुके किसी गढ़ या पड़ावको जीत लेने या युद्धक्षेत्रसे उसे हटा देनेसे मिल सकती है । इसे हम लूटका माल कहेंगे । शेष उसके राउयके भीतर घुस कर कब्जा करनेसे मिल सकती है । इस द्वितीय प्रकारसे जो सम्पत्ति प्राप्त होती है उसका परिमाण अधिक होता है और वह कई प्रकारकी होती है । उसके सम्बन्धमें नियम भी बहुत से बने हैं । लूटके मालकी व्यवस्था सरल है ।

बहुत पुराने समयमें सभी देशोंमें यह प्रथा थी कि शत्रुके गढ़ या पड़ावमें जो कुछ मिल सके या युद्धक्षेत्रपर हताहत शत्रुओंके शरीरोंपर जो कुछ मिले वह सब लूटका माल लूटका माल समझा जाय और उसपर विजेताओं-का पूर्ण अधिकार हो । परन्तु १९५६ के हेग सम्मेलनने इस प्रथाको कुत्सित ठहरा कर कई नये नियम बनाये । इन नियमोंकी प्रथम परीक्षा रूस-जापान युद्धमें हुई । जापानने इनका पूर्णतया पालन किया । १९६४ में कुछ थोड़े से

नामम लके सुशोधनके साथ हेतुमें फिर इनका समर्थन हुआ। आज सम्य संसारमें यह सर्वमान्य है। इनके अनुसार युद्धक्षेत्रमें हत सैनिकोंकी जो कुछ निजी सम्पत्ति मिले उसे विजेता सैनिकों को रखे और उन सैनिकोंके उत्तराधिकारियोंको लौटा दे। बन्दीयोंके घोड़ों शस्त्रों और सैनिक कागज़ोंके सिवाय उनकी और किसी सम्पत्तिपर हाथ न डाला जाय।

यदि लूटके मालपर पूरे चौबीस घण्टे तक कब्जा न रहा हो तो वह कब्जा पक्का नहीं समझा जाता। यह प्रश्न उस समय उठता है जब एक पक्षसे लूटा हुआ माल फिर कुछ कालमें उसी पक्षके हाथ लग जाता है। यदि लूटे जानेके चौबीस घण्टेके भीतर ऐसा हो तो यह माना जाता है कि यह माल अपने पुराने स्वामियोंको ही सम्पत्ति है और उन्हें लौटा दिया जाता है पर यदि चौबीस घण्टेसे ऊपर हो गये हों तो माल शत्रुका समझा जाता है और उसके साथ तथावन् व्यवहार होता है।

लूटका माल पहिले समयमें लूटने वाले सिपाहियोंमें ही बँट जाता था, हाँ राजकोष या इसी प्रकारकी अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ विजेता राजको मिलती थीं। आजकलका सिद्धान्त यह है कि लूटका सारा माल राजका होता है। सिपाही जो कुछ करते हैं उसका ओरसे करते हैं और इसके लिये वेतन पाते हैं अतः उन्हें अपने पाम कुछ भी रखनेका अधिकार नहीं है। परन्तु रोकना बड़ा कठिन होता है। बहुत कुछ रह ही जाता है। अतः अब यह प्रथा चल पड़ी है कि युद्धारम्भके समय ही प्रत्येक राज अपने यहाँ यह घोषित कर देता है कि शत्रुसे लूटे हुए मालका बँटवारा किस प्रकार किया जायगा। इससे यह लाभ होता है कि सभी अण्ड अपने स्वत्वका जानते रहते हैं और किसीको कुछ छिपानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

जब एक राजकी सेना दूसरेके राज्यके किसी अंशमें बलात् प्रवेश करके उसपर अधिकार कर लेती है तो इस अधिकारके दो ही परिणाम हो सकने हैं । या तो सन्धि होने-
राज्यके राज्याश- पर यह प्रदेश विजेताके ही पास रह जाय पर अधिकार अर्थात् उसके राज्यका स्थायी अंश हो जाय या अपने पुराने स्वामीको पुन मिल जाय पर प्रश्न यह है कि जबतक सन्धि नहीं होती तबतक आक्रमणकारी सेनाको जिसने उसपर अधिकार कर लिया है उसके प्रति कैसा व्यवहार करनेका हक है ?

प्राचीन कालकी प्रथा तो यह थी कि विजेताको यह अधिकार था कि वह जो चाहे सो करे । प्राचीन भारतमें नि सन्देह यह नियम था कि जनसाधारणके दैनिक जीवनमें किसी प्रकार बाधा न पहुँचायी जाय — इसे देख कर यवन दङ्ग रह गये थे—परन्तु और किसी देश या समाजने इस सभ्य नियमको न अपनाया । भारतको भी अपने पडासियोंकी असभ्यताका पूरा पूरा स्वाद चखना पडा । महमूद गजनवी, तैमूर लङ्ग, नादिर शाह करोड़ोंकी सम्पत्ति ले गये । प्रजासे जो कुछ चूसा जा सके उसे चूम लेना न्याय्य समझा जाता था । पर विजेता अपने ऊपर विजित प्रदेशके शासनका भार नहीं लेता था । वह इतना ही चाहता था कि उसके साथ कोई छेड़छाड न करे । यदि कोई उसके किसी काममें बाधा डालता या उसके गौरवके विरुद्ध कोई आचरण करता तो वह दण्डका भागी होता था । इसी नीतिके अनुसार एक फ़ारसी सिपाहीकी हत्याके दण्ड स्वरूप नादिर शाहने दिल्लीमें कत्ले आमकी आज्ञा दी थी ।

यही अवस्था यूरोपमें थी । स्वयं मोशिअसको लिखना पडा कि 'युद्धमें प्रत्येकको यह अधिकार है कि शत्रुकी सम्पत्तिको

जहाँतक उसकी इच्छा हो ले ले।' काल पाकर हम प्रथाकी भीष-
खता प्रतीत होने लगी पर इसको रोकना कठिन था क्योंकि
सिपाहियों और छोटे अफसरोंकी लालच राजाशाहोंका पालन न
होने देती थी। ड्यूक अब वेल्सिंगटनको अपने ही कई सिपाहि-
योंको लूटके अपराधमें फाँसी देनी पड़ी। यह तो नहीं कह सकते
कि लूट अब पूर्णतया बन्द हो गयी है या अधिकृत प्रदेशके
निवासी तंग नहीं किये जाते, पर हाँ पहिलेकी अपेक्षा कहीं
अधिक समयसे काम किया जाता है। सैनिक अधिकारीके स्वत्व
और कर्त्तव्य दोनों ही परिमित कर दिये गये हैं। इस सीमाके
बाहर जाना लोकमतकी दृष्टिमें हेय है।

जो सेनापति शत्रुराज्यमें प्रवेश करता है उसको १९६४ के
हेग सम्मेलनके निर्देशानुसार अरक्षित स्थानों (अर्थात् ऐसे
स्थानों जहा सिपाहियोंका पड़ाव या गढ़ आदि न हो) पर
गोलाबारी या वायुयानोंसे बमवर्षा न करनी चाहिये और न
किसी स्थानको लूटना चाहिये, चाहे वह लड़कर ही जीता गया
हो। सैनिक कब्जा उतनी ही दूरतक और उतनी ही देरतक
रहता है जहाँतक और जबतक कि अपनी सेनाका पूरा पूरा
अधिकार हो। किसी प्रदेशमें थोड़े से सैनिकोंके घुस जानेसे उसपर
कब्जा नहीं माना जा सकता। हम बातकी आवश्यकता नहीं है
कि प्रत्येक नगर और गाँवमें छावनी स्थापित की जाय पर यह
निःसन्देह आवश्यक है कि पुराने प्रभुके अधिकारका कोई चिन्ह न
रह गया हो और सबत ही विजयी सेनाकी आज्ञाएँ समादृत
हों। यदि पुराने प्रभुकी सेना शत्रुसेनाको पराजित कर दे या
उस प्रदेशके निवासी हो सशस्त्र विद्रोह करके शस्त्रको निकाल
बाहर कर दें तो उसके अधिकारकी समाप्ति हो जायगी। किसी
किसीकी सम्मति है कि सफल विद्रोहसे कब्जेका अन्त नहीं होता

अर्थात् जबतक पुराने प्रभुकी सेना ही शत्रुको न निकाले तबतक उसका कब्जा बना रहता है। यह व्यर्थका तर्क है। विजयी सेनाका कोई वैध स्वत्व नहीं होता। उसका एकमात्र सहारा बल है। यदि दूसरा कोई अधिक बलका प्रयोग करके उसे निकाल देता है तो स्वभावतः उसके बलार्जित अधिकारका अन्त हो गया। उसे यह प्रकृतिक अधिकार नहीं है कि यह बलप्रयोग करनेवाला कौन है।

जितने दिनोंतक सैनिक कब्जा रहता है उतने दिनोंतक अधिकृत प्रदेशकी रक्षाका भार विजेतापर रहता है। उसका कर्तव्य है कि लोगोंकी धन-सम्पत्तिकी रक्षा करे और न्यायादिका प्रबन्ध करे।

किसी स्थानपर अधिकार करनेके पोछे प्रायः विजयी सेनापति एक घोषणा निकाला करता है। नीचे हम एक घोषणाके मुख्य अंशोंका भावानुवाद देते हैं। इस घोषणाको विजयी सेनापति बोअर युद्धमें एक बोअर सेनापतिने निकाला था।

तिथी घोषणा 'आरेञ्ज फ्री स्टेटकी नागरिक सेनाओंके प्रधान सेनापति मै, सी जे. वेसेल्स, ने श्रीमान् राष्ट्रपतिकी ब्लोमफोण्टेन नगरसे निकाली हुई १४ अक्तूबर १८९९ की उस घोषणाको देखकर जिसमें उन्होंने आरेञ्ज फ्री स्टेटकी नागरिक सेनाओंके सभी टुकड़ोंके सेनापतियोंको यह अधिकार दिया है कि वह लोग उन सब समुदायों, ग्रामों और व्यक्तियोंको समुचित दण्ड द जो इस युद्धमें, जिसे ग्रेटब्रिटेनकी श्रीमती महारानीकी सरकार हमारे विरुद्ध निष्कारण लड़ रही है, सामरिक विधानोंकी अवहेलना करें;

"और इस बातको ध्यानमें रखकर कि हमारी सेनाकी सफलताने ब्रिटिश राज्यके उस भागपर हमारा कब्जा स्थापित करा दिया है, जिसे पश्चिमी ग्रीकालैण्ड कहते हैं और जिसमें

किम्बर्ली नगर और उसके चारों ओर दो कोसके घेरेकी भूमिको छोड़कर हर्बर्ट, हे, बार्की और किम्बर्लीके तालुके शामिल हैं,

“और तू कि उन समुदायों, नगरों और व्यक्तियोंको दण्ड देना आवश्यक हो गया है जो हमारी सेना द्वारा अधिकृत प्रदेशमें सामरिक प्रथाओंके विरुद्ध आचरण कर रहे हैं; और तू कि उक्त प्रदेशमें हमारी सेनाओंके भरण पोषणके लिये उपयुक्त सामग्री मिलनेका प्रबन्ध करना आवश्यक हो गया है,

“निश्चय किया है और श्रीमान् राष्ट्रपतिकी घोषणामें मुझे जो अधिकार दिया गया है उसके द्वारा निम्नलिखित नियमोपनियमोंको सूचनार्थ घोषित करता हूँ:—

१. जिस प्रदेशपर हमारी सेनाका इस समय कब्जा है या भविष्यमें होगा उसमें प्रत्येक ऐसे कामके लिये जिससे हमारी सेनाको किसी प्रकारकी क्षति या शत्रुको सहायता पहुंचनेकी सम्भावना हो सैनिक विधान चालू माना जायगा।
२. ज्यों ही सैनिक विधानकी घोषणा किसी हस्ते, जिसे या अन्य शासनप्रदेशके किसी एक भागमें चिपका दी जायगी या सुना दी जायगी त्यों ही वह उस प्रदेशके समस्त भागोंमें लागू हो जायगा।
३. वह सब मनुष्य जो ब्रिटिश सेनाके सैनिक न होते हुए भी
 - (क) उसकी ओरसे जासूसी करेंगे,
 - (ख) हमारे सैनिकोंके पथप्रदर्शक बनकर धोखा देंगे,
 - (ग) हमारी सेनाके सिपाहियों या साथ रहनेवालोंमेंसे किसीको मार डालेंगे या लूटेंगे,
 - (घ) पुल नष्ट करेंगे, तारकी लाइन बिगाड़ेंगे, रेलकी लाइन उखाड़ेंगे या कोई ऐसा काम करेंगे जिससे हमारी सेनाकी गतिमें बाधा पड़े या हमारे सैनिकोंको किसी प्रकारकी

क्षति पहुँचे या हमारे सैनिकों के पड़ावों, शस्त्रों या अन्य सैनिक सामग्रियों को जलायेंगे या अन्य प्रकारसे क्षति पहुँचायेंगे या हमारे सैनिकों के द्वारा नष्ट अथवा अष्ट की हुई सम्पत्तियों या संस्थाओं की मरम्मत करेंगे;

(क) या हमारे सैनिकों के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करेंगे

उन सबको हमारी सैनिक कौंसिल प्राणदण्ड या १५ वर्ष का कारावास तक का दण्ड दे सकेगा ।

५. प्राणदण्ड उस समय तक न दिया जायगा जबतक उसका समर्थन श्रीमान् राष्ट्रपति न कर दे ।

६. सभी सेनापतियों को यह अधिकार दिया जाता है कि वह जनता से सिपाहियों के भरण पोषण के लिये आवश्यक वस्तुएं मांगें । इनके अतिरिक्त जिन वस्तुओं की अनिवार्य आवश्यकता समझी जायगी वह प्रधान सेनापतिकी आज्ञा से ही मांगी जा सकेंगी ।

७. जो लोग हमारी सकार और उसके द्वारा नियुक्त किये हुए अफसरों की शरणमें आयेंगे उनके जानमाल की रक्षा का वचन दिया जाता है ।

८. जिन लोगों को यह शर्तें स्वीकार न हों वह १४ दिन के भीतर अधिकृत प्रदेश को छोड़कर चले जा सकते हैं ।

९. जो लोग अपने घरों या खेतों को छोड़कर चले गये हैं या भगा दिये गये हैं पर अब उपर्युक्त नियमों का पालन करना चाहते हैं वह लौट सकते हैं ।”

यह इस प्रकार की घोषणाओं का एक अच्छा उदाहरण है । प्रायः सभी घोषणाओं में इसी प्रकार के नियम रहते हैं पर देश तथा पात्र-भेद के कारण कुछ शर्तें घटी बढ़ा दी जाती हैं । बुद्धिमान नियम अवधि के भीतर सब शस्त्र जमाकर देने की शर्त लगा दी जाती है

अधिकृत प्रदेशमें शलु राज तथा जनसाधारणकी सम्पत्तिके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये इसके लिये भी स्पष्ट नियम हैं। पहिले राज सम्पत्तिको लीजिये। इसके अधिकृत प्रदेशमें लिये हेगमें निम्नलिखित नियम स्वीकृत राज-सम्पत्ति हुए थे:—

“मुल्कगीरी सेना केवल नद्द रुपया, नोट, ऐसे विनिमय कागज^० जो सचमुच राजसम्पत्ति हों, शस्त्रागार, गमनागमनके साधन, अन्नदि सम्बन्ध, और साधारणतया राजकी सभी ऐसी चल सम्पत्तिपर जो सैनिक काममें लगायी जा सकती है कब्जा कर सकती है। उन अवस्थाओंको छोड़कर जो नौ-सेना-विधानके अधीन है, समाचार भेजनेके सभ यत्र मनुष्यों या वस्तु-ओंको जल, स्थल या वायु मार्गसे ले जानेके सभी साधन, शस्त्रागार और साधारणतः सब प्रकारकी सामरिक सामग्री छीनी जा सकती है चाहे वह साधारण लोगोंकी ही सम्पत्ति क्यों न हो परन्तु युद्ध समाप्त होनेपर उन्हें लौटा देना होगा और उनके लिये क्षति द्रव्य देना होगा।

“स्थानीय शासनों § की सम्पत्ति और सार्वजनिक उपासना, दान, शिक्षा, विज्ञान और कला सम्बन्धी संस्थाओंकी सम्पत्ति राज-सम्पत्ति होते हुए भी नागरिकोंकी निजी सम्पत्ति मानी जायगी। इस प्रकारकी संस्थाओं, या ऐतिहासिक स्मारकों या विज्ञान और

* इसके लिये अंग्रेजी शब्द Realizable Securities है। यह उन कागजोंके लिये आता है जो दर्शनी हुडीकी भांति तत्काल रुपयेमें बदले जा सकें पर आजतक भिन्न भिन्न देशोंकी सरकारोंमें इस विषयमें ऐकमन्य न हुआ कि यह नाम किन कागजोंको दिया जाय।

‡ १९६४ का हेग सप्रययत्र, ५३ वीं धारा

§ म्युनिसिपल बोर्ड, जिला बोर्ड इत्यादि

कलाकौ कृतियोंको नष्ट करना या जान बूझकर किसी प्रकारकी क्षति पहुँचाना निषिद्ध है †”

यह नियम स्पष्ट है । विजेता चल सम्पत्तिको ले सकता है परन्तु इस अधिकारमें भी कुछ अपवाद हैं । नैपोलियनके समयमें फ्रांसकी सेना इटलीसे बहुतसे बहुमूल्य प्राचीन चित्र और मूर्तियाँ उठा लायी थी । जब १८७२ में अन्तिम सन्धि हुई तो फ्रांसको यह वस्तुएँ इटलीको लौटानी पड़ीं । पर यूरोपियन राजनीति एशियावालोंके साथ बर्तनेमें सभी नियमोंको भूल जाती है । १९६९ के बौक्सर युद्धमें जर्मन-सेना चीनसे अत्यन्त प्राचीन कालके व्योतिर्यंत्र उठा ले गयी पर आजतक किसीने जर्मन-सर्कारको इस बातके लिये विवश न किया कि वह इन्हे पुन चीन पहुँचा दे ।

यूरोपियन महायुद्धमें भी जर्मनोंने बेल्जियममें कई अक्षम्य काम किये । कई प्राचीन गिर्जे (ईसाई उपासनालय), पुस्तकालय, विचित्रालय, विद्यालय, टाउनहाल इत्यादि नष्ट कर दिये गये । पना नहीं अग्रेजों और फ्रांसीसियोंने भी ऐसे बर्बर काम किये या नहीं ।

यह हम कह चुके हैं कि समाचार भेजनेके यंत्रोपर मुल्क-गीरी सेनाका कब्जा हो जाता है । इसमें तार-विभागकी सभी सामग्री आ गयी पर जो तार समुद्रके नीचे नीचे जाते हैं उनके नियम इतने सीधे नहीं हैं । यदि जलान्तस्तलचारी तार शत्रु राज्यके दो भागोंको मिलाता है तो उसपर कब्जा करना उचित ही है । यदि वह दो तटस्थ देशोंको मिलाता है तो उसपर कब्जा नहीं हो सकता । यदि वह शत्रु-राजको किसी तटस्थ राजसे मिलाता हो तो, हेगसम्मेलनके निर्देशानुसार, आवश्यकता पड़ने पर मुल्कगीरी सेना उसे काट सकती है परन्तु युद्ध समाप्त होने पर

† १९६४ का हेग समयपत्र, ५६ वीं धारा

फिर उसे लगा देना होगा और उस तटस्थ राजकी क्षतिपूर्ति करनी होगी। यह स्मरण रहे कि ऐसे तार तटलग्न जलमें ही काटे जा सकते हैं, उनको खुले समुद्रमें काटना निषिद्ध है।

मुल्कगीरी सेनाका शत्रुकी अचल सम्पत्तिपर कब्जा अवश्य हो जाता है पर यह कब्जा केवल भोगमात्रके लिये होता है, सम्पत्तिको तोड़ने, फोड़ने, बेचने, नष्ट करनेका अधिकार नहीं मिलता। घर, मकान, बाग, जङ्गल, सब बर्ते जा सकते हैं पर यथासम्भव इनकी अवस्था न बिगड़ने देनी चाहिये। १९१७ में जर्मन सेनाने पूर्वीय फ्रांसके जंगलोंके कई सहस्र बलूतके वृक्ष बेच दिये। युद्ध-समाप्तिके पीछे फ्रेञ्च न्यायालयोंने निर्णय किया कि चू कि यह पेड़ अभी काटने योग्य नहीं थे अतः जर्मनोंने केवल जङ्गल नष्ट करनेके उद्देश्यसे इन्हें काटा इसलिये उनका ऐसा करना अविहित था और पेड़ोंके क्रैताभोंने एक अविहित काममें भाग लिया अतः उनका इन पेड़ोंपर कोई स्वत्व नहीं था।

हेगमें यह भी निश्चय हो गया है कि मुल्कगीरी सेना शिक्षा, दान, उपासना, कला और विज्ञान सम्बन्धी संस्थाओंके लिये पृथक् की हुई शत्रु सम्पत्तिकी आय अपने काममें नहीं लगा सकती।

किसी प्रदेशपर कब्जा करनेपर भी मुल्कगीरी सेना वहाँके विधानोंमें प्रायः हस्तक्षेप नहीं करती। जहा तक हो सकता है पुराने कर्मचारियोंसे ही काम लिया जाता है। फिर भी उसे शान्ति बनाये रखनेके लिये कुछ नियम बनाने पड़ते हैं। युद्धका समय होता है। साधारण अनवधानता या शैथिल्यका परिणाम भीषण हो सकता है। इसलिये साधारण उपद्रवों या शान्तिभङ्गके प्रयत्नोंके लिये भी कठोर दण्ड देना पड़ता है। ऐसे नियमोंको सैनिकविधान ❀ कहते हैं। यह सैनिकविधान उस सैनिकविधा-

नसे भिन्न हं जिसे कभी कभी सभी राजोंको उपद्रवादिके समय स्वयं अपनी प्रजाके विरुद्ध बर्तना पड़ता है।
 सैनिक विधान यह सैनिकविधान तो वस्तुतः साधारण विधान-
 का ही एक अङ्ग होता है, इसे सैनिक केवल इस लिये कहते हैं कि दण्ड कठोर होते हैं और न्यायालयोंकी प्रक्रिया बहुत ही सक्षिप्त कर दी जाती है ताकि काम जल्दी हो, परन्तु युद्ध कालीन सैनिकविधान तो वस्तुतः विधान ही नहीं है। जैसा कि प्रसिद्ध ब्रिटिश सेनापति ड्यूक आव वेलिंगटनने एक बार कहा था वह मुल्कगीरी 'सेनाके सेनापतिकी इच्छा मात्र' का नाम है। वह अवस्था देख कर चाहे जैसे कड़े नियम बना सकता है पर इतना ध्यान रखना चाहिये कि उसके बनाये नियम अन्ताराष्ट्रिय विधानके सिद्धान्तो या सर्वसम्मत नियमोंके प्रतिकूल न हो।

मुल्कगीरी सेनाके हट जानेपर उसके शासनकालमें जितने निर्णय हुए होते हैं वह रद्द नहीं होते। उत्तरवर्ती सरकार उन्हें मान लेती है पर उसे यह अधिकार होता है कि यदि मुल्कगीरी सेना राज सम्पर्त्तकी कोई अवैध व्यवस्था कर गयी हो (जैसा कि ऊपर दिये हुए उदाहरणमें जर्मनोंने फ्रेञ्च जगलोके साथ किया था) या कुछ नागरिकोंको अपने सैनिकविधानके अनुसार दण्ड दिया हो तो ऐसे निर्णयोंको रद्द कर दे।

अधिकृत प्रदेशके निवासियोसे किसी प्रकारकी सैनिक सेवा नहीं ली जा सकती। न तो वह मुल्कगीरी अधिकृत प्रदेशके सेनामें भर्ता होनेके लिये विवश किये जा सकते निवासी और है न अपन राष्ट्रकी सेना या सैनिक सामग्री सैनिक सेवा आदिके विषयमें कोई बात बतलानेके लिये विवश किये जा सकते हैं।

अधिकृत प्रदेशके निवासियोंसे मुल्कगीरी सेना अपने राजके प्रति राज-भक्तिकी शपथ नहीं ले सकती, हाँ जो पुराने राज-कर्मचारी अधिकार-कालमें भी काम करना राज-भक्तिकी स्वीकार करें उनसे यह शपथ ली जा सकती है शपथ कि हम अधिकार-कालमें आपके विरुद्ध कोई काम न करेंगे। परन्तु उसे यह आश्वासन है कि जनतासे तटस्थताकी शपथ ले अर्थात् उससे यह वचन ले कि वह युद्धकालमें किसी पक्षकी ओरसे न लड़ेगा।

प्रजा-सम्पत्तिके विषयमें साधारणतः यह कह सकते हैं कि वह मुल्कगीरी सेनाके लिये अग्राह्य है। शस्त्रास्त्र और गमनागमन तथा सवाद-प्रेषणके साधनोंको छोड़ कर अन्य प्रजा-सम्पत्ति चल सम्पत्तिमें हाथ नहीं लगाया जाता। नाव, तार, रेल, मोटर आदि सैनिक आवश्यकता पड़ने पर ली जा सकती हैं पर इनके लिये रसीद देनी होती है और युद्ध समाप्त होने पर या आवश्यकता बात जानेपर इनके लिये हर्जाना देना पड़ता है। हेतु यह निश्चय नहीं हुआ कि हर्जाना कौन पक्ष देगा, यह बात सन्धि के समय उभय पक्ष आपसमें निश्चित कर लेने हैं। अचल सम्पत्तिको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचायी जाती पर मुल्कगीरी सेनाके सैनिक नागरिकोंके घरोंमें बाँट दिये जाते हैं। नागरिकोंसे यह नहीं कहा जा सकता कि तुम लोग सिपाहियोंके लिये अपने घर खाली कर दो, जितने बड़े घर होते हैं उनमें उसी प्रमाणसे सिपाही रख दिये जाते हैं। उनके खाने पीनेका भार नियमित उनकी सरकारपर होता है, उन लोगोंपर नहीं जिनके घरोंमें वह टिकाये जाते हैं। पर यह असम्भव है कि किसी मुल्कगीरी सेनाके सिपाही नियमोंका पूरा पूरा पालन करें। नियम यही है कि नागरिकोंको यथासम्भव कोई कष्ट

न दिया जाय पर यह सभी जानते हैं कि ऐसी दशामें नागरिकोंकी ब्याघ्र सामग्री, घरके बर्तन, कुर्सी, पलंग इत्यादि और सर्वोपरि स्त्रियोंके सतीत्वका ईश्वर ही रक्षक होता है। नागरिकोंको यह आदेश रहता है कि यदि कोई सिपाही किसीको तंग करे तो वह तत्काल ही सेनापतिसे जा कर शिकायत करे पर ऐसा साहस कम ही लोगोंको होता है। अधिकांश लोग सब कुछ चुपचाप सहकर अपने प्राण बचानेमें ही अपनेको धन्य मानते हैं।

यद्यपि नियमतः अचल सम्पत्तिको क्षति नहीं पहुँचायी जाती पर जो लोग घर छोड़कर भाग जाते हैं उन्हें लौटने पर अपनी सम्पत्ति ज्योंकी त्यों पानेकी आशा छोड़ देनी चाहिये। इसके साथ ही सेनापतिको स्पष्ट यह अधिकार है कि सैनिक आवश्यकता पड़ जानेपर या यदि किसी घरके निवासी उसको मेनाके हितके विरुद्ध आचरण करें तो वह उस घरको गिरा सकता है और अन्य सम्पत्तिको भी नष्ट या जड़त कर सकता है।

अन्ताराष्ट्रिय विधानने मुल्कगिरी सेनाको राजकर (टिकस) लगा देनेका अधिकार न तो दिया है न छीन लिया है। कर वसूल करना न करना उसकी इच्छापर है पर यदि वह वसूल करना निश्चय करे तो उसे उसीमें से राजकर वसूल करना निश्चय करे तो उसे उसीमें से शासन (अर्थात् न्यायालय, पुलिस, शिक्षा, अस्पताल आदि) का व्यय चलाना होगा। यदि सब कामोंके लिये पूर्ववत् व्यय करने पर भी कुछ बच रहे तो उसे वह अपने काममें ला सकती है। राजकरका दर नहीं बंदाया जा सकता न वह समयके पहिले मांगा जा सकता है। स्थानीय शासन-संस्थाओं अर्थात् नगर तथा जिलाबोर्डों और अन्य एतत्सदृश संस्थाओंकी आयमें हाथ नहीं लगाया जा सकता पर सेनापति इस बातका

निःसन्देह निरीक्षण कर सकता है कि यह धन उसके विरुद्ध किसी काममें न लगाया जाय ।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि शत्रु-सेना अधिकृत प्रदेशके निवासियोंसे धन या सम्पत्ति बलात् नहीं ले सकती पर वस्तुतः ऐसा नहीं है । लूट वस्तु माग पाट निषिद्ध है पर दो तीन ऐसे वैध मार्ग हैं जिनसे कि मुल्कगोरी सेना रुपया आदि वसूल कर सकती है । इनमें सबसे पहिलेको वस्तु-माग † कहते हैं । सेना अपने साथ बहुत सी रसद रखती है फिर भी समय समय-पर खाद्य सामग्री तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं लूक जाया करती हैं । दूध, घी, मक्खन, फल, मांस, शाक भाजीका तो नित्य ही काम पड़ता है । नियम यह है कि यह वस्तुएं प्रचलित बाजार-भावसे मोल ली जाय और इनका नकद दाम दिया जाय । बाजार-भाव क्या है इसका निर्णय कभी कभी तो म्युनिसिपल या अन्य स्थानीय कर्मचारियों द्वारा कराया जाता है पर कभी सैनिक अफसर स्वयं करते हैं । अस्तु, यदि नकद रुपया हुआ तो दिया ही जाता है पर यदि न हुआ तो स्थानीय सेनापति लिख दर घोषित कर देता है कि सेना के लिये अमुक अमुक वस्तुएं चाहिये । मांग ऐसी होनी चाहिये जिसे वह प्रदेश पूरा कर सके । फिर यदि स्थानीय म्युनिसिपल या अन्य कर्मचारियों द्वारा काम सुगमतासे हो सका तो ठीक है नहीं तो सैनिकों द्वारा सब चीजों-का संग्रह किया जाता है । कोई व्यापारी यह नहीं कह सकता कि मैं अपना माल न दूंगा । प्रत्येक वस्तुके लिये रसीद दी जाती है । हेगमें (१९६४ मे) यह भी निश्चित हुआ कि जितना शीघ्र हो सके रसीदोंके अनुसार रुपया चुका दिया जाय ।

† Requisitions (रेक्विजिशनज)

पर उसने यह स्पष्ट नहीं किया कि रुपया कौन चुकावे । न्याय्य तो यही है कि जो पक्ष सामग्री बलात् ले वही उसका मूल्य दे पर ऐसा भी होता है कि यदि यह पक्ष जीत गया तो विजित पक्षको ही सब वस्तुओंका मूल्य देनेके लिये बाध्य करता है । कभी कभी इसके विपरीत भी होता है । १९५९ के बोअर युद्धमें ब्रिटिश और बोअर दोनों सेनाओंने इस अधिकारसे दिल खोलकर काम लिया था । अन्तमें बोअर हार गये । नियमतः ब्रिटिश सरकार केवल अपनी सेनाकी रसीदोंको सकारनेके लिये बाध्य थी पर उसने देखा कि प्रजा दरिद्र हो गयी है, अतः उसने बोअर सेनाकी दी हुई रसीदोंके रुपये भी भर दिये ।

रूस-जापान युद्ध (१९०२) में जापानियोंने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था । मन्चूरिया जो वस्तुतः चीनका एक प्रदेश था युद्धक्षेत्र था । जापानियोंने चीनी व्यापारिमण्डलोंसे सम्मति ले कर सब वस्तुओंके मूल्य निश्चित कर लिये और निश्चित मूल्य-सूचियोंको सब नगरों और ग्रामोंमें चिपका दिया । जापानी सैनिक वस्तुओंको लेकर उनके स्थानमें रसीदे देते थे । यह भी पहिलेसे ही घोषित कर दिया गया था कि अमुक अमुक तिथियोंको अमुक अमुक स्थानोंमें रसीदोंको पेश करनेसे उनके लिये रुपया मिला करेगा । यह व्यवहार इतना साफ था कि शीघ्र ही यह रसीदे नोटोंकी भांति चलने लगीं क्योंकि लोग यह भली भाँति जानते थे कि नियत तिथियोंपर पेश करनेसे तत्काल ही इनका रुपया मिल जायगा ।

अन्ताराष्ट्रिय विधानने मुल्कगीरी सेनाको रुपया वसूल करनेका एक और साधन दे रक्खा है । इसे बेहरी ❀ कहते हैं । वस्तु-मांग तो स्थानीय सेनापति कर सकते हैं । बेहरीकी

❀ Contributions (कॉन्ट्रिब्यूशंस)

सर्ग प्रधान सेनाध्यक्षकी लिखित आज्ञासे ही होती है। उसको यह अधिकार है कि अधिकृत प्रदेशका शासन चलानेके लिये या अपनी सेनाकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये अधिकृत प्रदेशके निवासियोंसे बेहरी मांगे। यदि मुल्कगीरी सेना देखे कि राजकरसे शासनका काम नहीं चल सकता तो शासनके नामपर बेहरी वसूल की जायगी पर 'सेनाकी आवश्यकता' ऐसे गोल शब्द हैं जिनकी परिभाषा हो ही नहीं सकती। रुपया वसूल करके घर तो नहीं भेजा जा सकता पर सेनाका प्रायः सारा व्यय अधिकृत प्रदेशके माथे मढ़ दिया जा सकता है। नैपोलियनका यही सिद्धान्त था कि युद्धमें स्वावलम्बी बनाना चाहिये। जिन लोगोंने बेहरी ली जाती है उनको रसीद दी जाती है और यथासम्भव उसी दरसे ली जाती है जिस दरसे लोग राजकर देते हैं। पर यह कहीं नहीं स्पष्ट किया गया कि रसीदोंका रुपया कौन देगा। यदि मुल्कगीरी सेनाकी सफ़र हार गयी तो सन्धि होते समय उसे रुपया चुकानेपर विवश किया जा सकता है नहीं तो लोगोंको सन्तोष करके रह जाना पड़ता है। इस सबधमें फ्रांससे एक अच्छा उदाहरण मिलता है। १९२८ में जर्मन सेनाने फ्रांसके पूर्वीय प्रान्तोंपर अधिकार करके निवासियोंसे बहुत सा रुपया बेहरीके रूपमें वसूल किया था। जर्मन-सर्कार विजयी हुई इस लिये उससे तो एक पैसा भी न मिला पर युद्धके पीछे फ्रेञ्च सरकारने यह न्याय्य निर्णय किया कि चूँकि इन प्रान्तोंको सारे देशक लिये आपत्ति फ़ैलनी पड़ी है अतः सारे देशको इनका बोझ हटाना चाहिये। अतः उनलोगोंको रसीदोंके लिये सर्कारी कोषसे रुपया दिया गया।

यदि अधिकृत प्रदेशका कोई व्यक्ति या व्यक्ति-समूह मुल्कगीरी सेनाक विरुद्ध कोई काम करे तो उसे कठोर दण्ड दिया

जाता है पर बहुधा ऐसा होता है कि अपराधीका पता नहीं लगता ।
 ऐसी दशामें हेगनियमावलीकी ५० वीं धारा कहती है कि सेनापति-
 को यह अधिकार नहीं है कि जनताको सामूहिक
 अर्थदण्ड रूपसे किसी ऐसी बातके लिये दण्ड दे जिसके
 लिये वह सामूहिक रूपसे दोषी नहीं मानी
 जा सकती, पर दोषी ठहराना न ठहराना प्रायः सेनापतिपर निर्भर
 है । यह असम्भव है कि युद्धके समय साधारण न्यायालयोका
 सा सूक्ष्म विचार किया जाय । यदि सेनाके किसी बड़े अंशको
 ऐसी क्षति पहुंचायी गयी है जो एक दो मनु-योंका काम नहीं हो
 सकती तो यही माना जाता है कि आंधकांश नागरिकोंको इनका
 कुछ न कुछ पता रहा होगा अतः जब उन्होंने न तो उसे स्वयं
 रोक न सेनापतिको सूचना दी तो सभी दाषके भागी हैं और
 दण्डार्ह हैं । ऐसी दशामें उनको सामूहिक दण्ड दिया जाता है ।
 बहुधा यह दण्ड अर्थदण्ड ❀ (जुर्माना) का रूप धारण करता
 है । निवासियोंको एक नियत तिथिके भीतर रुपयाकी एक
 नियत संख्या देनी पड़ती है नहीं तो उन्हें अन्य अन्य दण्ड दिये
 जाते हैं ।

मुल्कगीरी सेनाओंको रक्षाशुल्क† मागनेका भी अधिकार है ।
 हेगनियमावलीमें इस संबंधमें कुछ भी विधान नहीं किया गया है
 पर प्रथा पुरानी है और उसका स्पष्ट निषेध नहीं
 रक्षा-शुल्क है । इसका तात्पर्य यह है कि किसी नगर या
 प्रान्तसे यह कहा जा सकता है कि यदि तुम
 चाहते हो कि तुम्हारे ऊपर अधिकार न किया जाय तो इतना रुपया
 दे दो । यदि वह स्थान वस्तु-मांग और भावी अर्थदण्डादिकोंसे
 बचना चाहेगा तो चुपकेसे रुपया देकर प्राण बचायेगा ।

* Fines (फ़ाईन्स) † Ransom (रैंसम)

साधारणतः मुल्कगीरी सेनाको यह अधिकार नहीं है कि वह शत्रुके देशको नष्ट भ्रष्ट कर दे। जङ्गलोंको जला देना, पुलोंको तोड़ देना, नदियोंके बाँध तोड़ देना, नहरोंके विनष्टि फाटक खोल देना, नगरोंमें आग लगा देना यह सब निषिद्ध है। ऐसी बातोंसे युद्ध तो समाप्त नहीं होता, निरपराधोंको व्यर्थ वध होता है और क्रोध तथा प्रतिहिंसाभावकी वृद्धि होती है। यह सब होने हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि विनष्टि § का एकमात्र निषेध हो गया है। जबतक युद्धका अस्तित्व है तबतक इसका भी अस्तित्व रहेगा, कमसे कम सम्भावना बनी रहेगी। अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर सब कुछ क्षम्य हो जाता है।

अध्यापक वेस्टलेकने कार्य्य विशेषका औचित्य या अनौचित्य परखनेके लिये निम्नलिखित दो नियम बतलाये हैं—

(क) जो काम तत्कालवर्ती सैनिक कार्य्यवाहोमें विजय प्राप्त करनेके लिये सहायक नहीं हो सकता वह निषिद्ध है और (ख) जो काम किसी स्पष्ट नियम द्वारा वर्जित नहीं है उसे भी उसी अवस्थामें और उसी सीमा तक करना चाहिये जहाँ तक कि वससे विजयमें सहायता मिलनेकी आशा हो।

हेगमें भी यही निश्चय हुआ कि शत्रु-सम्पत्तिको नष्ट करना वर्जित है परन्तु अत्यन्त सामरिक आवश्यकता आ पड़नेपर ऐसा किया जा सकता है। 'अत्यन्त सामरिक आवश्यकता' की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। यह मुल्कगीरी सेनाके सेनापतिकी बुद्धि और इच्छा तथा उसकी सरकारकी नीति और संस्कृतिपर निर्भर है। आचार्योंकी सम्मति यही है कि केवल उत्पीड़नके उद्देश्यसे विनष्ट करना सर्वथा अवैध है। आवश्यकताके सम्बन्धमें

§ Devastation (डिवास्टेशन)

भी सभी आचार्य वहीटनके इस मतका समर्थन करते हैं कि 'आवश्यकता तात्कालिक होनी चाहिये। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि हमको आशंका है कि भविष्यत्में हमको क्षति पहुँचेगी और आवश्यकता पड़ेगी'। बहुधा सम्य सकारोंने भी इस मतको स्वीकार कर लिया है और अपने यहांकी सैनिक-शिक्षाकी पुस्तकोंमें भी लिख दिया है पर गत महायुद्धमें जो कुछ हुआ उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि समयपर सारे पाठ भूल जाते हैं और पाशव वृत्तियाँ बढ़बुद्ध हो आती हैं।

जब कोई शत्रु बारबार अन्तराष्ट्रिय विधानकी अवहेलना करता है और सामरिक नियमोंको तोड़ता जाता है तो उसके साथ प्रतिघात^{*} नीति बर्तनी पड़ती है।

प्रतिघात

इसका अर्थ है 'शटे शाठ्यम्'। इससे यथा-संभव काम न लेना चाहिये। उपायान्तरके

अभावमें ही इसका प्रयोग करना चाहिये और वह भी दण्ड देने मात्रके लिये। एक पक्षकी उन्मार्गगामिता दूसरेको सदाचारसे मुक्त नहीं कर सकती। प्रतिघातका साधारण रूप यह होता है कि शत्रु जिन निबन्धोंको तोड़ता है उसके प्रति भी वही नियम तोड़े जाय।

एक और पुरानी प्रथा है जिसका हेग नियमावलीमें वर्णन नहीं है। यह भी निषिद्ध नहीं कही जा सकती। प्रथा यह है कि

जब किसी नगरसे अर्थदण्ड या बेहरी स्वरूप प्रतिभू रूपया मांगा जाता है तो वहांके कुछ प्रबान नागरिक प्रतिभू ‡ (जमानत) में रोक लिये

जाते हैं और अपने सह-नागरिकोंके सदाचारके लिये दायी ठहराये जाते हैं। बोअर युद्धमें जब अप्रेजी सेनाएं रेलोंपर चढ़कर जाती थीं

* Reprisal (रप्राइजल) ‡ Hostage (होस्टेज)

तो साधारण बोअर नागरिक छिप छिप कर उनपर गोली चलाते थे। तब अंग्रेजोंने यह किया कि गाड़ियोंमें कुछ बोअरोंको भी बलात् बैठा लेने लगे ताकि बोअरोंकी गोलियां पहिले उनके देशवासियों-पर ही पड़ें। यह बोअर भी प्रतिभू ही थे।

सिद्धान्त यह है कि प्रतिभू अवश्य होता है पर उपयुक्त उदाहरण इसके विरुद्ध जाता है। वस्तुतः प्रथा बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती क्योंकि दो चार नुष्योंको एक बड़े समूहके अपराधोंके लिये दायी ठहराना और दण्ड देना न्याय्य नहीं प्रतीत होता। अर्थदण्ड सारे नगरको दिया जाय और वसूल मुठोअर मनुष्योंसे किया जाय, यह उचित नहीं है। पर युद्ध युद्ध है। बोअर युद्धमें जिस क्रूर नीतिसे ब्रिटिश सेनाने काम लिया था वह भी समयपर काम देती है और इसलिये क्षम्य मानी जा सकती है।

आठवाँ अध्याय ।

शत्रु-सम्पत्तिके साथ व्यवहार—जलस्थित सम्पत्ति ।

यहाँ जलस्थित सम्पत्तिसे जहाजों और उनपर लदे हुए माल दोनोंसे तात्पर्य है । शत्रु-सम्पत्तिमें सरकारी और अ-सरकारी दोनों प्रकारके जहाज परिगणित हैं । सरकारी जहाजोंमें सैनिक जहाज और साधारण जहाज दोनों ही परिगणित हैं । यदि कोई राज किसी जहाजको कुछ कालके लिये किरायेपर ले ले तो उसकी गणना भी राजकीय जहाजोंमें ही की जाती है ।

राजकीय जहाजोंपर सरकारी अफसर रहते हैं और उनपर राजका झण्डा रहता है । युद्धके दिनोंमें जहाजोंको यह अधिकार रहता है कि अपनेको जैसे चाहें छिपा लें और झूठा अर्थात् किसी अन्य राजका झण्डा लगा ले परन्तु यदि वह लड़ाईमें पड़ जाय तो गोली चलानेके पहिले उन्हें अपना असली झण्डा लगा लेना चाहिये । प्रजाके निजी जहाजोंपर भी राजका झण्डा रहता है पर उन्हें भी छिपानेका अधिकार है । परन्तु सैनिक जहाजोंको लड़ाईके दिनोंमें यह अधिकार रहता है कि खुले समुद्रपर जिस जहाजकी चाहे तलाशी ले, इसलिये भेद छिप नहीं सकता । तलाशीके समय जहाजके कागज पत्र सब रहस्य खोल देंगे ।

यदि एक पक्षको दूसरे पक्षका किसी प्रकारका जहाज किसी तटस्थ राजके नौस्थानों और तटलग्न जलोंको राजके जहाजोंकी छोड़ कर अन्य किसी जगह मिल जाय तो वह नन्ती उसे पकड़ कर जब्त कर सकता है ।

इस सम्बन्धमें बहुत मतभेद है कि ऐसा करना उचित है या अनुचित । युद्धके लिये औचित्यानौचित्यकी

कसौटी यही है कि विजयमें सहायता मिलती है या नहीं। यहाँपर हम उन हेतुओंको लिखना अनावश्यक समझते हैं जिनके द्वारा दोनों पक्ष अपने अपने मतका समर्थन करते हैं। कई राजोंकी यह सम्मति है कि व्यापारिक जहाजोंका जन्त करना बन्द कर दिया जाय परन्तु ब्रिटेन इसका विरोध करता रहा है। उसकी नौसेना सबने प्रबल थी अतः उसे यह विश्वास था कि वह स्वयं सबको क्षति पहुँचा सकेगा पर उसका कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा। गत महायुद्धमें जर्मन पनहुब्बियोंने उसके अभिमानको भारी धक्का पहुँचाया। अब सयुक्तराज तथा फ्रांस और जापानका नौबल भी बहुत बढ़ गया है अतः ब्रिटेन यह भाशा नहीं कर सकता कि वह अलूता दब जायगा। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ है कि अब उसकी सम्मतिमें भी परिवर्तन हो रहा है।

इस समयकी प्रचलित प्रथामें भी कुछ अपवाद हैं अर्थात् कुछ शत्रुजहाज ऐसे होते हैं जो छोड़ दिये जाते हैं।

जिस प्रकार स्थलयुद्धमें अस्पताल संरक्ष्य माने जाते हैं उसी प्रकार वह जहाज भी जिनपर औपधादि सुश्रूषा सामग्री रहती है संरक्ष्य होते हैं। वह जहाज भी जो चिकित्सा पोत, § वैज्ञानिक, धार्मिक या लोकहित सम्बन्धी तथा धार्मिक, कामोंमें लगे हों संरक्ष्य होते हैं। पहिले वह वैज्ञानिक और प्रथा थी कि अपने देशसे चलनेके पहिले ऐसे लोकहित रत पोत जहाज शत्रुनकारसे अनुज्ञा प्राप्त कर लें।

आजकल इस प्रथाका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं किया जाता इससे यह कहना कठिन है कि यह अब भी है या उठ गयी पर ऐसी अवस्थामें यदि मिल सके तो अनुज्ञा ले लेना ही अच्छा होता है नहीं तो अडचन पड़ सकती है।

जो जहाज रणबन्दियोंको स्वदेश पहुँचानेके काममें लगे हों वह भी जड़त नहीं किये जाते परन्तु उनके पास परिचर्या पोत शत्रुसर्कारका अनुज्ञापत्र होना चाहिये। साथ ही ऐसे जहाजपर किसी प्रकारकी युद्ध सामग्री न होनी चाहिये।

समुद्रलग्न देशोंमें ऐसे लाखों मनुष्य होते हैं जिनकी जीविकाका एक मात्र साधन मछली मारना है। ऐसे लोगोंकी नावें नहीं पकड़ी जातीं पर इस नियमके दो मछुआहोंकी नावें अपवाद है। एक तो नावें छोटी होनी चाहिये*, और छोटी व्यापारिक नावें दूसरे उनसे समुद्रके किनारे ही मछली मारनेका काम लिया जाता हो, गहरे जलमें नहीं। यह आवश्यक नहीं है कि मछुआहे अपने ही देशके तटलग्न जलमें मछली मारे। यदि युद्धके पहिले वह किसी अन्य देशके किनारे मछली मारते रहे हो तो युद्ध छिडने पर भी ऐसा कर सकते हैं। इसी प्रकार वह छोटी छोटी नावें भी जो अपने देशके एक नौस्थानसे दूसरे नौस्थान तक किनारेके पास पास चलकर माल ले जाती हैं नहीं पकड़ी जाती।

कभी कभी एक शत्रु सर्कार दूसरी शत्रु सर्कारके कुछ प्रजावर्गीयोंको अपने देशमें व्यापार करनेका अधिकार दे देती है। इसी भाँति यदि उसने युद्ध-कालमें अधिकारप्राप्त व्यापार-सम्बन्धी कुछ नियम बनाये हों तो वह यह कर सकती है कि किसी शत्रुवर्गीय या तटस्थदेशीय व्यक्तिके लिये उन नियमोंको ढीला कर दे। ऐसे विशेषाधिकारप्राप्त जहाजोंको उसके सामरिक

* Cartel Ships. † Licensed Ships.

जहाज नहीं पकड़ सकते। ऐसा अधिकार सत्कार ही दे सकती है। सेनापति लोग अपने अधिकार-क्षेत्रमें अलबत्ता अल्पकालीन विशेष अनुज्ञा दे सकते हैं।

अज्ञ जहाज भी जब्त नहीं किये जाते। अज्ञ जहाज उन जहाजोंको कहते हैं जिनको युद्ध छिड़नेका पता न हो। ऐसे जहाज शत्रुके हाथोंमें तीन अवस्थाओंमें पड़ अज्ञ पोत सकते हैं।

(१) वह युद्ध छिड़नेके समय शत्रुराजके ही किसी नौस्थानमें हों।

(२) युद्ध छिड़नेपर शत्रुराजके किसी नौ-स्थानमें, युद्ध छिड़नेके वृत्तान्तसे अनभिज्ञ होनेके कारण, लगर डाल दें।

(३) खुले समुद्रमें यात्रा कर रहे हों और शत्रुका कोई रणपोत उन्हें पकड़ ले।

पहले तो ऐसे जहाज जब्त कर लिये जाते थे या नष्ट कर डाले जाते थे। अब प्रायः यह करते हैं कि युद्धके अन्त तक जहाजको रोक रखते हैं फिर उसे छोड़ देते हैं या यदि उसे अपने काममें लाते हैं तो उसके स्वामियोंको उसका मूल्य दे देते हैं। तीसरी दशामें अर्थात् खुले समुद्रमें मिले जहाजोंको कभी कभी नष्ट करना ही सुकर होता है क्योंकि उनको अपने साथ लिये किये फिरना और अपने राजके किसी नौ स्थानमें पहुँचाना बड़ा कठिन होता है। ऐसा उन्हीं राजाके रणपोत कर सकते हैं जिनका साम्राज्य पृथ्वीके सभी भागोंमें हो। अन्यथा जहाजको नष्ट कर देते हैं पर उसके यात्रियों और कार्गुजोंको बचा लेते हैं और पीछे से उसके स्वामियोंको रुपया दे देते हैं।

जो जहाज युद्ध छिड़नेके समय शत्रुके किसी नौ स्थानमें पाये जाते हैं उनके लिये एक और प्रथा है। उनको कुछ दिनोंका

अवकाश^१ दिया जाता है। यदि वह उतने दिनके भीतर चले जाय तो उन्हे कोई नहीं छेड़ता, केवल इतना देख लिया जाता है कि उनपर कोई ऐसी वस्तु न हो जिससे शत्रुको सहायता मिल सके। पर यह प्रथा मांश है। हेगमें यह प्रयत्न हुआ था कि यह अनिवार्य नियम बना दिया जाय परन्तु ब्रिटेन तथा कुछ अन्य राजोंके विरोधके कारण ऐसा न हो सका। इन राजोंका कहना यह था कि आजकल बड़े व्यापारिक जहाज बड़ी सुगमतासे रणपोतोंमें परिणत हो सकते हैं अतः ऐसे जहाजोंको छोड़ देनेसे शत्रुके नौबलको सहायता पहुचनेकी सम्भावना है। इसके विपरीत अमेरिका इस प्रथाको अनिवार्य नियम मानता है। पर जो राज अवकाश देते हैं उनके यहाँ भी कोई एक नियम नहीं है। रूस-जापान युद्धमें रूस अड़तालीस घण्टे और जापान एक सप्ताहका अवकाश देता था।

यह सब नियम और अपवाद तो शत्रुके जहाजोंके सम्बन्धमें हुए। अब हमें उन नियमोंपर विचार करना है जो जहाजोंपर आने जानेवाली सम्पत्तिके लिये बनाये गये हैं। जहाजों और उनपर की सामग्रीके लिये सब नियम एक से नहीं हैं, उनमें कुछ भेद है।

शत्रु-सम्पत्तिके लिये सबसे पहिला नियम वह है जिसे संक्षेपमें 'स्वतन्त्र पोतोंपर स्वतन्त्र सम्पत्ति' या "स्वतन्त्र पोतोंपर की सम्पत्ति स्वतन्त्र है" कह सकते हैं।

स्वतन्त्र पोतोंपरकी 'स्वतन्त्र पोत' तटस्थ देशोंके पोतोंको कहते सम्पत्ति स्वतन्त्र है § है। इस नियम या सिद्धान्तका तात्पर्य

यह है कि यदि दो देशोंमें युद्ध हो और एकके प्रजावर्गीयोंकी असामरिक सम्पत्ति यदि किसी तटस्थ देशीय जहाजमें जा रही हो तो उसे दूसरे देशके रणपोत छोड़

* Days of Grace § Free Ships, Free Goods.

देंगे। यही सम्पत्ति यदि शत्रुके अपने देशके जहाजपर जाती हो तो जहाजके साथ ही ज़ब्त कर ली जायगी।

शत्रु-जहाजमें जानेवाली और वस्तुएँ तो ज़ब्त कर ली जाती हैं पर शत्रुकी डाक नहीं रोकी जाती। न तो सर्कारी डाक रोकी जाती है न प्रजाकी। यद्यपि आजकल डाक बहुत सा सर्कारी काम तार और बे तार द्वारा होता है फिर भी बहुत से राजोंको इस अपवादसे लाभ पहुँचा है। डाक ले जानेवाले जहाज विशेष आवश्यकता पड़नेपर रोके जा सकते हैं पर रोकनेवालेका कर्तव्य सलिनकला और पुस्तके है कि डाकको यथास्थान पहुँचा दे। पुस्तकें और ललिनकला सम्बन्धी वस्तुएँ (जैसे चित्र, मूर्ति, बाजे, इत्यादि) भी रोकी नहीं जाती। इनके लिये कोई लिखित नियम नहीं है पर प्रायः सम्म राजोंका व्यवहार ऐसा ही है।

अज्ञ पोतोंके साथ जो व्यवहार किया जाता वही उनपरकी अज्ञ पोतोंपर की सम्पत्तिके साथ भी किया जाता है। या तो सम्पत्ति वह युद्धके बाद लौटा दी जाती है या अपने काममें लायी जाती है और उसके स्वामियोंको क्षतिपूर्ति के लिये रुपया दे दिया जाता है।

चिकित्सा पोतोंकी भाँति उनपर की सामग्री भी सरक्ष्य है परन्तु अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर उसे अपने चिकित्सा पोतोंपर काममें ला सकते हैं। ऐसी दशामे चिकित्सा की सामग्री पोतपर जो रोगी हो उनके लिये समुचित प्रबन्ध कर देना होगा।

स्थलयुद्धकी भाँति जलयुद्धमें भी रक्षाद्रव्य देनेकी प्रथा बहुत दिनोंसे चली आती है और अन्ताराष्ट्रिय विधानने इसे मना नहीं

किया है। यदि कोई व्यापारिक जहाज शत्रु के किसी रणपोतके हाथ पड जाय तो उसके स्वामी (या कप्तान) रक्षाद्रव्य* को यह अधिकार है कि रणपोतके अफसरोंसे इस प्रकारका समझौता कर ले कि हम आपको इतना रुपया देंगे, हमें छोड दीजिये। यदि समझौता हो गया तो व्यापारिक पोतका एक नाविक रणपोतपर प्रतिभू (जमानत) की भांति रख लिया जाता है और रक्षाद्रव्य पत्र § (वह कागज जिसमें जहाजका स्वामी एक नियत अवधिके भीतर रुपया देनेकी प्रतिज्ञा करता है) पर हस्ताक्षर होकर वह भी रख लिया जाता है। उसकी एक प्रतिलिपि जिसपर रणपोतके कप्तानका हस्ताक्षर होता है उस व्यापारिक जहाजको दे दी जाती है और उसे एक नियतमार्गसे अपने राजके एक नियत नौस्थानको नियत अवधिके भीतर जानेकी अनुज्ञा दे दी जाती है। रक्षाद्रव्य-पत्रकी प्रतिलिपिके कारण उसे शत्रुका कोई रणपोत नहीं पकडता परन्तु यदि वह अवधि या मार्गकी प्रतिज्ञाके विरुद्ध आचरण करे और इसके लिये कोई सन्तोषजनक कारण न बतला सके तो पकडा जा सकता है। ऐसी दशामें उसे बेचनेसे जो कुछ मिले उसमेंसे उसके पहिले पकडनेवाले अपना रक्षाद्रव्य ले लेंगे, शेष रुपया दूसरी बार पकडनेवाले ले लेंगे। यदि पकडनेवाले स्वयं पकड लिये जाय और उस समय उनके पोतपर प्रतिभू और रक्षाद्रव्यपत्र हो तो फिर व्यापारिक जहाज अपनी प्रतिज्ञासे मुक्त हो जाता है।

अधिकांश सरकारोंने यह अनुज्ञा दे दी है कि यदि उनके राज्यका कोई व्यापारिक जहाज अपनी प्रतिज्ञासे मुकर जाय तो शत्रु रणपोतकी ओरसे उसपर न्यायालयमें अभियोग चल सकता है। युद्ध कालमें भी ऐसे अभियोग चलने पाते हैं। ब्रिटेनने

अपने रणपोतोंके लिये रुपया लेकर शत्रु राज्यके व्यापारिक जहाजोंको छोड़ देना निषिद्ध कर दिया है।

यदि एक शत्रु ने किसी जहाज और उसपर की सम्पत्तिको अपने कब्जेमें कर लिया हो और फिर वह दूसरे शत्रु के हाथ लग जाय

तो उसके साथ क्या करना चाहिये इस विषय-
अपहतोद्धार में पहिले बहुत मतभेद था। पीछेसे रोमन

विधानके जस पोस्ट लिमिनिआइ^१ का आश्रय लिया गया। इसका आशय यह है कि जो वस्तु या व्यक्ति शत्रु-के हाथसे मुक्त किया जाय वह अपनी पूर्व स्थितिको प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि शत्रु के हाथसे पुनरपहत जहाज उसके पुराने स्वामीको लौटा दिया जाय। ऐसा ही होता भी है पर यदि शत्रु ने उम जहाजको रणपोतमें परिणत कर डाला हो तो इस नियमसे काम नहीं लिया जाता।

जहाजको लौटानेके पहिले उसके स्वामियोंसे पारिश्रमिक-स्वरूप कुछ रुपया लिया जाता है। इसको उद्धरण शुल्क § कहते हैं। इसका निश्चय न्यायालयोंके द्वारा होता है। भिन्न भिन्न देशोंमें शुल्क लेनेके अतिरिक्त और भी भिन्न भिन्न शर्तें बर्ती जाती हैं।

ब्रिटेनमें यह नियम है कि यदि जहाज किसी तटस्थ देशवासीका हो तो ब्रिटिश न्यायालय सब बातोंको देखकर यह अनुमान करनेका प्रयत्न करता है कि यदि यह जहाज शत्रुके देशमें पहुँच जाता तो शत्रुका न्यायालय इसे छोड़ देता या जब्त करता। यदि छोड़ देनेकी सम्भावना प्रतीत होती है तो जहाज बिना उद्धरण शुल्क लिये लौटा दिया जाता है, यदि जब्त होनेकी सम्भावना प्रतीत होती है तो समुचित शुल्क लेनेकी व्यवस्था दी

* Jus Post limini. § Salvage money

जाती है। यदि जहाज किसी ब्रिटिश प्रजाका हो तो उसके मूल्यका अष्टमांश शुल्कके रूपमें लेकर जहाज लौटा दिया जाता है पर यदि उसे छुड़ानेमें विशेष परिश्रम लगा हो तो चतुर्थांश तक शुल्क मिलता है।

यदि शत्रु द्वारा अग्रहत जहाजके नाविक स्वयं अपने परिश्रमसे अपनेको मुक्त कर लें तो उन्हें कोई पुरस्कार नहीं मिलना क्योंकि यह उनके कर्तव्यका एक अंग है पर यदि इस काममें किसी तटस्थ देशका निवासी हाथ बंटाए तो उसे पुरस्कार देना अनिवार्य होता है। यदि किसी स्थलसेनाकी सहायता या प्रयत्नसे किसी जहाजका उद्धार हो तो उस स्थलसेनाको ही उद्धारण शुल्क मिलता है।

जहाजोंको पकड़ने और जड़त करनेके अधिकारसे तभी काम लिया जा सकता है जब रणपोतोंको यह अधिकार हो कि वह जिस जहाजकी चाहे रोककर तलाशी लें।

तलाशीका अधिकार यह अधिकार अन्ताराष्ट्रिय विधानने दे रक्खा है उभय पक्षके रणपोतोंको यह अधिकार है कि समुद्रमें भाते जाते जिस असै नक जहाजको चाहें रोकें। असैनिकका तात्पर्य यह है कि शत्रुके सैनिक जहाजको रोकनेका तो सदैव अधिकार है क्योंकि उससे तो लड़ाई ही है पर किसी तटस्थ देशके सैनिक जहाजको रोकना उसका घोर अपमान करना है जिसका परिणाम भयकर हो सकता है। यदि कोई रणपोत भूलसे ऐसा कर बैठे तो क्षमायाचना करके शीघ्र ही पीछा छोड़ाया जाता है।

यदि रोका गया असैनिक जहाज शत्रु-देशीय है तो उसका जड़त होना निश्चय है। हाँ, यदि उसमें सामर्थ्य हो तो लड़कर भले ही बच जाय। यदि वह किसी तटस्थ देशका है तो उसके किये लड़ना निषिद्ध है। यदि वह लड़ा और हार गया तो उसके

साथ शत्रुपक्षका सा बर्ताव विया जायगा, यदि जीत गया तो उसके राजकी सकारसे शिकायत की जायगी और उसे स्वदेशमें ही दण्डित होना पड़ेगा ।

रणपोतोंको अधिकार है कि भेष बदलकर (अर्थात् अपने राष्ट्रीय झण्डेको छिपाकर) सन्दिग्ध जहाजोंका पीछा करें पर तलाशी लेते समय उन्हें अपना झण्डा दिखा देना होगा । यदि सन्दिग्ध जहाज इतना निकट न हो कि उससे बात की जा सके तो सिग्नल Σ के द्वारा उसे ठहरनेकी आज्ञा दी जाती है । यदि वह न रुके तो खाली कारतूसका फायर किया जाता है । यदि वह फिर भी न रुके तो एक गाला इस प्रकार दागा जाता है कि उसके ऊपरसे निकल जाय । यदि वह इतनेपर भी न रुके तो उसपर गोली चलाना होगा । ऐसी दशामें जो कुछ होता है उसे तलाशी न कहकर युद्ध कहना चाहिये । यदि जहाज रुक गया तो रणपोतका एक अफसर कुछ नाविकोंको लेकर उसके पास जाता है । पहिले वह अकेले उसपर जाता है । यदि उसके कागजोंको देखकर और उसके कप्तानसे बात करके उसे कोई सन्देह न हुआ तो वह लौट आता है नहीं तो वह अपने नाविकोंको भी बुला लेता है और पूरी तलाशी ली जाती है । यदि सन्देहका समर्थन हुआ तो जहाजके क गज रोक लिये जाते हैं और उसके कप्तानको अपने जहाजपर ले आते हैं और उस जहाजको अपने देशके किसी ऐसे नौस्थानमें ले जाते हैं जहाँ न्यायालय हो । वहाँ जानेपर उसकी पूरी तलाशी होती है । यदि न्यायालयकी समितिमें उसका पकड़ना न्याय्य हुआ तो उसे बेचकर उसका मूल्य पकड़नेवालोंको

* सिग्नल कई प्रकार से किया जाता है । साधारणतः झण्डे या प्रकाशके साकेतिक चिन्हासे काम लेते हैं । आजकल बे-तारसे भी यह काम लिया जाता है ।

दे दिया जायगा, यदि सन्देहके निराधार न होनेपर भी पूरा प्रमाण न मिला तो उसे छोड़ देते हैं पर यदि सन्देह निराधार ठहरा तो उसे क्षतिपूर्ति के लिये रुपया मिल सकता है।

तलाशीका अधिकार आवश्यक है पर आजकल इससे बड़ी अड़चन पड़ती है। एक एक जहाजपर करोड़ों रुपयेका माल लदा रहता है। ऐसे जहाजोंको किसी उपयुक्त नौस्थानमें ले जाने, वहाँ सारा माल उतारने और फिर लादनेमें कई दिन लग जाते हैं, जहाजवालोका सहस्रों रुपया बिगड़ जाता है और जिन लोगोंका माल होता है उनकी भारी क्षति होती है। ऐसी बातोंसे आपसका मनमुटाव बढ़ता है। कुछ लोगोंका यह प्रस्ताव था कि जिन तटस्थ असैनिक जहाजोंके साथ उनके राजके सैनिक जहाज हों उनकी तलाशी न ली जाय, अर्थात् सैनिक जहाजका साथ होना इस बातका प्रमाण मान लिया जाय कि उस जहाजकी कोई कार्यवाही नियमविरुद्ध नहीं है। पर इस परामर्शके अनुसार काम नहीं हो सकता क्योंकि यह असम्भव है कि सब व्यापारिक जहाजोंके साथ रणपोत भेजे जा सकें। एक सम्मति यह है कि तटस्थ राज असन्दिग्ध जहाजोंको सर्टिफिकेट दे दिया करें और शत्रुओंके रणपोत इन राजकीय सर्टिफिकेटोंको प्रमाण मान कर तलाशी न लें। यह प्रस्ताव अधिक सम्भव है पर अभी इस विषयमें कुछ निश्चय नहीं हुआ है।

जिन जहाजोंके विषयमें यह सन्देह होता है कि यह डकैतोंके जहाज हैं उनकी तलाशी लेनेका सदैव सभी राष्ट्रोंके जहाजोंको अधिकार है। यदि तलाशी लेनेपर जहाज सचमुच डकैत ठहरे तब तो ठाक ही है, पर यदि सन्देह भूठा निकला तो बड़ी अड़चन पड़ती है। क्षमा मागनी पड़ती है, क्षतिपूर्ति के लिये रुपया देना होता है, फिर भी कुछ मनमुटाव बना ही रहता है।

ऊपर जहाजके कागजोंका कई बार उल्लेख हुआ है। भिन्न भिन्न देशोंके विधान इस विषयमें एकसे नहीं है पर अन्तराष्ट्रिय विधानके अनुसार प्रत्येक जहाजपर ऐसे कागज जहाजके कागज (बही खाता या रजिस्टर) होने चाहिये जिनसे यह स्पष्ट ज्ञात हो सके कि जहाज किस देशका है, उसका स्वामी कौन है, उसपर कितना, किस किस प्रकारका और किस किसका माल लदा है और वह कहासे कहाँ जाने वाला है। इसका अतिरिक्त कप्तान और अन्य अफसरोंके नामों तथा नाविकोंके नामोंकी सूची होनी चाहिये और यदि जहाज किसीके हाथ किसी प्रकार हस्तान्तरित किया गया हो तो इसका भी पूरा पूरा प्रमाण होना चाहिये। यदि किसी जहाजके कागज पूरे न हों या ठीक तरहसे न लिखे हों या भूटे हों या बिगाड़े गये हों या छिपा दिये गये हों या जान बूझ कर फेंक दिये गये हों तो उसके ऊपर भगत्या सन्देह होता है।

जहाँ तक हो सके सन्दिग्ध और पकड़े हुए जहाजोंको किसी ऐसे नौस्थानमें ले जाना चाहिये जहाँ उपयुक्त न्यायालय उनके विषयमें निर्णय कर सके। पर कभी कभी अप्रदूत सम्पत्तिको ऐसा करना असम्भव हो जाता है। आत्म-रक्षा इन बातके लिये विवश करती है कि रोका हुआ जहाज डूबा दिया जाय। यदि वह जहाज शत्रुदेशीय है तो विशेष अडचन नहीं पड़ती परन्तु यदि वह तटस्थ देशीय है तो कई बातोंपर ध्यान रखना पड़ता है। जहाजके कागजोंको तथा अन्य ऐसी चीजोंको जिनको उसका कप्तान स्वयंशपोषक समझे सुरक्षित करके रख लेना होता है और जितना शीघ्र हो सके किसी उपयुक्त न्यायालयके सामने उपस्थित करना होता है। वहाँ पहिले इस प्रकार

विचार होता है कि वस्तुतः डुबानेकी आवश्यकता थी या नहीं। यदि रणपोत इस बातका प्रमाण न दे सके तो उसे जहाजके लिये पूरा हर्जाना देना पड़ता है। यदि यह बात सिद्ध हो गयी तब फिर कागजों और अन्य प्रमाणोंके आधारपर यह देखा जाता है कि उसका जवत करना न्याय्य था या अन्याय्य। यदि न्याय्य सिद्ध हुआ तो ठीक ही है नहीं तो उस जहाजके स्वामियोंको क्षतिपूर्तिस्वरूप रुपया मिलता है और जिन लोगोंका माल डूब गया रहता है उनको भी मालका मूल्य मिलता है।[॥] इन नियमोंका प्रतिफल यह है कि रणपोतोंके अध्यक्ष संकट पड़नेपर सन्दिग्ध तटस्थ जहाजोंको डुबानेके स्थानमें छोड़ देना अधिक पसन्द करते हैं।

ऊपर हम कई स्थलोंमें उपयुक्त न्यायालयोंका उल्लेख कर आये हैं। ऐसे न्यायालयोंकी आवश्यकता स्पष्ट ही है। यदि केवल शल-सम्पत्तिका प्रश्न हो तो वह तो न्यायालय चुपकेसे जवत भी कर ली जाय पर तटस्थोंकी सम्पत्तिके सम्बन्धमें भी प्रश्न उठते हैं।

इनका निर्णय रणपोतोंके कप्तानोंके ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता। इसके साथ ही साधारण न्यायालयोंमें भी ऐसे निर्णय सुगमतासे नहीं हो सकते। उन न्यायालयोंके पास एक तो योंही बहुत काम रहता है, दूसरे उनकी प्रणाली ऐसी होती है कि साधारण नियमोंमें महीनों लग जाते हैं। इसलिये प्रत्येक राज युद्ध आरम्भ होते ही कई विशेष न्यायालय स्थापित करता है। यह न्यायालय ऐसी जगह खोले जाते हैं जहां रणपोत आदि शत्रु सम्पत्ति-अपहर्ताओंको सुविधा हो। शत्रुसे छीनी हुई सम्पत्तिको 'प्राइज' (अपहृत सम्पत्ति)[†]

* यह स्मरण रखना चाहिये कि हरजानेका रुपया रणपोतका स्वामी राज देता है, पोतके अफसर या नाविक नहीं। † Prize

और ऐसे न्यायालयोंको 'प्राइज कोर्ट' (अपहत सम्पत्ति सम्बन्धी न्यायालय) § कहते हैं। इनके अध्यक्ष अर्थात् न्यायाधीश अन्ताराष्ट्रिय विधानके ज्ञाता होते हैं और उसीके अनुसार अभियोगोंका निर्णय करते हैं। उनको अपनी सरकारके बनाये हुए युद्धकालीन विशेष नियमोंपर भी ध्यान रखना पड़ता है पर उनका मूल आधार अन्ताराष्ट्रिय विधान ही होता है। इस सम्बन्धमें संयुक्तराज (अमेरिका) की नीति सबसे उत्तम है। उसने स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषित कर दिया है कि अन्ताराष्ट्रिय विधान सर्वोपरि है और जो राष्ट्रीय विधान उसके प्रतिकूल होंगे वह मान्य न होंगे।

यह न्यायालय कितने ही निष्पक्ष क्यों न हों परन्तु इनसे सब पक्षोंको पूर्ण सन्तोष होना कठिन है। न्यायाधीश और रणपोतकी राष्ट्रीयता एकही होती है। इसलिये १९६३ में अन्ताराष्ट्रिय हेगमें एक अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयकी व्यवस्था प्राइज कोर्ट† हुई। उसके लिये नियम भी बनाये गये पर अभी वह कार्य रूपमें परिणत न हो सके। इस बीचमें उसके मुख्य समर्थकोंमें से दो अर्थात् जर्मनी और आस्ट्रिया अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं और रूस अभी राजसम्प्रदायसे पृथक् सा है। इधर राष्ट्रसंघका जन्म हो गया है। उसने स्वयं एक अन्ताराष्ट्रिय महान्यायालयकी सृष्टि की है। इसलिये इस सम्बन्धमें कुछ विशेष लिखना अनावश्यक है।

नवाँ अध्याय ।

बलप्रयोगकी सीमा ।

यों तो अभी तक युद्धमें विजय प्राप्त करनेका प्रधान साधन बलप्रयोग ही रहा है और सम्भवतः सैकड़ों वर्षों

तक रहेगा पर सम्य जगत वर वर इस बातकी चेष्टा करता रहा है कि राजों और उनकी सेनाओंके स्वेच्छाचारमें कमी हो। सेनापति यही चाहता है कि वह जैसे बन पड़े शत्रुको निर्वीर्य कर दे और यदि वह ऐसा कर सका तो उसकी सत्कार उससे प्रसन्न होती है और स्वदेशमें उसे तात्कालिक ख्याति मिलती है। परन्तु अब राष्ट्रोंका पार्थक्य बहुत कुछ कम हो रहा है। मनुष्यताका स्थान राष्ट्रीयतासे ऊँचा माना जाने लगा है और उदार स्वार्थ भी यह बतलाता है कि अनियन्त्रित बलप्रयोग विजितको ही क्षति नहीं पहुँचाता प्रत्युत परम्परया विजेता और सारे सम्य जगत्के लिये हानिकारक होता है। नैतिक विचार क्रमशः शुद्ध पाशव बल-प्रयोगको दुबानेका प्रयत्न कर रहे हैं और उनको आशिक सफलता भी हुई है।

बलप्रयोगका मूल सिद्धान्त यह है कि शत्रुकी विरोध-शक्ति नष्ट हो जाय, वह हतवीर्य हो जाय। इस लिये उतना ही बल-प्रयोग करना चाहिये जिससे इस उद्देश्यकी सिद्धि हो। सेण्ट-पीटर्सबर्ग (वर्तमान पीट्रोग्राड) की घोषणा (१९४५) की प्रस्तावनामें लिखा है “राजोंको युद्धका एक ही लक्ष्य मानना चाहिये, अर्थात् शत्रुकी सैनिक शक्तिको दुर्बल करना, और इस लक्ष्यकी सिद्धिके लिये यह पर्याप्त है कि अधिकसे अधिक मनुष्य युद्धके

लिये बेकाम कर दिये जाय । यदि ऐसे शस्त्रोंसे काम लिया जाय जिनसे आहतोंकी पीड़ामें वृद्धि हो या उनकी मृत्यु अवश्यम्भावी हो जाय तो उपर्युक्त लक्ष्यका अतिक्रमण हो जायगा ।”

इसी सिद्धान्तके आधारपर १९६४ में हेगमें कुछ नियम किये गये । यह नियम चतुर्थ समयपत्रमें परिशिष्टके रूपमें जोड़ दिये गये हैं । पहिले इन्होंने यह स्पष्ट किया है निषिद्ध साधन कि शत्रुको क्षति पहुचानेके साधन योद्धाओंकी स्वेच्छापर निर्भर नहीं करते और फिर निम्न-लिखित कामोंको विशेषतया निषिद्ध ठहराया है—

- (क) विष और विषाक्त शस्त्रोंका प्रयोग ।
- (ख) शत्रु पक्षके मनुष्योंको धोखेसे मार डालना या आहत करना ।
- (ग) जिस शत्रुने शस्त्र डाल दिये हों या जो आक्षरक्षामें असमर्थ हो उसे मार डालना या आहत करना ।
- (घ) यह घोषित करना कि हथियार रख देनेपर भी दया न की जायगी ।
- (ङ) ऐसे शस्त्रों या वस्तुओंसे काम लेना जिनसे व्यर्थ पीड़ा हो ।
- (च) विराम पताकाओं, राष्ट्रीय झण्डों या शत्रुके सैनिक चिन्हों और वर्दियों तथा अस्त्रताली चिन्होंका दुरुपयोग (अर्थात् इनके द्वारा धोखा देना) ।
- (छ) बिना अत्यन्त सैनिक आवश्यकताके शत्रु-सम्पत्तिको छीनना या नष्ट करना ।
- (ज) यह घोषित करना कि शत्रु-राजके नागरिकोंके साथ स्वतन्त्र लुप्त हो गये और अब न्यायालयोंमें उनकी रक्षा न की जायगी ।

- (ऋ) शत्रु-देशके निवासियोंको स्वदेशके विरुद्ध युद्धमें भाग लेनेके लिये विवश करना, चाहे युद्धके पहिले यह लोग उसके (अर्थात् शत्रु के) यहां नौकर भी रहे हों ।
- (ज) अधिकृत प्रदेशोंके निवासियोंको अपने देशकी सेना या रक्षाके उपायोंके सम्बन्धकी गुप्त बातें खोलनेके लिये विवश करना ।

यह नियम बहुत ही उदार है पर इनके साथ एक ऐसी वस्तु लगी हुई है जो इनके पूर्ण प्रयोगको कभी कभी रोक देती है । 'सैनिक आवश्यकता' का ठीक ठीक अर्थ करना कठिन है । इसका निर्णय तात्कालिक ही होता है और बहुधा स्थानीय सेनापतियोंके ह्थमें होता है । इसलिये ऐसा स्यात् ही कोई युद्ध होता होगा जिसमें इनमेंसे कुछकी अवहेलना न होती हो । यूरोपीय महा-समरमें भी इसके कई उदाहरण मिले । कहा जाता है कि जर्मन सरकारने अपने सेनापतियोंको यह निर्देश कर रक्खा था कि शत्रु-की न केवल सैनिक किन्तु नैतिक और मानसिक शक्ति भी नष्ट कर दी जाय ताकि उसकी सिर उठानेकी सामर्थ्य ही नाबो रहे । इसी लिये अधिकृत प्रदेशोंमें प्रजापर भाँति भाँतिके अमानुषिक अत्याचार किये गये । हम नहीं कह सकते कि यह आक्षेप कहां तक न्याय्य है । हमें यह भी नहीं पता है कि जर्मनोके विरोधियोंने क्या क्या किया ।

जिन नगरों, गृहसमूहों और ग्रामोंमें किसी प्रकारकी किला-बन्दी न हो उनपर न तो आक्रमण हो सकता है, न अग्निवर्षा की जा सकती है, न उनका घेरा किया जा सकता घेरा और बमबाजी है । (१९६४) की हेग नियमावलीमें यह बात स्पष्ट शब्दोंमें लिख दी गयी है कि अग्निवर्षा करनेके किसी साधनसे काम नहीं लिया जा सकता । यदि यह

नियम न होता तो वायुयानोंद्वारा बम गिराये जा सकते। कहा जाता है कि महासमरमें जर्मनोंने इस नियमकी अवहेलना करके ब्रिटेनके कई नगरोंपर वायुयानोंसे बम गिराये। जो नगर सुरक्षित हों अर्थात् जिनमें किले हों उनपर आक्रमण हो सकता है और बम-वर्षा की जा सकती है, परन्तु ऐसा करनेके पहिले नगरके स्थानीय अधिकारियोंको सूचना दे देनी चाहिये (परन्तु यदि धावा मारकर कब्जा करनेका विचार हो तो बिना सूचना दिये भी आक्रमण किया जा सकता है) और यथासम्भव उपासना, कलाकौशल, शिक्षा, चिकित्सा आदि धर्मसम्बन्धी इमारतोंको बचाना चाहिये। ऐतिहासिक स्मारक भी सुरक्ष्य इमारतोंमें परिगणित है। नागरिकोंको भी चाहिये कि ऐसे स्थानोंपर किसी विशेष प्रकारका झण्डा या अन्य दूरसे देख पड़ने वाले परिचायक चिन्ह लगा दें और आक्रामक सेनाको उस चिन्हकी सूचना दे दें। कभी कभी युद्धकारी सेनाएं एक दूसरेके साथ इससे भी अधिक उदारता दिखलाती हैं। १९५६ में बोअर सेना लेडीस्मिथको घेरे पड़ी थी। उसने अंग्रेज सेनापतिको कहला भेजा कि तुम अपने रोगियों और आहतोंको इण्टोम्बी (जो किलेके बाहर परन्तु नगरकी परिधिके भीतर था) भेज दो, उसपर गोलाबारी न की जायगी। ऐसा ही किया गया। न केवल रोगी और आहत किन्तु स्त्रियों और बच्चोंको भी वहीं भेजनेकी अनुज्ञा मिल गयी। १९२७ में जर्मन सेना स्ट्रास्बर्गपर आक्रमण कर रही थी। वह उसे धावा करके लेना चाहती थी। अतः फ्रेञ्च अधिकारियोंके पास कहला दिया गया कि जो स्त्री बच्चे और सेनासे सम्बन्ध न रखनेवाले पुरुष चाहें नगरके बाहर चले जायं, जर्मन सेना उन्हें बेरोक-टोक जाने देगी। ऐसाही किया गया परन्तु उसी युद्धमें पैरिस वालोंको जर्मनोंने यह सुविधा न दी। वह जानते थे कि धावा

करके पैरिसकों जीतना सुकर न होगा अतः वह उसे घेरकर बैठ गये और किसीको भी बाहर न जाने दिया ताकि भूखसे पीड़ित होकर लोग आत्मसमर्पण कर दें ।

तटवर्ती नगरों, ग्रामों और इमारतोंके लिये भी यही नियम हैं । यदि उनमें किसी प्रकारकी किलाबन्दी न हो तो उनपर आक्रमण करना या बम गिराना निषिद्ध है । पर इस नियमके दो अपवाद हैं । यदि उनमें शस्त्रागार हों या रणपोत हों या ऐसे कलकारखाने हों जो सैनिक काममें लगाये जा सकते हों तो शत्रुका नौबलाभ्यक्षक कह सकता है कि इन्हें एक नियत अवधिके भीतर स्वयं नष्ट कर दो । यदि उसका निर्देश न माना जाय तो अवधि बीतनेपर वह उन्हें नष्ट करनेके लिये गोलाबारी कर सकता है । इसके लिये पहिलेसे सूचना देना न देना उसकी इच्छापर निर्भर है । यदि गोलाबारी हो तो यथासम्भव धार्मिक और ऐतिहासिक इमारतोंको बचाना चाहिये । नागरिकोंको भी चाहिये कि ऐसी इमारतोंपर परिचायक चिन्ह लगा दें । चिन्हके लिये यह निश्चय हुआ है कि बड़े बड़े चौड़े चौखूटे तख्ते खड़े कर दिये जाय जो बीचमें रेखा खींच कर दो त्रिभुजोंमें विभक्त हों । इनमें ऊपरका त्रिभुज काला और नीचेका श्वेतरंगका होना चाहिये । दूसरा अपवाद यह है कि यदि उन तटवर्ती स्थानोंसे सेना या रणपोतके कामके लिये खाने पीनेकी आवश्यक सामग्री मांगी जाय और वह मूल्य (या रसीद) पाने पर भी देनेसे इंकार करे तो उनपर गोलाबारी की जा सकती है ।

तोपोंसे कैसे गोले बरसाये जाय इस विषयमें भी बहुत विचार हुआ है । यह स्मरण रखना चाहिये कि लक्ष्य केवल इतना ही है कि सिपाही उस युद्धमें फिर भाग न ले सकें ।

⊗ Naval Commander. (नेवल कमेंडर)

मनुष्योंका निरर्थक उत्पीड़न किसी सभ्य राजका अभीष्ट नहीं हो सकता। इसलिये पहिले ऐसे गोलोंका प्रयोग गोले गोलिया निषिद्ध हुआ जिनमें कीलें, बटन, कांचके टुकड़े, चाकुओंके फल आदि शरीरको फाड़ने वाली वस्तुएं भरी हों। ऐसे बड़े गोले जो गिरनेपर फूटते हैं काममें लाये जा सकते हैं पर फूटने वाले छोटे गोले जो तौलमें सात छटांसे कम हों प्रयुक्त नहीं हो सकते। ऐसे छोटे गोले शरीरको सदैवके लिये बेकाम कर देते हैं। तेजाब भरी गोली नहीं छोड़ी जा सकती। ऐसी गोलियां भी जो शरीरसे टकरानेपर चिपटी हो जाती हैं या अवयवोंको छेद डालती हैं निषिद्ध हैं।

इनमेंसे कुछ नियम ऐसे हैं जो स्पष्ट शब्दोंमें सर्वसम्मत नहीं हैं पर यह निश्चय है कि इनमेंसे सभी आदरणीय हैं और इनमेंसे किसी एककी अवहेलना करना न्यूनाधिक असभ्यता और बर्बरताका ही सूचक समझा जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि पाश्चात्य देश अपनेको सभ्यताका ठेकेदार समझते हैं परन्तु उनके समता सिद्धान्त सबके लिये नहीं होते। संयुक्त राज और ब्रिटेन फटने वाली गोलियोंके तो विरुद्ध हैं पर चिपटी हो जानेवाली गोलियोंको बुरा नहीं समझते। इनमें भी संयुक्त राजका यह मत है कि असभ्य राष्ट्रोंसे, जो स्वभावतः निनय होते हैं और प्राणोंकी परवाह न करके धावा मारते हैं, युद्ध करते समय तो ऐसी गोलियोंका चलाना सर्वथा क्षम्य है।

शत्रुके प्रदेशको उजाड़ डालना और नगरों, ग्रामों और मकानोंको नष्ट भ्रष्ट करना या जला डालना भी निषिद्ध है। यदि शत्रु इन स्थानोंसे आक्रमणकारी सेवापर गोली चलाये या बिना इन्हें नष्ट किये सेनाका आगे बढ़ना ही असम्भव हो तो ऐसी दशामें ऐसा करना क्षम्य हो सकता है।

यदि कोई राष्ट्र आत्मरक्षाके लिये अपने देशको उजाड़ कर दे तो उसे कोई बुरा नहीं कह सकता प्रत्युत इस त्यागकी सर्वत्र प्रशंसा होगी। स्पेनसे स्वतन्त्र होनेके प्रयत्नमें डच लोगोंने बांध तोड़ कर अपने देशका बहुत बड़ा प्रदेश समुद्रके नीचे डुबा दिया। रूस वालोंने नैपोलियनको रोकनेके लिये सुविशाल मास्को नगर-को भस्मसात् कर डाला। महाराणा प्रतापने मेवाड़को उजाड़ कर मुगल सेनाओंका आगे बढ़ना रोका था।

विषका प्रयोग प्राचीन कालमें बहुत होता था। अब भी जङ्गली जातियाँ विषैले बाणोंसे काम लेती हैं परन्तु सभ्य राष्ट्रोंमें विषाक्त शस्त्रोंका प्रयोग सर्वथा निषिद्ध है। शत्रुकी बढ़ती सेनाके मार्गमें पड़ने वाले तालाबों और कुओंमें विष डाल देना या कुओंके द्वारा अथवा किसी अन्य प्रकार शत्रुसेनामें प्लेग, विस्मूचिका, शीतला, कुष्ठ आदि किसी अन्य प्रकारके रोगको फैलाना भी निषिद्ध है।

१९६४ में यह भी निश्चय हुआ था कि ऐसी गोलियोंसे काम न लिया जाय जिनमें ऐसे वाष्प (गैस) भरे हों जिनसे लोग बेहोश हो जाय या मर जाय। सयुक्तराजने इस शर्तको स्वीकार नहीं किया। यह सचमुच विचारणीय है कि यदि लोगोको मारना उचित है तो वाष्पसे मारना क्यों बुरा समझा जाय। यदि यह सिद्ध हो जाय कि इससे अधिक पीड़ा होती है तो निषेध न्याय्य होगा पर अभी तक यह प्रमाणित नहीं हो पाया है। जो कुछ हो, गत महासमरमें पहिले जर्मनी फिर अन्य राष्ट्रोंने भी विषैले वाष्पोंका खूब प्रयोग किया।

दसवाँ अध्याय ।

युद्धके उपकरण ।

कह सब साधन जिनके द्वारा युद्धमें विजय प्राप्त हो सकती है युद्धके उपकरण हैं। उपकरण दो प्रकारके होते हैं, सजीव और निर्जीव। वह मनुष्य (और पशु) जो सेनाओंके अङ्ग होते हैं सजीव और जहाज, तोप, बन्दूक इत्यादि निर्जीव उपकरण हैं। कुछ उपकरणोंका प्रयोग वैध और कुछका अवैध माना जाता है, यहां हमको इसीपर विचार करना है। विचार करते समय हम पशुओं तथा रसद पहुंचाने वाले मनुष्यों, चिकित्सकों, दाइयों, धर्माचार्यों, रेलगाड़ियों, खच्चरों, इत्यादि सजीव या निर्जीव उपकरणोंकी ओर ध्यान न देंगे, यद्यपि यह सब परमोपयोगी उपकरण हैं। विचार न करनेका कारण यह है कि यह सभी सेनाओंमें पाये जाते हैं और इनकी वैधताके विषयमें कोई प्रश्न नहीं उठता।

सेना बिना युद्ध हो ही नहीं सकता इसलिये सेना तो सर्वत्र ही वैध है। इस परिभाषाके अन्तर्गत तीन प्रकारके सैनिक-समूह आते हैं—नियमित, आपत्कालिक और सेना—नियमित, सहायक। नियमित सिपाही तो वह हैं जो आपत्कालिक, वर्तमान समयमें पूर्ण वेतनपर सेनामें काम कर रहे हैं। बहुधा देशोंमें यह नियम होता है कि सिपाहियोंको कुछ वर्षों तक सेनामें काम करनेके पीछे छुटी मिल जाती है। वह अपने घर चले जाते हैं और उनकी जगह दूसरे भर्ती कर लिये जाते हैं। जो सिपाही

घर रहते हैं उन्हें प्रायः कोई वेतन नहीं मिलता पर उनसे यह शर्त रहती है कि युद्ध छिड़नेपर उन्हें नियमित सेनाके साथ काम करना होगा। ऐसे सिपाहियोंको आपत्कालिक † कहते हैं। काम करते समय इन्हें भी पूर्ण वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी देशोंमें स्वयंसेवकों * की भांति काम करने वाले लोग होते हैं। यह अपनी इच्छासे कवायद करते हैं यद्यपि सरकार इनकी पूरी सहायता करती है। देशपर कोई भारी विपत्ति पड़नेपर यह लोग भी सेनाके साथ काम करते हैं। इन्हें सहायक § कहते हैं।

यह सब सिपाही नियमानुसार वर्दी पहिनते हैं, इनकी नियमानुसार सूचियां होती हैं और यह सरकारी अफसरोंके अधीन काम करते हैं। अतः यह सब वैध हैं। इसी प्रकार नौ सेना और वायुसेनामें काम करने वाले भी नियमके भीतर हैं।

यदि दो देशोंमें लड़ाई हो रही हो और एकके कुछ निवासी दूसरेकी सेनामें काम कर रहे हों तो देशवालोंके हाथमें पड़नेपर उनके साथ रणबन्धियोंका सा बर्ताव नहीं होता वरन् उन्हें देशद्रोहियोंका समुचित पुरस्कार प्राणदण्ड मिलता है। तटस्थदेशीय सैनिकोंके साथ साधारण शत्रु-सैनिकों जैसा व्यवहार होता है।

स्वदेशकी रक्षा करना प्रत्येक नागरिकका कर्तव्य है परन्तु जब यूरोपमें नियमित सेनाओंकी वृद्धि हुई तो बड़े राज जिनके पास बृहत् सेनाएँ थीं इस बातपर आग्रह करने लगे अनियमित सैनिक कि सिवाय नियमित और आपत्कालिक तथा सहायक सेनाओंके और कोई युद्धमें भाग न ले। छोटे राज, जिनकी रक्षा उनकी जनताके देश-प्रेमपर हो

† Reserves (रिजर्व्स) * Volunteers (वॉलन्टीयर्स)

§ Auxiliaries (आक्मिलीअरीज़)

निर्भर थी, इसके विरोधी थे। अन्तमें १९६४ में हेगमें छोटे राज्यों-की बात मान ली गयी और यह निश्चय हुआ कि अनियमित सैनिकोंको भी सैनिकोंके सब स्वत्व प्राप्त होंगे। जब किसी देश-पर आक्रमण होता है तो कुछ देशभक्त लोग स्वभावतः उसकी रक्षाके लिये उत्सुक हो कर शत्रुका मार्ग रोकना चाहते हैं, चाहे उनकी सकार् उनसे ऐसा करनेका अनुरोध करे या न करे और उन्हें किसी प्रकारका प्रोत्साहन और साहाय्य दे या न दे। यह लोग यथाशक्ति आपही अपने शस्त्रादि संग्रह करते हैं। देशका कोना कोना इनका देखा रहता है और इनकी छोटी छोटी टुकडिया होती हैं, नियमित सेनाओंकी भांति भारी साज सामान साथ होता नहीं इसलिये तार काटने, पुल तोड़ने, रसद लूटने, छापा मारने, समाचार पहुँचाने आदिके कामोंको यह लोग बड़ी उत्तम-तासे कर सकते हैं। ऐसे सैनिकोंको अनियमित सैनिक कहते हैं। एक बड़ी शर्त यह है कि जब यह लोग शस्त्र ग्रहण करें तो फिर युद्धके अन्त तक यही काम करे। यह ठीक नहीं है कि कभी तो सिपाही बन कर शत्रुसे लड़े और कभी शान्तिमय कृषक बनकर तदधिकृत प्रदेशमें निवास करें।

हेगमें ऐसे सैनिकोंके लिये चार शर्तें रखी गयी हैं। उनका पालन करनेसे इनके साथ सभ्य सैनिकवत् बर्ताव हो सकता है। शर्तें यह हैं—

(क) प्रत्येक टुकड़ी किसी दायी अध्यक्षके अधीन हो।

(ख) ऐसी वर्दी पहिनती हो जो दूरसे पहिचानी जा सके।

(‘दूरसे’ का तात्पर्य उतनी ही दूरीसे है जितनी दूरीपर से सामान्य सैनिकोंकी वर्दिया पहिचानी जा सकती है।)

(ग) खुलकर शस्त्र धारण करें । (इसका तात्पर्य यह है कि यह लोग निरन्तर युद्ध-सम्बन्धी ही काम करें ।)

(घ) युद्ध-सम्बन्धी सब अन्ताराष्ट्रिय नियमोपनियमोंका पालन करें ।

यदि थोड़े से मनुष्योंको स्वदेश-रक्षाका अधिकार है तो बहुत से मनुष्योंको भी स्वभावतः यह अधिकार है । जिन देशोंमें स्वदेश-भक्त प्रजा रहती है उनपर यदि कोई शत्रु आक्रमण करे तो प्रजा अपनी रक्षाके लिये आप उठ खड़ी होती है । कभी कभी सरकार ही ऐसी आज्ञा निकाल देती है कि अमुक अमुक वयके सब स्वस्थ पुरुष शत्रुका सामना करनेके लिये तैयार हो जाय । ऐसी दशामें शत्रुको लाखों या करोड़ों देशभक्त सैनिकोंका यकायक सामना करना पड़ता है । इस प्रकारके समारोहको जानपद समारोह^१ कहते हैं । यह बहुसंख्यक सिपाही नियमित अनियमित दोनों प्रकारके सिपाहियोंसे भिन्न होते हैं । न तो यह ठिकानेसे कवायद जानने हैं, न इनके पास उपयुक्त शस्त्रादि सामग्री ही होती है, न इनका पर्याप्त संगठन होता है, न कोई वर्दी होती है, न ठिकानेके अफसर होते हैं । प्रायशः स्वदेशप्रेम ही इनका महास्त्र होता है । छोटे देश जो बड़ी स्थायी सेनाएं नहीं रख सकते, ऐसे समारोहोंके ही भरोसे जीवित रह सकते हैं । बहुत वाद विवादके उपरान्त यह निश्चय हुआ कि यदि ऐसे सैनिक खुलकर शस्त्र धारण करें और युद्धके नियमोपनियमोंका पालन करें तो उन्हें वैध सैनिक माना जाय ।

कभी कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब कुछ ठीक निर्णय नहीं हो सकता । रूस-जापान युद्ध (१९१२) में जापानी

* Levies en masse (लेवी आन मैसे)

सेनाने सखालिएन द्वीपपर आक्रमण किया। ब्लाडिमिरौका नगरकी रक्षा बहुत से रूसी जेलमुक्त कैदियोंने की थी। यह लोग रूसकी नियमित सेनाके सिपाही नहीं थे। इनके दलको अनियमित टुकड़ी भी नहीं मान सकते थे क्योंकि न तो इनका कोई दायी अध्यक्ष था न कोई स्पष्ट वर्दी थी। इनकी गणना जान पद समारोहमें भी नहीं हो सकती थी क्योंकि जेलसे सद्योमुक्त होनेके कारण इनको उस प्रदेशके निवासी नहीं कह सकते थे। जापानी अधिकारी अन्त तक यह निश्चय न कर पाये कि इन्हें क्या माना जाय पर उन्होंने इनमेंसे १२० को, जो उनके हाथ लग गये थे, गोली मार दी। इनका यह अपराध अवश्य था कि न तो इन्हें युद्धके नियमोंका ज्ञान था न इन्होंने उन्हें बर्तनेकी चेष्टा की परन्तु यह बात प्रशंसाके योग्य थी कि साधारण बन्दी होते हुए भी इन्होंने ऐसी देशभक्ति दिखलायी। यद्यपि अन्ताराष्ट्रिय विधान इनके मार दिये जानेको अवैध नहीं कहता पर इनके साथ सामान्य रणबन्धियोंका सा व्यवहार करना अधिक प्रशंसनीय होता।

यदि अधिकृत प्रदेशकी प्रजा विद्रोह करके शत्रुकी मुल्कगिरी सेनाको निकालनेका प्रयत्न करे तो उसके इस प्रकार सिर उठानेको जानपद समारोह नहीं कहते। मुल्कगिरी सेना ऐसे विद्रोहियोंके साथ बड़ी कठोरतासे व्यवहार करती है। इसका कहीं विषेध नहीं है। इसके साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि इन लोगोंको चाहे विद्रोही या अन्य कोई बुरा नाम दिया जाय पर होते हैं यह देशभक्त। अतः जब जब यह प्रश्न उठा तब तब छोटे राजोंने यही आग्रह किया कि इनके साथ भी सैनिक आचरण किया जाय। बड़े राज इसपर सम्मत न थे। परिणाम यह हुआ कि डेगकी युद्ध-नियमावलीमें इस विषयकी चर्चा ही नहीं है। यह निश्चय है कि अवसर पड़ने पर कोई मुल्कगिरी सेना अधिकृत प्रदेश-

के निवासियोंके विद्रोहको सदैव दृष्टिसे न देखेगी पर इस बातको स्वीकार कर लेना अपने देशके वीर देशभक्तोको शत्रुके हाथोंमें आप ही सौंप देनेके बराबर प्रतीत होता है इसलिये इसे किसी नियमावली वा संधि वा समयपत्रपर लिखना कोई पसन्द नहीं करता । अन्ताराष्ट्रिय विधानमें बहुत सी बातें इसी प्रकार गोल रक्खी गयी हैं ।

यूरोपवाले सिवाय गोरी जातियोंके और मनुष्यमात्रको असभ्य समझते हैं । अपने राज्योंकी वृद्धिके लिये ऐसी 'रंगीन' जातियोंके

सिपाहियोंसे काम लेनेमें उन्हें तनिक भी जगली आर असभ्य रुकावट नहीं होती पर उन्हें छोटा कड़ते ही सैनिक जाते हैं । आजकलकी प्रथा यह है कि यदि

असभ्य जातियोंके मनुष्य नियमित सेनाओंमें भर्ती किये जायं तो उनसे काम लेना बुरा नहीं है अन्यथा जंगली और असभ्य मनुष्योंको सभ्य सैनिकोंके सामने न खड़ा किया जाय । उनसे असभ्य मनुष्योंके ही विरुद्ध काम लिया जाय । बोअरयुद्धमें ब्रिटिश सरकार भारतीय सैनिकोंको भी परमसभ्य (१) बोअरोंके विरुद्ध नहीं भेजना चाहती थी पर इसके बिना काम न चल सका । गत महायुद्धमें भी रंगीन सिपाही गोरोंसे लड़ाये गये ।

जासूसोंसे काम लेनेकी प्रथा बहुत पुरानी है । जो मनुष्य भेष बदलकर या धोखा देकर किसी सेनाके भेदोंको इस उद्देश्यसे जाननेका प्रयत्न करता है कि उन्हें शत्रुको बतला जाय वह जासूस कहलाता है । यदि कोई सिपाहा खुलकर शत्रुसेनाका भेद लेता हुआ पक जाय तो वह जासूस नहीं माना जाता । गुब्बारो और वायुयानोंमें

*सभ्य असभ्यका कोई निश्चित परिमाणक नहीं है । यदि स्वतः बलवान् रंगीन राष्ट्र चाहें तो वह यूरोपियनोंके प्रति वैसा ही बर्ताव कर सकते हैं जैसा कि अब तक रंगीनोंके साथ होता रहा है । § Spies

उडकर शत्रु सेनाके रहस्योंका पता लगानेवाले भी जासूस नहीं कहलाते । पकड़ जानेपर जासूसको प्राणदण्ड दिया जाता है पर यदि वह एक बार अपनी सेनामें पहुँच जानेके पीछे फिर किसी अवसरपर पकड़ा जाय तो पुराने अपराधके लिये उसे कोई दण्ड नहीं दिया जाता ।

यद्यपि, जैसा कि हमने ऊपर लिखा है, जासूसोंको प्राणदण्ड देनेकी ही प्रथा है पर सबके साथ ऐसा करना न चाहिये । जासूसोंको लोग बहुधा घृणित दृष्टिसे देखते हैं, यह भी सर्वत्र उचित नहीं है । सब जासूस एक से नहीं होते । ऐसे भी नरपिशाच होते हैं जो अपनी ही सेनाका वृत्तान्त शत्रुको जता आते हैं पर साधारण जासूस रुपयेके लिये ऐसा काम करते हैं । उनका काम अन्य सैनिकोंकी अपेक्षा निम्न नहीं है । ऐसे भी जासूस होते हैं जो केवल देश-प्रेमके भावसे सब प्रकारका कष्ट सहकर शत्रु-सेनामें प्रवेश करके उसका भेद लेनेका प्रयत्न करते हैं ।

अब हम अजीब उपकरणोंका कुछ वर्णन करते हैं । इनमेंसे रण-पोतों, वायुयानों और गुब्बारोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका मतद्वैध नहीं है । इनका प्रयोग सर्वथा वैध है । हमें उन वस्तुओंका थोड़ा सा विचार करना है जिनका प्रयोग गद्द^१ या अवैध समझा जाता है ।

आजसे सौ डेढ़ सौ वर्ष पहिले यह प्रथा थी कि युद्ध छिड़नेपर साधारण लोगोंको, चाहे वह स्वराष्ट्रके हों या किसी तटस्थ राष्ट्रके, यह अधिकार दे दिया जाता था कि वह शत्रुके कुमक-पोत व्यापारिक जहाजोंको जहाँ अवसर पड़े लूटें और गिरफ्तार करें और यदि बन पड़े तो उसके रणपोतोंको भी अपने वशमें लावें । ऐसे जहाजोंको कुमक-पोत^२

कहते थे और उन्हें राजसे एक विशेष परवाना[§] दिया जाता था। कुछ कालके बाद तटस्थराष्ट्रीयोंको तो परवाना देना बन्द हो गया पर स्वराष्ट्रीयोंसे इस प्रकारका काम लिया जाता रहा। धीरे धीरे यह प्रथा भी बन्द हो गयी। १९११ में पेरिसमें जो अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलन हुआ उसमें इसका निषेध किया गया। यद्यपि उस समय कई राजोंने इस शर्तको स्वीकार नहीं किया पर तबसे आजतक किसीने इस अधिकारसे काम नहीं लिया है अतः यह मान लेना चाहिये कि अब यह प्रथा उठ गयी।

जिस प्रकार स्थलपर स्वेच्छासेवी सेना होती है उसी प्रकार जलपर भी हो सकती है। सबसे पहिले १९२७ में जर्मनीने इस प्रकारकी सेनाको जन्म देना चाहा पर उसे स्वेच्छा-नौसेना † सफलता न हुई। इसके सात आठ वर्ष पीछे रूसने यह काम कर दिखाया। कुछ देश-भक्तोंने मिलकर जहाज मोल लिये। शान्तिकालमें तो यह जहाज साधारण व्यापारादिका काम करते हैं पर युद्धकालमें सरकारको सौंप दिये जाते हैं। इनपर सरकार अपने अफसर रख देती है। आवश्यकता पड़नेपर सरकार अपने नाविक भी रख सकती है। शान्तिकालमें इन्हें बराबर भत्ता मिलता रहता है। ब्रिटेन आदिने यह प्रबंध किया है कि उनके यहांकी कई बड़ी व्यापारिक कम्पनियाँ सरकारी नौविभागके बतलाये हुए ढगके कई जहाज रखती हैं। शान्तिकालमें उनसे साधारण काम लिया जाता है। पर सरकार उनके लिये कम्पनीको बराबर नियत रुपया देती है।

प्रत्येक राजको यह अधिकार है कि शत्रुसे छीने हुए वणिक्-पोताको जब जहाँ चाहे रणपोतोंमें परिवर्तित कर डाले। इसी प्रकार

§ Letters of Marque (लेटर्स ऑफ मार्क) † Volunteer Navy (वाल्वन्टीयर नेवी)

उसे यह भी अधिकार है कि अपने देशके वणिक्पोतोंको रण-पोतोंमें परिणत कर दे। यहांतक तो सब मानते हैं। पर इस बातका ठीक निर्णय नहीं हो सका कि यह परिवर्तन कहां किया जा सकता है। अपने नौस्थानोंमें तथा अधिकृत

परिणत वणिक्पोत* नौस्थानोंमें ऐसा करनेसे कोई रोक नहीं सकता। यदि दो या अधिक राज एकही पक्षमें

हों तो एक दूसरेके नौस्थानोंमें भा परिवर्तन कर सकते हैं। यह भी निर्विवाद है कि किसी तटस्थ देशके नौस्थानोंमें यह काम नहीं किया जा सकता। भूगडा खुले समुद्रके विषयमें है। ब्रिटेन तथा कुछ अन्य राज यह कहने हैं कि खुले समुद्रमें यह काम नहीं होना चाहिये। यदि हो भी तो उस राजको पहिलेसे ही इस बातकी सूचना निकाल देना चाहिये कि हम सम्भवतः अमुक अमुक वणिक्पोतोंको रणपोतोंमें परिवर्तित करेंगे। यदि ऐसा न किया गया तो धोखेबाजीका अवसर मिलेगा। ऐसा हुआ भी है। रूस-जापान युद्धके समय पोटरबर्ग और स्मोलेंस्क नामक दो रूसी जहाज दर्रेदानियालके द्वारा कृष्णसागरसे बाहर निकले। यदि वह रणपोतोंके रूपमें होते तो सन्धि के अनुसार तुर्की उन्हें रोक देता। खुले समुद्रमें आकर दोनों रणपोत बन गये। इसपर बहुत विवाद उठा, अन्तमें रूस सरकारने इन्हें वापस ले लिया। अस्तु, यह प्रश्न हेगमें भी कई बार उठा पर कुछ निश्चय न हो सका। यह बड़े महत्त्वका विषय है और शीघ्र ही इसका निपटारा होना चाहिये।

पानीके नीचे विस्फोटक द्रव्योंसे काम लेनेकी प्रथा लगभग सौ सवासौ वर्षसे चल पड़ी है। यह विस्फोटक या गोला पानीके नीचे डूबा रहता है। यदि उसे किसी भारी वस्तुसे टक्कर लग जाय तो वह फूट जाता है और उस वस्तुको छिन्न भिन्न

* Converted Merchantmen (कन्वर्टेड मर्चेंटमेन)

कर डालता है। शत्रुके जहाजोंको नष्ट करनेका यह बड़ा अच्छा साधन है पर इससे तटस्थोंके जहाजोंके नष्ट होनेकी भी भारी आशंका है। १९६४ में हेगमें यह प्रश्न छिड़ा।

जलमग्न विस्फोटक* कुछ शर्तें बनायी गयीं जिनके पालन किये जानेसे तटस्थ व्यापारियोंके जहाजोंको क्षति पहुँचनेकी सम्भावना कुछ कम हुई। वह शर्तें मुख्यतया यह हैं—

(क) खुले विस्फोटक (अर्थात् ऐसे विस्फोटक जो लंगर द्वारा एक ही जगह नहीं रखे जाते वरन् समुद्रमें इतस्ततः बहते फिरते हैं) काममें न लाये जायँ और यदि उनसे काम लेना ही हो तो उनकी बनावट ऐसी हो कि अपने प्रयोजकके हाथसे निकल जानेके एक घण्टेके बाद वह बेकाम हो जायँ।

इस नियमका तात्पर्य यह था कि ऐसे विस्फोटक खुले समुद्रमें सर्वत्र न फैल जायँ पर नियमकी शब्दावली दूषित है। 'हाथसे निकल जाना' किसे कहने है? मान लीजिये कि कई सौ विस्फोटक एक डोरसे बंधे हुए हैं और डोरका सिरा एक मनुष्यके हाथमें है। यह निश्चय है कि खुले समुद्रमें वह आक्षुब्ध इनपर विशेष अंकुश नहीं रख सकता पर कहनेको अब भी यह उसके हाथमें (अंग्रेजी मूल शब्दोंमें उसके 'कण्ट्रोल' या वशमें) हैं। इस प्रकार उनसे घण्टों तक काम लिया जा सकता है।

(ख) लंगरद्वारा विस्फोटकोंकी बनावट ऐसी होनी चाहिये कि लंगरसे खुलते ही वह बेकाम हो जायँ।

यह नियम भी अच्छा था पर इसके साथ एक शर्त यह जोड़ दी गयी कि जिन राज्योंके पास अच्छे ढंगके विस्फोटक न हों वह अपने पुराने ढंगके विस्फोटकोंसे ही काम लें। उनसे यह तो कहा गया कि जितनी जल्दी हो सके नये विस्फोटक बनवा ले पर

* Submarine Mines (सबमरीन माइन्स)

कोई अवधि नियत नहीं की गयी इसलिये नियमका उल्लंघन करना सरल हो गया।

(ग) वणिक्पोतोंको रोकने मात्रके उद्देश्यसे शत्रुके तटों और गौस्थानोंके पास विस्फोटक बिखेरना निषिद्ध है।

यह नियम पूर्णतया निरर्थक है। जिस राजको विस्फोटकोंसे काम लेना होगा वह यह कह देगा कि मेरा उद्देश्य वणिक्पोतोंको रोकना नहीं है। दूसरा उद्देश्य बतला देना कोई बड़ी बात नहीं है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि यह नियम अधूरे हैं। एक और नियम कहता है कि समुद्रके जिस भागमें विस्फोटक बिखेरे जाय उसकी सूचना तटस्थोंको दे दी जाय और यथासम्भव उसकी रक्षाका प्रबन्ध क्रिया जाय पर इसमें भी यह शर्त लगी है कि 'सैनिक आवश्यकताओंको ध्यानमें रखते हुए जितनी जल्दी सम्भव हो सके' ऐसा किया जाय। इसकी आड़में सूचना देनेका काम महीनों तक टाला जा सकता है।

जिस समय यह सब नियम बन रहे थे उस समय सभी राजोंके प्रतिनिधियोंने इस बातको कहा था कि हमारे नौसेनाध्यक्ष सदैव मनुष्यता और अन्ताराष्ट्रिय सौजन्यको ध्यानमें रखेंगे पर यूरोपियन महासमरने सबकी क़लई खोल दी। पहिले जर्मनीने उत्तर सागरके उत्तरी भागमें विस्फोटक बिखेरे, फिर ब्रिटेनने उसके दक्षिणी भागको इसी प्रकार बन्द किया। आस्ट्रिया और फ्रांसने एड्रियाटिक सागरमें विस्फोटक बिछा दिये। इन बातोंसे एक दूसरेकी जो कुछ क्षति की गयी वह तो की ही गयी, तटस्थोंकी बहुत ही हानि हुई।

इस बातकी आवश्यकता है कि इस प्रश्नपर भी शीघ्र ही व्यापक विचार हो और दृढ नियम बनाये जायँ। जैसा कि हेग

सम्मेलनके सामने ब्रिटिश प्रतिनिधि श्री सेटोने कहा था “ खुला समुद्र महान् अन्ताराष्ट्रिय राजपथ है । यदि अन्ताराष्ट्रिय विधानकी वर्तमान अवस्थामें युद्धकारी राज्योंको यह अधिकार प्राप्त है कि वह इस राजपथपर अपनी लडाइयाँ लड़े तो उनका यह कर्तव्य है कि ऐसा कोई काम न करें जिससे उनके हट जानेके पीछे राजपथ तटस्थोंके लिखे, जिन्हें उससे काम लेनेका पूरा अधिकार है, शंकास्पद हो जाय । ... तटस्थोंका सुरक्षित रीतिसे नौसंचालनका स्थायी अधिकार योद्धाओंके लड़नेके क्षणिक अधिकारसे श्रेष्ठतर है । ”

अन्तमें हमें एक ऐसी बातकी ओर सकेत करना है जिसे सच-मुच युद्धका उपकरण न कहना चाहिये पर जिसका प्रयोग पहिले बहुत होता था और अब भी स्यात् होता हो । हमारा तात्पर्य इत्यासे है । शत्रुकी सेनापर छापा मारना निन्द्य नहीं है । उसकी सेनामें घुस कर आवश्यक कागजोंको छीन लाना वीरताका परिचायक है । उसकी सेनामें प्रवेश करके सेनाध्यक्ष या अन्य तत्स्थित प्रधान व्यक्ति (जैसे राष्ट्रपति, नरेश या मन्त्री) को पकड़नेका प्रयत्न करना प्रशंसाके योग्य है । यदि इस प्रयत्नमें दैवात् उस व्यक्तिकी मृत्यु भी हो जाय तो इसमें कोई निन्दाकी बात नहीं है । पर यह काम दगाबाजाके साथ न होना चाहिये । शेष बदल कर जाना और सोते मनुष्यको मार डालना या उसे बातोंमें बहका कर मार डालना या उसके खानेमें विष मिला देना नितात गार्हित कर्म है । ऐसा करनेवालेको स्वयं उसकी सकारि दण्ड देगी । यदि वह सकारि ऐसा न करे तो वह स्वयं अन्ताराष्ट्रिय समाजसे बहिष्कृत कर दी जायगी । हेग नियमावलीने स्पष्ट शब्दोंमें ‘ शत्रु राष्ट्र या सेनाके व्यक्तियोंका धोखेसे मारना या घायल करना ’ निषिद्ध ठहराया है ।

ग्यारवाँ अध्याय ।

युद्धकालीन अहिंसात्मक व्यापार ।

दो युद्धकारी दलोंमें सदैव लड़ाई नहीं होती रहती । बीच बीचमें, कभी सारे युद्ध-स्थलमें, कभी उसके किसी अश विशेषमें, लड़ाई बन्द करनी पड़ती है । इतना ही नहीं, दोनों दलोंको आपसमें बातचीत करनेकी भी आवश्यकता पड़ती है । इस प्रकारके आपसके व्यापारको शान्तिमय नहीं कह सकते क्योंकि वह अशान्ति-कालमें होता है, और उसका रूप ही तत्रग्यापी अशान्तिका द्योतक होता है । इसी लिये हम उसे केवल अहिंसात्मक कहते हैं ।

प्राचीन कालमें ऐसा बहुधा हुआ करता था । महाभारतके योद्धा एक दूसरेके सम्बन्धी, सगोत्री और सजातीय थे । दिनभर लड़ते थे, सार्थकाल मिल जाते थे । छोटे बड़ोंकी सेवा सुश्रूषामें लग जाते थे । राजपूतोंके इतिहासमें भी ऐसी बहुत सी कथाएँ हैं । यूरोपियन महासमरमें बड़े दिन (यीशूके जन्मादिवस) के उपलक्ष्यमें बहुत से युद्ध-स्थलोंमें सिपाहियोंने लड़ाई रोक दी । कई जगह तो दोनों ओरके सिपाही बीचमें आ मिले, साथमें खाना पीना हुआ, नृत्यगान किया गया, फिर अपने अपने पड़ाव या खाइयोंकी ओर चले गये । मनुष्य मनुष्य ही है । ऐसा भाई-चारा उसके लिये अत्यन्त स्वाभाविक है ।

पर यहाँ हम इस प्रकारके मेल-मिलापकी चर्चा नहीं कर रहे हैं । हमारा सकेत उस अहिंसात्मक व्यापारकी ओर है जो युद्धकी आवश्यकताओंके कारण सेनाध्यक्षोंकी आज्ञासे होता है । यह

कई प्रकारका होता है। यहां हम कुछ मुख्य प्रकारोंका ही वर्णन कर सकते हैं। आपसमें कितना अहिंसात्मक सम्बन्ध रक्खा जाय यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह बात सैनिक आवश्यकता और सेनाध्यक्षोंकी इच्छापर निर्भर है।

जब एक दल दूसरेसे किसी भी उद्देश्यसे कुछ बातचीत करना चाहता है तो पहिले वह इस बातका प्रयत्न करता है कि कुछ कालके लिये लड़ाई बन्द हो जाय। इस विराम पताका लिये वह उसके पास एक मनुष्यको श्वेत पताका देकर भेजता है। इस पताकाको विराम-पताका^० कहते हैं। झण्डी वाला चाहे अकेले जाय चाहे अपने साथ एक बिगुल बजाने वाले या नगारा बजाने वाले, एक झण्डी-बरदार और एक दुभाषियेको ले जाय। पताका वाला अपने दलके सेनापतिका प्रतिनिधि होता है।

पताका-वाहक सरक्ष्य होते हैं अर्थात् न तो इन्हें किसी प्रकारका शारीरिक कष्ट दिया जा सकता है, न बन्दी किया जा सकता है। साधारण उपचार तो यह है कि विरोधी दलका सेनाध्यक्ष इनको बुलाकर इनकी बात सुनले पर वह ऐसा करनेके लिये बाध्य नहीं है। यदि वह चाहे तो बिना मिले ही इन्हें झूटा सकता है। यदि मना करने पर भी यह लोग आगे बढ़नेका प्रयत्न करें तो इनकी संरक्ष्यता जाती रहती है और इनके साथ साधारण शत्रुवत् बर्ताव किया जा सकता है। यदि वह इनसे मिलना स्वीकार करे तो उसे अधिकार है कि इनकी आंखोंपर पट्टी बांध कर भीतर बुलावे ताकि इन्हें सेनाका कुछ वृत्त ज्ञात न हो जाय। इनका भी यह कर्तव्य है कि इसका कोई प्रयत्न न करें। यदि उस समय सेनामें कोई ऐसी बात हो रही हो जिसका गुप्त रखना

* Flag of Truce. (फ्लैग आफ टूस्)

आवश्यक हो परन्तु छिपाना कठिन हो तो पताकावाहकोंको थोड़ी देरके लिये रोक भी सकते हैं। इस बीचमें इनके साथ बन्दियोंका सा बर्ताव न करना चाहिये पर इनका गमनागमन बन्द रहेगा। यदि पताकावाहक किसी प्रकारकी धोखेबाजी करें या सिपाहियोंको बहकायें या नक्शा उतारना चाहें या कोई भेद लेना चाहें तो इनके साथ जासूसोंका सा व्यवहार किया जा सकता है।

जलयुद्धमें भी यही नियम बर्ते जाते हैं। वहां विराम-पताका छोटी नावमें भेजी जाती है।

यदि लडाईके बीचमें कोई सेना श्वेत झण्डो दिखलाये तो यह समझा जाता है कि उसका आत्मसमर्पण करनेका विचार है। यदि किसी आक्रान्त दुर्गपर श्वेत झण्डो खड़ी की जाय तो भी यही समझा जायगा कि वह आत्मसमर्पण करना चाहता है या इस उद्देश्यसे कुछ बातचीत करना चाहता है। सेनाके मुख्य अध्यक्षकी आज्ञासे ही ऐसी झण्डो दिखलायी जा सकती है।

कभी कभी युद्ध छिड़नेके पहिले, कभी छिड़नेके पीछे, आपसमें लिखित समझौता हो जाता है। इस समझौतेमें यह निश्चय कर लिया जाता है कि आपसमें रणबन्दियोंका सामरिक समझौता विनिमय किस प्रकार होगा, विराम-पताकाओंके साथ कैसा बर्ताव किया जायगा, पत्र और तार कैसे आते जाते रहेंगे, इत्यादि। ऐसे समझौतोंको सामरिक समझौता कहते हैं।

यों तो युद्धकालमें एक शत्रुराजका नागरिक दूसरे शत्रुराजके अधिकारक्षेत्रमें घूम फिर नहीं सकता पर कभी कभी इस नियममें ढिलाई भी कर दी जाती है। शत्रुवर्गके किसी व्यक्ति

विशेषको यात्रा करनेकी अनुज्ञा दे दी जाती है । इस प्रकारकी यात्रानुज्ञा^{*} सकार ही दे सकती है । यह यात्रानुज्ञा, राज्य भर या उसके किसी विशेष भागके रक्षावचन और लिये दी जा सकती है । सेनापति लोग भी अभयदान अपने अपने अधिकार-क्षेत्रमात्रके शत्रुवर्गी-योको घूमने फिरने या अपना सामान ले आने लेजानेकी अनुज्ञा दे सकते हैं । ऐसी अनुज्ञाको रक्षावचन[†] कहते हैं । यदि अनुज्ञाका दुरुपयोग किया जाय तो वह वापस ली जा सकती है । कभी कभी सेनापति लोग शत्रु-व्यक्तियों या शत्रु-सम्पत्तिको लिखकर अभयदान[‡] देते हैं । इसको देखकर उस सेनाका कोई सिपाही उस व्यक्ति या सम्पत्तिको नहीं छेड़ता । कभी कभी रक्षाके लिये कुछ सिपाही खड़े कर दिये जाते हैं । यदि यह सिपाही शत्रुके हाथमें पड़ जाय तो वह उन्हें बन्दी नहीं करता वरन् उनकी सेनामें लौटा देता है । ऐसे सिपाहियोंको रक्षागारद[§] कहते हैं । यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है कि यात्रानुज्ञा और रक्षावचनसे वही अनुषंग लाभ उठा सकता है जिसका नाम उनपर लिखा हो ।

युद्धकालमें युद्धकारी राजोंकी प्रजामें किसी प्रकारका व्यापारिक सम्बन्ध नहीं हो सकता परन्तु राजोंको अधिकार है कि नियमसे कुछ अपवाद कर दे और व्यापाराधिकार^{§§} देकर व्यापारको पुनः स्थापित कर दें । यह अधिकार दो प्रकारका होता है—सामान्य और विशेष । यदि अपनी या शत्रुकी प्रजामात्रको कुछ नियत स्थानों और नियत वस्तुओंको क्रयविक्रय करनेका अधिकार दे

*Pass-port (पासपोर्ट) †Safe-conduct (सेफ कण्डक्ट)

§Safe-guard. (सेफ गार्ड) ‡Sate-guard (सेफ गार्ड)

§§ License to trade. (लाइसेंस टु ट्रेड)

दिया जाय तो उसे सामान्य अधिकार और यदि कुछ विशेष व्यक्ति-योंको ही ऐसी अनुज्ञा दी जाय तो उसे विशेष अधिकार कहते हैं।

यह अनुज्ञा सरकार ही देती है परन्तु प्रधान स्थल और जल सेनापतियोंको भी अपने अपने अधिकारक्षेत्रमें ऐसी अनुज्ञा देनेका अधिकार है। उस क्षेत्रके बाहर ऐसी अनुज्ञाका कोई मूल्य नहीं होता।

यदि कोई सेना या दुर्ग या नौ-समूह या नगर लड़नेकी सामर्थ्य न रखता हो तो वह आत्मसमर्पण कर देता है। सम-
 पणकी शर्तें एक कागजपर लिखी जाती हैं जिसे
 आत्मसमर्पण समर्पणपत्र † कहते हैं। शर्तें कई प्रकारकी होती हैं। सबसे साधारण शर्त यह है कि सिपाहियोंको प्राणभिक्षा दी जायगी। आज कल यह शर्त निरर्थक है क्योंकि रणबन्धियोंको कोई योंही नहीं मारता। सबसे श्रेष्ठ शर्त यह होती है कि सब सिपाही 'ससामरिक सम्मान'‡ चले जाने पायेंगे। इसका अर्थ यह है कि वह लोग शस्त्रसज्जित, झण्डा लिये और बाजा बजाते निकल जायेंगे। ऐसी शर्त बहुत कम मिलती है। बहुधा समर्पणकी शर्तें प्राणभिक्षा और सामरिक सम्मानके बीचमें होती हैं। यदि आक्रमणकारियोंको जगहपर कब्जा करनेकी जल्दी होती है तो वह विजितोंको अच्छी शर्तें दे देते हैं ताकि जगह शीघ्र खाली हो। कभी कभी हारे हुए शत्रुकी वीरतासे प्रसन्न हो कर उसे अच्छी और सम्मानसूचक शर्तें दे दी जाती हैं।

प्रत्येक सेनापतिको यह अधिकार है कि आवश्यकता देख कर समर्पण कर दे पर वह केवल अपनी सेना, अपने दुर्ग और अपने

●Surrender (सरेंडर) †Capitulation (कैपिटुलेशन)

‡With honours of war

अधिकार-क्षेत्रके लिये ही शर्तें कर सकता है। यदि वह युद्धक्षेत्र-
के अन्य भागोंके लिये कुछ शर्तें करे तो जब तक प्रधान सेनापति
उन्हें स्वीकार न कर ले तब तक वह पक्की नहीं मानी जा सकती।
कोई सेनापति ऐसी शर्तें नहीं कर सकता जिनका पूरा करना उस-
की शक्तिके बाहर हो। इसी लिये समर्पणपत्रमें राजनीतिक
शर्तें नहीं लिखी जातीं क्योंकि उनका पूरा करना न करना सकार-
के हाथमें होता है। कोई सेनापति यह नहीं कह सकता कि
यदि मेरा समर्पण स्वीकार किया जाय तो मैं युद्ध बन्द करा दूंगा
या अमुक प्रदेश दिलवा दूंगा इत्यादि। अनधिकार समर्पणपत्रों[§]
के लिये सकार दायी नहीं हो सकती।

हारे हुए सेनापतिको अधिकार है कि जब तक समर्पणपत्रपर
दोनों ओरके हस्ताक्षर न हो जाय तब तक अपने पासकी साम-
ग्रीके साथ जैसा व्यवहार उचित समझे करे। प्रायश तोपें
कील दी जाती हैं, बारूद जला दी जाती है, पुल तोड़ दिये जाते
हैं, जहाज नष्ट कर दिये जाते हैं। यह सब इस लिये किया
जाता है कि शत्रुको इस सामग्रीसे लाम न पहुँचे पर हस्ताक्षर
होते ही उस स्थानपर विजेता का अधिकार हो जाता है। फिर
किसी वस्तुको नष्ट भ्रष्ट करना अवैध होता है।

कभी कभी सारे युद्धस्थल या उसके किसी खण्ड विशेषमें
कुछ समय या कुछ दिनोंके लिये लड़ाई रोक देनेकी आवश्यकता
पडती है। इसको रणविराम [॥] कहते हैं। कभी
रणविराम कभी अल्पकालिक और दीर्घकालिक विरामके
लिये दो शब्द प्रयुक्त होते हैं पर इसकी विशेष
आवश्यकता नहीं है। एक ही शब्द पर्याप्त है। यदि आवश्यकता

§Sponson (स्पौनसन)

* Truce या Armistice (ट्रूस या आर्मिस्टिस)। कभी कभी

हो तो शेष काम विशेषण जोड़कर निकाला जा सकता है। खण्डविराम तो स्थानीय सेनापति भी आपसमें निश्चय करके कर सकते हैं। आहतोंको हटानेके लिये अथवा मुर्दोंको जलाने या गाड़नेके लिये इसकी आवश्यकता पड़ सकती है। सम्पूर्ण क्षेत्रमें युद्धका स्थगित करना उभयपक्षके प्रधान सेनापतियों या उभयराजोंकी सर्कारोंकी इच्छासे ही हो सकता है। ऐसा विराम प्रायः उस समय होता है जब युद्ध समाप्त करनेका विचार होता है और सन्धिकी शर्तें निश्चित करनी होती हैं।

विराम-पत्रमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा जाता है कि विराम किस तिथिको कितने बजे आरम्भ होगा और किस तिथिको कितने बजे तक रहेगा, किम किस क्षेत्रमें माना जायगा, दोनों सेनाओंके बीच-में तटस्थ भूमि कितनी रहेगी इत्यादि। यदि यह भी निश्चय कर लिया जाय कि अधिकृत प्रदेशोंके निवासियों और मुल्कगीरा सेना तथा अधिकृत और अनधिकृत प्रदेशोंके निवासियोंमें कैसा सम्बन्ध रहेगा, उभयपक्ष युद्धके लिये तैयारी करेंगे या नहीं और यदि करेंगे तो कैसी, तो बहुत अच्छा होता है। यदि बीचमें अवधि बढ़ा न ली गयी हो तो उसके बीतने पर युद्ध पुन आरम्भ हो जायगा। जिन विरामपत्रोंमें कोई अवधि नहीं लिखी होती वह जब चाहें तब रद्द किये जा सकते हैं पर जो पक्ष पहिले लड़ाई आरम्भ करना चाहे उसे चाहिये कि दूसरेको अपने विचारकी सूचना दे दे। यदि एक पक्ष विरामपत्रकी शर्तोंका उल्लंघन करे तो दूसरेको युद्ध आरम्भ कर देनेका अधिकार है पर यदि किसी अनुत्तरदायी व्यक्तिके द्वारा कोई शर्त तोड़ी गयी हो तो युद्ध आरम्भ करनेके स्थानमें इसकी सूचना उसके पक्षको देनी चाहिये

पहिला शब्द दीर्घकालिक और दूसरा अल्पकालिक विरामके लिये आता है।

और उससे क्षतिपूर्ति और अपराधीको दण्ड देनेके लिये आग्रह करना चाहिये । यदि वह इस न्याय्य आग्रहको स्वीकार न करे तो फिरसे युद्ध छेड़ देना सर्वथा युक्त होगा ।

एक प्रश्न यह रह जाता है कि विरामकालमें दोनों पक्ष लड़ाई-की तैयारी करें या नहीं और यदि करें तो किस सीमा तक । यदि आपसमें कुछ विशेष समझौता हो गया हो तो दूसरी बात है, नहीं तो तैयारी करनेसे कोई रोक नहीं सकता । पर इस सम्बन्धमें कुछ न कुछ मतभेद चला आता है और हेतुमें भी कुछ निश्चय नहीं हुआ है ।

बारहवाँ अध्याय ।

युद्धावसान ।

एक न एक दिन प्रत्येक युद्धका अन्त होता है । अन्त तीन प्रकारसे हो सकता है । कभी कभी ऐसा हुआ है कि दोनों पक्ष लड़ते लड़ते थक गये हैं और लड़ाई यों ही बन्द हो गयी है । न कोई सन्धि हुई न युद्ध-समाप्तिकी एक दूसरेको सूचना दी गयी । १९१४ में फ्रांस और मेक्सिकोकी लड़ाई योंही बन्द हो गयी । लड़ाईके समाप्त होनेका दूसरा मार्ग यह है कि एक पक्षका अस्तित्व ही मिट जाय । तीसरी अवस्था यह है कि दोनों पक्षोंमें सन्धि हो जाय । अधिकांश युद्धोंका अन्त इसी प्रकार होता है । सन्धिपत्रमें आपसके भावी सम्बन्धकी सब शर्तें लिखी होती हैं । यदि शर्तोंके निश्चित करनेमें देर होती है तो पहिले एक उप-सन्धि* लिखी जाती है । इसमें सिद्धातकी मोटी मोटी बातें लिख दी जाती हैं और युद्ध समाप्त कर दिया जाता है । फिर पूर्ण सन्धियोंमें इसी उप-सन्धिके आधारपर व्योरेकी बातें लिखी जाती हैं ।

कभी कभी ऐसा होता है कि दोनों पक्ष लड़ाईसे तो ऊब गये होते हैं पर आपसकी सन्धिकी शर्तोंको निश्चित नहीं कर सकते । इसलिये लड़ाई समाप्त होनेपर भी सन्धिपत्र नहीं लिखा जा सकता । गत महासमरमें जर्मनी और सयुक्तराजमें लड़ाईका अन्त तो कभीका हो गया पर सन्धि चार वर्ष पोछे हुई । इतने दिनोंतक युद्धावस्था तो नहीं थी परन्तु मैत्री भी न था ।

* Preliminary treaty (प्रिलिमिनरी ट्रीटी)

† Definitive treaty (डेफिनिटिव ट्रीटी)

युद्धावसानके कई तात्कालिक परिणाम होते हैं। लड़ाई बन्द हो जाती है। मुल्कगिरी सेना अधिकृत प्रदेशसे रुपया या कोई वस्तु नहीं माँग सकती। रणबन्दी मुक्त हो जाते हैं। यदि युद्धस्थल बहुत बड़ा हो तो उसमें सर्वत्र लड़ाई बन्द करनेकी सूचना एक साथ नहीं पहुँच सकती, इसलिये सन्धिपत्रमें ही लिख दिया जाता है कि अमुक अमुक प्रदेशमें अमुक अमुक तिथितक लड़ाई बन्द हो जायगी। यदि अवधिके भीतर सूचना पहुँच जाय तो लड़ाई बन्द कर देना चाहिये पर वही सूचना पक्की माननेका नियम है जो अपनी सरकारकी ओरसे मिले। अवसान तिथिके पीछे यदि भूलसे किसी प्रकारका सामरिक कार्य हो जाय तो वह रद्द माना जाता है। अवसानकी तिथिमें जिस पक्षके अधिकारमें जो भूखण्ड या राजसम्पत्ति होती है वह उसकी मानी जाती है। मतलब यह कि अधिकृत प्रदेश मुल्कगिरी सेनाकी सरकारका हो जाना चाहिये। इसीलिये सन्धिपत्रमें स्पष्ट लिख दिया जाता है कि अमुक प्रदेश अमुक राजके कब्जेमें रहेगा। यदि न लिखा जाय तो उपर्युक्त नियमका ही पालन हो।

साधारण लोगोंके प्रसुप्त स्वत्व भी फिरसे जीवित हो जाते हैं। जो लोग अबतक शत्रुप्रजा हानेके कारण व्यापार करने या न्यायालयोंमें अभियोग चलानेसे वंचित थे उनकी रुकावटें दूर हो जाती हैं। जिन शर्तनामोंमें कोई अवधि दी रहती है उनकी अवधिमें युद्धकाल नहीं जोड़ा जाता। इस विषयकी और भी बहुत सी व्योरेकी बातें हैं पर उनका सम्बन्ध प्रायः साधारण देशीय विधानोंसे है अतः यहाँ उनका उल्लेख करना अनावश्यक है।

स्वस्तुत, बन्दी सुविधाके अनुसार कुछ काल बाद ही स्वदेश लौटाये जा सकते हैं, तबतक वह देखरेखमें ही रक्खे जाते हैं।

चतुर्थ खण्ड-तादस्थ्य-सम्बन्धी विधान :

पहिला अध्याय ।

तटस्थताकी परिभाषा और उसका इतिहास ।

तटस्थताका अर्थ है उदासीनता, समकालीन हलचलमें भाग न लेना, उससे पृथक् रहना । अन्ताराष्ट्रिय विधानमें तटस्थ^१ 'उन राजोंकी अवस्थाका नाम है जो युद्धके समय उसमें किसी प्रकारका भाग नहीं लेते प्रत्युत उभय पक्षसे शान्तिमय सम्बन्ध बनाये रहते हैं' ।

यह परिभाषा देखनेमें अनावश्यक सी प्रतीत हाती है क्योंकि यह वस्तुतः तटस्थ शब्दका विशद अर्थ मात्र है इसलिये 'तटस्थ' के नामोद्देश मात्रसे इसका बोध हो जाता है । पर मनुष्योंके काम तर्कके आधारपर कम ही होते हैं । इसलिये परिभाषा करने अर्थात् इस शब्दके अर्थको प्रकट करनेकी आवश्यकता पड़ी ।

यों तो ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसी समरके छिड़ जानेपर सभी सभ्य राज उसमें सम्मिलित हो जायें । कुछ न कुछ राज अलग रहते ही थे, अतः तटस्थ और तत्सम्बन्धी कुछ नियमोंको एक प्रकारसे सनातन कह सकते हैं । कुछ नियम ऐसे हैं जो धर्म-शास्त्र अथवा कर्तव्य-शास्त्रके आधारपर बनाये गये हैं । कुछ नियम ऐसे हैं जिनका जन्म प्रबल राजोंके स्वार्थ सवर्षसे हुआ है । * त. सब नियम एक प्रकारके नहीं हैं । यह भी स्मरण रखना चाहिये कि प्राचीनकालमें लोगोंकी धारणा यह थी कि युद्ध करना

* Neutrality (न्यूट्रैलिटी)

वभवशाली तथा प्रशस्त राजोका लक्षण और कर्तव्य है। उन दिनों समर छिड़ते ही बहुधा बड़े राज एक न एक पक्षमें सम्मिलित हो जाते थे। प्राय छोटे या दुर्बल राज ही तटस्थ रह जाते थे। इसलिये तटस्थोंकी विशेष प्रतिष्ठा न थी और उनके स्वत्वोंकी कोई पूछ न थी। इसमें क्रमशः परिवर्तन हुआ है। अब यह माना जाने लगा है कि राजकी शोभा शान्ति और निर्वैरतामें है न कि अशान्ति और सतत वैरशीलतामें। फलतः अब कई बड़े राज भी तटस्थ रहते हैं जो अपने अधिकारोंकी पूर्ण रूपेण रक्षा कर सकते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि धीरे धीरे नियमोंमें परिवर्तन हो गया है। उदारताकी मात्रा बढ़ गयी है। जो स्वत्व पहिले समयोंमें तटस्थोंको दोनों शत्रुओंकी कृपा स्वरूप बड़ी कठिनाईसे मिल जाते थे वह अब उनके निजी अधिकार माने जाते हैं।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं मनुष्य समाजका काम तर्कके अनुसार नहीं हुआ करता। अब भी ताटस्थ-सम्बन्धी विधान वैसे नहीं हैं जैसा कि इस शब्दके अर्थको देखते ताटस्थका
इतिहास
हुए होना चाहिये, पहिले तो बहुत ही कमी थी। तटस्थताका अर्थ केवल प्रत्यक्ष रूपसे न लड़ना था, पर इसका यह तात्पर्य नहीं माना

जाता था कि तटस्थ राज उभयपक्षके साथ निष्पक्ष व्यवहार करे और उभयपक्ष उसके व्यापारादिमें छेड़छाड़ न करें। यह दोनों ही मूलभूत सिद्धान्त हैं पर दोनोंकी निरन्तर अवहेलना होती थी।

पहिले दूसरे सिद्धान्तको लीजिये। उन दिनों आज कलकी भाँति वैश्ययुग न था। व्यापारका उतना महत्त्व नहीं माना जाता था। व्यापारियोंकी शासनपर विशेष प्रभाव न था और आज-कलकी भाँति व्यापारको अन्तराष्ट्रियता प्राप्त नहीं हुई थी। इस

लिये व्यापारके साथ छेड़छाड़ करनेमें शासकोंको कोई रुकावट नहीं होती थी। उभयपक्षके रणपोत समुद्रोंको छान डालते थे और छोटे छोटे से बहानोंपर व्यापारपोतोंको, जिनमें तटस्थोंके भी व्यापारपोत होते थे, पकड़ लिया करते थे। यदि बहुत कृपा करके तटस्थदेशीयोंको व्यापार करनेकी अनुज्ञा मिलती भी थी तो ऐसी शर्तें लगा दी जाती थीं जिनसे उसमें बड़ी कठिनाई पड़ती थी। तटस्थ सरकारें भी अपनी प्रजाकी ओरसे प्रायः कुछ नहीं बोलती थीं। पर आजकल एक देशका व्यापार अन्य देशोंसे सम्बद्ध है अतः एकको हानि पहुंचानेसे सबको हानि पहुंचती है। इसी लिये तटस्थ व्यापारको क्रमशः स्वतंत्रता मिलती गयी है।

दूसरे नियमकी अवहेलना भी कई प्रकारसे होती थी। प्रोशि-असका कथन है कि तटस्थता कठिन और भयकर है। वह तटस्थ राजको यह परामर्श देते हैं कि वह यह निर्णय करे कि युद्धमें धर्म पक्ष कौन सा है और फिर 'ऐसा कोई काम न करे जिससे अधर्म-पक्षका बल बढे या धर्मपक्षके मार्गमें रुकावट पड़े।' प्रोशि-असके मतमें पक्षोंके धर्माधर्मको देख कर उनके साथ असम व्यवहार करना न्याय्य है।

अठारहवीं शताब्दीके आरम्भ तक यह प्रथा थी कि अपने राज्यमें एक राजको सिपाही भर्ती करने देना तथा रणपोत सज्जित करने देना तटस्थताके विरुद्ध नहीं है। कभी कभी तो तटस्थ राज किसी एक पक्षको रणसामग्री भी दे देते थे। इस लिये वास्तविक तटस्थताकी रक्षाके लिये विशेष सन्धिवा करनी पड़ती थीं। प्रोशिअसका तो यहाँ तक कहना है कि दो राजोंमें मित्रता स्थापक सन्धि होते हुए भी उनमेंसे प्रत्येकको अधिकार है कि यदि एक किसी तीसरेपर आक्रमण करे तो दूसरा उम तीसरेकी रक्षा करे। ऐसा करना मैत्री या तटस्थताके विरुद्ध नहीं है।

धीरे धीरे यह प्रथा तो बदली और यह माना जाने लगा कि तटस्थको सचमुच युद्धसे पृथक् रहना चाहिये पर एक अपवाद रह गया। यह मान लिया गया कि यदि युद्धके पहिले एक राज दूसरेकी सहायताका वचन दे चुका हो तो उसे युद्ध छिड़ने पर इस प्रतिज्ञाका पालन करना चाहिये। ऐसी दशामें भी वह तीसरा राज जिसके विरुद्ध सहायता दी जायगी उसे तटस्थ ही मानेगा। ऐसा कई बार हुआ भी। हम यहां केवल एक उदाहरण देते हैं।

१८५८ में डेन्मार्क और रूसमें एक सन्धि हुई जिसके द्वारा डेन्मार्कने भावी युद्धोंमें रूसको सैनिक सहायता देनेकी प्रतिज्ञा की। इसके सात वर्ष पोछे रूस और स्वीडनमें लड़ाई हुई। डेन्मार्कने प्रतिज्ञानुसार रूसको सहायता दी और साथ ही स्वीडनको लिख भेजा “श्रीमान् डेन नरेशने यह ज्ञापित करनेकी आज्ञा दी है कि यद्यपि...सन्धियोंके अनुसार उन्होंने (रूसको) सन्धिनिरश्चित सिपाहियों और जहाजोंकी कुमक दी है तथापि वह ऐसा समझते हैं कि श्रीमान् स्वीड नरेशके साथ उनका पूर्ण सौहार्द बना हुआ है। इस समय रूसियोंकी ओरसे जो डेन सैनिक स्वीडनमें लड़ रहे हैं उनके हरा दिये जाने या बन्दी कर लिये जानेसे भी इस मैत्रीमें कोई अन्तर न पड़ेगा। उनका यह भी विश्वास है कि जब तक (रूस) सहायक डेन सिपाहियों और जहाजोंकी सख्या सन्धि निर्दिष्ट सख्यासे अधिक न हो तब तक श्रीमान् स्वीड नरेशको आक्षेपका कोई स्थल नहीं है। उनकी यह भी इच्छा है कि दोनों राष्ट्रोंमें जो मैत्री और व्यापारका सम्बन्ध है और दोनों द्वांरोंमें जो सौहार्द है उसमें कोई बाधा न पड़े।” स्वीडनने पुरानी सन्धिके अनुसार रूसको सहायता देकर भी डेन्मार्कके तटस्थ बने रहनेके सिद्धान्तको तो न्याय्य स्वीकार किया पर उसने

यह आक्षेप किया कि डेन सहायकोंको रूसमें ही रहना चाहिये था, रूसियोंके साथ स्वीडनपर आक्रमण करना अनुचित था ।

जिन दिनोंमें तटस्थ लोग ताटस्थकी इस प्रकार अवहेलना करते थे उन दिनोंमें थोड़ा राजोंसे तटस्थोंके स्वत्वोंकी पूर्ण रक्षाकी आशा नहीं की जा सकती थी । तटस्थ राज्योंमें सिपाही भर्ती करना या रणपोत सज्जित करना तो साधारण सी बात थी । कभी कभी तटस्थ राज्योंमेंसे होकर सेनाएं भेज दी जाती थीं । यह तो कम होता था पर ऐसा तो कई बार हुआ है कि एक राजके रणपोतोंने दूसरेके रणपोतोंपर किसी तटस्थ राजके तटलग्न जल या नौस्थानमें आक्रमण किया है ।

धीरे धीरे यह अवस्था भी बदली । पर जो काम तटस्थ राज स्वयं नहीं करते थे उसे अपनी प्रजा द्वारा कराते थे, कमसे कम करने देते थे । युद्धकारी राज भी ऐसा करते थे । तटस्थ नौस्थानोंमें अपने रणपोत तो नहीं सज्जित करते थे पर अपने प्रजावर्गीयोंको यह अनुज्ञा दे देते थे कि तटस्थ नौस्थानोंमें छोटी छोटी नावें सज्जित करके शत्रु-व्यापारको नष्ट करें । यह प्रथा १८५० से बन्द हो गयी । उस साल ब्रिटेन और फ्रांसमें युद्ध छिड़ा । अमेरिकास्थित फ्रेञ्च राजदूतने अमेरिकन नौस्थानोंसे उक्त प्रकारकी नावोंको सज्जित कराना आरम्भ किया । उन्होंने अमेरिकन नौस्थानोंमें ऐसे कई न्यायालय भी खोल दिये जिनमें फ्रेञ्च रणपोतों द्वारा पकड़े गये ब्रिटिश तथा सन्दिग्ध तटस्थ व्यापारपोतोंका निर्णय होता था । फ्रेञ्च सेनाके लिये अमेरिकन भी भर्ती किये जाते थे । अमेरिकन परराज-सचिवने फ्रेञ्च राजदूतको लिखा “प्रत्येक राष्ट्रका यह अधिकार है कि अपने राज्यके भीतर किसी दूसरे राजको कोई प्रभुत्व-सूचक काम न करने दे और प्रत्येक तटस्थ राजका यह कर्तव्य है कि ऐसे कामोंको रोके

जिनसे एक युद्धकारी पक्षका क्षति पहुँचे। फ्रेञ्च सेनाके लिये अमेरिकनोंका भर्ती किया जाना रोक दिया गया और नावोंका सज्जित किया जाना भी बन्द कर दिया गया। इसपर फ्रेञ्च राजदूतने लोगोंको अमेरिकन सरकारके विरुद्ध उभारना चाहा। अमेरिकन सरकारने विवश होकर फ्रेञ्च सरकारको लिखा कि यह राजदूत लौटा लिया जाय। फ्रेञ्च सरकारने यह बात मान ली।

अमेरिकाका यह व्यवहार पूर्ण तटस्थताका पहिला उदाहरण था और फ्रेञ्च राजदूतका बुला लिया जाना निष्पक्ष अर्थात् सच्ची तटस्थताकी पहली विजय थी। उस समयसे अमेरिका तटस्थताके नियमोंके विशदीकरणमें अग्रसर हुआ। जैसा कि हम आगे चलकर यथास्थान दिखलायेंगे तटस्थ-सम्बन्धी नियमों और विधानोंमें सभ्य जगत्ने कई बातोंमें अमेरिकाका अनुकरण किया है।

विधानका वर्तमान अवस्थाका वर्णन आगेके अध्यायोंमें होगा। यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि तटस्थोंके अधिकारोंके विषयमें बहुत उदारता दिखलायी जाती है। तटस्थ व्यापारकी रक्षा योद्धाओंकी कृपाभिक्षापर निर्भर नहीं है प्रत्युत एक अपरिहार्य स्वत्व है। इसके साथ ही उनके कर्तव्य भी कठिन हो गये हैं। कभी कभी तो इन कर्तव्योंके पालनकी अपेक्षा युद्धमें भाग लेना सुकर हो जाता है। गत महासमरमें पुर्तगाल आदि कई छोटे राज ऐसी ही परिस्थितिमें पड़ गये थे।

दूसरा अध्याय।

तटस्थता और तटस्थीकरण।

हम तटस्थताकी जो परिभाषा दे आये हैं उससे यह ध्वनि निकलती है कि जो राज तटस्थ होता है वह अपनी इच्छासे। वास्तविक तटस्थता उसीकी है जो युद्धमें सम्मिलित होनेकी सामर्थ्य—सामर्थ्यमें न केवल शक्ति वरन् अधिकार भी परिगणित है—रखता हुआ भी उससे अलग रहे।

परन्तु कुछ ऐसे राज भी हैं जो बाहरी दबावके कारण तटस्थ रहते हैं। हमारा सकेत गुप्त दबावकी ओर नहीं है। गुप्त

दबावका इतना ही परिणाम हो सकता है कि तटस्थीकरण जिसपर दबाव डाला जाय वह किसी एक

युद्ध-विशेषमें तटस्थ रहे, सदाके लिये ऐसा नहीं हो सकता। परन्तु कई राज ऐसे हैं जिनके साथ ऐसी सम्धियाँ हैं (या जिनके सम्बन्धमें ऐसी सन्धियाँ हैं) कि वह किसी भी युद्धमें भाग ले ही नहीं सकते इसका एक ही अपवाद है और वह परमावश्यक है। यदि वह भी चला जाय तो इनका राजत्व ही मिट जाय। प्रत्येक राजका यह कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजाकी रक्षा करे। यह अधिकार अपरिहार्य है। कोई प्रबल राज किसी छोटे राजका सहायक या सरक्षक हो सकता है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि सरक्षित राज आत्म-रक्षाके कर्तव्यसे चिरमुक्त हो गया। अतः ऐसे राजोंको भी जो नित्य तटस्थताके लिये विवश हैं आत्मरक्षाके लिए लड़नेका अधिकार है। यदि उनपर कोई आक्रमण करे तो उनका लड़ना सर्वथा वैध माना जायगा।

जिस क्रियाके द्वारा कोई राजविशेष नित्य तटस्थ बनावा जाता है उसे तटस्थीकरण^७ कहते हैं। कोई राज अपना तटस्थीकरण आप नहीं कर सकता। दो चार राज मिलकर भी किसी राजका तटस्थीकरण नहीं कर सकते। इनके लिये दो बातें आवश्यक है, एक तो वह राज स्वयं सहमत हो, क्योंकि यदि वह न लड़नेका वचन ही न दे तो उसे कोई तटस्थ कैसे कर सकता है, यह दूसरी बात है कि उसे सहमत करानेके लिये उसपर किसी प्रकारका गुप्त दबाव डाला जाय। दूसरी बात यह है कि उसके तटस्थीकरणमें सब नहीं तो प्रमुख राज तो भाग लें और उनकी बात अन्य राज मान लें। यदि ऐसा न हुआ तो तटस्थीकारक सन्धिपत्र रही कागजका टुकड़ा होगा।

यह तो निर्विवाद है कि वर्तमान युगमें दुर्बल राज ही तटस्थीकरण स्वीकार कर सकते हैं क्योंकि यह अल्पप्रभुत्वका सूचक है। हम जो उदाहरण देंगे उनसे भी यह बात स्पष्ट हो जायगी।

सबसे पहिले भारतके देशी राजोंको लीजिये। इनकी परिस्थिति अन्य तटस्थीकृत राजोंकी सी नहीं है। जैसा कि हम पहिले दिखला चुके हैं अन्ताराष्ट्रिय विधानकी भारतके देशी राज दृष्टिमें तो इनका अस्तित्व ही नहीं है। यह भी निश्चय है कि जिस युद्धमें ब्रिटिश सरकार भाग लेगी उसमें यह भी उसका साथ देंगे, अतः इन्हें तटस्थ कहना ही अनुचित है। पर यह सबके सब ब्रिटिश सरकारके अधीन हैं अतः यदि कभी इनमें आपसमें किसी प्रकारका झगड़ा उठ खड़ा हो तो कोई किसीका साथ नहीं दे सकता। बस यही इनकी तटस्थता है।

तटस्थीकृत राजोंमें स्वीजरलैण्डका स्थान पहिला है। बहुत पहिले यह देश आस्ट्रियाके अधीन था, पीछेसे स्वतंत्र हो गया।

स्वतंत्र होने पर यह स्वयं सैरुडों वर्ष तक स्वीजरलैण्ड तटस्थ बना रहा। न किसीने इसपर आक्रमण किया न यह किसी भगड़ेके बीचमें

पड़ा। नैपोलियनके अभ्युदयके समय यह बात उलट गयी। स्वीजरलैण्ड फ्रांससे इटली तथा आस्ट्रिया जाते समय मार्गमें पड़ता है अतः नैपोलियनने इसके स्वातंत्र्य और तटस्थको नष्ट करके इसे अपनी सेनाओंका राजपथ बनाया। फलत फ्रांसके विपक्षियोंने भी इससे यह काम लिया। नैपोलियनके पतनके उपरान्त कार्तिक १८१२ में पैरिसमें एक सन्धि-पत्र लिखा गया जिसके द्वारा ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया, प्रुशिया (जर्मनी) और रूसने स्वीजरलैण्डकी चिर तटस्थता स्वीकार की और उसके राज्यकी अखण्डताके लिये अपने ऊपर दायित्व लिया। इन महाशक्तियोंके द्वारा सम्पादित तटस्थीकरणको अन्य राजोंने भी मान लिया और तबसे आज तक किसीने स्वीजरलैण्डपर आक्रमण नहीं किया है। एक तो स्वयं उसके पास आत्मरक्षाका पर्याप्त साधन है, दूसरे यह भी आशका है कि उसके विरुद्ध किसी प्रकार का आचरण करनेसे तटस्थकारक राजोंमेंसे कोई न कोई (यदि सब नहीं) उसकी रक्षाके लिये खड़ा हो जायगा।

बेल्जियमका उदाहरण भी बड़े महत्त्वका है। १८८७ के पहिले यह देश हॉलैण्डका एक प्रान्त था। १८८७ में बेल्जियन

जनताने स्वाधीनताके लिये विद्रोह किया।

बेल्जियम यूरोपकी महाशक्तियोंने उसके साथ सहानुभूति दिखलायी और १८८८ में उसे स्वतंत्र राज मान लिया। हॉलैण्ड और बेल्जियमका भगड़ा १८९६ तक चला

गया। उस साल अन्तिम सन्धि लिखी गयी। इसके द्वारा यूरोपकी महाशक्तियोंने, जिनमें अब इटली भी सम्मिलित कर लिया गया, बेल्जियमका स्वीज़रलैण्डकी भांति तटस्थीकरण किया। १९७१ तक इस सन्धिका पालन हुआ। उस साल यूरोपमें महासमर आरम्भ हुआ। जर्मन सेनाने बेल्जियमसे फ्रांसपर आक्रमण करनेके लिये मार्ग मांगा। बेल्जियमने स्वभावतः यह प्रस्ताव अस्वीकृत किया। इसपर जर्मन सेना बेल्जियममें बलात् घुस गयी और प्रायः सारे देशपर वसका कब्जा हो गया। फिर भी बेल्जियम वाले लड़ते ही रहे। युद्ध समाप्त होने पर उसको अपनी स्वाधीनता तो मिल ही गयी, तटस्थतासे भी छुट्टी मिल गयी। अब वह एक पूर्णप्रभु और बलवान् तथा प्रभावशाली राज है।

ऐसी तटस्थताके कारण कभी कभी कठिनाइयां भी पड़ती हैं। १९२४ में लक्सेम्बर्गका तटस्थीकरण हुआ। यह छोटा सा राज बेल्जियमके निकट है अतः सन्धिके पहिले जो तटस्थीकरणसे अडचन बातचीत हुई उसमें वह भी सम्मिलित था और सब काम उसकी सम्मतिसे किया गया पर स्वयं तटस्थीकृत राज होनेके कारण वह हस्ताक्षर नहीं करने पाया। कारण य० था कि हस्ताक्षर करनेसे उसे लक्सेम्बर्गकी स्वाधीनताके लिये दायी होना पड़ता और उसकी रक्षाका नैतिक भार भी अपने ऊपर लेना पड़ता पर तटस्थीकृत राज होनेके कारण उसे केवल आत्मरक्षाके लिये लड़नेका अधिकार था।

एक और अडचन पड़ती है। यदि तटस्थीकृत राज तटस्थता या अन्य अन्ताराष्ट्रिय नियमोंके विरुद्ध आचरण करें तो उन्हें दण्ड देना कठिन होता है। उनसे युद्ध कर बैठना उनके सरक्षकोंसे युद्ध छाननेके बराबर होता है। वैध मार्ग यह होता है कि

पहिले इन अभिभावकोंको लिखा जाय कि आप रोकिये नहीं तो हमें विवश होकर दण्ड देना पड़ेगा। सम्भव है इसमें सफलता हो पर समय बहुत लग जाता है। १९२४ के फ्रेञ्च-जर्मन युद्धमें जर्मनीकी ओरसे कहा गया कि लक्सेम्बर्ग फ्रांसकी गुप्त सहायता कर रहा है। अभिभावकोंके पास लिखनेके स्थानमें जर्मनीने उसे धमकी दी कि यदि यह आचरण तत्काल बन्द न किया गया तो सेना भेजी जायगी। इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी पर निश्चय है कि जर्मनी सेना भेजनेमें देर न करता। गत महा-समरमें भी जर्मनीका कहना था कि बेल्जियम गुप्त रूपसे फ्रांस और ब्रिटेनसे मिला था और फ्रेञ्च सेनाको मार्ग देनेवाला था। ऐसी दशामें प्रमाण एकत्र करके लिखापढ़ी करनेका समय नहीं होता।

यहां तक तो जो कुछ लिखा गया है वह समझमें आता है पर अन्ताराष्ट्रिय जगत् एक विचित्र वस्तु है। इसमें ऐसे ऐसे दृग्विषय देखनेमें आते हैं जिनका न तो अतटस्थीकृत राजोंके कोई नैतिक आधार समझमें आता है न तटस्थीकृत प्रदेश उपयोग, न उनको बुद्धि-पूर्वक बर्त सकते हैं। पूर्णप्रभु और तटस्थीकृत राजोंकी परिस्थिति समझमें आसकती है। उसमें अडचने पड़ती हैं पर सुलझाई जा सकती हैं पर कुछ ऐसे पूर्णप्रभु राज हैं जिनके कतिपय प्रदेश तटस्थीकृत हैं।

१८७२ में सैवाय जो उस समय सार्डिनिया राजका अंग था तटस्थीकृत हुआ। यह निश्चय हुआ कि यह रहे तो सार्डिनियाके अधिकारमें पर यदि कोई युद्ध छिड़ जाय तो सार्डिनियन सेना इसे खाली करदे और स्वीजरलैण्डके, जो तटस्थीकृत राज है, सैनिक इसकी रक्षा करें और कोई इसपर आक्रमण न करे। युद्ध

समाप्त होनेपर फिर साडिनियाका इसपर कब्जा हो जाय। जब इटलीने, जो पहिले आस्ट्रियाके अधीन था, स्वातन्त्र्यके लिये विद्रोह किया तो फ्रांसने उसे इस शर्तपर सहायता देना स्वीकार किया कि सैवाय फ्रांसको मिल जाय। तदनुसार १९१७ में सैवाय फ्रांसको मिल गया। अब यह प्रश्न उठा कि उसकी स्थिति क्या हो। फ्रांस और इटलीका यह कहना था कि पुरानी सन्धिका अन्त हो गया अतः अब सैवायको तटस्थ माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अन्य राज कहते थे कि सैवायका तटस्थीकरण सब पड़ोसी राजोंके हितकी दृष्टिसे किया गया था और अब भी पूर्ववत् रहना चाहिये। सिद्धान्त तो कोई स्थिर हुआ नहीं पर फ्रांसने सैवायको तटस्थीकृत प्रदेशकी भांति बर्तना स्वीकार कर लिया।

इसी प्रकार जब आयोनियन द्वीपसमूहके सब द्वीप यूनानको दिये गये तो इनमेंसे दो अर्थात् काफू और पैक्सो तटस्थ कर दिये गये।

इस प्रकारकी आंशिक तटस्थता स्थायी नहीं हो सकती। ऐसा प्रदेश शीघ्र ही किसी पूर्णप्रभु राजका अनन्य प्रान्त हो जाता है। ऊपरके ही दोनों उदाहरणोंको लीजिये। फ्रांस सैवाय-में नयी किलाबन्दी भले ही न करे (१९४० में उसने किलाबन्दी आरम्भ की थी पर स्वीजरलैण्डके कहने पर काम बन्द कर दिया), इससे अधिक रुकावट यूनानके लिये भी नहीं हो सकती। इन प्रदेशोंसे कर लिया जायगा, सिपाही भर्ती किये जायगे, खनिज द्रव्य निकाले जायंगे। ऐसी दशामें यह भी आशा नहीं की जा सकती कि आवश्यकता पडने पर कोई प्रबल शत्रु इन्हें छोड़ देगा।

जलमार्गोंका तटस्थीकरण अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक है। यदि सब राष्ट्र चाहें तो सभी प्रधान जलमार्ग तटस्थ किये जा

सकते हैं, कमसे कम संकीर्ण मार्गोंको तो अवश्य ही तटस्थ कर देना चाहिये ताकि दो चार स्वार्थी युद्धकारी राज मिलकर सर्वदेशीय व्यापारको आघात न पहुँचावें । पर अभी तक सफलता केवल पनामा और स्वेजकी नहरोंके सम्बन्धमें हुई है । स्वेजकी तटस्थताकी रक्षा यूरोपकी महाशक्तियों तथा तुर्की मिश्र, स्पेन और हालैण्डके ऊपर है और पनामाका दायित्व सयुक्त राज (अमेरिका) ने लिया है । यदि राष्ट्रसंघ इस ओर ध्यान दे तो बड़ा काम हो सकता है ।

तीसरा अध्याय ।

तटस्थ राजोंके प्रति युद्धकारी राजोंके कर्तव्य ।

इस विषयकी अन्तराष्ट्रिय विधानमें पर्याप्त व्यवस्था की गयी है यद्यपि कभी कभी व्यवहारमें किसी पक्षकी भूल या हठधर्मीसे अड़चने पड़ जाया करती हैं ।

युद्धकारी राजाका यह पहिला कर्तव्य है । सिद्धान्त रूपसे लोग इसे बहुत प्राचीन कालसे मानते आये हैं । बात है भी इतनी सरल और न्यायसंगत कि इसके विरुद्ध हेतु देना तटस्थ राज्यमें कठिन ही नहीं असम्भव है । जो स्वयं नहीं युद्धको न बढ़ाना लड़ता है उसके राज्यके किसी भागको युद्धस्थल बनाना परम दुष्टता है और तटस्थको तटस्थ-जन्म शान्तिसे वचित करनेका गह्वर प्रयत्न है । परन्तु इस सिद्धान्तकी अवहेलना भी कम नहीं होती थी । दुर्बल तटस्थ राजोंके राज्य बहुधा सबल राजोंकी सेनाओंके गमनागमनके राजपथ हो जाते थे । आज कल ऐसा नहीं होता । जो राज अपनी सेना या जहाजोंको ऐसा करने देगा (या यदि भूलसे कोई ऐसी बात हो जाय और उसके लिये क्षमायाचना करके क्षतिपूर्ति न करे) वह सम्य जगत्के सामने दोषी माना जायगा । तटस्थ जल और स्थल दोनों ही युद्धक्षेत्रके बाहर हैं । हेगमें १९०४ में जो नियमावली निश्चित हुई उसमें (५वां विधान) यह स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि 'तटस्थ शक्तियोंका राज्य अखण्ड है' और (१३वां विधान) 'किसी तटस्थ राजके तटलग्न जलमें किसी युद्धकारी राजके रणपोतों द्वारा किया गया किसी भी प्रकारका सामरिक कार्य—जहा-

जोंको गिरफ्तार करना और तलाशी लेना भी इसके अन्तर्गत है— तटस्थको भग्न करने वाला है और पूर्णतया वर्जित है।'

इन व्यापक सिद्धान्तोंका यथासम्भव पूर्णतया पालन किया जाता है। यदि कोई रणपोत किसी शत्रुपोतका पीछा कर रहा हो और वह भाग कर किसी तटस्थ नौस्थान या समुद्रमें शरण ले तो पीछा करना बन्द करना होगा। 'तटस्थ भूमिमें किसी प्रकारका सामरिक कार्य आरम्भ न होना चाहिये।' † इसका तात्पर्य यह है कि यदि कोई रणपोत किसी तटस्थ नौ-स्थानमें पड़ा हो और उसे पता लग जाय कि पासहीसे शत्रु राजका कोई जहाज जा रहा है तो उसे उस जहाजपर आक्रमण न करना चाहिये। यदि उसे सफलता हो जाय और शत्रुपोत पकड़ जाय तो सामरिक न्यायालयको चाहिये कि उसे छोड़ दे क्योंकि उसपर वह आक्रमण, जिसके द्वारा वह पकड़ा गया, एक ऐसा सामरिक कार्य था जो कि तटस्थ समुद्रमें आरम्भ हुआ था।

एक प्रश्न यह हो सकता है कि यदि किसी पक्षके पोतपर शत्रुपोत तटस्थ समुद्रके भीतर आक्रमण कर ही दे तो उसे क्या करना चाहिये। इस सम्बन्धमें अधिकांश विद्वानोंकी सम्मति यह है कि उसे पहिले तो उस तटस्थ राजसे रक्षाकी प्रार्थना करनी चाहिये पर यदि वह प्रार्थना स्वीकार न करे या करनेमें असमर्थ हो तो वह आत्मरक्षाका प्रयत्न कर सकता है। ऐसा करना निन्द्य नहीं माना जा सकता।

हमको रूस-जापान युद्ध (१९०५) से एक ऐसी घटना मिलती है जो इस सम्बन्धकी कई उलझनोंका उदाहरण दिखलाती है। १९०५ के श्रावणमें पोर्ट आर्थरके नौ-स्थानसे, जिसे जापानी बेडा घेरे हुए था, रेशितेलनी नामकी एक रूसी रणनौका भाग

† एक अग्रेज जज, सर वाल्टर स्कॉट, की व्यवस्था (१८२७)

निकली। दो जापानी जहाजों ने उसका पीछा किया पर वह किसी प्रकार बच बचाकर चीनी नौ-स्थान चेफू में पहुँच गयी। चीन उस युद्ध में तटस्थ था। वहाँ पहुँचने पर चेफू के शासक ने रूसियों से कहा कि यदि तुम यहाँ रहना चाहते हो तो अपने जहाज को निःशस्त्र कर दो और युद्ध भरके लिये उसे यहाँ नजरबन्द समझो। रूसियों ने यह बात मान ली। जा कुछ दिनों, दूसरे दिन जापानी जहाज चेफू में घुस पड़े। उन्होंने रूसी कप्तान से कहा कि, या तो एक घण्टे के भीतर खुले समुद्र में निकल चलो, वहाँ हम तुम निपट लेंगे, या यहीं आत्मसमर्पण कर दो। दोनों शर्तों को अस्वीकार करके रूसियों ने अपनी रक्षा करनी चाही पर असफल हुए और पकड़े गये। इस घटना के सम्बन्ध में चीन का यह कहना है कि हमारे नौ-स्थान में बलात् प्रवेश करना और सामरिक कार्य करना अवैध था अतः जापान दोषी है। हमने रूसी जहाज को निःशस्त्र भी कर दिया था। रूस भी इसी वक्तव्य का समर्थन करता है। जापान कहता है कि निःशस्त्रीकरण केवल नाम मात्र को हुआ था, रूसी जहाज को कोयला लेने की अनुज्ञा दी गयी थी और उसने रूसी सरकार के पास पोर्ट आर्थर सम्बन्धी आवश्यक समाचार भेजे थे। यह कहना कठिन है कि यह आक्षेप झूठ है या सच पर जापान ने जो कुछ किया वह निन्द्य था। उसे चाहिये था कि चीनी अधिकारियों से ही आग्रह करता कि निःशस्त्रीकरण ठीक रीति से करें। यदि ऐसा न होता वरन् रूसी जहाज को कोयला या अन्य सामग्री दी जाती तो उसे अधिकार था कि जो चाहता वह करता। बात केवल यह थी कि चीन एक तो सैनिक दृष्ट्या दुर्बल राज था, दूसरे उसने अपने को नैतिक दृष्टि से भी दुर्बल बना रखा था। कई अवसरों पर रूसी सेनाओं ने उसकी तटस्थता भग्न की थी पर, चाहे जो कारण हो, वह चुप रह गया था। अतः जापान को भी

ऐसा करनेका साहस हुआ। आत्मरक्षणमें रूसियोंने जो लड़ने का प्रयत्न किया वह सर्वथा निर्दोष था।

जलमग्न तारोंका प्रश्न बड़े महत्त्वका है। यद्यपि आजकल बेतारके तारने एक देशसे दूसरे देशको समाचार भेजनेका काम बहुत कुछ अपने ऊपर ले लिया है और दिनों तटस्थ जलमग्न दिन इसकी उन्नति ही होती जाती है—सम्भ- तारोंके साथ द्वे- वत- भविष्यत्में अन्ताराष्ट्रिय विधानकी पुस्त- का न करना कोंमें जलमग्न तारोंकी अपेक्षा नि सूत्र तारोंपर अधिक विचार करना आवश्यक होगा—पर अभी जलमग्न तारोंके द्वारा ही व्यापारादि सम्बन्धी अधिकांश समाचार आते जाते हैं और सर्कारोंका काम भी बहुत कुछ इन्हींपर निर्भर है। ऐसे तार शान्तिकालमें अत्यन्त हितकर हैं पर युद्धकालमें अत्यन्त अहितकर हो सकते हैं।

जलमग्न तारोंकी तात्त्विक स्थितिपर बड़े सूक्ष्म विचार हुए हैं। १९२६ में सयुक्त राजने यह प्रयत्न किया कि सब राज इस बातको मान लें कि खुले समुद्रमें तारोंका काटना दस्युता है। १९५५ में स्पेन और अमेरिकामें जो युद्ध हुआ उसमें यह कहा गया कि तार ऐसे द्रव्यके बने होते हैं जिनका प्रयोग या उपभोग शत्रुके लिये लाभदायक हो सकता है अतः उन्हें काटना वैध है। १९६१ में जर्मनीसे एक यह सिद्धान्त निकला कि तार एक प्रकारका पुल या शासनका एक समुद्रतलस्पर्शी अङ्ग है अतः उसका काटना वैध है। इन सब विचारोंसे कोई लाभ नहीं होता। लारेंसका कहना ठीक जँचता है कि इतना मानना पर्याप्त है कि तार सम्बन्धका एक साधन है। यदि तारसे शत्रु काम लेता है तो उसका निय- त्रण करना या अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर काट देना सर्वथा वैध है पर यह काम ऐसी ही जगह होना चाहिये जहाँ अन्ताराष्ट्रिय

विधानके अनुसार सामरिक कार्य हो सकते हैं। यदि हम उन सब परिस्थितियोंपर पृथक् पृथक् विचार कर लें जो ऐसे तारोंके सम्बन्धमें उत्पन्न हो सकती हैं तो यह प्रश्न सुगमतासे सुलभ सकता है। ऐसी परिस्थितियां चार हो सकती हैं।

(क) 'जब कि तार एक शत्रु-राजके राज्यके दो भागोंके बीचमें हो'—ऐसी अवस्थामें उसको पूरा अधिकार है कि उस तारको काट दे और शत्रुका भी अधिकार है कि यदि उससे बन पड़े तो उसे काट दे पर यह काम तटस्थ समुद्रमें न होना चाहिये। जिस युद्धकारी राजके दो भूभागोंको वह तार मिलाता है उसे अधिकार है कि उसके द्वारा तटस्थ राजों या प्रजावर्गीयोंके तार न जाने दे या नियंत्रणके साथ जाने दे। बहुधा तार ऐसी सांकेतिक भाषामें भेजे जाते हैं जिसे केवल भेजने और पानेवाले समझने हैं। युद्धकालमें ऐसे तार अवश्यमेव रोक लिये जाते हैं।

(ख) 'जब कि तार दोनों शत्रु राज्योंके बीचमें हो'—ऐसी दशा-में दोनोंको ही उसे काट देनेका अधिकार है और ऐसा ही प्रायः होता भी है पर कभी कभी आपसमें समझौता करके ऐसा नहीं भी किया जाता। १९५१ में चीन-जापान युद्धके समय बीचका तार नहीं काटा गया क्योंकि जिस कम्पनीका तार था उसने प्रतिज्ञा की कि किसी प्रकारका सैनिक समाचार न जाने पावेगा और उभय पक्षने यह बात मान ली।

(ग) 'जब कि तार एक युद्धकारी और एक तटस्थ राजके बीच में हो'—यह सबसे टेढ़ी अवस्था होती है। यह तो निश्चय है कि जिन दो राजोंके बीचमें तार है वह उसे तोड़ना न चाहेंगे पर दूसरा युद्धकारी राज क्या करे। वह कह सकता है कि तटस्थ राजसे होकर अंतिम अंतिमके समाचार हमारे शत्रुको पहुंचते रहते हैं जिससे हमको क्षति पहुंचती है अतः हम तार काट देंगे। उधर तटस्थ

राज कह सकता है कि तटस्थ होनेका अर्थ ही यह है कि हमारा दोनों पक्षोंसे सम्बन्ध बना रहे अतः उसमें बाधा डालना हमारे तटस्थ-को भग्न करना है। यह बात मान ली गयी है कि तटस्थ राजको ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये जिससे तार द्वारा ऐसे समाचार न आयें जायं जिनसे कि एक पक्षकी हानि हो, पर इसका निवाहना बहुत ही कठिन है। यह भी मान लिया गया है कि यदि एक पक्षको इस बातका पूरा पूरा प्रमाण मिल जाय कि उसके शत्रुके पास ऐसे तार द्वारा सैनिक समाचार जाते हैं और इन समाचारोंको रोकने-का और दूसरा कोई भी साधन न हो तो वह तारको काट सकता है। इस नियममें भी उद्दण्डताके लिये पर्याप्त जगह है। ऐसे प्रश्न आपसके सौजन्य और सद्भावसे ही सुलभ सकते हैं। १९५५ के स्पेन-अमेरिकन युद्धका ऊपर उल्लेख हो चुका है। स्पेन यदि चाहता तो यूरोपसे अमेरिका जाने वाले सभी तारोंको काट देता पर उसने सोचा कि इन तारोंसे अमेरिकाको सैनिक सहायता तो कम मिलती है व्यापारादिका काम अधिक होता है अतः उसने सारे यूरोपके व्यापारको अस्तव्यस्त करना उचित न समझ कर तारोंको ज्योंका त्यों छोड़ दिया।

तार काटनेपर यह प्रश्न होना है कि क्षतिपूर्ति देना आवश्यक है या नहीं। शत्रु तो हर्जाना मांग ही नहीं सकता, तटस्थको देने न देनेका प्रश्न है। हेगमें कुछ स्पष्टतया नहीं कहा गया, इतना ही कहा गया कि जहां स्पष्ट नियम न हों वहां यथासम्भव स्थल-युद्धके नियमोंसे काम लेना चाहिये। इस दृष्टिसे तटस्थोंकी क्षतिपूर्ति करना उचित प्रतीत होता है। स्पेन-अमेरिकन युद्धमें अमेरिकाने इन प्रकारके तार काटे थे पर उसने इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं किया कि क्षतिपूर्ति करना उसका कर्तव्य है। फिर भी अन्तमें न्यायके नामपर उसने रुपया दिया।

(घ) 'जब कि तार दो तटस्थ देशोंके बीचमें हो'—इस दशा-में सभी इस बातको मानते हैं कि तारकी न काटना चाहिये । पर कभी कभी एक अडचन पड़ती है । तारके दोनों सिरे तो दो तटस्थ देशोंमें होते हैं पर इनमेंसे एक (या दोनों) सिरेका सम्बन्ध उस तटस्थ देशमेंसे हो कर जाने वाले दूसरे तारोंके द्वारा एक युद्धकारी राजसे होता है । ऐसी दशामें दूसरे युद्ध-कारी राजकी क्षति हो सकती है । ऐसी अवस्थामे यदि सम-झाने बुझानेसे काम न चले तो उसे तार काटनेका अवश्य अधिकार होगा । पर इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम नहीं है ।

युद्धकारी राजोंका तीसरा मुख्य कर्तव्य यह है कि किसी तटस्थ प्रदेशमें युद्धकी तैयारी न करें । यह रुकावट प्रत्यक्ष तय्यारीके लिये है । युद्ध सामग्री मोल लेना, भोज्य पदार्थोंका तटस्थ भूभागमे युद्ध-सम्रह करना, या जहाजोंकी परम आवश्यक की तय्यारी न करना मरम्मत कर लेना निषिद्ध नहीं है । परन्तु ऐसा कोई काम नहीं किया जा सकता जिससे शत्रु-सैन्यकी प्रत्यक्ष अर्थात् अव्यवहित हानि हो । जो युद्धकारी राज बलात् ऐसा करता है और जो तटस्थ राज अपने देश-में ऐसा होने देता है वह दोनों ही निन्दा और दण्डके पात्र हैं । प्रत्यक्ष तय्यारीके दो ही मुख्य रूप होते हैं और दोनों ही निषिद्ध हैं पर दोनोंका ही स्वरूप अनिश्चितसा है अतः मतभेद-की जगह रह जाती है ।

(क) 'तटस्थ नगरको सगराधार^१ न बनाना चाहिये'—सगरा-धार उस स्थानको कहते हैं जो लुड्डाईका आधार हो, जहां लुड्डाई-का आयोजन होता हो, जहासे युद्ध सम्बन्धी काम आरम्भ होते हों । पर यह परिभाषा अब भी गोल है । इसका अंग्रेज़ी

* Base of Operations. (बेस आफ ऑपरेशन्स)

पर्याय कई सन्धियों तथा हेग नियमावलीमें प्रयुक्त हुआ पर उसकी ठीक ठीक व्याख्या नहीं की गयी। हॉल कहते हैं कि आधारकी पहिचान यह है कि उससे दीर्घकाल तक लगातार काम लिया जाय। इसमें अव्याप्ति दोष प्रतीत होता है। जिस स्थानसे दीर्घकाल तक निरन्तर काम लिया जायगा वह तो निश्चय आधार होगा पर यह भी सम्भव है कि किसी स्थानसे एक बार और वह भी थोड़ी ही देरके लिये काम लेकर कोई ऐसा लाभ उठाया जाय जो दूसरे स्थानके दीर्घकालीन निरन्तर प्रयोगसे प्राप्त न हो सके। ऐसी दशामें उस पहिले स्थानको संगराधार न कहना समीचीन नहीं जँचता। इसकी अपेक्षा यह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि यदि किसी स्थानसे कोई ऐसा काम, जो स्वतः ताटस्थ्य विरुद्ध नहीं है, इतने काल तक या परिमाणमें लिया जाय जिमसे किसी युद्धकारी पक्षको प्रत्यक्ष लाभ पहुँचे तो वह स्थान संगराधार हो गया। उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। तटस्थ नौस्थानमें अत्यन्त आवश्यकता पडनेपर थोड़ी देरके लिये आश्रय लेना निषिद्ध अर्थात् ताटस्थ्य-विरुद्ध नहीं है। पर यदि तटस्थ नौस्थानमें दीर्घकाल तक ठहरा जाय या अपना जहाज युद्धके लिये सन्नद्ध किया जाय तो वह नौस्थान संगराधार हो गया चाहे यह काम एक ही बार किया गया हो।

(ख) 'तटस्थ भूभागसे शत्रुपर चढ़ाई न करनी चाहिये'—यह नियम भी सुननेमें बड़ा ही सरल प्रतीत होता है पर चढ़ाई* शब्दका अर्थ ठीक नहीं निकलता। इसके अंग्रेजी पर्यायकी भी ठीक यही दशा है। यदि सैनिक, अफसर, शस्त्र इत्यादि सभी उपकरण उपस्थित हों तब तो सन्देहका कोई स्थल हो नहीं रह जाता पर अडचन वहा पडती है जहाँ उनसेसे एकाध अङ्कः

* Expedition (एक्सपीडीशन)

अभाव हो। दो प्रसिद्ध उदाहरण इस बातको समझनेमें बड़ी सहायता देंगे।

१८८५ में पुर्तगालमें यादवीय हो गयी। एक दलने तो तत्कालीन महारानी डॉना मेरिआका साथ दिया, दूसरेने उनके विरोधी डॉन मीगेलका पक्ष लिया। डॉना मेरिआके कई सौ सिपाही किसी प्रकार इंग्लैण्ड पहुच गये थे। वहांसे उन लोगों ने फिर पुर्तगालकी ओर जाकर युद्धमें सम्मिलित होनेकी तय्यारी की। पहिले तो अपने शस्त्र एक जहाजपर भेज दिये, फिर स्वयं सातसौ सैनिक प्लोमथ नौस्थानसे टसीइराके लिये, जो डॉना मेरिआके अधीन था, चले। ब्रिटिश सरकारने उन्हें रोकनेके लिये एक जहाज भेजा। उस जहाजके अफसर, कप्तान वैल्पोल, ने उनसे कहा कि आप टसीइरा छोडकर जहां चाहें जायं क्योंकि टसीइरा जाना 'चढ़ाई' करना होगा। उन लोगोंने कहना तो न माना पर कप्तान वैल्पोलने उनके जहाजको बलात् उधरसे हटा दिया। सभी आचार्योंने ब्रिटिश सरकारके इस कामको उचित माना है। यद्यपि उन पुर्तगालियोंके पास शस्त्र न थे पर वह उस समय भी सैनिक थे, उनका अफसर सैनिक अफसर था, उनको जहाजपरसे उतरते ही शस्त्र मिल जाना निश्चित था। अतः उनके विषयमें चढ़ाईका शब्द प्रयुक्त हो सकता था।

१९२७ में फ्रेंच-जर्मन युद्धके समय कई सौ फ्रेंच और जर्मन अमेरिकासे स्वदेश लौटे पर इनमेंसे अधिकांश छोटी छोटी टुकड़ियोंमें गये। इसपर किसीने आक्षेप न किया पर एक बार १२०० फ्रांसीसी एकही जहाजपर सवार हुए जिसपर बन्दूक और गोला-बारूद भी थी। जर्मन सरकारने इसपर आपत्ति की परन्तु अमेरिकन सरकारने उत्तरमें कहा कि इसे चढ़ाई नहीं कह सकते क्योंकि अभी फ्रांसीसी न तो सिपाही है न किसी सैनिक अफसरके अधीन जा रहे हैं।

इन दोनों उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो गया कि शस्त्रका होना न हाना चढाईका पर्याप्त लिङ्ग नहीं है। तत्काल ही युद्धमें सम्मिलित होनेका उद्देश्य, सैनिक रीतिसे सगठन और सैनिक अफसरके अधीन होना—यह तीन मुख्य लक्षण माने जाते हैं।

प्रत्येक तटस्थ राजको यह अधिकार है कि अपनी तटस्थताकी रक्षाके लिये किसी युद्धके आरम्भ होने पर विशेष नियम बना दे। भिन्न भिन्न राजोंने भिन्न भिन्न अवसरों-
 तटस्थकी रक्षाके पर ऐसे नियम बनाये भी हैं। जहाँ विशेष लिये बने हुए नियम प्रकाशित नहीं किये जाते वहाँ साधारण नियमोंका पालन अन्तराष्ट्रिय उपचारसे ही काम चलता है।

नियम कई प्रकारके होते हैं। साधारणतः उभय पक्षके जहाज़ थोड़े समयके लिये तटस्थ नौस्थानमें ठहर सकते हैं पर उनका प्रवेश तटस्थ राजकी इच्छापर निर्भर है। तटस्थको अधिकार है कि अपने नौस्थानोंमें युद्धकारी राष्ट्रोंके जहाज़ोंका प्रवेश एकदम निषिद्ध कर दे। इस आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया जा सकता पर तटस्थको चाहिये कि दोनों पक्षोंके साथ निष्पक्ष व्यवहार करे। यदि जहाज़ बिल्कुल बेकाम होजाय तो निषेधाज्ञाका उल्लंघन क्षम्य हो सकता है। जहाँ प्रवेशका निषेध नहीं होता वहाँ भी प्रायः ऐसे नियम बना दिये जाते हैं कि जो जहाज़ आये वह इतने दिन ठहरे, इतना कोयला और खाना ले, अमुक अमुक प्रकारकी मरम्मत करे इत्यादि।

स्थलयुद्धमें किसी भी पक्षकी सेना तटस्थ सीमाके भीतर नहीं जा सकती पर यदि शत्रु पीछा करते करते किसी सेनाको तटस्थ सीमा तक हटा ले जाय और वह विवश होकर तटस्थ देश-
 में आ हो जाय तो उसके हथियार रखवा लिये जाते हैं और

सिपाही नजरबन्द[❧] कर दिये जाते हैं। तटस्थ सरकार उनका भरण पोषण करती है। युद्ध समाप्त होने पर उनकी सरकार कुल रुपया चुका देती है और वह अपने घर चले जाते हैं पर युद्धकालमें भागने या घर जानेका प्रयत्न करना या फिर तटस्थ सीमाको पार करनेकी चेष्टा करना या गुप्त रूपसे शत्रुके विरुद्ध किसी प्रकारका आचरण करना या अपने पास शस्त्र छिपा रखना आश्रय देने वाले तटस्थ राजकी तटस्थताको भग्न करना, अत दण्डार्ह, है।

हम कई बार क्षतिपूर्ति[†] का उल्लेख कर चुके हैं। क्षति-पूर्तिके सैकड़ों अवसर आते हैं। नियम इतने अधिक और टेढ़े हैं कि उनमें से एक न एक दूटता ही रहता है। जिस राजकी तट-सकारोंकी चाहे जो इच्छा हो, यह असम्भव स्थता भग्न की जाय है कि लड़ाईकी गर्मागर्मोंके समय उत्साही उसकी क्षतिपूर्ति सेनापति और सिपाही अन्ताराष्ट्रिय विधानकी करना पोथी खोलकर बैठें और उसके आदेशोंके अनुसार फूँक फूँक कर पाँव रखें। यदि कोई सम्पत्ति अवैध रूपसे जब्त कर ली गयी है तो वह लौटायी जा सकती है या यदि वह नष्ट कर दी गयी है तो उसका मूल्य दिया जा सकता है पर इतनेसे ही क्षतिपूर्ति नहीं होती। जिस नियम या स्वत्वका उल्लंघन हो और तीव्र या मन्द जिस कोटिका उल्लंघन हो उसी परिमाणसे क्षतिपूर्ति होनी चाहिये पर अन्ताराष्ट्रिय विधानने इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम नहीं बनाया है। कभी साधारण खेद-प्रकाशसे काम चल जाता है, कहीं विशद क्षमायाचना करनी होती है, कहीं तटस्थ

❧ Intern (इण्टर्न)

† Reparations (रिपैरेशन्स)

राजके झण्डेको, जिस स्थानपर ताटस्थका उल्लंघन हुआ होता है, वहीं पर उल्लंघन करने वाले राजके सेनापति या मंत्री आकर सलाम करते हैं, कहीं रुपया देना पड़ता है, कभी कभी उल्लंघन करने वाला सेनापति निकाल दिया जाता है, कभी कभी यह सब कुछ करना पड़ता है। पर किस अवसरपर क्या हो और किस रूपमें हो यह कुछ तो अवसरपर, कुछ उभयपक्षके बलाबलपर निर्भर है।

हम ऊपर कह आये हैं कि तटस्थ राजके तटलग्न जलमें कोई सामरिक कार्यवाही नहीं हो सकती। यदि किसी युद्धकारी पक्षका जहाज किसी तटस्थ नौस्थानमें लङ्गर डाले पड़ा है तो वह उस समयके लिये उस तटस्थ राजकी शरणमें है। यदि वसे दूसरे पक्षका कोई जहाज किसी प्रकारकी क्षति पहुँचाता है तो वह उस तटस्थ राजका अपमान करता है अतः तटस्थ राज ही उससे क्षतिपूर्ति करायेगा, इसके बाद वह तटस्थ राज जैसा उचित प्रतीत होगा उस जहाजके स्वामियोंकी क्षतिपूर्ति कर देगा।

अन्तराष्ट्रिय विधानके भीतर एक विचित्र सिद्धान्त है जिसे 'अगरी' विधान कहते हैं। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त नहीं

है और इधर बहुत दिनोंसे इससे काम भी नहीं लिया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर तटस्थ सम्पत्ति लड़ाईके काममें लायी जा सकती है या नष्ट की जा सकती है। तटस्थ सम्पत्ति दो अवस्थाओंमें अपने हाथ आ सकती है। या तो शत्रुके किसी प्रदेशपर अधिकार हो जाय और वहाँ तटस्थ सम्पत्ति हो या अपने ही देशमें वर्तमान हो। ऐसा हो सकता है कि शत्रुके किसी प्रदेशपर अधिकार करने-

पर मुल्कगीरी सेनाको वहाँ किसी तटस्थ राजके शस्त्र या रेलवे एंजिन या यंत्र मिल जायँ या अपने ही नौस्थानोंमें किसी तटस्थ देशके जहाज हों। अंगरीके समर्थकोका कहना है कि अत्यन्त सामरिक आवश्यकता पडनेपर इनसे काम ले सकते हैं या नष्ट कर सकते हैं। आजकल अधिकांश सम्मति इसके सर्वथा प्रतिकूल है क्योंकि यह वस्तुतः एक प्रकारकी लूट है और ताटस्थ्यके तन्वत् विरुद्ध है। जो लोग इसका समर्थन करते हैं वह भी इतना मानते हैं कि यदि अंगरी नियमसे काम लिया ही जाय तो छीनी हुई वस्तु जितना शीघ्र हो सके लौटा दी जाय और क्षमा याचनाके साथ पूरी पूरी क्षतिपूर्ति की जाय। यह नियम इतना बुरा है कि आज कल स्यात् ही कोई इसका समर्थन करता है, कमसे कम लगभग ५० वर्षसे किसी राजने इससे काम नहीं लिया है। १९२७ में जर्मनोंने छ अंग्रेजी कोयला लादने वाले जहाजोंको सीन नदीमें ड्यूकेयरके पास डुबा दिया। उनका कहना यह था कि उधरसे फ्रेच जहाज आ रहे थे उनको रोकने-का इसके सिवाय इस समय कोई दूसरा साधन न था। अंग्रेजोंको क्षतिपूर्ति स्वरूप रुपया मिला। यही स्यात् अंगरीसे काम लेने-का अन्तिम उदाहरण मिलता है।

चौथा अध्याय ।

युद्धकारी राजोंके प्रति तटस्थ राजोंके कर्त्तव्य ।

फ्रुडिले तो यह कर्त्तव्य बहुत ही अनिश्चित अवस्थामें थे पर १९६४ के हेग सम्मेलनके पीछे इनका रूप बहुत कुछ स्थिर हो गया है । अब भी कई बातें विवादास्पद रह गयी है, उनका निर्णय राजोंकी न्यायबुद्धि और समयोपयोगितापर निर्भर है । लार्सेने इन कर्त्तव्योंको पाँच कोटियोंमें विभक्त किया है, आत्मनियंत्रणात्मक, परनियंत्रणात्मक, सहिष्णुतात्मक, प्रत्यर्पणात्मक और क्षतिप्रत्यात्मक । हम इन पाँचों विभागों और इनके अन्तर्गत कर्त्तव्योंपर पृथक् पृथक् विचार करेंगे ।

(१) आत्मनियंत्रणात्मक कर्त्तव्य । *

आत्मनियंत्रणका अर्थ हुआ अपने ऊपर नियंत्रण करना, अपने ऊपर अंकुश रखना । इस कोटिमें वह काम परिगणित हैं जिन्हें युद्धकालमें तटस्थ राज स्वयं नहीं करता, यद्यपि दूसरे समय उसे उन्हें करनेका पूरा अधिकार प्राप्त है ।

इस प्रकारके कर्त्तव्योंमें तीन मुख्य हैं—

(क) 'किसी पक्षको सशस्त्र सहायता न देना'—अब महाभारतका समय नहीं रहा जब कि एक राज दोनों पक्षोंका समर्थन कर सकता था जैसा कि श्रीकृष्णने अपनी सेना कौरवोंको देकर और आप पाण्डवोंसे मिलकर किया । अब, जैसा कि यूरोप-में पहिले होता था कि किसी पुरानी सन्धिके अनुसार एक पक्षको सहायता देकर भी तटस्थ बना रहता था, नहीं हो

सकता । जो किसी भी पक्षकी सहायता करता है वह तटस्थ नहीं माना जा सकता ।

- (ख) 'किसी पक्षके साथ पक्षपात न करना अर्थात् उभयपक्षको समान अधिकार देना'—पक्षपातमय तटस्थ्य भी पहिले बहुत प्रचलित था । १८५५ में फ्राँस और संयुक्त राजमें जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार फ्राँसको यह विशेष अधिकार मिला था कि यदि उससे किसी राजसे युद्ध हो जाय तो फ्राँसीसी जहाज शत्रुके जहाजोंको पकड़ कर अमेरिकन नौस्थानोंमें रख सकें पर कोई दूसरा राज ऐसा न कर सके । उस समय अमेरिकाको कुछ ऐसी गरज़ थी कि उसने यह शर्त मान ली पर इससे तटस्थतामें बाधा पड़ती थी । उसने इससे छुटकारा पाना चाहा पर फ्राँस सहमत न होता था । १८५७ में जाकर पिण्ड छूटा । अब कोई राज ऐसी शर्तें नहीं करता । हम तीसरे अध्यायमें लिख आये हैं कि तटस्थ राजको अधिकार है कि अपने राज्यमें युद्धकारी राजोंके जहाजोंके आनेका निषेध कर दे पर यह आज्ञा उभयपक्षके लिये होनी चाहिये । ऐसा न करना युद्धमें सम्मिलित होनेके बराबर है ।
- (ग) 'किसी पक्षको न तो रुपया योंही दे देना न ऋण देना और न किसी पक्षको सैनिक सामग्री देना न किसीके हाथ सैनिक सामग्री बेचना'—इस सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है । रुपया योंही उठाकर दे देना अथवा ऋण देना दोनों बराबर है । दोनों दशाओंमें एक पक्षको सहायता मिलती है । स्वयं ऋण न देकर किसी दूसरेसे दिला देना या ऋण लेनेमें मध्यस्थ बनना या जामिन बनना भी उसी प्रकार निषिद्ध है । पर यह नियम केवल तटस्थ राजोंके लिये है, प्रजाके लिये नहीं । प्रजाकी उभयपक्षके साथ व्यापार करनेका पूर्ण अधिकार है ।

ऋण देना भी व्यापार है अतः वह भी मना नहीं है। आज-कल स्यात् ही कोई बड़ा युद्ध होता होगा कि जिसमें तटस्थ व्यापारियोंसे ऋण न लिया जाता हो। प्रजा ऋण दे सकती है। दान देना सम्भवतः अनुचित समझा जायगा परन्तु इसकी इतनी युक्तियाँ निकल सकती हैं कि अड़चन बचायी जा सकती है।

शस्त्र देना या बेचना भी पूर्णतया निषिद्ध है। हेगमें स्पष्ट शब्दोंमें निश्चित हुआ था कि 'किसी तटस्थ शक्तिका किसी युद्ध-कारी शक्तिको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी रूपसे, रणपोत, किसी प्रकारकी युद्ध-सामग्री या रसद^{*} देना निषिद्ध है' (जलयुद्धमें तटस्थोंके स्वत्व और कर्तव्य—धारा ६)। परन्तु रुपये वाला नियम यहाँ भी लगता है, राज स्वयं शस्त्रादि नहीं दे सकता पर अपनी प्रजाको रोकना उसका कर्तव्य नहीं है। यदि प्रजा चाहे तो उभयपक्षके हाथ रणसामग्री बेच सकती है। गत महासमरके प्रथम तीन वर्षोंमें इसी प्रकारके व्यापारसे अमेरिका मालामाल हो गया। हेग नियमावलीके अनुसार 'किसी तटस्थ राजका यह कर्तव्य नहीं है कि वह किसी पक्षके लिये भेजे जाते हुए शस्त्र, रणसामग्री, या साधारणतः किसी ऐसी वस्तुका, जो जिसी स्थल या जल सेनाके लिये उपयोगी हो सकती है, निर्यात या गमनागमन रोके' (स्थल तथा जल युद्धमें तटस्थोंके स्वत्व और कर्तव्य—धारा ७)।

यह नियम तो स्पष्ट है पर कभी कभी इसकी व्याख्याके सम्बन्धमें मतभेद हो सकता है। १९६० में जापानने आर्जेण्टिनासे दो बड़े रणपोत मोल लिये। इसके कुछ ही महीने पीछे उससे रूससे युद्ध छिड़ा। सम्भवतः जापानने इस युद्ध^{*} लिये ही इन पोतों—

* सेनाके खाने पीने पहिननेकी सामग्री तथा जहाज़ोंके लिये ईंधन।

को मोल लिया होगा पर इस बातका कोई प्रमाण नहीं है कि आर्जेण्टिनाको यह ज्ञात था कि युद्ध होगा। यदि प्रमाण हो भी तो उसे दोषी नहीं ठहरा सकते क्योंकि बिक्रीके समय युद्ध नहीं हो रहा था अतः तादस्थिका प्रश्न ही नहीं उठ सकता। यदि बिक्रीकी सब कार्यवाही पूरी होनेके पहिले युद्ध छिड़ गया होता तो आर्जेण्टिनाका यह कर्तव्य होना कि युद्ध समाप्ति तक जहाजोंको रोक ले। १९२७ में जब कि फ्रांस और जर्मनीमें युद्ध हो रहा था, अमेरिकन सरकारने बहुत सी पुरानी तोपें, बन्दूकें तथा अन्य रणसामग्री बेची। किसी न किसी प्रकार इससेसे बहुत सी वस्तुएं फ्रांस पहुंच गयीं। इससे यह निश्चय है कि मोल लेने वालोंमें फ्रांसके एजेण्ट थे। जर्मनीने इसपर आपत्ति की। जांच पड़तालके बाद भी अमेरिकन सरकारने अपनेको निर्दोष ठहराया। उसका कहना यह था कि हमने जानबूझ कर फ्रांसके हाथ कोई वस्तु नहीं बेची। अपना रद्दी माल खुले मैदान बेचा, चाहे कोई ले। उस समय बात यहीं तक रह गयी पर अमेरिकन सरकारका तर्क बहुत सन्तोषजनक नहीं है। कमसे कम अब तो हेगमें यह निश्चय हो ही गया है कि 'प्रत्यक्ष' अथवा 'अप्रत्यक्ष' रूपसे सहायता देना निषिद्ध है। इसका ठीक ठीक पालन तो इसी प्रकार हो सकता है कि या तो ऐसे समय रणसामग्री, चाहे वह कैसी ही रद्दी हो बेची ही न जाय और यदि बेची भी जाय तो इस बातका पूरा प्रबन्ध किया जाय कि किसी युद्धकारी पक्षके एजेण्टोंके हाथ न लग जाय। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इसकी रोकथाम नहीं हो सकती। यदि अमेरिकन सरकारसे सारी सामग्री कुछ अमेरिकन व्यापारी मोल ले लेते और फिर वह उसे फ्रांसके हाथ बेच देते तो जर्मनीको आपत्ति करनेका कोई अवसर न मिलता।

(२) परनियंत्रणात्मक कर्तव्य । *

परनियंत्रणका अर्थ हुआ दूसरेका नियंत्रण करना, दूसरेको रोकना । 'पर' शब्दके तीन लक्ष्य हैं । एक तो तटस्थ राजको दोनों युद्धकारी पक्षोंका नियंत्रण करना पड़ता है, दूसरे उसे अपनी प्रजाका नियंत्रण करना पड़ता है, तीसरे उसे अन्य व्यक्तियोंका, जो दोमेसे एक पक्षकी ओरसे काम कर रहे हो, नियंत्रण करना पड़ता है । ताटस्थ्य-विरुद्ध कामोंको न होने देना, उनके करनेसे 'यथाशक्य' रोकना, ही नियंत्रण है । हमने ऊपर 'यथाशक्य' लिखा है । इसका ठीक ठीक अर्थ लगाना कठिन है । 'शक्य' की नाप नहीं हो सकती । कोई तटस्थ राज अपनी पूरी शक्ति लगा रहा है या नहीं इसका निर्णय करना बड़ा कठिन होता है । अंग्रेजीमें जो शब्द आता था उसका अर्थ है "समुचित प्रत्यन्तशीलता"† पर इसका भी अर्थ गोल है । १९२८ में ब्रिटेन और अमेरिकामें इस सम्बन्धमें विवाद उठा । ब्रिटेनकी ओरसे कहा गया 'किमी विशेष उद्देश्यके लिये जितनी सावधानतामें काम लेनेके लिये सकारात्मक बाध्य है' ‡ उ० समुचित प्रयत्नशीलता कहते हैं । अमेरिकान कहता कि वह प्रयत्नशीलता समुचित है जो 'अवसरकी आवश्यकता, या अनवधानताके परिणामोंके महत्त्व, के अनुरूप' हो§ । जो लोग इस विवादमें पंच

* Duties of Prevention (ब्यूटीज आफ प्रिवेंशन) † Due Diligence (ब्यू दिलिजेन्स) ‡ 'that measure of care which the government is under an obligation to use for a given purpose' § 'commensurate with the emergency or with the magnitude of the results of negligence'

बनाये गये उन्होंने कहा कि तटस्थोको चाहिये कि यह देखें कि 'उनके अपने तटस्थ-सम्बन्धी कर्तव्योंके पालन न करनेसे किसी युद्धकारी पक्षकी कितनी हानि होनेकी आशका है और उसी हिसाबसे' § प्रयत्नशील होना चाहिये । जैसा कि लारेंसने कहा है यह तीनों ही व्याख्याएँ सदोष है । न तो इनसे कोई स्पष्ट अर्थ ही निकलता है न प्रयत्नशीलताकी कोई मात्रा ही निश्चित होती है । हेग सम्मेलन भी इसकी व्याख्या करनेमें सफल न हुआ । उसने समुचित प्रयत्नशीलताके स्थानमें लिखा है तटस्थ सर्कार-का कर्तव्य है कि 'जो साधन उसे प्राप्त हों' उनसे काम ले । यह भी स्पष्ट नहीं है । इसमें जो 'साधन' शब्द आया है वह गोल है । यदि वह केवल तोप, बन्दूक, रणपोत, सेना आदिके लिये ही प्रयुक्त होता तो स्यात् कांठनाई न पड़ती । पर इसका अर्थ और भी व्यापक है । किसी किसी देशमें ऐसे विधान हैं या हो सकते हैं कि बच्चपदस्थ सर्कारी कर्मचारी बिना पार्लमेण्टके परामर्शके अमुक अमुक अधिकारसे काम न लें । ऐसी दशामें सम्भव है कि तटस्थकी रक्षा जल्दीमें न हो सके । अतः उचित यह था कि सब मुख्य मुख्य साधनोंका नामत उद्देश कर दिया जाता ।

अब हम उन मुख्य कर्तव्योंका पृथक् पृथक् वर्णन करेंगे जो परनियंत्रणके अन्तर्गत हैं ।

(क) 'अपने राज्यमें युद्ध न होने देना'—इसका कई बार उल्लेख हो चुका है और अब अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है । राज्यसे तटलक्ष जलसे भी अभिप्राय है ।

(ख) 'अपने राज्यमेसे किसी पक्षकी स्थल सेनाको न जान

§ 'in exact proportion to the risks to which either of the belligerents may be exposed from a failure to fulfil the obligations of neutrality on their part'

देना'—यह भी स्पष्ट है। जल-सेना के लिये यह नियम नहीं है। यदि कोई डमरूमध्य किसी तटस्थ राजके तटलग्न जलके अन्तर्गत हो तो वह उसे बन्द नहीं कर सकता। उभयपक्षके रणपोर्तोंको उसमेंसे गमनागमनका पूर्ण अधिकार है। यह हम पहिले कह चुके हैं कि तटस्थ राजोंको अधिकार है कि युद्धकारी राजोंके जहाजोंको अपने नौस्थानोंमें प्रवेश करनेसे निषेध कर दें पर इस सम्बन्धमें मतभेद है कि तटलग्न जलमेंसे होकर आने जानेका निषेध करनेका अधिकार है या नहीं।

(ग) 'अपने राज्यमें न चढाईकी तय्यारी होने देना, न चढाईकी यात्रा आरम्भ होने देना'—चढाईकी व्याख्या पहिले की जा चुकी है। युद्धकारियोंका तो कर्तव्य है ही कि तटस्थ प्रदेशमें ऐसा न करें, तटस्थोंको भी चाहिये कि उन्हें रोकें। हेग नियमावलीमें लिखा है कि प्रत्येक राजको चाहिये कि अपने किसी नौ-स्थानसे ऐसे किसी जहाजको शस्त्रान्वित या सज्जित न होने दे जिसके विषयमें यह आशका हो कि यह किसी ऐसे राजके विरुद्ध कोई सामरिक कार्य करनेके उद्देश्यसे जा रहा है जिससे उससे (अर्थात् जिस तटस्थ राजका नौ-स्थान है) मैत्री है। ऐसे व्यापारिक जहाजोंको बाहर जानेसे रोकनेका भी आदेश है जो तटस्थ प्रदेशके भीतर रह कर पूर्णतया या अंशतया युद्ध योग्य बना दिये गये हों। यह नियम है तो बड़े ही व्यापक पर इनमें भी झगड़ेके कई स्थल हैं। 'शस्त्रान्वित होनेका' ❀ ठीक अर्थ क्या है? जहाजपर जितने मनुष्य हैं उन सबके पास किसी न किसी प्रकारका शस्त्र हो पर जहाजपर तोपे न हों तो उसे 'शस्त्रान्वित' माने या न मानें? कितने और किस प्रकारके शस्त्रोंके होनेसे

* Arming (आर्मिङ्ग)

जहाजको शस्त्रान्वित कहना चाहिये ? सज्जित † का अभिप्राय क्या है ? सबसे बड़ा प्रश्न उद्देश्य § का है । इस बातका निश्चय कैसे किया जाय कि अमुक जहाज किस उद्देश्यसे बाहर जा रहा है ? ऐसे ऐसे शब्दोंके पीछे कभी कभी बहुत विवाद बढ़ जाता है । इनका प्रयोग इस बातका प्रमाण है कि स्वयं नियामक लोगोंमें ही मतैक्य न हो पाया ।

(घ) 'अपने राज्यमें किसी पक्षकी स्थल या जल सेनाके लिये सैनिक भर्ती न होने देना'—यह नियम भी स्पष्ट है । कोई युद्धकारी राज किसी तटस्थ देशमें सिपाहियोंकी भर्तीका प्रबन्ध नहीं कर सकता । यदि वह करना भी चाहे तो तटस्थ देशको इसे रोकना चाहिये । आत्मसम्मानी स्वतन्त्र देश ऐसा करते भी हैं । गत महासमरमें नैपाल तटस्थ था, कमसे कम न तो उसने जर्मनी आदि-के विरुद्ध किसी प्रकारकी रणघोषणा की, न सन्धि परिषद्में ही किसीने उससे बात पूछी फिर भी कई सहस्र गुर्खे अंग्रेजी सेनाके लिये स्पष्ट रूपसे नैपालमें भर्ती हुए । यह नैपाल सरकारकी आत्म-सम्मानहीनताका प्रमाण है । यदि नैपालका सचमुच अन्ताराष्ट्रिय जम्बूमें कोई स्थान होता, जैसा कि अपनेको स्वतन्त्र कहने वाले राजका होना चाहिये, तो उसे छेनेके देने पड़ जाते । अस्तु, यह नियम तो है पर कभी कभी इसका उल्लंघन भी हो जाता है । जब यूनान वासी तुर्की आधिपत्यसे निकल कर स्वतन्त्र होनेका प्रयत्न कर रहे थे उस समय ब्रिटेन तटस्थ था पर अंग्रेजोंको यूनानके नामसे प्रेम था अतः बहुत से अंग्रेज जाकर यूनानी सेनामें भर्ती हुए । कई बार तुर्कोंका यूरोपके सबल राजोंसे युद्ध हुआ है । ऐसे अवसरोंपर भारतके मुसलमानोंने तुर्कोंके साथ बड़ी सहानुभूति दिखलायी है । यदि उनमें सचमुच वीर्य होता तो

† Fitting out. (फिटिंग आउट)

§ Intent. (इंटेंट)

सम्भवतः तुर्कीकी ओरसे लड़ने भी जाते। ऐसे अवसरोंपर तटस्थ राज्योंके लिये अपनी प्रजाका उत्साह सवरण करना बड़ा कठिन होता है। इसलिये वह आँख बन्द करके चुप्पी साध लेते हैं। यदि दूसरे पक्षने आक्षेप किया तो यही कह सकते हैं कि हम अपने भर सक ऐसा नहीं होने देते, यदि कुछ लोग चुपकेसे निकल जाते हैं तो हमें दुःख है पर हम विवश हैं। परन्तु ऐसा होने देना तटस्थ्यके सर्वथा विरुद्ध है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

(ड) 'युद्धकारी रणपोतों और उनके गिरफ्तार भिये हुए जहाजोंको अपने नौ-स्थानों और तटलग्न सागरोंमें अनुचित आश्रय न लेने देना'—अनुचित 'आश्रय' के दो अर्थ हैं। उसका एक लक्ष्य तो रणपोतोंकी संख्याकी ओर है, दूसरा लक्ष्य उस समयकी ओर है जिसके भीतर जहाजोंको चले जाना चाहिये। पहिले तो इस सम्बन्धमें कोई नियम न था पर १९६४ के हेग सम्मेलनने यह निश्चित कर दिया कि किसी तटस्थ नौस्थान या तटलग्न सागरमें किसी एक युद्धकारी राजके तीनसे अधिक रणपोत एक ही समय नहीं रह सकते पर विशेष आवश्यकता देखकर तटस्थ राज इस संख्याको बढ़ा घटा सकता है।

उठरनेके समयके विषयमें भी बहुत मतभेद था। पहिले पहिल ब्रिटेनने यह नियम बनाया कि कोई युद्धकारी रणपोत किसी ब्रिटिश नौस्थान या तटलग्न सागरमें २४ घण्टेसे अधिक नहीं उठर सकता। हेग सम्मेलनने इस नियमको सार्वभौम बना दिया पर फ्रांस और जर्मनीके विरोधके कारण तटस्थ राज्योंको विशेष नियम बनानेका अधिकार दे दिया। यह भी नियम हो गया कि यदि युद्ध छिड़नेके समय कोई युद्धकारी रणपोत किसी तटस्थ सागरमें हो तो उसे २४ घण्टेके भीतर चले जाना चाहिये। पर तटस्थ राज्योंको अधिकार है कि वह २४ घण्टेके स्थानमें अपने

अपने यहाँ कोई और अवधि नियत कर दें। जो नियत अवधि हो उसका अतिक्रमण उसी अवस्थामें हो सकता है जब कि जहाज खराब हो गया हो या ऋतु प्रतिकूल हो। इस रुकावटके दूर होते ही चले जाना चाहिये। यदि कोई रणपोत कोयला लेनेके लिये आये तो उसे भी २४ घण्टेके भीतर चले जाना चाहिये।

कभी कभी एक ही नौस्थानमें दोनो विरोधी पक्षोंके जहाज आ जाते हैं। इस अवस्थाके लिए यह नियम है कि यदि दोनों ही रणपोत हों तो जो जहाज पहिले आया हो वह पहिले जाय और उसके जानेके २४ घण्टेके पीछे दूसरा जाय। यदि पहिले आया हुआ जहाज बेकार हो गया हो तो उसे पीछे जानेकी अनुज्ञा दी जा सकती है। यदि एक पक्षका जहाज रणपोत हो और दूसरे पक्षका व्यापारिक पोत हो तो पहिले व्यापारिक पोत जायगा और रणपोत उसके २४ घण्टे बाद निकलेगा।

गिरफ्तार किये हुए जहाजोंके सम्बन्धके नियम अच्छे नहीं हैं। ब्रिटेनने अपने यहाँके लिये तो यह नियम बना लिया है कि कोई गिरफ्तार किया हुआ जहाज ब्रिटिश तटस्थताकी दशामें किसी ब्रिटिश नौस्थान या समुद्रमें लाया जा ही नहीं सकता। जापानका भी यही मत है। पर अन्य राज इसे पसन्द नहीं करते। हेगमें यह नियम बना कि यदि गिरफ्तार किया हुआ जहाज खराब हो गया हो, ऋतु प्रतिकूल हो, कोयला न रह गया हो या रसद चूक गयी हो तो उसे (गिरफ्तार किये हुए जहाजको) तटस्थ सीमाके भीतर ला सकते हैं। यह शर्तें तो उतनी बुरी नहीं हैं पर पीछेसे एक बहुत ही खराब शर्त जोड़ दी गयी। वह यह है कि यदि रणपोत अपने शिकारको स्वदेशके किसी नौस्थानमें न पहुँचा सके और उस गिरफ्तार किये हुए जहाजके विषयमें (युद्धकारी शोध्यमें स्थित) न्यायालयमें कागजोंके आधारपर विचार हो रहा

हो तो न्यायालयके निर्णय सुनाने तक रक्षाके लिये उसे तटस्थ समुद्र या नौस्थानमें रख सकते हैं ।

(च) 'रणपोतोंकी शक्तिमें वृद्धि न होने देना'—शक्तिकी वृद्धि रणसामग्री संग्रह करने और सिपाही भर्ती करनेसे होती है । यह तो रोका जा सकता है पर एक नियम यह भी है कि रणपोतोंको ऐसी मरम्मत करनेकी अनुज्ञा दे दी जाय जिससे वह समुद्रमें चलने योग्य हो जायँ पर उनकी सामरिक शक्ति न बढे । यह नियम अस्पष्ट है । यदि कोई जहाज खराब हो रहा है तो उसकी सामरिक शक्ति भी गिर गयी है । यदि वह समुद्रमें चलने योग्य बनाया जायगा तो उसकी सामरिक शक्ति भी बढेगी । फिर भी जब नियम है तो उसका किसी न किसी प्रकार पालन होता ही है । जो अति शीघ्र मरम्मत हो सकता है उसको अनुज्ञा दे दी जाती है । स्थानीय अधिकारी देखते रहते हैं कि विशेष काम न होने पावे । यदि किसी जहाजको बहुत मरम्मतकी आवश्यकता होती है तो उसे नि शस्त्र करके मरम्मत होने देते हैं और युद्धकी समाप्ति तक जाने नहीं देते ।

(छ) 'किसी पक्षके जहाजोंको बार बार और अनुचित परिमाणमें रसद संग्रह करनेसे रोकना'—यहां यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि तटस्थ राजका कर्तव्य केवल अपने राज्यके भीतर रोकना है और यह नियम केवल अनिषिद्ध रसदके लिये है । निषिद्ध रसद अर्थात् गोला-बारूद शस्त्र तो किसी अवस्थामें नहीं संग्रह किया जा सकता ।

रसद शब्द यहां दो अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है । उसका पहिला और साधारण अर्थ भोज्य पदार्थ है । इसके लिये यही नियम है कि जितनी रसद शान्तिकालमें इस जहाजपर रहती है उतनी ली जा सकती है । इस परिमाणका अन्तिम निर्णय तटस्थ राज-

के अधिकारियोंके हाथमें रहता है। इसके लिये सकुदसकृतका भी कोई नियम नहीं है। जब जब रसद बूक जाय तब तब लेने आ सकते हैं पर तटस्थ अधिकारियोंको यह अधिकार है कि वह देना अस्वीकार कर दें।

रसदका दूसरा अर्थ ईंधन है। पहिले केवल कोयला प्रयुक्त होता था, अब तेलसे अधिक काम लिया जाने लगा है। इस सम्बन्धमें अभी एक सम्मति नहीं है। हेग सम्मेलन भी कुछ निश्चित न कर सका। जर्मनी, रूस और फ्रांसके पास ऐसे स्थान कम हैं जहां एक बार ईंधन बूक जानेपर उनको फिर सुगमतासे मिल सके। ब्रिटेनका राज्य पृथ्वीके कोने कोनेमें है अतः उसके जहाजोंको सुगमतासे ईंधन मिल सकता है। इस लिये इन दोनों पक्षोंका सहमत होना असम्भव था। इस समय दो नियम हैं। पहिला तो वह है जिसके लिये ब्रिटेनका आग्रह था अर्थात् यह कि इतना ईंधन दिया जाय जिससे वह जहाज अपने राजके निकटतम नौस्थान तक, या किसी तटस्थ देशके ऐसे नौस्थान तक जिसका नाम बतला दिया जाय पहुच जाय। 'जिसका नाम बतला दिया जाय' एक गोल सा वाक्य है। इसका तात्पर्य केवल यह है कि ईंधन लेनेकी अनुज्ञा देनेवाला तटस्थ राज कह सकता है कि हम तुमको अमुक तटस्थ राजके अमुक नौस्थान तक पहुंचने भर ईंधन देंगे। दूसरा नियम वह है जिसे जर्मनी आदि-के आग्रहपर हेग सम्मेलनने स्वीकार किया। उसके अनुसार, तटस्थ राजको अधिकार है कि जहाजको इतना ईंधन लेने दे जितनेसे उसका ईंधन रखनेका स्थान सारा भर जाय। ब्रिटेनके आग्रहसे जर्मनीको छोड़कर अन्य राजोंने यह नियम भी मान लिया कि एक बार ईंधन लेनेके बाद फिर वही जहाज उसी तटस्थ राजके किसी भी नौस्थानसे तीन महीनेके भीतर ईंधन नहीं पा सकता।

अभी ईंधन सम्बन्धी, विशेषतः उसके परिमाण सम्बन्धी नियमोंको और कड़ा बनानेकी आवश्यकता है। इस बातकी आवश्यकता है कि जो जहाज लड़ाईपर जा रहे हैं उनको तटस्थ देशोंमें विशेष सुविधा न मिले।

(ज) 'अपने राज्यके किसी भागको किसी पक्षका समाचार-संग्रह स्थान न बनने देना'—तटस्थ राज्यों द्वारा दो प्रकारसे समाचारोंका संग्रह हो सकता है। एक प्रकार तो यह है कि युद्धकारी राज स्वयं तारका, बेतारके तारका स्टेशन या अन्य कोई ऐसा यंत्र-मन्दिर बनवाये जिसके द्वारा समाचार भेजा जा सकता हो। हेग नियमावलीमें इसका स्पष्ट निषेध है और तटस्थ राज्योंको आदेश है कि युद्धकारी राज्योंको ऐसा न करने दें। पर जो तार (या बेतार) तटस्थ राजमें पहिलेसे चल रहा हो, चाहे वह स्वयं राजका हो, चाहे किसी कम्पनीका हो, चाहे किसी एक व्यक्तिका हो, उसके विषयमें तटस्थ राज स्वतन्त्र है। उसकी इच्छा हो युद्धकारियोंको उससे काम लेने दे, न इच्छा हो न लेने दे पर एक शर्त अनिवार्य है उसका व्यवहार पक्षपातहीन होना चाहिये, जो बर्ताव किया जाय वह दोनों पक्षोंके साथ किया जाय। अच्छा यही प्रतीत होना है कि तटस्थ राज :युद्ध-सम्बन्धी समाचारोंका आना जाना एकदम बन्द कर दें।

अब हम तटस्थ राज्योंके तीसरी कोटिके कर्तव्योंकी ओर आते हैं।

(३) सहिष्णुतात्मक कर्तव्य ।*

तटस्थको असाधारण सहिष्णुता दिखलानी पड़ती है। उसके प्रजावर्गीय हताहत हो सकते हैं, उनकी सम्पत्ति नष्ट हो सकती

* Duties of Acquiescence (ज्युटीज आफ एक्वीसेन्स)

है, उनके जहाज डुबाये या गिरफ्तार किये जा सकते हैं, पर उसे सब कुछ चुपचाप सह लेना पड़ता है। जबतक अन्ताराष्ट्रिय विधानका स्पष्ट उल्लंघन नहीं होता तब तक वह कुछ नहीं कर सकता। हां, यदि कोई पक्ष नियमोऽल्लघन करे और कहने पर भी समुचित क्षतिपूर्ति न करे तो उसे अधिकार है कि उस राजके साथ युद्ध छेड़ दे।

(४) प्रत्यर्पणात्मक कर्तव्य*

प्रत्यर्पणका अर्थ है लौटाना। प्रत्यर्पणात्मक कर्तव्यका एक उदाहरण दिया जा चुका है। यदि एक युद्धकारी पक्षका रणपोत किसी तटस्थके तटलग्न जलके भीतर दूसरे पक्षके किसी जहाजको गिरफ्तार करे तो उस तटस्थको अधिकार है कि 'चाहे जैसे बन पड़े' उस जहाजको छुड़ाकर जिसका था उसे लौटा दे। यदि जहाज नहीं ही मिल सके अर्थात् यदि वह नष्ट कर दिया गया हो तो जो रुपया क्षतिपूर्तिमें मिले वह उसे दे दिया जाय। 'चाहे जैसे बन पड़े' बहुत व्यापक अर्थका द्योतक है। बात है भी यही। यदि जहाज तटस्थ समुद्रके भीतर ही हो तो तटस्थको अधिकार है कि बलप्रयोग करके पकड़े हुए जहाजको छुड़ा ले और उसपर पकड़नेवाले जहाजके जो नाविक रक्खे गये हों उन्हें नजरबन्द कर दे। यदि जहाज बाहर निकल गया हो तो पत्रव्यवहारसे या अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयमें अपीलसे काम लेना चाहिये। इन सब बातोंके अतिरिक्त उसे अपनी मानरक्षाके लिये युद्ध करनेका अधिकार है।

एक और दशामें प्रत्यर्पणका कर्तव्य उपस्थित होता है। हम परनियन्त्रणके सम्बन्धमें बतला चुके हैं कि किन किन अवस्था-

* Duties of Restoration. (ज्युटीज आफ रेस्टोरेशन)

ओमें पकड़े हुए जहाज तटस्थ समुद्रमें लाये जा सकते हैं । यदि इन अवस्थाओंके सिवाय किसी और दशामें कोई पकड़ा हुआ जहाज लाया जाय तो तटस्थ राजका कर्तव्य होगा कि उसे छोड़ा कर उसके स्वामियोंको लौटा दे और उसपर पकड़नेवाले जहाजके जो नाविक हों उन्हें नजरबन्द कर दे ।

(५) क्षतिपूर्त्यात्मक कर्तव्य ।*

ऊपर बार बार कहा जा चुका है कि तटस्थका कर्तव्य है कि इस बातका भरसक प्रयत्न करे कि उसके द्वारा किसी पक्षको सहायता न मिले और किसी पक्षकी क्षति न हो । यदि पूरा प्रयत्न करनेपर भी उसे सफलता न हो तो वह निर्दोष है पर यदि उसकी भूल या असावधानतासे किसी स्पष्ट कर्तव्यका उल्लंघन हुआ तो वह दोषी है । वह चाहे यह प्रमाणित कर दे कि उसका उद्देश्य शुद्ध था पर इससे उसका अपराध मिट नहीं जाता । ऐसी अवस्थामें उसका यह कर्तव्य होगा कि जिस युद्धकारी पक्षकी हानि हुई है उसकी समुचित क्षतिपूर्ति करे । यह क्षतिपूर्ति क्या और कितनी हो इसका निर्णय या तो दोनों राज स्वयं आपसमें कर लेंगे या किसी तीसरे राजको पच मान कर करा लेंगे या अन्ताराष्ट्रिय न्यायालय करेगा ।

यह पांच कर्तव्य-कोटियाँ तो सर्वसम्मत है ही, इनके साथही एक छठेको जोड़नेकी आवश्यकता प्रतीत होती है । उसे हम शान्ति-स्थापनात्मक कर्तव्य कह सकते हैं । प्रत्येक तटस्थ राजको शान्तिका पुनः स्थापित कराना अपना परम कर्तव्य समझना चाहिये । इस सम्बन्धमें तटस्थ राजोंको यथासम्भव मिलकर काम करना चाहिये । इसके लिये सभी उचित साधनोंसे काम

* Duties of Reparation (ब्युटीज आफ रिपैरेशन)

लेना चाहिये । यदि युद्धकारी राजोंके साथ किसी प्रकारकी रियायत न की जाय, प्रत्येक नियम प्रतिकूल कामके लिये पूरा पूरा दण्ड दिया जाय और क्षतिपूर्ति^१ स्वरूप बहुत सा रुपया लिया जाय और मेल करानेका निरन्तर प्रयत्न किया जाय तो युद्ध बहुत जल्द समाप्त हो । पर यह तभी हो सकता है जब राज-समाजसे अन्ध स्वार्थ उठ जाय । जबतक यह धारणा रहेगी कि दो राजोंके लड़कर दुर्बल हो जानेमे अपना हित है तब तक यह शान्ति-स्थापनका भाव नहीं आ सकता ।

पाँचवाँ अध्याय ।

युद्धकारी राज और तटस्थ व्यक्तियोंका साधारण वाणिज्य ।

तीसरे और चौथे अध्यायोंमें युद्धकारी और तटस्थ राजोंके पारस्परिक व्यवहारका वर्णन हुआ है । अब हमको युद्धकारी राजों और तटस्थ व्यक्तियोंके सम्बन्धपर विचार करना है अर्थात् यह देखना है कि युद्धकारी राज तटस्थ व्यक्तियोंके साथ कैसा बर्ताव कर सकते हैं । इस प्रसंगमें 'तटस्थ' शब्द उन लोगो-के लिये नहीं आया है जो अपने विचारोंके कारण उभय पक्षकी ओरसे उदासीन हैं वरन् उन लोगोंके लिये जो तटस्थ राजोंकी प्रजा हैं । चू कि युद्धकालमें भी व्यापार होता रहता है और तटस्थ राज्योंके निवासी उभय पक्षके साथ व्यापार करते हैं इसलिये उनको युद्धकारी राजोंमें निपटनेके लिये प्रस्तुत रहना पड़ता है । प्रत्येक पक्षका यह लक्ष्य होता है कि दूसरे पक्षको कष्ट पहुँचे और व्यापार बन्द करना इसका एक प्रबल साधन है इसलिये स्वभावतः व्यापारियोंपर, जिनमें युद्धकालमें बहुधा अधिकतर तटस्थ देशीय होते हैं, कुदृष्टि रहती है । फिर भी अब इस सम्बन्धमें बहुतसे नियमोपनियम बन गये हैं, उन्हींका यहाँ दिग्दर्शन कराना है ।

जो नियम बने हैं वह दो सिद्धान्तोंके संघर्षके प्रतिफल स्वरूप हैं । एक ओर तो युद्धकारियोंका यह सिद्धान्त है कि हमें शत्रुको पगु बनानेके सब साधनोंसे काम लेनेका पूरा अधिकार है, दूसरी ओर तटस्थोंका यह सिद्धान्त है कि हमको अपने मित्रोंके साथ व्यापार करनेका पूरा अधिकार है । इस संघर्षमें

व्यापारियोंका पक्ष धीरे धीरे प्रबल होता गया है क्योंकि अब व्यापारका रूप अन्ताराष्ट्रिय हो गया है और प्रायः सभी देशोंके व्यापारियोंका हित मिल जाता है। स्थल युद्धमें यह प्रश्न उतना कठिन रूप धारण नहीं करता। पृथ्वीका प्रायः प्रत्येक भाग किसी न किसी राजके राज्यमें है। युद्धकारी देशोंके भीतर तटस्थ सम्पत्ति बहुत ही कम पायी जा सकती है। जो सम्पत्ति होगी वह भी आयात-कर देकर आयी होगी और यदि अचल होगी तो भी अन्य सम्पत्तिकी भांति उसपर भी साधारण राज-कर लगते होंगे। अतः यदि मुल्कगीरी सेनाके हाथ ऐसी सम्पत्ति लग जाय तो वह उसे शत्रु-सम्पत्तिवत् बर्तन सकती है। खुले समुद्रपर किसीका शासन नहीं है, कोई कर नहीं लगता। तटस्थोंके भी जहाज होते हैं और युद्धकारियोंके भी। युद्धकारी जहाजोंपर तटस्थ सम्पत्ति और तटस्थ जहाजोंपर युद्धकारी सम्पत्ति पायी जाती है। इसीलिये समस्या जटिल हो जाती है। बिना मित्रको क्षति पहुंचाये शत्रुको हानि पहुंचाना तो अभीष्ट होता है पर इसकी सिद्धि बड़ी कठिन होती है।

अगले दो अध्यायोंमें भी तटस्थोंके युद्धकालीन वाणिज्यका वर्णन होगा पर वह वाणिज्य विशेष प्रकारका और विशेष दशाका होगा। यहां हमें साधारण वाणिज्यका—जैसा वाणिज्य व्यापार साधारणतः शान्तिकालमें भी होता है—विचार करना है। इसके विषयमें समय समयपर दो सिद्धान्त माने गये हैं और आजकल जो नियमोपनियम प्रचलित है वह उन्हींके आधारपर बने हैं। वह सिद्धान्त यह हैं—

- (१) मालका स्वरूप उसके स्वामीके अनुरूप होगा। तटस्थ स्वामीका माल शत्रुपोतपर भी अग्राह्य है, शत्रुका माल तटस्थ पोतपर भी ग्राह्य है।

(२) मालका स्वरूप जहाजके अनुरूप होगा। शत्रुपोतपरका सब माल, चाहे वह किसीका हो, ग्राह्य है, तटस्थ पोतपरका सब माल, चाहे वह किसीका हो, अग्राह्य है।

यह दो तो मुख्य सिद्धान्त हैं पर कुछ दिनोंके लिये फ्रांसने एक तीसरा सिद्धान्त निकाला जिसे संसर्गदोष सिद्धान्त^१ कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि शत्रुमालके संसर्गसे तटस्थ सम्पत्ति भी दूषित हो जाती है। यदि शत्रुपोतपर तटस्थ माल लदा हो तो वह भी शत्रुका माल हो जाता है और यदि तटस्थ पोतपर शत्रुका माल लदा हो तो वह जहाज भी शत्रुपोत हो जाता है।

सत्रहवीं शताब्दीमें यूरोपमें नौबलसम्पन्न राष्ट्रोंका अभ्युदय आरम्भ हुआ। ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन, हालैण्ड, पुर्तगाल, प्रशा, रूस और अमेरिकाकी नौ-सेनाकी वृद्धिके साथ साथ वाणिज्य व्यापारकी भी वृद्धि होने लगी। इस बीचमें कई बड़े युद्ध हुए जो वर्षों तक चले। इन युद्धोंमें भिन्न भिन्न राज उपयुक्त दोनों नियमोंको स्वेच्छापूर्वक बर्तते थे। एक ही साथ कई प्रकारके नियमोंके बर्ते जानेके कारण व्यापार नष्ट भ्रष्ट हो जाता था क्योंकि व्यापारियोंको यह निश्चय ही नहीं रहता था कि किस समय किस नियमके चगुलमें फस जायगे। जो राज एक समय एक नियम बर्तता था वही दूसरे समय दूसरा नियम बर्तता था। ब्रिटेन हसवत् नीर-क्षीर-विवेक करनेका पक्षपाती था। वह शत्रुपोतपर लदे हुए तटस्थ मालको छोड़कर केवल पोतको गिरफ्तार करता था और तटस्थ पोतपर लदे हुए शत्रुमालको भी गिरफ्तार करता था। यह अवस्था या अनवस्था बहुत दिनों तक नहीं रह सकती थी।

१९१२ में क्रीमियन युद्ध हुआ। इसमें एक ओर तुर्की^२, ब्रिटेन और फ्रांस थे, दूसरी ओर रूस था। युद्धके अन्तमें सन्धि परि-

^१ Doctrine of Infection (डाक्ट्रिन आफ इन्फेक्शन)

षट् पैरिसमे बैठी । जिस सन्धि द्वारा युद्ध समाप्त हुआ उसका नाम पैरिसकी सन्धि है । उसी अवसरपर एकत्र हुए प्रतिनिधि-

योंने एक और बड़े महत्त्वका काम किया । उन्होंने पैरिसकी घोषणा उस विवादग्रस्त प्रश्नपर भी जिसका दिग्दर्शन हमने इस अध्यायमें किया है, विचार

किया । अन्तमे आपसमें समझौता करके जो निश्चय हुआ उसे पैरिसकी घोषणा[॥] कहते हैं । उसपर ३ वैशाख १९१३ को हस्ताक्षर हुए । घोषणाकी दूसरी और तीसरी धाराएँ बड़े महत्त्वकी हैं । उन्होंने जिस सिद्धान्तका समर्थन किया है वह आजकल सर्वमान्य है । उसका आशय यह है कि जहाजपरके मालका रूप उस जहाजके भण्डेके अनुरूप होता है और तटस्थ सम्पत्ति सदैव अग्राह्य है । तटस्थ जहाजपरका सब माल तटस्थ और शत्रुजहाजपरका सब माल शत्रु माल माना जाता है । परन्तु शत्रुपोतपरका तटस्थ माल तटस्थ ही रहता है । वह धाराएँ इस प्रकार है—

निषिद्ध वस्तुओंको छोड़ कर शत्रुके सब मालकी रक्षा तटस्थ भण्डा करता है (धारा २) ।

निषिद्ध वस्तुओंको छोड़कर शत्रुभण्डेके नीचेकी तटस्थ सम्पत्ति जब्त नहीं की जा सकती (धारा ३)

पहिलेकी अपेक्षा यह नियम बहुत उदार हैं और सम्पत्ति तटस्थ वाणिज्यकी इससे अधिक रक्षाकी आशा नहीं की जा सकती ।

इस घोषणाकी अन्तिम धारा कहती है कि यह घोषणा उन्हीं राज्योंको बाध्य कर सकेगी जो इसपर हस्ताक्षर कर देंगे । अमेरिका, चीन, स्पेन आदि कई राज्योंने आरम्भमें हस्ताक्षर नहीं किया । इस सम्बन्धमें दो प्रश्न उठते हैं: यदि दो ऐसे राज्योंमे युद्ध हो जिन्होंने हस्ताक्षर न किया हो या दो ऐसे राज्योंमे युद्ध हो जिनमेंसे एकने

* Declaration of Paris [डिक्लैरेशन आफ परिस]

हस्ताक्षर न किया हो तो उस दशामें क्या होगा ? इन प्रश्नोंका उत्तर राजोंका व्यवहार देता है। १९५५ में स्पेन और अमेरिकामें युद्ध हुआ। इन दोनोंने हस्ताक्षर नहीं किया था पर दोनोंने इसका पालन किया। १९५१ में चीन और जापानमें युद्ध हुआ। चीनने हस्ताक्षर नहीं किया था पर घोषणाका अनुगमन किया। १९२०-१९२८ के फ्रांसीसी जर्मन युद्धमें स्पेन और अमेरिकाके वाणिज्यके साथ इसीके अनुसार दोनों पक्षोंने व्यवहार किया था यद्यपि स्पेन और अमेरिकाने हस्ताक्षर नहीं किया था। इन उदाहरणोंसे यह निर्विवाद है कि हस्ताक्षर किया हो या न किया हो, सभी राजोंने इसे मान लिया है।

मूल झगड़ा तो तय हो गया पर अभी दो तीन गौण विवादस्थल रह गये हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि युद्धके समय एक युद्धकारी पक्ष कोई ऐसा व्यापार, जो शान्तिकालमें केवल उसके प्रजावर्गीयोंके हाथमें रहता है, तटस्थोंको सौंप देता दो विवादास्पद प्रश्न है। ब्रिटेनका कहना है कि जो तटस्थ इस अनुज्ञासे लाभ उठाएंगे वह शत्रुके सहायक होंगे और इस लिये उनके साथ शत्रुवत् आचरण किया जायगा। अमेरिकाका मत इसके विरुद्ध है। ब्रिटेन और अमेरिका दोनोंके साथ कई प्रबल राज हैं। सम्भव है यह प्रश्न भी महत्त्व पकड़े और भविष्यमें लड़ाईका कारण बन जाय।

दूसरा प्रश्न सशस्त्र व्यापारिक पोतोंके सम्बन्धमें उठता है। आजकल व्यापारिक पोतोंपर भी रक्षार्थ कुछ शस्त्रादि रहते हैं। मान लीजिये कि किसी युद्धकारी देशीय व्यापारिक जहाजपर तटस्थ माल है। यदि यह जहाज शत्रुके हाथ पड़ जाय तो मालकी क्या दशा होगी। ब्रिटेनका कहना है कि सशस्त्र जहाजपर होनेके कारण उसका तटस्थ स्वरूप चला गया।

अमेरिकाका सिद्धान्त है कि यदि तटस्थ व्यापारीकी अनुमतिसे शस्त्र रक्खे गये और उनसे काम लिया गया हो तो तटस्थ रूप-का क्षय हुआ अन्यथा नहीं। यह प्रश्न भी भगड़ेका घर हो सकता है। इसी लिये लारेन्स कहते हैं कि पैरिसकी घोषणा अत्युत्तम वस्तु है पर उसके लिये एक प्रामाणिक भाष्यकी आवश्यकता है।

एक और प्रश्न था जो बड़े भगड़े खड़े कर रहा था। कई तटस्थ राज्योंका यह कहना था कि यदि हमारे वाणिज्यपोतोंके साथ हमारे रणपोतोंका गारद^{*} रहे तो उन वाणिज्यपोतोंकी तलाशी

न ली जाय। रणपोतोंका साथ होना ही इस बातका प्रमाण मान लिया जाय कि इसपर कोई गारद

शत्रुसम्पत्ति नहीं है। अन्य राज इसका विरोध करते थे। कई बार लड़ाइयां भी हो गयीं। परन्तु लन्दनकी घोषणा[†] (१९६६) ने इस भगड़ेका भी अन्त कर दिया। उसने यह निश्चय कर दिया कि यदि तटस्थ जहाजोंके साथ उनके राजके रणपोतोंका गारद हो तो उनकी तलाशी न ली जाय। यह निश्चय हुआ कि यदि इस प्रकार किसी रक्षित जहाजका किसी युद्धकारी रणपोतसे सामना हो जाय तो गारद पोतका अध्यक्ष शत्रुपोतको व्यापारिक पोतके माल आदिका पूरा व्योरा दे दे। यदि रणपोत इससे सन्तुष्ट न हो तो गारद पोतका अध्यक्ष व्यापारिक पोतकी स्वतः जांच करे। यदि उसे भी कुछ सन्देह हो तो वह उसे रणपोतको सौंप दे और आप हट जाय, यदि नहीं तो दोनों अफसरोंके मतभेदकी अवस्थामें उस समय कुछ नहीं हो सकता। पीछेमे उस युद्धकारी राजकी सकार और तटस्थ राजकी सकारमें लिखा-पढ़ी होती रहेगी।

* Convoy (कॉन्वाय) † Declaration of London.
(डिक्लैरेशन ऑफ लण्डन)

छठवाँ अध्याय ।

निषिद्ध व्यापार ।

७३

पहले अध्यायमें भी निषिद्ध व्यापार अर्थात् निषिद्ध वस्तुओंके व्यापारका उल्लेख आ चुका है । निषिद्ध

वस्तु^{७३} खुले समुद्रमें या किसी युद्धकारी पक्षके तटलग्न जलमें जहाजपर लदी हुई उस तटस्थ सम्पत्तिको कहते हैं जो युद्धमें उपयोगी हो सकती है और शत्रुके सामरिक कार्यों में सहायता पहुँचानेके लिये जा रही है । यह परिभाषा समझनेमें कठिन नहीं है । युद्धकालमें भी तटस्थदेशीय प्रजा उभय पक्षसे वाणिज्य-सम्बन्ध रखती है । वह उभयपक्षके हाथ भाँति भाँतिकी वस्तुएँ बेचती है । इनमेंसे कुछ वस्तुएँ ऐसी भी होती है जो लड़ाईके लिये उपयोगी होती हैं । इसलिये यदि एक पक्षके लिये ऐसी कोई वस्तु जाती होगी तो दूसरा पक्ष उसे अवश्य रोकना चाहेगा । उसकी दृष्टिमें वह वस्तु निषिद्ध होगी । परन्तु यह निश्चय हो जाना चाहिये कि वह वस्तु वस्तुतः शत्रुके पाम जा रही है । यदि वह किसी तटस्थके पास जा रही है तो निषिद्ध नहीं हो सकती ।

अन्ताराष्ट्रिय विधानके पुराने आचार्य ग्रोशियसने वाणिज्य-सामग्रीको तीन विभागोंमें बाँटा था—

- (१) शस्त्रादि जो केवल युद्धके लिये उपयोगी होते हैं ।
- (२) ऐसी वस्तुएँ जिनका युद्धमें कोई उपयोग नहीं है, जैसे घड़ी, ब्रश, पुस्तकें इत्यादि ।
- (३) ऐसी वस्तुएँ जो शान्ति और युद्ध दोनों कालमें उपयोगी होती हैं, जैसे रुपया, जहाज, अन्न इत्यादि ।

* Contraband articles (कॉन्ट्राबैंड आर्टिकल्स)

इनमेंसे द्वितीय विभाग कदापि निषिद्ध नहीं ठहराया जा सकता और प्रथम सदैव ही निषिद्ध ठहराया जायगा। द्वितीयके विषयमें ही विवाद हो सकता है। आजकल भी कुछ उलट फेर-के उपरान्त लगभग इसी प्रकारका विभाग किया जाता है—

- (१) पूर्ण निषिद्ध❖—वह युद्धोपयोगी वस्तुएं जो (यदि वह शत्रु देशको जा रही हों) तत्काल जब्त की जा सकती हैं।
- (२) गौण निषिद्ध‡—वह वस्तुएं जो तभी जब्त की जा सकती हैं जब वह शत्रु सेनाके उपयोगके लिये जा रही हों।
- (३) विहित वस्तु§—वह वस्तुएं जो किसी भी दशामें निषिद्ध नहीं ठहरायी जा सकतीं।

पूर्ण और गौण निषिद्ध वस्तुओंमें भेद तो बहुत दिनोंसे माना जाने लगा है पर यह निर्णय करना कठिन होता है कि किस अवस्थामें वस्तु गौण और किस अवस्थामें पूर्ण निषिद्ध है। १८५५ में सर बाण्टर स्काटने कहा था कि सबसे बड़ा भेद यह है कि वह वस्तुएं जीवनके साधारण कामों या व्यापारिक पोतोंके कामके लिये जा रही हैं या इस बातकी अधिक सम्भावना है कि वह सैनिक उपयोगके लिये जा रही हैं। जिस नौस्थानको वस्तुएं जा रही हैं उसका स्वरूप बुरी पहिचान नहीं है। यदि वह साधारण व्यापारिक नौ-स्थान है तो यद्यपि वहां एकाध रणपोत बन भी जाता हो तो यही मानना चाहिये कि वस्तुएं नागरिक कामोंके लिये जा रही हैं। परन्तु यदि वह प्रधानतया सैनिक नौस्थान हो तो चाहे वहां व्यापारिक पोत भी जाते हों, पर यही मानना चाहिये कि वस्तुएं सैनिक कामके लिये जा रही हैं। इस सिद्धान्तके मान

* Absolute contraband (एन्सोल्यूट कॉन्ट्राबैंड)

‡ Conditional contraband (कॉन्डिशनल कन्ट्राबैंड)

§ Free goods (फ्री गुड्स)

लेनेपर भी यह प्रश्न रह जाता है कि किन किन वस्तुओंको पूर्ण निषिद्ध मानें। भिन्न भिन्न राज अपनी अपनी इच्छाओंके अनुसार समय समयपर काम करते थे। अन्तमें यह प्रश्न लन्दनकी कांफरेंसके सामने १९६४ में आया।

लन्दनकी घोषणाकी २२ वीं धारामें पूर्ण निषिद्ध वस्तुओंकी एक सूची दी है। वह धारा इस प्रकार है—

निम्नलिखित वस्तुएं पूर्ण निषिद्धके नामसे बिना पहिलेसे सूचना दिये ही निषिद्ध ठहरायी जा लन्दनकी घोषणाके सकती हैं—

अनुसार पूर्ण १ हर प्रकारके शस्त्र (इनमें शिकारके कामके निषिद्ध वस्तुएं शस्त्र भी अन्तर्गत हैं) और उनके अवयव।

२ बन्दूकों और तोपोंसे फेंकी जानेवाली वस्तुएं, तोपों और बन्दूकोंमें भरी जानेवाली वस्तुएं, कार-तूलें और इन वस्तुओंके अवयव।

३ युद्धके लिये विशेष रूपसे बनायी गयी बारूद और विस्फोटक।

४ तोप चढ़ानेके यन्त्र, तोप खींचनेकी गाड़ियां, सैनिक गाड़ियां, युद्ध-स्थलमें ढलाई करनेके यन्त्र और उनके अवयव।

५ सैनिक कामके कपड़े।

६ सैनिक कामके साज।

७ सवारी और ढुलाईके पशु।

८ फौजी पडावमें काम आनेवाली वस्तुएं और उनके अवयव।

९ (जहाजोंकी रक्षाके लिये) धातुकी चादर।

१० रणपोत और नावे और इनके ऐसे अवयव जो केवल रणपोतों-के ही काम आ सकते हैं।

११ स्थल या जलपर काम आनेवाले शस्त्रों या अन्य रणोपयोगी वस्तुओंके बनाने और मरम्मत करनेके यन्त्र।

यह सूची उस समयके लिये तो पर्याप्त थी पर वैज्ञानिक आविष्कारोंके युगमें यह नहीं कहा जा सकता कि किस समय कौन सी नयी रणोपयोगी वस्तु निकल आयेगी। इसलिये २३ वीं धाराके अनुसार सरकारोंको यह अधिकार दिया गया कि अन्य विशेषतया रणोपयोगी वस्तुओंका नाम इस तालिकामें जोड़ लें पर इसकी सूचना दूसरी सरकारोंको दे देनी चाहिये। यदि युद्ध छिड़नेके पीछे तालिकामें वृद्धि की जाय तो केवल तटस्थ राज्योंको सूचित करना चाहिये।

निरन्तर यात्रा^{*} का प्रश्न भी पुराना है। ऐसा हो सकता है कि निषिद्ध जातिका माल एक तटस्थ देशसे दूसरे तटस्थ देशको भेजा जाय और फिर वहांसे एक युद्धकारी निरन्तर यात्रा देशको भेज दिया जाय। बोअर युद्धमें ऐसा ही होता था। यूरोपके तटस्थ देशोंसे चला हुआ निषिद्ध माल अफ्रिकाके किसी तटस्थ भूभाग (जैसे जर्मन या पुर्तगीज प्रदेश) में उतारा जाता था, क्योंकि बोअर राजके पास कोई नौस्थान न था, और फिर वहांसे ट्रांसवाल पहुंचाया जाता था। या यह हो सकता है कि माल किसी तटस्थ नौस्थानमें उतरे और वहांसे दूसरे जहाजपर लाद कर तब आगे जाय। ऐसी दशामें व्यापारियोंको यह कहनेका अवसर रहेगा कि हम तो मालको एक तटस्थ देशसे दूसरे तटस्थ देशको ले जाते हैं, अतः यह निषिद्ध नहीं है। इसी प्रकारके प्रश्नोंके कारण निरन्तर यात्राका सिद्धान्त निकला था। एक अर्थात् तटस्थ पक्ष कहता था कि मालको तभी निषिद्ध ठहराना चाहिये जब उसकी यात्रा निरन्तर अर्थात् अविच्छिन्न रही हो। दूसरा अर्थात् युद्धकारी पक्ष स्वभावतः इसका विरोध करता था। लन्दनकी घोषणाने अपनी ३० वीं

* Continuous voyage. (कॉन्टिन्युअस वॉएज)

धारामें स्पष्ट कर दिया कि यात्राका निरन्तर होना आवश्यक नहीं है। यदि माल शत्रुके लिये जा रहा है तो वह निषिद्ध है चाहे उसकी यात्रा कितने ही दुकड़ोंमें हो। इस सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारने यह स्पष्ट कर दिया था कि इस नियमसे उसी अवस्थामें काम लिया जायगा जब कि माल पहिलेसे शत्रुदेश भेजनेके लिये सोच कर रवाना किया गया हो। यदि कोई व्यापारी अपना माल इस आशापर ले जाय कि स्यात् तटस्थ भूमिपर पहुंचनेपर इसके लिये ग्राहक मिल जाय तो वह निषिद्ध न माना जायगा।

निषिद्ध मालका निषिद्धत्व उसके ठिकानेपर निर्भर है। यदि वह शत्रुके पास जा रहा है तो निषिद्ध है, यदि तटस्थ देशको जा रहा है तो निषिद्ध नहीं है। इसलिये ठिकानेका प्रमाण ठिकानेके प्रमाण § का सर्वोपरि महत्त्व होता है। लन्दनकी घोषणाने इस सम्बन्धमें यह निश्चित किया कि यदि माल किसी शत्रु नौस्थानको जा रहा हो या शत्रुसेनाके लिये भेजा जा रहा हो, या उसके कागजोंके अनुसार यह सिद्ध होते हुए भी कि माल किसी तटस्थ नौस्थानको जा रहा है, जहाज बीचमें किसी शत्रु नौस्थानपर रुकनेवाला हो, या उससे शत्रुसेनासे भेंट होनेवाली हो या, उसके कागजोंसे यह सिद्ध होनेपर भी कि माल किसी तटस्थ नौस्थानको जा रहा है, जहाज ठीक रास्तेको छोड़कर अन्य मार्गसे जा रहा हो और इसका ठीक ठीक कारण न बता सके, तो इन सब अवस्थाओंमें 'ठिकानेका प्रमाण' पूर्ण होता है अर्थात् यह बात निर्विवाद हो जाती है कि माल शत्रुके लिये जा रहा है और इसलिये निषिद्ध है। इस सम्बन्धसे यह स्मरण रखना चाहिये कि शत्रु नौस्थानमें वह स्थान भी परिगणित हैं जो सम्प्रति शत्रुसेनाके अधिकारमें हैं।

लन्दन कान्फरेन्सके सामने गौण निषिद्ध वस्तुओंका भी प्रश्न था। कुछ राजोंकी सम्मति तो यह थी कि गौण निषिद्ध विभाग ही बठा दिया जाय पर अन्य राज इस-लन्दन-घोषणाके पर सहमत न हुए। अन्तमें कान्फरेन्सने अपनी अनुसार गौण घोषणामें गौण निषिद्ध वस्तुओंकी भी एक तालिका निकाली और साथ ही राजोंको यह अधि-कार दे दिया कि समुचित सूचना देकर इस तालिकामे वृद्धि कर ले। घोषणाकी २४ वीं धारा इस प्रकार है—
निम्नलिखित वस्तुएं जो युद्ध और शान्ति दोनों अवस्थाओंमें काममें आ सकती है गौण निषिद्धके नामसे बिना पूर्व सूचना दिये ही निषिद्ध ठहरायी जा सकती है—

- (१) भोज्य पदार्थ।
- (२) पशुओंके खाने योग्य घास और अन्न।
- (३) कपड़े, कपड़े बनानेकी सामग्री और रणोपयोगी जूते।
- (४) सोना और चांदी तथा कागजका सिक्का।
- (५) हर प्रकारकी रणोपयोगी गाड़ियां और उनके अवयव।
- (६) हर प्रकारकी नावें और चल नावाश्रयक।
- (७) हर प्रकारकी रेल, तार, बेतार तथा टेलिफोन-सम्बन्धी सामग्री।
- (८) गुब्बारे और वायुयान, इनके अवयव और सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुएं।
- (९) हर प्रकारका ईंधन तथा मशीनोंमें देनेका तेल, चर्बी आदि।
- (१०) बारूद और विस्फोटक जो विशेषतया युद्धके लिये न बने हों।

* Dock (डॉक)—वह स्थान जहा जहाजोंकी मरम्मत होती है। जड़ाईके दिनोंमें चल अर्थात् पानीपर चलनेवाले नावाश्रयोंसे भी काम लिया जाता है।

- (११) कांटेदार तार और उसे बैठाने तथा काटनेका यन्त्र ।
 (१२) नाल और नालबन्दीकी सामग्री ।
 (१३) हर प्रकारका साज ।
 (१४) हर प्रकारकी दूरबीन और क्रोनोमिटर, घड़ियां तथा जहाजोंके कामके यन्त्र ।

गौण निषिद्ध वस्तुओंके लिये निरन्तर यात्राका नियम नहीं है । यदि जहाजके कागजोंसे यह सिद्ध हो कि वह शत्रु देशको नहीं जा रहा है या यह कि उसपरका माल निरन्तर यात्रा शत्रु सेनाके लिये नहीं है और जहाज अपने और ठिकानेका निर्दिष्ट मार्गसे विचलित न हुआ हो तो वस्त्रके प्रमाण सम्बन्धमें निरन्तर यात्राका प्रश्न नहीं उठाया जाता । ठिकानेका निश्चय इस प्रकार होता है कि यदि माल शत्रुके किसी रणपोत नौस्थान, किले, किलेदार नगर, संगराधार या सैनिक पडावको जा रहा हो, या शत्रुदेशीय किसी ऐसे ठेकेदारके पास जा रहा हो जो शत्रु सरकारके हाथ ऐसी वस्तुएँ बेचा करता है या किसी सर्कारी विभागके लिये जा रहा हो तो वह निषिद्ध है । पर हाँ यदि यह प्रमाणित हो सके कि वह युद्धके कामका ही नहीं है तो छोड़ा जा सकता है ।

तटस्थ व्यापारियोंके साथ और भी कई प्रकारकी रियायतें की गयी हैं । यदि किसी जहाजपर गौण निषिद्ध माल लदा हो और वह यह प्रमाणित कर सके कि उसे युद्ध तटस्थ व्यापारियोंकी छिड़नेका पता न था तो जहाज और उसपरका सुविधार्थ अन्य माल छोड़ दिया जायगा और निषिद्ध माल समुचित मूल्य देकर ले लिया जायगा, उसे योंही जब्त नहीं कर सकते । समुचित मूल्यके लिये कोई निश्चित नियम तो नहीं है परन्तु प्रायः मालका बाजार-भावके अनुसार

दाम, डुलाईका व्यय और दस रुपया सैकड़ा लाभ जोड़कर दे देते हैं। यदि किसी जहाजपर एक बार निषिद्ध माल लदा रहा हो और वह माल उतार देनेके बाद पता मिळे तो उसे किसी प्रकारका दण्ड नहीं दिया जा सकता पर यदि यह प्रमाणित हो जाय कि अपनेको बचानेके लिये उसने अपने कागजोंमें जाल किया था तो उसे जब्त करना अन्याय्य न होगा। कमसे कम ब्रिटेनने ऐसा दण्ड कई बार दिया है। इसी प्रकार यदि कोई निषिद्ध माल किसी ऐसे स्थानके लिये भेजा गया हो जो उस समय शत्रुके कब्जेमें रहा हो पर पीछेसे शत्रुके अधिकारसे निकल गया हो तो फिर वह माल जब्त नहीं किया जा सकता। पहिले जहाज भी जब्त कर लिया जाता था पर आजकल, यदि वह जहाज मालके मालिककी ही सम्पत्ति न हो और उसके कागजोंमें किसी किस्मकी जालसाजी न हो तो, ऐसा नहीं किया जाता। यह भी नियम है कि यदि जहाजपर जो कुछ माल हो उसके आधेसे अधिक निषिद्ध हो तो वह जहाज जब्त किया जा सकता है। जहाजपर निषिद्धके अतिरिक्त जो माल होता है उसमें हाथ नहीं लगाया जाता पर यदि वह निषिद्ध वस्तुके स्वामीका ही हो तो जब्त किया जा सकता है।

उपर्युक्त नियमोंके अतिरिक्त २८ वीं धाराने निम्न लिखित वस्तुओंको नित्य विहित ठहराया—

- (१) रूई, रेश, ऊन, पटुआ, सन इत्यादि कपड़ा बनानेका कच्चा माल।
- (२) तेलहन।
- (३) रबड़, गोद, लाह, बिरोजा।
- (४) बे कमाया चमड़ा, सींग, हड्डी और हाथीदाँत।
- (५) हर प्रकारकी प्राकृतिक और कृत्रिम खाद।
- (६) खानसे निकली हुई बे साफ की हुई धातु।

- (७) मिट्टी, चूना, खरी, पत्थर, संगमरमर, ईंट, स्लेट, खपड़े ।
 (८) चीनीकी बनी चीजें और कांच ।
 (९) कागज और कागज बनानेकी सामग्री ।
 (१०) साबुन, रंग, वार्निश और उनके बनानेकी सामग्री ।
 (११) रंग उडानेकी दवा, सोडा क्षार, कास्टिक सोडा, अमोनिया, तूतिया इत्यादि ।
 (१२) कृषि, खनिज, मुद्रण और कपड़ा बनानेके यंत्र ।
 (१३) रत्न, उपरत्न, मोती, सीप और मूंगा ।
 (१४) क्रोनोमिटरके अतिरिक्त अन्य प्रकारकी घड़ियाँ ।
 (१५) फैशन और शौकीनीकी सामग्री ।
 (१६) पर, बाल और रोए (सूअर आदिके शरीरके कांटेके समान रोए) ।
 (१७) घर और दफ्तरकी सजावटका सामान ।

यह तालिकाएं और बढ़ायी जा सकती हैं । घोषणाने यह नियम कर दिया कि इस प्रकारकी अन्य वस्तुएं भी विहित मानी जायें । इनके अतिरिक्त २९ वें नियमके अनुसार रोगियों और आहतोंकी सुश्रूषाकी सामग्री तथा वह वस्तुएं जो यात्रियों और नाविकोंके उपभोग मात्रके लिये हों, व्यापारके लिये नहीं, निषिद्ध न मानी जायेंगी । परन्तु यदि सुश्रूषाकी सामग्री शत्रुके पास जा रही हो तो अत्यन्त आवश्यकता पडने पर, निषिद्ध न होते हुए भी, पूरा दास देकर उसे रोक सकते हैं ।

यूरोपियन महासमरने इन सब नियमोंनियमोंकी नि सारता प्रमाणित कर दी । युद्ध छिडते ही जर्मनी और आस्ट्रियाने यह घोषित किया कि हम लन्दनकी घोषणाका अनुसरण करेंगे । ब्रिटेन, फ्रान्स और रूसने कुछ परिवर्तनके साथ अनुसरण करनेकी घोषणा की । इटलीने भी कुछ संशोधन किया । इसपर जर्मनी और आस्ट्रि-

याने भी संशोधन किये। यह सब बातें युद्ध छिड़नेके तीन मही-
नेके भीतर हो गयीं। पर यहीं अन्त न हुआ।
महायुद्ध और प्रायः तीन वर्ष तक संशोधन और परिवर्तन होता
निषिद्ध व्यापार रहा। लोहा, ताँबा, निकल, सीसा, ऐल्युमि-
नियम, मोटर गाडियाँ, मोटरटायर, रबड़, गन्धक, काँटेदार तार,
गन्धकका तेजाब, गिलसरीन, रेंडीका तेल, राँगा, ऊन, ऊनी कपड़े,
चमड़ा, कोयला, मशीनें, रुई, क्रमशः यह वस्तुएं पूर्ण निषिद्ध-
सूचीमें आगयीं। गौण और पूर्ण निषिद्धका भेद तो एक प्रकारसे
मिट हो गया। निरन्तर यात्राका नियम गौण निषिद्धोंके लिये भी
लगा दिया गया। इन बातोंसे तटस्थ व्यापारकी भारी क्षति हुई
पर जब पृथ्वीके महत्तम राज युद्धमें सम्मिलित थे तो रोकता कौन।

इन राजोंको लन्दनकी घोषणामें परिवर्तन और संशोधन
करनेका अवसर एक तो इसलिये मिल गया कि स्वयं उसने ही
सूचियोंके घटाने बढानेकी अनुज्ञा दे रखी है, दूसरे उसपर सब
राजोंके हस्ताक्षर भी नहीं हुए हैं अतः इन लोगोंने कह दिया कि
उसमें परिवर्तन करना अवैध नहीं है।

निषिद्ध व्यापार सम्बन्धी नियमोंमें अभी बहुत संशोधनकी
आवश्यकता है। यदि विहित और निषिद्धका भेद न मिटाया
जासके तो गौण निषिद्धका वर्ग तो तोड़
निषिद्ध व्यापार ही देना चाहिये और राष्ट्रसंघकी ओरसे पूर्णनि-
सम्बन्धी नियमोंमें षिद्ध वस्तुओंकी एक सूची निकलबी चाहिये जो
संशोधनकी सर्वमान्य हो। जैसा कि जे. बी. मूरने दिखलाया
अत्यन्त है गौण निषिद्ध सम्बन्धी नियम निरर्थक हैं।
आवश्यकता जो माल सेनाके लिये जाता है वह पूर्ण निषिद्ध
माना जाता है। इसी प्रकार जो माल किसी
किलाबन्द नगरको जाता है वह पूर्ण निषिद्ध होता है। परन्तु

एक तो प्रायः सभी प्रधान नगरोंमें किलाबन्दी होती है, दूसरे यह हो सकता है कि किलाबन्द नगरमें गया हुआ माल नागरिकोंके ही काम आये। फिर, जो माल नागरिकोंके लिये आता है अतः गौणनिषिद्ध होनेके कारण पकड़ा नहीं जाता, सरकार उसे भी तो ले सकती है। उसे पूरा अधिकार है कि अपने यहाँके व्यापारियोंको अपने हाथ माल बेचनेपर विवश करे। इसलिये इन जटिल नियमोंसे विशेष लाभ नहीं होता।

सातवाँ अध्याय ।

तटावरोध ।

तटावरोध एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके सदृश स्थल युद्धमें कोई प्रक्रिया नहीं मिलती । स्थल युद्धमें यह तो बहुधा होता है कि शत्रुका कोई गढ़ या नगर घेर लिया जाय पर इसमें और तटावरोधमें बहुत अन्तर है । किले या नगरके घेरनेका उद्देश्य उसपर कब्जा करना होता है, तटावरोधका उद्देश्य यह भी हो सकता है पर प्रधान उद्देश्य प्रायः यही होता है कि उस मार्ग से शत्रु-देशमें किसी प्रकारका माल न जाने पावे । तटावरोधमें अवरुद्ध तट समुद्रकी ओरसे ही बन्द रहता है । इससे शत्रुकी तो क्षति होती ही है, तटस्थोंकी भारी हानि होती है । अवरुद्ध स्थानमें गौण निषिद्ध अथवा विहित वस्तुका भी प्रवेश नहीं हो सकता ।

पहिले पहिल डच लोगोंने इस क्रियासे काम लेना आरम्भ किया । प्रोशियनकी यह सम्मति थी कि यदि किसी अवरुद्ध स्थानके शीघ्र ही आत्मसमर्पण करने अथवा शान्तिके पुनः स्थापित होनेकी सम्भावना हो तो ऐसे स्थानको रसद पहुँचाकर सहायता देना दण्ड्य है पर डच सरकार इसके बहुत आगे बढ़ गयी । उसने यह घोषणा की (१६८७) कि यदि डच नौबल किसी तटका अवरोध कर रहा हो तो उसमें प्रवेश करना या उसमेंसे बाहर निकलना अपराध है । इतना ही नहीं, यदि कोई जहाज खुले समुद्रमें मिल जाय और यह प्रमाणित हो जाय कि वह किसी अवरुद्ध नौस्थानमें प्रवेश करनेका

विचार रखता है या किसी अवरुद्ध नौ-स्थानसे निकल भागा है तो भी वह दण्डनीय है। इन सब अपराधोंका एकमात्र दण्ड था जहाज और मालकी जहती।

उ्यों उ्यों अन्य राज्योंकी नौशक्ति बढ़ती गयी त्यों त्यों अवरोध-का प्रयोग बढ़ता गया। अवरोध सम्बन्धी नियमोंमें भी भयङ्कर विभिन्नता थी फ्रेञ्च प्रजातन्त्रकी स्थापनाके बाद फ्रांसको सारे यूरोप, और विशेष कर ब्रिटेन, से लड़ना पड़ा। इस लड़ाईमें अवरोधसे जैसा काम लिया गया उसे अन्याय, अनुचित और शक्तिके दुरुपयोगके सिवाय और कुछ नहीं कह सकते। कागजी अवरोधोंकी भरमार थी। ब्रिटेनने घोषणा कर दी कि वह सब तटवर्ती नगर अवरुद्ध हैं जहाँ ब्रिटिश व्यापारिक पोत नहीं जा सकते। इसका अर्थ यह हुआ कि फ्रांसका सारा समुद्रतट अवरुद्ध होगया। इसी प्रकार फ्रांसने ब्रिटेनके सारे समुद्र तटको अवरुद्ध घोषित कर दिया। ब्रिटेनकी नौशक्ति फ्रांससे अधिक थी फिर भी न तो ब्रिटिश जहाजोंने फ्रांसका सारा तट रोक रक्खा था न फ्रांसीसी जहाजोंने ब्रिटेनको चारों ओरसे घेर लिया था। इसपर भी ब्रिटेन और फ्रांस दोनों ही मतवालोंकी भाँति तटस्थ व्यापारकी हत्या इत्थलिये कर रहे थे कि दोनों ही देशोंमें तटस्थ माल पहुँच ही जाता था। वाटलूके युद्धके बाद जो सन्धि हुई उसने युद्धका तो अन्त कर दिया परन्तु प्रश्न हल न हुआ। यह अवस्था १९१३ तक चली गयी। उस साल पैरिसकी घोषणा ने इसे कुछ सुलझाया। उसने यह महत्त्व पूर्ण नियम बनाया कि 'वही अवरोध मान्य होगा जो कि सक्षम होगा'। उस समय सक्षम अवरोधकी यह व्याख्या की गयी कि सक्षम अवरोध वह है जो इतनी सेना द्वारा किया जाय कि भीतर जाना या बाहर आना

बन्द हो जाय । पर यह व्याख्या ठीक नहीं है । बहुत बड़े बड़े जहाजोंके बीचमेंसे भी छोटी सी नाव विकल सकती है । इस लिये १९५७ में संयुक्त राजकी सरकारने जो व्याख्या की वह अधिक युक्तिसंगत है । उसके अनुसार वह अवरोध सक्षम है जो इतनी नौसेनाके द्वारा किया जाय कि भीतर जाना या बाहर आना आशका-जनक हो अर्थात् आने जानेवालेको पकड़े जानेका पर्याप्त भय रहे । यही व्याख्या इस समय सर्वमान्य है । कुछ राज यह कहते थे कि यह भी आवश्यक शर्त होनी चाहिये कि अवरोधक जहाज स्थिर रहे पर यह शर्त मानने योग्य नहीं है । यदि जहाज लङ्गर डालकर पड़े रहें तो दो दिनमें शत्रुकी पनबुडियां उन्हे रसातल भेज दें ।

अवरोध सक्षम तो होना ही चाहिये, जो अवरोध सक्षम होता है अर्थात् वस्तुतः एक पक्षके रणपोत शत्रुके तटके किसी अशको रोक लेते हैं तो उसे वास्तविक अवरोध § भी कहते हैं । अवरोधके प्रकार कभी कभी ऐसा होता है कि पहिले यह सूचना दे दी जाती है कि हम अमुक तिथिसे अमुक स्थानका अवरोध करेगे अर्थात् घोषणात्मक अवरोध ¶ कर दिया जाता है पर वहा नौसेना भेजी नहीं जाती या इतना कम भेजी जाती है कि अवरोध सक्षम नहीं होता । इसे कागजी अवरोध † कहते है । यह सर्वथा अवैध है । घोषणात्मक अवरोधके पीछे सक्षम अवरोध ही होना चाहिये ।

सक्षम अवरोध भी दो प्रकारका होता है । यदि वह उस स्थानको जीतनेके उद्देश्यसे किया जाय तो उसे अधिकारफलक

§ Blockade de facto (ब्लॉकेड डी फैक्टो)

* Blockade by notification, (ब्लॉकेड बाइ नोटिफिकेशन)

† Paper blockade (पेपर ब्लॉकेड)

अवरोध[¶] कहते हैं, अन्यथा, यदि वह केवल व्यापार रोकनेके उद्देश्य-से किया जाय तो, वाणिज्यावरोध[§] कहलाता है। कुछ लोगोंकी यह सम्मति है कि वाणिज्यावरोध उठा दिया जाय पर इसकी कोई सम्भावना नहीं है। शत्रुको तङ्ग करनेका यह बड़ा ही सुगम उपाय है। जिस राजका स्थलमार्ग द्वारा अन्य देशोंसे सम्बन्ध नहीं है वह इस साधनसे बड़ी जल्दी तङ्ग किया जा सकता है। यदि दो तीन प्रबल राज मिल जायें तो वह दो चार महीनोंमें ब्रिटेन ऐसे प्रबल राजको विक्षिप्त कर सकते हैं।

अवरोध सम्बन्धी चार मुख्य प्रश्न हैं। उनपर पृथक् पृथक् विचार करना ठीक होगा। लन्दनकी घोषणाने इनमेंसे अधिकांश-को सुनिश्चित कर दिया है।

सशस्त्र अवरोधका लक्षण हम बतला चुके हैं। आजकल कागजी अवरोध, जिससे पिछले दिनोंमें फ्रांस और ब्रिटेनने बहुत काम लिया था, नहीं माना जाता। पर कितना अवरोधके नियम बल पर्याप्त होगा इसका कोई नियम नहीं है। यह वस्तुस्थितिपर निर्भर है। कहीं बीसों जहाज अपर्याप्त होंगे, कहीं दो चारसे काम चल जायगा। क्रीमियन युद्धमें रूसके रीगा नौ-स्थानका अंग्रेजोंने अवरोध किया था। इस कामके लिये उससे ६० कोसकी दूरीपर केवल एक रणपोत खड़ा कर दिया गया था। पर वह जगह इतनी संकीर्ण थी कि एक ही जहाज पर्याप्त था। दूसरा नियम यह है कि अवरोध इस प्रकार न होना चाहिये कि तटस्थ नौस्थानों या तटोंका मार्ग रुक जाय। तीसरा नियम यह है कि जितनी दूर तक अवरोधकोंका क्षेत्र है उसके बाहर अवरोधके नियम नहीं बर्ते जा सकते। चौथा नियम

¶ Strategic blockade (स्ट्रेटिजिक ब्लॉकेड)

§ Commercial blockade (कमर्शल ब्लॉकेड)

यह है कि जहाजोंके अभावमें अवरोध नहीं हो सकता। अवरोधकोंको यह अधिकार है कि पत्थर, पुराने जहाज, इत्यादि डुबा कर मार्ग बन्द करें पर वहाँ जहाज भी रहने चाहिए।

अवरोध करनेके पहिले उसकी घोषणा करनी होती है। उसमें यह बतलाना होता है कि अवरुद्ध तटकी ठीक ठीक भौगोलिक सीमा क्या है, किस तिथिसे अवरोध आरम्भ होगा और जो तटस्थ जहाज भीतर हैं वह कितने दिनोंके भीतर बाहर निकल जा सकेंगे हैं। प्रायः पन्द्रह दिनकी अवधि दी जाती है। यदि वास्तविक अवरोध और घोषणामें कुछ भी अन्तर हो तो अवरोध अवैध हो जाता है और फिरसे नयी घोषणा करनी पड़ती है। इसके बाद अवरोधक सैन्यके सेनाध्यक्षको अवरुद्ध स्थानोंके अधिकारियोंके प्रति एक ऐसी ही घोषणा करनी पड़ती है। स्थानीय अधिकारियोंका कर्तव्य है कि तत्रस्थ विदेशी वकीलोंको इसकी पूरी सूचना दे दें। अवरोधमें पक्षपात न होना चाहिये। अवरोधकको अपने देशके जहाजोंके साथ भी रियायत न करनी चाहिये। यदि वह चाहे तो तटस्थ रणपोतोंको आने जानेकी अनुज्ञा दे सकता है और अत्यन्त आवश्यकताकी दृष्टिसे अन्य तटस्थ पोतोंको भी जाने देनेका नियम है।

यदि अवरोधक बेड़ा हार जाय या युद्ध समाप्त हो जाय या बेड़ा हटा लिया जाय तो अवरोध समाप्त हो जाता है। क्रतु-विपर्ययके कारण थोड़ी देरके लिये हट जाना दूसरी बात है पर उसे और किसी कामके लिये न हटना चाहिये। यदि वह पर्य्याप्त न हो अर्थात् इतना कम कर दिया जाय कि तटस्थ देशोंकी दृष्टिमें उसकी सक्षमता जाती रहे तो भी उसका अन्त माना जायगा। ऐसी दशाओंमें पुनः घोषणा करके वह पुनः स्थापित किया जा सकता है। यदि अवरुद्ध स्थानपर अवरोधक राजका किसी प्रकार कब्जा हो जाय तो भी अवरोधका अन्त हो जायगा।

फ्रांस और कुछ अन्य राजोंका मत था कि जो तटस्थ जहाज
अवरुद्ध क्षेत्रके निकट आवे उसको अवरोधकी सूचना देनी चाहिये।

ब्रिटेनका यह कहना था कि सबको पृथक् पृथक्
आगन्तुकोंको अव- सूचना देनेकी आवश्यकता नहीं है। अवरोधक-
रोधकी सूचना को यह मान लेना चाहिये कि आगन्तुक जहाजको
सूचना मिल चुकी है, यह उसका काम है कि अपने
अज्ञानका प्रमाण दे। लन्दन कांफरेंसने जो नियम बनाये हैं उनमें दोनों
मतोंका समावेश है। यदि अवरोधकी घोषणा होनेके पश्चात् समयके
बाद वह जहाज अपने देशसे चला है तो यह मानना अयुक्त नहीं है
कि उसे सूचना मिल चुकी है। पर यदि यह निश्चय हो जाय कि उसे
सचमुच सूचना नहीं थी तो अवरोधक बेडेके किसी अफ़्फ़रको जाकर
उसको लागबुकमें सूचना लिख देनी होती है और तारीख, समय
तथा जहाजकी उस समयकी भौगोलिक स्थिति भी लिख देनी
होती है। यदि तटस्थ जहाजोंके साथ गारद हो तो गारदके अध्य-
क्षको सूचना दे दी जाती है और फिर उसका कर्तव्य होता है कि
अपने साथके सब जहाजोंकी लागबुकमें सूचना लिखा दे।

अवरुद्ध स्थानके भीतर प्रवेश करने, या घोषित अवधिके बाद
उसके बाहर निकलने, को अवरोध-भङ्ग § कहते हैं। यह अपराध
है। यह कह दिया गया है कि जो जहाज
अवरोध-भग अवरोधक जहाजोंके क्षेत्रके भीतर मिलेगा
उसीपर अवरोध-भङ्गका दोष लग सकता है
पर क्षेत्रके विस्तारके लिए कोई नियम नहीं है। नियम हो ही

* Log-book (लॉगबुक) एक प्रकारकी डायरी जो प्रत्येक
जहाजके कप्तानको रखनी पडती है। इसमें जहाजके सबन्धकी बातें
प्रति दिन लिखनी पडती हैं। § Violation of blockade
(वॉयलेशन आफ ब्लॉकेड)

नहीं सकता। किसी स्थानकी बनावट ऐसी होती है कि उसके अवरोधके लिये अवरोधकोको बहुत फैलनेकी आवश्यकता नहीं होती, किसीके लिये पचासों कोस तक फैलना पड़ता है। कोई अवरोधक अपना विस्तार इतना आप ही न बढ़ायेगा कि अवरोधकी क्षमता नष्ट हो जाय। यदि कोई जहाज़ किसी अनवरुद्ध तटकी ओर जा रहा है तो उसपर अवरोधभङ्गका दोष नहीं लग सकता। यदि यह पता लग जाय कि धोखा दिया जा रहा है तो उसे पकड़ भी सकते हैं। जब एक बार किसी अवरोध-भङ्गकका पीछा आरम्भ कर दिया जाता है तो वह अवरोध-क्षेत्रके भीतर ही समाप्त नहीं होता। अवरोधकोंको अधिकार है कि उसका जहा तक बन पड़े पीछा करें। यदि वह किसी तटस्थ नौस्थानमें आश्रय लेगा तो बाहर निकलने पर पकड़ा जायगा।

अवरोधभङ्गका एक ही दण्ड है, जहाज़की जब्ती। यदि मालका स्वामी यह प्रमाणित कर सके कि माल लादते समय मुझे यह पता न था कि यह जहाज़ अवरोध-अवरोधभङ्गका दंड भङ्ग करेगा तो माल छोड़ दिया जाता है, नहीं तो वह भी जब्त कर लिया जाता है।

महासमरने अन्य अन्ताराष्ट्रिय विधानोंकी भाँति अवरोध-सम्बन्धी विधानकी भी बहुत खाँचातानी की। जर्मनोंका नौ-बल ब्रिटेनके बराबर तो था ही नहीं, अतः उसे महासमरमें बहुत कुछ सहारा पनडुब्बियों और जल-मग्न अवरोध विस्फोटकोंका लेना पड़ा। इससे ब्रिटिश व्यापारकी बहुत क्षति हुई। इसलिये ब्रिटेनने समस्त उत्तर सागरको (जिसके आग्नेय तटपर जर्मनी बसा है और जिसमेंसे होकर ही कोई जहाज़ जर्मनी पहुँच सकता है) 'सैनिक क्षेत्र' घोषित किया। इसके उत्तरमें जर्मनीने ब्रिटेनके

चारों ओरके समुद्रको सैनिक क्षेत्र^४ घोषित कर दिया। इन बातों-का परिणाम यह हुआ कि यद्यपि दोनोंने जान बूझकर अवरोध शब्दका प्रयोग नहीं किया, परन्तु जर्मनी और ब्रिटेनके समूचे तटका अवरोध हो गया। जर्मनीके लिये यह असम्भव था कि वह ब्रिटेनके अवरोधको सक्षम बना सके अतः उसका अवरोध केवल कागज़ी अवरोध रह गया पर ब्रिटेनके पास जहाज अधिक थे, उसके मित्रोंके पास भी अच्छा नौबल था फलतः उसने जर्मनीको सचमुच अवरुद्ध कर दिया। रूसके विरोधके कारण पूर्व दिशामें व्यापारका द्वार बन्द ही था, अरबोंके विद्रोह, इराकमें ब्रिटिश सेनाके आक्रमण तथा यूनानकी लड़ाईने तुर्कीका मार्ग भी रोक हो रक्खा था अतः जर्मनीमें बाहरके मालका आना तथा जर्मनीसे माल बाहर जाना एकदम बन्द हो गया। उसकी हारके प्रधान कारणोंमें इसकी भी गणना है।

× Military area, zone of war (मिलिटरी एरिया, जोन ऑफ़ वार)

आठवाँ अध्याय ।

अतटस्थाचरणा ।

कभी कभी तटस्थ व्यक्ति ऐसे काम कर बैठते हैं जो केवल शत्रुवर्गीयोंके ही हाथसे होने चाहिये । यों तो निषिद्ध व्यापार भी अपराध है पर निषिद्ध व्यापारका मुख्य उद्देश्य अपना लाभ होता है । युद्धकालमें व्यापार करनेमें भय अतटस्थाचरणका तो अधिक रहता है पर युद्धकारियोंके हाथ स्वरूप उनके कामकी वस्तुएं बेचनेसे लाभ अधिक होता है, इसी लिये लोग ऐसा करते हैं । परन्तु किसी एक पक्षके अफसरों या सैनिकोंको एक स्थानसे दूसरे स्थान पहुंचाना या उसकी सैनिक खबरें पहुंचाना उसको प्रत्यक्ष सहायता देना है, इसलिये दूसरा पक्ष इसे कदापि क्षम्य नहीं ठहरा सकता । सम्भव है इन कामोंमें लाभ हो पर लाभका स्थान गौण है, मुख्य स्थान शत्रुको सहायता देनेका है । जो तटस्थ ऐसा करता है वह एक प्रकारसे उतने कालके लिये उस युद्धकारीके यहाँ नौकरी कर लेता है । जैसा कि इस सम्बन्धमें एक अंग्रेज न्यायाधीश सर वाल्टर स्कॉटने कहा था जो व्यक्ति ऐसा करता है वह ऊपरसे तटस्थ बना हुआ वस्तुतः शत्रुराजका नौकर है और उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये ।

फिर निषिद्ध वस्तुकी निषिद्धता इसी बातमें है कि वह शत्रु-देशको भेजी जा रही हो पर बिना एक शत्रु-देशकी ओर गये भी दूसरेकी हानि की जा सकती है । समुद्रमें विस्फोटक फैलाना एक

ऐसा काम है जो बिना शत्रुदेशको गये भी हो सकता है। सेनोप-योगी समाचार भी तटस्थ देशोंके द्वारा भेजे जा सकते हैं।

इससे स्पष्ट है कि इस प्रकारके काम निषिद्ध व्यापारसे कई अंशोंमें भिन्न हैं। हॉलने इनको निषिद्धसम^० कहा है पर यह स्वीकार किया है कि दोनोंमें सादृश्य बहुत कम है। फ्रांसीसी भाषामें इसके पर्यायका अर्थ है विरुद्ध सहायता §। प्रायः यही अर्थ हालैंडके प्रस्ताव किये हुए नामका है। वह इसे शत्रु सेवा[†] कहते हैं। अंग्रेज सरकार ऐसे कामोंके लिये अतटस्थ काम[†] ऐसे नामका प्रयोग करती है। यह नाम सब दृष्टियोंसे उपयुक्त प्रतीत होता है। इसीके अनुसार हमने भी 'अतटस्थाचरण' नामकी रचना की है।

अतटस्थाचरणका प्रश्न बड़े महत्त्वका है। आजकल इसके प्रकार बढ़ते जाते हैं। जहाजकी मरम्मत करना, समाचार भेजने-के लिये जलमग्न तार बिछाना, जहाजोंको कोयला या तेल पहु-चाना ऐसे अपराध हैं जो आजकल वृद्धिपर हैं। इनमेंसे कुछ अपराध तो ऐसे हैं जो आजसे ४०, ५० वर्ष पहिले हो ही नहीं सकते थे। ऐसे अपराधोंके लिये कठोर दण्डकी व्यवस्था होनी ही चाहिये और वह दण्ड निषिद्ध व्यापारसे कठोर होना चाहिये। १९६६ की लन्दन कांफरेंसने इस प्रश्नपर विचार किया। उसने पहिले अपराधोंको घोर और मृदु दो कोटियोंमें बाँटा और फिर इनके लिये पृथक् पृथक् दण्डका विधान किया। लन्दन घोषणाकी ४५ वीं तथा ४६ वीं धाराओंमें इसी विषयका विचार किया गया है।

- Analogues of contraband (एनेलोग्स आफ कॉन्ट्रान्बैंड)

§ Assistance hostile (एसिस्टेंस होस्टाइल) † Enemy service (एनिमी सर्विस) † Un-neutral service (अन-न्यूट्रल सर्विस)

मृदु अपराधोंका परिणाम यह होता है कि जहाजकी परिस्थिति निषिद्ध व्यापाररत जहाज सी हो जाती है। उसका तटस्थ रूप तो नष्ट नहीं होता पर वह दण्डार्ह हो जाता है। मृदु अपराध मुख्यतया दो है—

- (१) शत्रु सेनाके अङ्गीभूत व्यक्तियोंको पहुचाने, या शत्रूपयोगी समाचार ले जाने, के मुख्य उद्देश्यसे यात्रा करना।
- (२) जहाजके स्वामी या ठेकेदार या कप्तानके ज्ञानमें शत्रु सेनाके किसी टुकड़ेया एक या अनेक ऐसे व्यक्तियोंको जो यात्राके बीचमें ही शत्रुके सैनिक कार्योंमें प्रत्यक्ष सहायता दें ले जाना।

(१) और (२) में एक यह बड़ा अन्तर है कि (१) में जिन लोगोंकी ओर संकेत है वह पृथक् पृथक् अपनी निजी हैसियतसे जाते हैं और (२) में सामूहिक रूपसे।

यदि यह प्रमाणित किया जा सके कि जहाजके चलते समय युद्ध नहीं छिड़ा था या यदि कप्तान यह सिद्ध कर सके कि मुझे युद्ध छिड़नेकी सूचना तो मिल गयी थी पर मुझे इन यात्रियोंको कहीं उतार देनेका अवसर ही नहीं मिला तो अपराध क्षमा कर दिया जाता है अन्यथा जहाज जब्त कर लिया जाता है और उसपर उसके स्वामीका जो माल होता है वह भी जब्त कर लिया जाता है। यदि जहाज निर्दोष ठहराया जाय तो उसपरके यात्री रणबन्दी बनाये जा सकते हैं।

४६ वीं धारामे घोर अपराधोंका उल्लेख है। जो जहाज ऐसे अपराध करता है वह अपना तटस्थ रूप पूर्णतया खो बैठता है और उसके साथ शत्रुवत् आचरण किया जाता है। घोर अपराध चार मुख्य कोटियोंमें विभक्त किये गये हैं।

- (१) युद्धमें प्रत्यक्ष भाग लेना ।
- (२) अपने ऊपर शत्रु सर्कार द्वारा नियुक्त किसी व्यक्तिकी आज्ञा या अनुशासनके अनुसार चलना ।
- (३) शत्रु सर्कारकी अनन्य सेवामें होना ।
- (४) सम्प्रति अनन्य रूपसे शत्रु सेनाके किसी टुकड़े या शत्रूप-योगी समाचारके ले जानेमें लगे होना ।

इन अपराधोंका दण्ड यह है कि जहाजके साथ साथ उसके स्वामीका जो कुछ माल उसपर होगा वह जब्त कर लिया जायगा ।

ऊपर दिखलाये गये विभागोंमेंसे पहिला बहुत व्यापक है । वह जान बूझकर ऐसा रक्खा गया । लन्दन कांफरेन्सने उसकी विशेष टीका टिप्पणी करना उचित न समझा । लार्ड्सने प्रत्यक्ष भाग लेनेके कई उदाहरण दिये हैं । शत्रुके बेडेको आक्रमण करनेका ठीक मार्ग बताना, जलमग्न विस्फोटक फैलाना, विस्फोटक हटाना, शत्रु बेडेके आगे चल कर उसे परिस्थितिका पता देना, बेतारके तार जानेके मार्गोंको व्यर्थके तार भेज भेज कर रोक रखना इत्यादि ।

यह सब अपराध वस्तुतः घोर रूपके हैं और इनमेंसे एक भी ऐसा नहीं है जो अनजानमें हो सकता हो । जो जहाज इन्हें करता है वह सोच समझकर शत्रुका प्रत्यक्ष साथ देता है । इसलिये किसी किसीकी तो यह सम्मति है कि ऐसे जहाजोंके नाविकोंको गोली मार देनी चाहिये । यदि इतना भी न किया जाय तो उन्हें रणबन्दी तो अवश्य ही बनाना चाहिये । उनका काम शत्रुसे अधिक गह्य है । शत्रु जो कुछ कर सकता है वह न्याय्य है, उससे तो लड़ाई ही है, पर तटस्थोंको इस झगड़ेसे दूर रहना चाहिये ।

देखनेमें मृदु और घोर दोनों प्रकारके अपराधोंका दण्ड एकसाँ प्रतीत होता है पर वस्तुतः दोनोंमें अन्तर है । एक तो घोर अप-

राधी अज्ञानका बहाना करके बच नहीं सकता। दूसरे मृदु अपराधी अपराध कर चुकनेके बाद नहीं पकड़ा जा सकता। जब वह शत्रु सेनाके व्यक्तियोंको पहुँचा आया या चिट्ठी-पत्री दे आया तो फिर उससे पूछताछ नहीं हो सकती परन्तु घोर अपराधीके लिये यह नियम नहीं है। खाली जहाज, अपराध कर चुकने, या करनेके पहिले भी, पकड़ा जा सकता है। घोर अपराधी फौरन हुबाया जा सकता है परन्तु मृदु अपराधी उसी दशामे हुबाया जा सकता है जब कि उसके अस्तित्वसे पकड़ने वाले रणपोतकी ही रक्षामें आशंका हो या उसके तत्कालीन सैनिक कार्यमें अत्यन्त बाधा पड़ती हो। मृदु अपराधीको अन्तराष्ट्रिय न्यायालयमें अपील करनेका पूरा अधिकार रहता है। घोर अपराधीको उसी दशामें यह अधिकार हो सकता है जब वह यह दिखला सके कि मैंने अपराध किया ही नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि घोर अपराधियोंको और भी कठोर दण्ड देना वर्तमान अवस्थामें अन्याय न होगा।

पञ्चमखण्ड—मन्ताराष्ट्रिय संगठन ।

पहिला अध्याय ।

संगठनकी आवश्यकता और उसके अनिवार्य साधन ।

आजसे कुछ वर्ष पहिले अन्तराष्ट्रिय संगठनका नाम भी अपरिचित था पर आज यह अवस्था नहीं है । आज कल बहुत से विद्वानों एवं राजनीतिज्ञोंको इसकी आवश्यकता प्रतीत होती जाती है । युद्ध जितना भीषण मगठनकी आव- अब हो गया है उतना भीषण पहिले कभी नहीं श्यकता था । विज्ञान, जिसे समाजका रक्षक होना चाहिये था, उसका भक्षक हो गया है । पहिले

समयमें नरेशोंकी महत्त्वाकांक्षा ही प्रायः युद्धका एकमात्र कारण होती थी । इसलिये साधारण प्रजाको विशेष सन्ताप न सहना पड़ता था । यदि चगेज़ खा या तैमूरलग ऐसा कोई लुटेरा आया भी तो विपत्ति, चाहे कितनी ही बड़ी हो, जल्दी ही टल जाती थी । आज कल नरेशोंके हाथमें तो अधिकार है नहीं, क्षात्र महत्त्वाकांक्षाका स्थान वैश्य महत्त्वाकांक्षाने लिया है । बड़े बड़े भूखण्डोंको हस्तगत करके उनमें उपनिवेश बसाना, जहां तक बन पड़े जङ्गलों और खानोंपर अधिकार करना, दुर्बल राष्ट्रोंको दबाकर उनसे सस्ते श्रमजीवियोंका काम लेना, अन्य देशोंके व्यापारको नष्ट करके उन्हें अपने यहांके माल मोल लेनेके लिये विवश करना—यह सब वैश्ययुगका चिन्ह है । लक्ष्मीने सरस्वतीको अभिभूत कर लिया है इसलिये विज्ञान कुटिल स्वार्थके साधनका एक यंत्र बन गया है । इसलिये एक एक युद्धमें, चाहे वह पहिले-के युद्धोंका दशमांश समय भी न ले, कई सौगुना व्यय होता है

और कहीं अधिक मनुष्य मरते हैं। युद्ध-समाप्तिके पचीसों वर्ष पीछे तक कुपरिणाम देख पड़ते हैं और राष्ट्र-व्यापी द्वेष बढ़ता जाता है।

इस दुरवस्थाने सारे सभ्य जगत्को व्यथित कर रक्खा है। सभी शान्ति चाहते हैं पर परस्परका अविश्वास शान्ति होने नहीं देता। कोई आत्मसम्मानी राष्ट्र अपमान सहकर शान्तिका पक्ष-पाती नहीं रह सकता। ऐसी शान्ति श्रेयस्कर भी नहीं हो सकती। कापुरुषका चुप रह जाना क्षमा नहीं है। जो शान्ति चरित्रको दुर्बल बनाती है उससे युद्ध लाख गुणा भला है इसलिये शान्तिको अभिलाषा सबको है पर सभी युद्धकी तैयारीमें लगे हैं। यह तैयारी प्राणघातक हो रही है। जो रुपया शिक्षा, कला, स्वास्थ्य-रक्षा, निर्धनता-निवारण और संस्कृत मनोरञ्जनमें व्यय होता वह युद्ध-सामग्रीके सञ्चयमें लगता है। लोक-समृद्धका साधन लोक-विग्रहका साधन बनाया जाता है।

यह दुरवस्था तभी दूर हो जब सारी पृथ्वीपर एक सर्कार हो। ऐसे सार्वभौम राजका स्वप्न तो बहुत से नरेशों तथा विद्वानोंने देखा परन्तु अभी तक यह स्वप्न स्वप्न ही रहा। सम्भव है भविष्यत्में कभी ऐसा हो जाय पर आशा कम है। जब तक कोई ऐसा राज नहीं स्थापित होता तब तक बिना किसी प्रकारके अन्तराष्ट्रिय संगठनके शान्तिकी रक्षा नहीं हो सकती। प्राचीन कालमें दो ऐसी वस्तुएं थीं जो इस बड़े श्रेयको अक्षतः पूरा कर सकती थीं।

पहिली वस्तु साम्राज्योंका अस्तित्व थी। जो देश एक साम्राज्यके अधीन होते थे उनमें झगड़े नहीं होने पाते थे। साम्राज्यकी प्रधान सर्कार इनको दबा देती थी। प्रायः

साम्राज्य

साम्राज्योंका अधिपति एक व्यक्ति, सम्राट्, होता था। प्रान्तोंको न्यूनाधिक जैसे भी अधिकार

देते हों परन्तु प्रधान अधिकार उसी सम्राट्के रहता था

जिसने अपने पड़ोसियोंको जीतकर साम्राज्यकी नींव डाली थी। सम्राट् भी उसी जातिका होता था। साम्राज्य दो प्रकारके होते थे। एकमें तो सम्राट्के अधीन कई मण्डलेश्वर अर्थात् प्रादेशिक नरेश होते थे। यह लोग अपने अपने राज्यमें स्वतंत्रप्राय होते थे। समय समयपर सम्राट्को कर या सैनिक सहायता दे देनेमें ही इनकी साम्राज्यके प्रति इतिकर्तव्यता थी। युधिष्ठिर, मान्धाता, भरत इसी प्रकारके सम्राट् थे। दूसरे प्रकारके साम्राज्यमें कुछ प्रान्तोंमें अंशप्रभु नरेश हों या न हों परन्तु साम्राज्यका बहुत बड़ा भाग सम्राट्के ही अधीन होता था। अशोक, गुप्त-वशीय नरेश, हर्षवर्द्धन, अकबर इसी कोटिमें थे। ब्रिटिशसाम्राज्य इसी प्रकारका साम्राज्य है।

साम्राज्य चाहे किसी प्रकारका हो, उसमें कई दोष होते हैं। एक तो वह सम्राटोंके व्यक्तित्वपर निर्भर है। मौर्य, गुप्त, मुगल सभी साम्राज्योंके इतिहास यही रोना रोते हैं। अधीन राज अपनी स्थितिसे कदापि सन्तुष्ट नहीं रहते, नित्य स्वतंत्र होनेका अवसर ढूँढते रहते हैं। द्वितीय प्रकारके साम्राज्योंमें भी इसी भांतिका घुन लग जाता है। अधीन राष्ट्र शासक राष्ट्रका आतङ्क नहीं सह सकते, जब कभी शासक और शासितमें विवाद हो उठता है तो सम्राट्की सरकार अगत्या पक्षपात करती है। इन बातोंका परिणाम यह होता है कि ऊपरसे युद्धभाव देख पड़ते हुए भी आग भीतर भीतर घधकती रहती है। इसका निश्चय नहीं होता कि किस दिन साम्राज्यका अन्त हो जाय। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि साम्राज्य कई होते हैं अतः उनमें तो युद्ध होता ही है। इसलिये कोई भी साम्राज्य सार्वभौम शान्तिका साधक नहीं हो सकता पर हाँ प्रबल साम्राज्य युद्धोंकी संख्याको कम कर सकते हैं।

दूसरी वस्तु जो इस उद्देश्यका न्यूनाधिक पालन कर सकती थी वह धर्म थी। प्राचीनकालके धर्मोंमेंसे वैदिक धर्म, पारसी धर्म, बौद्ध धर्म तथा जैन धर्ममें यह क्षमता विशेष रूपसे न थी। वस्तुतः पारसी, बौद्ध और जैन धर्म वैदिक धर्मके रूपान्तर या शाखास्वरूप थे। वैदिक धर्म उदार था, दया, क्षमा, अहिंसाका उपदेश देता था, 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ पढ़ाता था पर युद्धको रोक नहीं सकता था। इस्लाममें यह शक्ति थोड़ी बहुत थी। इस्लामके अनुसार, मुसलमानोंका एक धार्मिक नेता था जिसे खलीफा कहते थे। वह इस्लामका मुख्य रक्षक था। इस पद्धतिका फल यह होता था कि जब कभी काफ़िरो अर्थात् अन्य धर्मावलम्बियोंसे जिहाद (धर्मयुद्ध) की घोषणा हो जाती थी सब मुसलमान एक हो जाते थे। पर इस प्रथासे अन्तराष्ट्रिय शान्तिकी स्थापनामें स्यात् ही कुछ सहायता मिली। काफ़िरोसे लड़नेके लिये मुसलमान राज भले ही मिल जाय और कुछ कालके लिये अपने झगड़े बन्द कर दें पर अभ्यसमय आपसमें तो भीषण युद्ध होते ही थे, खलीफ़ासे भी लड़नेमें कोई संकोच नहीं होता था क्योंकि वह भी एक ससारी नरेश ही होता था। फिर काफ़िरोसे लड़नेका तो नित्य ही अवसर मिलता था।

वस्तुतः शान्ति रखनेकी क्षमता ईसाई धर्मके रोमन कैथोलिक सम्प्रदायमें थी। किसी समय प्रायः सभी ईसाई इसी सम्प्रदायके अनुयायी थे। इसके माननेवालोंका यह विश्वास है कि ईसाने स्वर्गकी कुन्जी अपने शिष्य सेण्ट पीटरको दे दी है। पीटर स्वर्गके द्वारपर बैठे रहते हैं। अपने जीवनकालमें उन्होंने रोमके मठकी स्थापना की थी अतः रोमके मठाधीश, जो पोप कहलाते हैं, सेण्ट पीटरकी गद्दीपर बैठते हैं। वह जिस मनुष्यको आशीर्वाद

दे दें उसके सारे पाप भस्म हो जायें। जिसको पोप बहिष्कृत कर दें उससे जो कोई बात करे या किसी प्रकारका संसर्ग रखे वह नरकगामी होता है। पोपके प्रत्येक कामका समर्थन सेण्ट-पीटर अथवा ईसा मसीह और तद्व्याजेन स्वयं ईश्वर करता है। इस विश्वासके कारण सभी पोपसे डरते थे। बड़े बड़े नरेश काँपते थे। पोपने बादशाहोंको कोड़े लगवाये हैं। इसलिये जब पोप चाहते थे तब ईसाई देशोंमें शान्ति रहती थी। पोपोंकी अभिलाषा यही थी कि सारा जगत हमारे धर्ममें मिल जाय और हम धर्मके ऋण्डेके नीचे अखण्ड शान्ति स्थापित करें।

पर साम्राज्यवादकी भाँति धर्म भी अपने उद्देश्यमें सफल न हुआ। दोनोंके भीतर दुर्बलता और असफलताके बीज पहिलेसे ही

थे। एक तो इस प्रकारका धर्म तभी तक दृढ धर्मकी असफलताके रह सकता है जब तक उसके प्रधानाध्यक्षोंकी कारण परम्परामें सदाचारी और तपस्वी हों। पोप-

गद्दीपर बहुत से स्वार्थी, दुराचारी और विषयभोगी मनुष्य बैठे, इससे गद्दी और तदधीन धर्मकी मर्यादा बिगड़ गयी। रागद्वेष, महत्त्वाकांक्षा और विषयपरताने उनकी निष्पक्षता नष्ट कर दी। फिर जब तक धर्मके विषयमें 'मम और तब' बुद्धि बनी रहेगी तब तक अशान्ति दूर नहीं हो सकती। मैं इस धर्मकी उन्नति करूँ क्योंकि यह मेरा है और उस धर्मके मानने वालोंसे युद्ध करूँ क्योंकि वह मेरा नहीं है—इस भावने न जाने कितनी लड़ाइयाँ करायी हैं। यदि मनुष्योंमें धर्मके मूल मंत्र और उसके मुख्य अंगों अर्थात् आस्तिकता, दया, सत्य, परोपकार और आत्मसंयमका प्रचार हो जाय तो वैर विरोध आप ही मिट जाय पर किसी सम्प्रदाय विशेषका प्राधान्य या अवस्था नहीं ला सकता। यह बात तभी होगी जब लोग

सम्प्रदायसे बढ़कर धर्मको समझें और 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्रार्थना भगवान्से करते हुए 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का अभ्यास करें।

अभी तक न ऐसा हुआ न धर्मके द्वारा युद्धका अन्त हुआ। आजकल एक और प्रकारका भाव चल पड़ा है जिससे कुछ लोगों-

को चिर-शान्तिकी आशा है। इसे विश्व-विश्व-संस्कृति

संस्कृति[॥] कह सकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्योंमें समान संस्कृति—अर्थात् साहित्य, विज्ञान, कला, कर्तव्याकर्तव्य बुद्धि—का प्रचार हो तो वह धर्म और स्वदेशके भेदका अतिक्रमण कर जायगे। यही दोनों भेद भगड़ेके घर हैं। यदि सब लोग अपनेको एक देश विशेषका नागरिक न समझकर पृथ्वीमात्रका नागरिक समझें, यदि वस्तुतः 'अयं निजः परोवा' का स्थान 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव ले ले तो विरोधकी जड़ ही कट जाय। पर अभी इस नये सिद्धान्तकी परीक्षा नहीं हुई है। बहुत लोगोका यह मत है कि थोड़े से मनुष्योंकी दूसरी बात है पर जनसाधारण इतने ऊँचे पहुँच ही नहीं सकते, क्योंकि यह सिद्धान्त स्वार्थके आगे टिक नहीं सकता। जो लोग यह आक्षेप करते हैं उनकी यह धारणा है कि राज या धर्म ही साधारण मनुष्योंकी शास्ति कर सकता है।

अस्तु, ऐसी दशामें हमको एक मात्र अन्ताराष्ट्रिय सगठनका आश्रय लेना पड़ता है। हमको यह मान लेना पड़ता है कि इस समय पृथ्वीपर बहुत से पृथक् पृथक् राज हैं जो एक दूसरेके अधीन नहीं हैं, इन राजोंके स्वार्थमें भेद है, इनके प्रजावर्गीय भिन्न भिन्न जातियों और धर्मोंके हैं और हित-वैषम्यके कारण इनमें परस्पर भगड़े भी खड़े होते-रहते हैं। अब हमको यह प्रयत्न करना है कि जिस प्रकार भिन्न भिन्न मतावलम्बी तथा भिन्न भिन्न

स्वार्थाभिभूत मनुष्योंके संगठनसे राज बनते हैं उसी प्रकार भिन्न भिन्न राजोंके संगठनसे एक राजसंघकी सृष्टि हो। इस संघका स्वरूप क्या होगा इसका विचार तो आगे होगा पर यहाँ हमको यह देखना है कि उसके अनिवार्य साधन कौन कौन से हैं।

सबसे बड़ा साधन स्वतन्त्र राष्ट्रीय राजोंकी सत्ता है। यहाँ राज शब्दके जो दो विशेषण रखे गये हैं वह दोनों महत्त्वके हैं।

राज कई प्रकारके हो सकते हैं। ब्रिटिश स्वतन्त्र राष्ट्रीय राज साम्राज्य भी एक राज है जिसके अन्तर्गत कई राष्ट्र हैं। इसके विपरीत महासमरके पहिले पोलिश राष्ट्रके तीन टुकड़े होकर जर्मन, आस्ट्रियन और रूसी साम्राज्योंमें पड़े हुए थे। यह दोनों दशाएं बुरी हैं। इन राजोंकी उत्तनी स्थिरता नहीं हो सकती जितनी राष्ट्रीय राजोंकी होती है। राष्ट्रीय राज उस राजको कहते हैं जिसकी प्रजा एक ही राष्ट्रकी हो। आजसे सौ दो सौ वर्ष पहिले एक राजमें कई राष्ट्रोंका और एक राष्ट्रका कई राजोंमें रहना सम्भव था पर अब वायुकी दिशा दूसरी हो गयी है। राजभक्तिकी जगह राष्ट्रभक्तिने ली है और देश-भक्ति तथा राष्ट्र-भक्ति पर्यायवाची नाम होते जा रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि पुराने ढङ्गके राज टूट रहे हैं और नये राष्ट्रीय राज बन रहे हैं। जो दो चार पुराने राज बच गये हैं उनका शीघ्र संगठन अवश्यम्भावी है। उनकी प्रजा भी अपनी दशासे असन्तुष्ट है।

यह भी आवश्यक है कि यह राज स्वतन्त्र रहें। जब तक एक दूसरेको दबाये रखेगा तब तक अशान्ति रहेगी। सच्चा संगठन बराबरवालोंका ही होता है।

आजकल बड़े और छोटे, महाशक्ति और अल्पशक्ति, का भेद अन्ताराष्ट्रिय संगठनमें बड़ी बाधा डालता है। राजोंके समत्वका

सिद्धान्त सिद्धान्तमात्र ही रह जाता है, व्यवहारमें इसका बर्ता जाना कठिन है। यह असम्भव है कि ब्रिटेन या अमेरिका लाइबेरिया या पनामाको अपने बराबर समझे। यह वैषम्य ही आपस-के अविश्वासको दूर नहीं होने देता। जब कभी कोई अन्तराष्ट्रिय सम्मेलन होता है तो बड़े राज समझते हैं कि छोटे मिलकर हमें दबाना चाहते हैं और छोटे समझते हैं कि बड़े हमें और भी दुर्बल करना चाहते हैं। यदि बड़े राज स्वतन्त्र राष्ट्रीय राज्योंमें बँट जायें तो सचमुच बहुत कुछ समता आ जाय।

एक लाभ और होगा। संगठन एक या दोमें नहीं हो सकता। उसके लिये यह आवश्यक है कि बहुत से समानाधिकारी परन्तु भिन्न प्रकृतिके व्यक्ति हों। जो लोग पूर्णतया समान हैं उनमें संगठनका स्थान ही नहीं हो सकता। सांख्यदर्शनके अनुसार पुरुषोंकी संख्या नहीं है पर इनमें किसी प्रकारका संगठन नहीं है क्योंकि सभी गुणातीत, चिद्धन, सत्स्वरूप अर्थात् स्वभावेन पूर्णतया अभिन्न हैं। यदि बहुत से स्वतन्त्र राष्ट्रीय राज हो जायें तो इनमें राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, भौगोलिक, धार्मिक आदि भेदोंके कारण हितवैषम्य अवश्य होगा अतः संगठनका स्थान होगा। हम यह नहीं कहते कि इस प्रकारका वैषम्य अच्छा है या बुरा पर इतना दिखलाना चाहते हैं कि उसके अभावमें संगठनका भी अभाव होगा।

परन्तु इतना वैषम्य भी नहीं चाहिये जो बीचमें पक्की दीवार खड़ी कर दे। यह प्रायः असम्भव है कि कोई ऐसा संगठन स्थायी हो सके जिसके एक ओर तो पश्चिमी ईषत् विश्व-संस्कृति यूरोपके राज और दूसरी ओर मध्य अफ्रिकाके राज सदस्य हों। विचार-धाराएं पृथक् भले ही हों पर उनको कहीं न कहीं तो मिलना चाहिये। इस लिये कुछ न कुछ विश्व-संस्कृतिके प्रचारकी भी आवश्यकता है। एक

मूर्ख और एक पण्डित, एक नरमासभक्षी और एक अहिंसाव्रतीका मेल चिरस्थायी नहीं हो सकता ।

राजोंमें कुछ न कुछ हितसाम्य भी होना चाहिये । आजकल यः शत पूरी हो रही है । आपसमें अपरिभिन प्रतिद्वन्द्विता है, एक राष्ट्र सदैव दूसरेसे सतर्क और सशक रहता हितसाम्य है पर हितसाम्य भी है । आजकल एक देशीय व्यापारका दिन नहीं है । व्यापारका संगठन अन्ताराष्ट्रिय है । सभी सभ्य देश एक दूसरेके ऋणी है । इस लिये यदि एकका व्यापार नष्ट हो जाय तो सबपर इसका प्रभाव पड़ता है । एक देशमें खनिज पदार्थ उत्पन्न होते हैं, दूसरेमें अन्न होता है, तीसरेमें रूई उपजती है, चौथेमें तेल निकलता है, पाँचवें-की जनसंख्या और दरिद्रता इतनी अधिक है कि वहाँके निवासी मजदूरीके लिये लालाघित होकर विश्वाटन किया करते हैं । इन सभीका कल्याण एक ही सूत्रमें बँधा है । इसी लिये तो प्रसिद्ध शान्तिवादी नार्मन एंजेलेने कहा था कि इस युगमें युद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वह विजित और विजेता दोनोंके लिये विधातक होगा ।

जिस प्रकार सामाजिक संगठनके लिये कुछ स्थिरताकी आवश्यकता है उसी प्रकार अन्ताराष्ट्रिय संगठन भी स्थिरताकी अपेक्षा करता है । अधिक स्थिरता तो स्थिरता संगठनके पीछे होती है पर कुछ स्थिरता पहिले भी चाहिये । यदि राजोंमें नित्य युद्ध या राजविप्लव होता रहे तो संगठन नहीं हो सकता ।

शान्तिकी इच्छा भी परमावश्यक वस्तु है । यूरोपमें संगठन के अन्य कई साधनोंके वर्तमान होते हुए भी इसलिये संगठन न

हो सका कि किसीको शान्तिकी प्रबल इच्छा न थी। शान्ति

महत्त्वाकांक्षाका मार्ग बन्द कर देती। परन्तु शान्तिकी इच्छा महायुद्धके परिणामोंने आँखें खोल दी है।

अब युद्धसे कुछ कुछ चित्त हटा है और यह इच्छा होने लगी है कि झगड़ोंके निपटानेका कोई और साधन मिले। यह भाव सगठनके अनुकूल है। सगठन हठात् तो हो नहीं सकता। जो सगठन हठात् होगा वह एक प्रकारका साम्राज्य हो जायगा और साम्राज्योंकी भाँति नष्ट भी होगा। स्थायी वही सगठन हो सकता है जिसके सब सदस्य अपनी इच्छा और प्रसन्नतासे, सगठनके लाभोसे परितुष्ट होकर, उसके अवयव बने रहें।

इन सब बातोंके साथ साथ यह भी आवश्यक है कि उन राज्योंमें परस्परका सम्बन्ध स्थापित हो चुका हो। यह शर्त भी आजकल पूरी हो रही है। अब राज एक अन्ताराष्ट्रिय सबंध दूसरेसे पृथक् नहीं हैं। युद्ध, सन्धि और ताटस्थ्य सभी अवस्थाओंके लिये नियम बन गये हैं और बनते जाते हैं। आये दिन अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलन हुआ करते हैं, तार बेतारने सारी पृथ्वीको वेष्टित कर दिया है। अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयोंके सामने बड़े बड़े राज वादी-प्रतिवादी बन कर आते हैं, एक राज दूसरे राजके महाजनोंका ऋणी है। इन बातोंके कारण लोगोंको एक दूसरेका अधिकाधिक परिचय होता जाता है और सहयोगका अभ्यास बढ़ता जाता है। पर अभी यह सहयोग नियमित और नित्य नहीं है। कभी होता है कभी नहीं होता। परस्परका अविश्वास इसे सुदृढ़ नहीं होने देता। यदि बड़े और प्रबल राज अन्ताराष्ट्रिय सदाचारके विरुद्ध आचरण करें तो उन्हें समुचित दण्ड देनेका कोई साधन नहीं है। यह

ठीक है कि अन्ताराष्ट्रिय लोकमत ऐसे उच्छृङ्खल राजके विरुद्ध हो जायगा जिससे कि अन्तर्में उसकी क्षति ही होगी पर यह देरका मार्ग है। कोई क्षिप्रफलदायी साधन होना चाहिये। इन्हीं सब बातोंके लिये संगठनकी आवश्यकता है। मार्ग धीरे धीरे निष्कण्टक होता जाता है, अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो रही है, सम्भव है पृथ्वीका भाग्य खुल जाय और सगठन सचमुच हो जाय।

इस समय कई आवश्यक साधन विद्यमान हैं। शेषकी धीरे धीरे सृष्टि हो रही है। सगठनसे जो लाभ होगा उसकी ओर हम पहिले ही सकेत कर चुके हैं। हमने सगठनसे लाभ कहा है कि सगठनका उद्देश्य है शान्तिकी स्थापना और उसकी रक्षा। युद्धके अभावको ही शान्ति नहीं कहते। ऐसी शान्ति तो कभी कभी आजकल भी देख पड़ती है। जब तक बड़े छोटेका भेद है, स्पर्धा है, युद्धकी तैयारी है तब तक शान्ति नहीं हो सकती। शान्तिका अर्थ यह होगा कि अन्ताराष्ट्रिय कुटुम्बके सब अङ्ग, अर्थात् सब राज, तुल्यप्रतिष्ठ होंगे, उनका मताधिकार बराबर होगा। एक प्रकारकी अन्ताराष्ट्रिय पुलिस होगी जो इस बातको देखेगी कि कोई राज प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे ऐसे शस्त्रों या रासायनिक द्रव्योंका सग्रह न करे जिनसे दूसरे राजोंको क्षति पहुँचे। यदि कोई राज दूसरे राजकी भूमि दबा ले या उसके किसी अन्य स्वत्वपर आघात करे तो उसे असहयोग या अन्य प्रकारसे दण्ड देनेका प्रबन्ध करना होगा। खाने पहिनने जलाने आदि उपयोगी कामोंकी सामग्रीका इस प्रकार विनिमय करना होगा कि सबकी आवश्यकता पूरी होती रहे। कला, कौशल, विद्या और धर्मके प्रचारके मार्गसे विघ्न बाधाओंको दूर करना होगा। स्पर्धा-भावको नष्ट करनेका प्रयत्न व्यर्थ है। स्पर्धा भले ही रहे परन्तु परस्वाप-

हरणमें नहीं, सेवामें । जो राष्ट्र दूसरोंको दबाता है उसके स्थानमें जो राष्ट्र दूसरोंकी अधिक सेवा करता है वह श्रेष्ठतर समझा जाय ।

यह असम्भव कल्पनाएं नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी इसी ओर बढ़ रही है । यदि ऐसी अवस्था एक दिन सच-मुच आगयी तो मनुष्यको सचमुच सब प्राणियोंमें अपनी ही आत्माका प्रतिविम्ब देख पड़ेगा और वह जाति, कुल, वर्ण, देश, सम्प्रदाय आदि कृत्रिम बन्धनोंका अतिक्रमण करके स्वरूपानुभूतिका अधिकारी बनेगा ।

दूसरा अध्याय ।

आंशिक अन्ताराष्ट्रिय संगठन ।

पृथ्वीके इतिहासके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि किसी प्रकारका महान् परिवर्तन यकायक नहीं हो जाता । पहिले उसके अनुकूल परिस्थितिकी सृष्टि होती है, उसका कुछ कुछ पूर्वरूप देख पडने लगता है, लोगोंके हृदयोंमें उसके प्रति प्रतीक्षा, आशा, श्रद्धा के भाव उत्पन्न होते हैं, फिर उसका उदय होता है । सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक सभी युगान्तरकारी परिवर्तनोंकी यही दशा है । अन्ताराष्ट्रिय संगठनके युगान्तरकारी होनेमें कोई सन्देह नहीं है । यदि सच्चमुच्च संगठन हो जाय तो युद्धका अन्त हो जाय और पृथ्वीमें विश्रुत 'रामराज्य' से भी अधिक सुख-समृद्धि उपलब्ध होने लग जाय । परन्तु अभी हम उसके पात्र नहीं हैं, धीरे धीरे पात्रता आ रही है, इस लिये संगठनका पूर्व रूप भी धीरे धीरे देख पडने लगा । कई ऐसी बातें हुई और हो रही हैं जिनसे संगठनके समर्थकोंका पथ निष्कण्टक होता है, जो भावी संगठनके अंग है । यह बातें एक प्रकारसे आकस्मिक हैं अर्थात् संगठनके उद्देश्यसे नहीं की गयी हैं परन्तु पृथ्वीकी सूत्रात्माको इस समय संगठन अभिप्रेत है इस लिये बिना जाने बूझे भी लोग तदुन्मुख होकर चल रहे हैं ।

सबसे बड़ी बात जो हो रही है वह यह है कि आपसका अविश्वास कुछ कुछ कम हो रहा है और सहयोगका अभ्यास बढ़ रहा है । इसमें सन्देह नहीं कि महायुद्ध और उसके बादकी वर्मेल्स सन्धिने शान्तिको बड़ा धक्का पहुंचाया है पर यह रुकावट

अस्थायी है। इससे प्रवाह न तो बन्द होता है न उसकी दिशा परिवर्तित होती है।

सगठनके सहायकोंमें पहिला स्थान असर्कारी अन्ताराष्ट्रिय समितियों और सम्मेलनोंका है। इस प्रकारकी कई समितियाँ हैं और कई सम्मेलन हो चुके हैं। इनसे सर्का-असर्कारी अन्ताराष्ट्रिय कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है परन्तु राष्ट्रिय समितियाँ सभी देशोंके विद्वान् तथा अन्य गण्यमान्य लोग और सम्मेलन इनमें सम्मिलित होते हैं। इसलिये इनका प्रभाव बहुत पडता है और लोगोंको यह अनुभव होता जाता है कि बहुत सी बातोंमें भिन्न भिन्न देशोंके निवासी अन्योन्याश्रित हैं।

ऐसी सभाएँ अनेक प्रकारकी हैं। उदाहरणके लिये हम अन्ताराष्ट्रिय चिकित्सा समिति,^ॐ अन्ताराष्ट्रिय विधान समिति,[†] अन्ताराष्ट्रिय सार्वजनिक कला परिषद्,[‡] अन्ताराष्ट्रिय पशुरक्षा समिति,[§] इत्यादिका नाम ले सकते हैं। निम्न लिखित तालिक से पता लगेगा कि इस प्रकारकी समितियोंकी कितनी बैठकें होती हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि बैठकें सदैव एक ही नगरमें नहीं होतीं।

* International Association of Medicine (इण्टर नैशनल एसोसियेशन आफ मेडिसिन) † Institute of International Law (इन्स्टिट्यूट आफ इण्टरनैशनल लॉ) ‡ International Institute of Public Art (इण्टर नैशनल इन्स्टिट्यूट आफ पब्लिक आर्ट)

§ International Society for the Protection of Animals (इण्टरनैशनल सोसाइटी फार दि प्रोटेक्शन आफ एनिमल्स)

| वर्ष | बैठकोंकी संख्या |
|-----------------|-----------------|
| १८९७ से १९०६ तक | १० |
| १९०७ से १९१६ ,, | १८ |
| १९१७ से १९२६ ,, | ६४ |
| १९२७ से १९३६ ,, | १३९ |
| १९३७ से १९४६ ,, | २७२ |
| १९४७ से १९५६ ,, | ४७५ |
| १९५७ से १९६६ ,, | ९८५ |
| १९६७ से १९७१ ,, | ४५८ |

इस तालिकाके अङ्क स्वतः स्पष्ट हैं। ज्यों ज्यों हम वर्तमान समयके निकट आते जाते हैं त्यों त्यों बैठकोंकी संख्या बढ़ती जाती है। १९७१ में महायुद्ध छिड़ गया नहीं तो १९६७ से १९७६ तककी संख्या सम्भवतः १५००—१८०० के बीचमें होती। ऊपर जो नाम हमने उदाहरणार्थ दिये हैं उनसे यह विदित होता है कि कला, नीति, विधान, विज्ञान सभी विषयोंकी अन्ताराष्ट्रिय समितियाँ हैं। एक ओलिम्पिक गेम्स कमेटी है जो प्रतिवर्ष दौड़ना, कुश्ती, मुक्की आदि खेल कराती है और पुरस्कार देती है। एशियाटिक सोसायटी, रायल सोसायटी, मैथेमेटिकल सोसायटी, स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूट, नैशनल अकैडेमी आदि साहित्यिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक समितियाँ भिन्न भिन्न देशोंके विद्वानोंमें सौहार्द फैलाती हैं। बड़े बड़े विश्वविद्यालय जिनमें दूर दूरसे आकर विद्यार्थी पढ़ते हैं यही काम कर रहे हैं। इस सम्बन्धमें आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज (ब्रिटेन), गटिगोन (जर्मनी), हार्वर्ड, कलम्बिया और कैलिफोर्निया (अमेरिका) के नाम उल्लेख्य हैं। डा० जगदीश चन्द्र बोसका वैज्ञानिक अन्वेषणालय और श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुरका विश्वभारती विश्वविद्यालय भी इसी कोटिकी संस्थाएँ हैं।

इस प्रकारकी सस्थाओंके ऊपर सकार्कारी सस्थाओंका स्थान है। ऐसी सस्थाओंमें कुछ तो स्थायी और कुछ अस्थायी हैं। पहिले हम स्थायी सस्थाओंको लेते हैं। ऐसी सस्थाओंमें स्थायी सकार्कारी से कईने बहुत उपयोगी काम किया है। अन्तराष्ट्रिय उदाहरणार्थ हम पोस्टल समिति §, कृषि सस्था परिषद् **, समुद्रान्वेषण कमेटी †, अन्तराष्ट्रिय भूकम्प शास्त्र समिति ‡ का नाम ले सकते हैं। इनमेंसे कुछका तो शासनमें प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। अन्तराष्ट्रिय डाक पहुचानेका प्रबन्ध पोस्टल समितिके सिपुर्द है। मिश्र और ब्रिटेन मिलकर सूदानपर शासन कर रहे हैं।

इन समितियोंमेंसे अधिकांश समाचार पहुचानेका काम करती है। राज्योंमें मनमुटाव बहुधा इसलिये होता है कि एक दूसरेके आवश्यक समाचार नहीं ज्ञात होते। एक राज दूसरेसे सीधे पूछनेमें मानहानि समझता है और दूसरोंको कोई कुछ ठीक ठीक बताता नहीं। यदि वह जाननेका विशेष प्रयत्न करें तो बुरा माना जाता है। परन्तु अन्तराष्ट्रिय समितियोंको इन रुकावटोंका सामना नहीं करना पडता। उनके सगठनमें सभी सदस्य राजोंका हाथ रहता है इसलिये वह आवश्यक बातोंका पता सुगमतासे लगाकर प्रकाशित कर देती हैं या सब राजोंके पास भेज देती हैं। भिन्न भिन्न राज्योंमें किस किस मालपर क्या आयात निर्यात

§ Postal Union (पोस्टल युनियन)

* Institute of Agriculture (इन्स्टिट्यूट आफ एग्रिकल्चर)

† Committee for the Exploration of the Sea (कमिटी फार दि एक्सप्लोरेशन आफ दि सी)

International Institute of Seismology (इंटर नैशनल इन्स्टिट्यूट आफ सिस्मॉ जॉजी)

कर लगता है, कौन कौन से खनिज निकलते हैं, क्या क्या अन्न उपजता है, व्यापार और कल कारखानोंके सम्बन्धमें क्या क्या नियमोपनियम हैं, इसी प्रकारके समाचारोंका संग्रह होता है। कुछ समितियाँ दुष्ट रोगोंके उन्मूलनके लिये हैं। यह समितियाँ उन रोगोंके लिये उपयुक्त उपाय निर्धारित करती हैं जिनको सब सकारों अपने अपने यहां बर्तती हैं। गुलामीकी प्रथा उठानेकी प्रतिज्ञा अन्ताराष्ट्रिय है और सभी सभ्य राज इसमें योग देना अपना कर्तव्य समझते हैं।

अस्थायी सस्थाएँ भी बड़े कामकी होती हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए चांशिंगटनमें अन्ताराष्ट्रिय नि शस्त्रीकरण सभा हुई है।

विएना, पैरिस, लन्दनके अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलन, अस्थायी सकारों जिनका इस पुस्तकमें कई बार उल्लेख हो चुका अन्ताराष्ट्रिय है, इसी प्रकारकी सस्थाएँ थीं। युद्धोंके अन्तमें सन्धि परिषद् बैठा करती हैं वह भी बहुत ही उद्योगी काम करती हैं। पहिले ऐसे ही अवसरपर अन्ताराष्ट्रिय परिषद् बैठा करती थीं। पर धीरे धीरे लोगोंकी समझमें यह बात आने लगी कि यदि युद्धके पहिले ही सम्मेलन हुआ करे तो युद्ध करनेकी आवश्यकता ही न पड़े। जो बातें पहिले साधारण बातचीत या किसीके बीचबिचावसे तय हो सकती हैं उन्हींके पीछे लाखों मनुष्योंकी प्राणोंसे हाथ धोना पड़ता है और करोड़ों रुपये मिट्टीमें मिल जाते हैं। जैसा कि १८७१ में पुर्तगालके बादशाहने अपनी पार्लमेण्टके उद्घाटनके समय कहा था, युद्धके बादकी परिषद्में बलवानोंके लाभोंका ही समर्थन होता है। ऐसा स्यात् ही कभी होता है कि सन्धिपरिषद् विजेताको दबा सके। जिसके कब्जेमें जो आ गया उसका ही गया। विजितके आँसू पोंछनेके लिये चाहे

जो किया जाय पर उसके द्वेष और क्रोधको शान्त करना कठिन है इसलिये युद्धको रोकनेके उद्देश्यसे ही सम्मेलन होना चाहिये ।

यह विचार क्रमशः जड़ पकड़ता गया है । नीचेकी तालिकासे विदित होगा कि सन् १८९७ से १९७० तक अर्थात् लगभग १०० वर्षमें कितनी सभाएँ हुई हैं ।

| वर्ष | स्थान | विषय |
|------|----------------|-----------------------------|
| १८९७ | टोपाउ | यूरोपकी शान्ति |
| १८९८ | लेबैख | ,, |
| १८९९ | वेरोना | ,, |
| १९०३ | पनामा | अमेरिकाकी शान्ति |
| १९०४ | लन्दन | ग्रीसकी अवस्था |
| १९०७ | ,, | बेल्जियमकी अवस्था |
| १९२४ | लीमा | अमेरिकाकी शान्ति |
| १९३२ | विएना | क्रोमियन युद्ध |
| १९३५ | पेरिस | डैन्यूब तटवर्ती छोटे राज |
| १९३७ | ,, | शामका प्रश्न |
| १९४१ | लन्दन | इलेस्विग होल्सटाइनका प्रश्न |
| १९४४ | ,, | लक्सम्बर्गका प्रश्न |
| १९४६ | पेरिस | क्रीटका प्रश्न |
| १९४८ | लन्दन | कृष्णसागरका प्रश्न |
| १९५३ | कुस्तुन्तुनिया | बाल्कन प्रायद्वीपकी दशा |
| १९५५ | बर्लिन | ,, |
| १९५७ | पेरिस | चीनकी अवस्था |
| १९६३ | अल्जेसिरस | मरुक्कोका प्रश्न |
| १९७० | लन्दन | बाल्कन प्रायद्वीपकी दशा |

इनमेंसे अधिकांश प्रश्न बड़े ही जटिल थे। उनका निर्णय बिना युद्धके कठिन प्रतीत होता था। यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि युद्ध द्वारा निर्णय हो ही जाता क्योंकि गत महासमरका कड़ुआ अनुभव तो यही बतलाता है कि एक युद्ध दूसरे युद्धके लिये अवसर खड़ा करता है। वर्सेल्स और सेवरकी सन्धियां न जाने कितने असन्तोष और तत्फलस्वरूप आर्थिक हानि तथा हिंसाके लिये उत्तरदायी हैं।

हमने ऊपर जान बूझ कर दो अन्ताराष्ट्रिय संस्थाओंका उल्लेख नहीं किया है। इसका कारण उनका महत्त्व है। उनका पृथक् वर्णन करना ही ठीक है।

इनमेंसे पहिली सस्था हेग सम्मेलन है। इसका इस पुस्तकमें बीसों बार उल्लेख हो चुका है। हम इसका संक्षिप्त इतिहास भी दे चुके हैं और उपयुक्त स्थलोंमें दिखला चुके हैं कि इसके द्वारा कैसे कैसे उपयोगी काम हुए हैं।

युद्ध, शान्ति और ताटस्थ्य सम्बन्धी अन्ताराष्ट्रिय नियमोंपर सर्वत्र इसकी छाप है। इसको पूर्ण सफलता भले ही न हुई हो पर इसने जितना काम किया वही बहुत है। चस्तुतः राष्ट्रसंघ इसीकी सन्तति है।

दूसरी सस्था अन्ताराष्ट्रिय श्रमजीवि-परिषद्* है। इसके अन्तर्गत यूरोपके सभी देशोंके श्रमजीवियोंकी समितियां हैं। जो इसके अन्तर्गत नहीं हैं वह किसी न किसी प्रकार इससे सम्बद्ध हैं। ऐसी तो कोई भी अन्ताराष्ट्रिय श्रमजीवि-परिषद् श्रमजीवि-समिति न होगी जिसपर इसका प्रभाव न पड़ता हो। यूरोपकी सरकारोंसे इसका कोई सम्बन्ध न था पर इसका आतङ्क न्यूनाधिक सब मानते थे।

*International Labour Union (इण्टर नैशनल लेबर युनियन)

कारण यह था कि श्रमजीवियोंकी संख्या करोड़ों तक पहुँचती है और पार्लमेण्टरी देशोंमें उनमेंसे बहुतोंको मत देनेका अधिकार था। इस लिये वह वैध रूपसे सरकारपर दबाव डाल सकते थे। फिर अवैध आन्दोलन भी उनके लिये कठिन न था। इतने मनुष्य हड़ताल ही कर बैठें तो सारे काम रुक जाय।

युद्धके पीछे एक नयी स्थिति उत्पन्न हुई। रूसमें श्रमजीवियोंके ही हाथमें शासनका सूत्र चला गया। यह लोग कार्ल मार्क्सके पक्के अनुयायी हैं। इनके समष्टिवाद (बोल्शेविज्म) से यूरोपके अन्य राज, जिनमें धनिकोंका प्राधान्य है, थरा उठे। जर्मनीमें श्रमजीवियोंके एक दूसरे दल, सोशल डेमोक्रेट्स, का जोर है। यह लोग बोल्शेवियोंकी उग्र नीतिका तो समर्थन नहीं करते परन्तु पूँजीपतियोंके लिये यह भी भयावह है। इस समय स्वयं ब्रिटेन ऐसे धनिक-प्रधान देशमें शासन श्रमजीवियोंके हाथमें है। यह लोग साम्यवादी हैं। इस प्रकार सभी देशोंमें श्रमजीवियोंका प्रभाव बढ़ता जाता है। रूसमें श्रमजीवी वर्गमें कृषक भी सम्मिलित हैं। यह सच है कि इस समय श्रमजीवियोंमें कई दल हाँ गये हैं पर इससे श्रमजीवनकी अन्ताराष्ट्रियता नष्ट नहीं होती। सभी दल साम्यवादी हैं और सभी मार्क्सको अपना आचार्य मानते हैं। भेद इतना ही है कि कोई साम्यवादकी बड़ी उग्र व्याख्या करता है, कोई मृदु। आपसमें बहुत कुछ सहानुभूति है और यदि इसी प्रकार साम्यवादी विचारोंका प्रचार होता गया और धीरे धीरे शासनका सूत्र श्रमजीवियोंके हाथमें आता गया तो एक नूतन प्रकारको सभ्यताका उदय होगा और अन्ताराष्ट्रिय संगठनको एक प्रबल और अद्यावधि कल्पनातीत सहारा मिल जायगा।

तीसरा अध्याय ।

अन्ताराष्ट्रिय पञ्चायत ।

हम इस विषयका भी पहिले उल्लेख कर चुके हैं । राजों-का साधारण व्यापार दूतोंके द्वारा होता है । यदि दूत अपना कर्तव्य पालन करें और करने पायें तो स्यात् कभी झगडे न हों, पर ऐसा होता नहीं । अविश्वास और स्वार्थके कारण दूतोंके सामने सब बातें रक्खी नहीं जातीं, जो बातें उनके सामने आती हैं उनके सम्बन्धमें भी स्वानुकूल तर्क ही उपस्थित किये जाते हैं और दूत भी अपनी ही सकारके दृक्कोणसे देखते हैं । परिणाम यह होता है कि छोटीसे छोटी बातोंका पहाड बन जाता है, फिर युद्धके सिवाय निपटारेका कोई दूसरा साधन ही नहीं रह जाता । युद्धसे जो निर्णय होता है वह न्याय्य हो या न हो पर सम्प्रति उसे मानना ही पडता है ।

युद्ध छिड़नेपर निष्पक्ष तटस्थ राजोंके लिये दो मार्ग हैं । या तो वह उसे होने दें और तमाशा देखें या बीचमें पडकर बन्द करानेका प्रयत्न करें । बीचमें पडना दो प्रकारसे हो सकता है । पहिलेको सत्सेवा कहते हैं । सत्सेवाका अर्थ इतना ही है कि वह तटस्थ दोनों राजोंसे कहे कि आप लोग सत्सेवा एक बार विवादग्रस्त प्रश्नोंपर फिरसे विचार कीजिये । मैं स्थान आदिका प्रबन्ध किये देता हूँ । सत्सेवा कभी कभी बहुत ही सफल होती है । ऐसा होता है कि दोनों पक्ष युद्धसे हटना चाहते हैं पर लज्जाके मारे कोई पहिले मुह नहीं खोलता । ऐसे अवसरपर सत्सेवासे एक अच्छा बहाना मिल जाता है । बहुधा सन्तोषजनक निर्णय भी हो जाता

है क्योंकि जैसा कि हम बार बार कह चुके हैं कितने भगडे तो केवल इसी कारण होते हैं कि एकको दूसरेकी हार्दिक इच्छाओं और हेतुओंका पता ही नहीं होता ।

सत्सेवाके ऊपर मध्यस्थताका स्थान है । मध्यस्थ केवल दोनों पक्षोंका सामना कराके ही नहीं बैठ रहता वरन् निर्णयमें स्वयं भाग लेता है । वह जितना ही निष्पक्ष और प्रभावशाली मध्यस्थता होगा उतनी ही सफलता उसकी मध्यस्थताको होगी । मध्यस्थता भी दो अवस्थाओंमें होती है ।

या तो युद्धको रोकनेकी इच्छासे कोई तटस्थ स्वयं दोनों पक्षोंसे कहे कि मैं मध्यस्थ बनता हूँ, आप लोग युद्ध स्थगित करके सब प्रश्नोंपर शान्ति-पूर्वक विचार कीजिये या दोनों युद्धकारी पक्षोंमेंसे ही एक पक्ष किसी तटस्थसे कहता है कि आप बीचमें पडकर निर्णय करा दीजिये । यह निश्चय है कि सत्सेवा और मध्यस्थता दोनोंकी ही सफलता इस बातपर निर्भर है कि दोनों युद्धकारी पक्ष बात माननेके लिये तय्यार हों ।

सत्सेवा और मध्यस्थता दोनों ही युद्ध छिडनेपर होती हैं । इनका परिणाम किसी न किसी प्रकारकी सन्धिके रूपमें देख पडता है । परन्तु यह सबको ही विदित होता जाता है कि भाग लगाकर चुभानेकी अपेक्षा भाग न लगने देना अधिक श्रेयस्कर है । इसलिये आजकल इस बातकी ओर ध्यान गया है कि यथासम्भव विवादके स्थल दूर किये जायं । जैसा कि हमने पहिले भी कहा है विवादका एक कारण यह है कि दोनों पक्षों-अनुसन्धान मण्डल को एक दूसरेका मत ज्ञात नहीं होता । दोनों ही अर्द्ध सत्यको पूर्ण सत्य मानकर उसके पीछे लड़ते हैं । इसलिये आजकल अनुसन्धान मण्डल^१ नियुक्त

* Commission of Enquiry (कमिशन आफ इन्क्वायरी)

करनेकी प्रथा चल पड़ी है। यह प्रथा अत्यन्त उपयोगी है। जब दो राजोंमें किसी बातपर मतभेद हो जाता है तो दोनों अपनी अपनी ओरसे कुछ प्रतिनिधि नियुक्त कर देते हैं। इन प्रतिनिधियोंके ऊपर कभी कभी किसी तटस्थ देशमें प्रार्थना करके उसका एक प्रतिनिधि सभापति-स्वरूपेण रख दिया जाता है। इस मण्डलीको अनुसन्धान मण्डल कहते हैं। कभी कभी कोई राज अपने देशमें ही किसी उद्देश्य विशेषसे अनुसन्धान करनेके लिये कुछ लोगोंको नियुक्त करता है। उनके समूहको भी अनुसन्धान मण्डल ही कहते हैं। इसलिये, ताकि अर्थ समझनेमें भ्रम न हो, जिस मण्डलमें दो या अधिक राजोंके प्रतिनिधि होते हैं उसे बहुधा मिश्र अनुसन्धान मण्डल भी कहते हैं। मण्डलका यह काम होता है कि वह विवादग्रस्त प्रश्नकी पूरी पूरी जांच करे। वह तत्सम्बन्धी सब कागजोंको देखता है, सब पक्षोंके साक्षियोंकी बातें सुनता है और यदि किसी स्थान विशेषके विषयमें झगडा हो तो इसे भी जाकर देखता है। फिर वह अपनी रिपोर्ट अपने नियोजकोंके पास भेज देता है। चूंकि मण्डलमें उभयपक्षके प्रतिनिधि होते हैं, इसलिये उसपर पक्षपातका आरोप नहीं हो सकता। परिणाम यह होता है कि बहुधा मण्डलकी रिपोर्ट सभी मान लेते हैं और उसीको आधार मानकर उनके प्रतिनिधि बैठकर विवादग्रस्त प्रश्नका निर्णय कर डालते हैं। सच्ची वस्तुस्थितिपर निर्धारित होनेके कारण यह निर्णय प्रायशः नीतिसंगत होता है।

सत्सेवा और मध्यस्थतासे झगडेका अन्त हो सकता है पर यह दोनों पक्षोंकी इच्छापर निर्भर है। ऐसा भी हो सकता है

§ Mixed Commission of Enquiry (मिक्स्ड कमिशन आफ इन्क्वायरी)

कि दोनों या एकको सत्सेवा या मध्यस्थता स्वीकार ही न हो या मध्यस्थता स्वीकार होनेपर भी मध्यस्थका निर्णय स्वीकार न हो । इसलिये बहुधा तटस्थ राज मध्यस्थ बनना पसन्द नहीं करते । यदि उनसे एक (या दोनों) पक्षकी ओरसे मध्यस्थ बननेका आग्रह किया जाता है तो वह कह देते है कि पञ्चायत पहिले यह प्रतिज्ञा करो कि मै जो निर्णय करूंगा उसे मान लोगे अर्थात् मुझे पञ्च मान लो । इस पञ्चायतकी प्रथासे भी बहुत लाभ हुआ है । कई बार राजोंने अपने विवादोंमें एक तीसरेको पञ्च मानकर उसके हाथमें निर्णय छोड़ दिया है । इसके लाभोको देखकर बहुत से राजोंने आपसमें ऐसी सन्धियां कर ली है कि हम अपने अमुक अमुक प्रकारके झगड़े पञ्चायत द्वारा ही निपटायेंगे । इसे अनिवार्य पञ्चायत कहते हैं । नीचेकी तालिकाएँ इस बातका प्रमाण हैं कि वर्तमान समयमें पञ्चायतकी प्रथा कितनी लोकप्रिय होती जाती है ।

तालिका (क)

| वर्ष | अनिवार्य पञ्चायतकी सन्धियां |
|-----------|-----------------------------|
| १९०२—१९११ | १ |
| १९१२—१९२१ | २ |
| १९२२—१९३१ | ११ |
| १९३२—१९४१ | ९ |
| १९४२—१९५१ | १० |
| १९५२—१९५६ | २५ |
| १९५७—१९६३ | ६५ |
| १९६४—१९७१ | १०० |

तालिका (ख)

| वर्ष | कितने प्रश्नोंका निर्णय पञ्चायत द्वारा हुआ |
|-----------|--|
| १८९८—१९१७ | १९ |
| १९१८—१९३७ | ४४ |
| १९३८—१९५७ | ८९ |
| १९५८—१९७१ | २०० |

ज्यो ज्यों हम वर्तमान कालके निकट आते जाते हैं त्यों त्यों पञ्चायतकी प्रतिष्ठा और उसपर लोगोंका विश्वास बढ़ता जाता है। बड़े राजोंमेंसे गत १२५ वर्षोंमें ब्रिटेनने लगभग ७०, अमेरिकाने ५६ और फ्रांसने २६ प्रश्नोंका निर्णय पञ्चायत द्वारा कराया है।

पञ्चायतोंके सामने दो प्रकारके प्रश्न आ सकते हैं। एक तो वह प्रश्न जिनमें दो राज वादी प्रतिवादी हैं, दूसरे वह जिनमें वादी किसी राजकी प्रजा है और प्रतिवादी दूसरा राज है। अधिकांश अभियोग इस दूसरे ही वर्गके होते हैं परन्तु लोगोंका ध्यान बहुधा पहिले प्रकारके अभियोगोंकी ओर अधिक जाता है। समाचारपत्रोंमें उन्हींकी अधिक चर्चा होती है। पञ्चायत एक प्रकारका न्यायालय है अतः उसमें न्यूनाधिक न्यायालयोंकी ही प्रक्रिया बर्ती जाती है। फलतः ऐसे ही प्रश्नोंपर विचार होता है जिनके सम्बन्धमें स्पष्ट विधान या नियम मिलते हों। अधिकांश काम तो सन्धियों और समय-पत्रोंके ठीक ठीक अर्थ लगानेका होता है।

दो प्रश्न पञ्चायतके सामने कभी नहीं रखे जाते, एक तो राष्ट्रीय गौरव और दूसरे राष्ट्रीय स्वाधीनता सम्बन्धी। इस अपवादका कारण स्पष्ट है। कोई आत्माभिमान राज यह नहीं स्वीकार करता कि मैंने कोई नीच या अप्रतिष्ठाजनक काम किया।

इस प्रकारका सन्देह भी होना गौरवमें बड़ा लग जानेके बराबर है इसलिये कोई राष्ट्र इस बाततकको स्वीकार नहीं करता कि मेरे गौरवके विषयमें कोई सन्देह है या इस बातकी सम्भावना है कि कोई मेरे किसी कामको गौरव-विरुद्ध या नीच समझे। इसी प्रकार कोई राज अपने स्वातन्त्र्यको किसी पञ्चायतके हाथमें नहीं सौंप सकता। स्वातन्त्र्यकी रक्षा प्राणपणसे की जाती है। उसके ऊपर सब कुछ न्योछावर कर दिया जाता है। किसी सरकारको यह अधिकार नहीं है कि राष्ट्रके स्वातन्त्र्यको दावपर लगा दे।

पञ्चायतमें जो निर्णय होता है वह अन्तिम होता है। इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि उभय पक्ष पहिलेहीसे प्रतिज्ञा कर देते हैं कि हम पञ्चही बात मान लेंगे, दूसरे कोई बड़ा न्यायालय भी नहीं होता जिसके सामने अपील की जाय।

एक और प्रकारकी पञ्चायत होती है जिसे अनिवार्य पञ्चायत-का एक रूप कह सकते हैं। इससे भी कुछ विवादोंका निर्णय होता है यद्यपि आजकल इसका विशेष अन्ताराष्ट्रिय महत्त्व नहीं है। यदि दोनों पक्षोंका एक अधिपति हो तो वह उनके झगड़ोंमें मध्यस्थ या पञ्च होगा। यूरोपमें आजसे तीन चार सौ वर्ष पहिले पोप ऐसा किया करते थे। आज भारतमें ब्रिटिश सरकार देशी राजोंके प्रति ऐसा ही करती है। या तो वह दो विवदमान राजोंके प्रतिनिधियोंको एकत्र करके उनको निर्णय करनेका अवसर देती है या स्वयं निर्णय कर देती है। दोनों पक्षोंको उसकी बात माननी ही पड़ती है।

इस प्रकारकी पञ्चायतमें कई दोष थे। एक तो यह कि पञ्चोंके चुनने और न्यायालयकी प्रक्रिया निश्चित करनेमें बहुत समय लगता था। इसी उद्देश्यसे, अर्थात् पञ्चायतका समुचित

प्रबन्ध करनेके लिये, हेगका अन्ताराष्ट्रिय न्यायालय खुला । इसका सक्षिप्त विवरण दूसरे खण्डके छठे अध्यायमें दिया है । उसी अध्यायमे राष्ट्र-संघ द्वारा नियुक्त अन्ताराष्ट्रिय न्यायालयका भी उल्लेख है । यदि स्वार्थी चतुर्महत्त्वे विरोध न किया होता तो यह न्यायालय वस्तुतः अन्ताराष्ट्रिय शांतिका एक बहुत बड़ा साधन हो जाता पर ऐसा न होने पाया । इनके स्वार्थने उसे पगु बना दिया ।

चौथा अध्याय ।

राष्ट्रसंघ और मानवसमाजका भविष्य ।

राष्ट्रसंघका कुछ वर्णन प्रथम खण्डके द्वितीय अध्यायमें आचुका है । उसे यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है । इस अध्यायमें हमको केवल दो एक सैद्धान्तिक प्रश्नोंपर विचार करना है ।

किमी न किसी प्रकारके संघका विचार बहुत पुराना है । राजनीतिके आचार्यों, धर्माध्यक्षों, महत्त्वाकांक्षी नरेशों सभीने इसके स्वप्न देखे हैं । कोई इसे धर्मप्रचार, कोई प्रभाववृद्धि, कोई न्यायका साधन समझता था । संघ-स्थापनके कई प्रकार सोचे गये पर कोई कार्यान्वित न हो सका । एक तो किसीको किसी दूसरेका विश्वास न था, इसलिये दूसरेकी सोची हुई अच्छीसे अच्छी बातमें स्वार्थकी दुर्गन्ध आती थी, दूसरे सहयोगका अनुभव न था, तीसरे हितसाम्य बहुत कम था । अब धीरे धीरे यह अवस्था सुधरी है । सहयोग बढ़ गया है, हितसाम्यकी मात्रा बहुत अधिक है पर अभी अविश्वास और स्वार्थमें विशेष कमी नहीं हुई है । वस्तुतः स्वार्थ ही अविश्वासकी जड़ है । एक एक राज त्रिस्तृत साम्राज्योंपर शासन करना चाहता है । पर अब धीरे धीरे यह बात भी जा रही है । राष्ट्रीय राजोंका उदय हो रहा है । बड़े बड़े साम्राज्य टूट रहे हैं और उनके टुकड़े स्वतंत्र राज होते जा रहे हैं । सम्भवतः भविष्यतमें न साम्राज्य रह जायेंगे, न उनकी सम्भावना रह जायगी, अतः स्वार्थकी सामग्री कम हो जायगी । ऐसी दशामें राष्ट्रोंका मिलकर काम करना और भी सुकर हो जायगा ।

पर इस स्थलपर एक भडचन पड़ती है। कुछ लोग एक कानूनी शंका उठाते हैं। उनका कहना यह है कि राजनीति-शास्त्रके अनुसार प्रत्येक स्वतन्त्र राज प्रभु है परन्तु किसी प्रकारके राष्ट्रसंघमें सम्मिलित होनेसे यह प्रभुत्व खण्डित हो जायगा। अतः उसका स्वातन्त्र्य ही खण्डित हो जायगा। इन लोगोंके अनुसार राष्ट्रसंघकी सदस्यताका अर्थ अपनेको बांध देना है। जो राज यह मान लेता है कि हम अमुक अमुक परिस्थितिमें संधि, अर्थात् न्यूनाधिक अन्य राजों, के आदेशोंका पालन करेंगे वह अपनी स्वाधीनतासे हाथ धो बैठता है।

यह आक्षेप विचार करने योग्य है। सौभाग्यकी बात यह है कि इनका उत्तर दिया जा सकता है। यदि राष्ट्रसंघमें सम्मिलित होना अपनेको पराधीन बनाना है तो किसी राजसे किसी भी प्रकारकी संधि करना पराधीन बनाना है। पर लोग ऐसा नहीं मानते। बात यह है कि यदि कोई सन्धि ढण्डेके जोरसे लिखवायी जाय तो उसपर हस्ताक्षर करना पराधीनताका चिन्ह है पर जो सन्धि अपनी इच्छासे लिखी जाय उसमें यह दोष नहीं आता। इसी प्रकार यदि कोई राज अपनी इच्छासे राष्ट्रसंघमें सम्मिलित होता है तो उसकी स्वाधीनतापर हर्ष नहीं आता। उसका संघमें सम्मिलित होना और संघकी शर्तोंको स्वीकार करना उसके प्रभुत्वका ही लक्षण है। इसका एक प्रमाण यह है कि जो राज प्रभु नहीं हैं वह साधारणतः संघके सदस्य नहीं हो सकते। अभी तो अनिवार्य पञ्चायतका नियम है ही नहीं पर यदि यह नियम बन जाय कि सब राजोंको अपने सभी ऋगड़ोंका निपटारा अन्तराष्ट्रिय न्यायालयमें कराना ही होगा तब भी बुरा न होगा क्योंकि यह नियम सदस्योंका ही बनाया होगा अतः इसके बननेसे उनके स्वातन्त्र्यका ह्रास न होगा।

यहाँपर एक आक्षेप यह किया जाता है कि सदाजात राजाओंके साथ और ऐसे राजाओंके साथ जो सदस्य नहीं है अन्ताराष्ट्रिय नियम न बर्त्ते जाने चाहिये। इसका उत्तर यह है कि यदि वह राज अन्य राजाओंके साथ किसी प्रकारका सम्पर्क न रखे, उनसे सर्वथा पृथक् रहे तो दूसरी बात है अन्यथा उसे भी अन्ताराष्ट्रिय संगठनके भीतर आना चाहिये। कमसे कम अन्य राजाका उसके साथ अन्ताराष्ट्रिय नियमोंके अनुसार व्यवहार करना सर्वथा उचित होगा। यह नहीं हो सकता कि कोई राज अन्य राजाओंके साथ व्यवहार करे और उस व्यवहारसे लाभ उठाये पर उन नियमोंसे अपनेको उन्मुक्त समझे जिनसे उन्होंने अपनेको बांध रखा है। राजसमाजमें सम्मिलित होना प्रभुत्वका अंश है पर एक बार सम्मिलित होकर आशिक सदस्यता नहीं हो सकती।

पूर्वपक्षी समुदायका एक आक्षेप और है। वह कहते हैं कि साधारणतः सन्धियोंमें कोई अवधि दी रहती है या यह लिखा रहता है कि यदि एक पक्ष परिस्थितिके परिवर्तनके कारण सन्धिसे असन्तुष्ट हो जाय तो वह दूसरेको पर्याप्त सूचना देकर अलग हो सकता है पर राष्ट्रसंघमें कोई इस प्रकारका नियम नहीं है अतः इसमें वस्तुतः सदाके लिये अपना अपना हाथ कट जाता है। यह तर्क भी बहुत गम्भीर नहीं है। यदि परिस्थितिमें परिवर्तन हो तो सदस्योंको आंदोलन करके समयानुकूल नियम बनवाने चाहिये। यदि कोई बाहरी बलात् हमसे किसी नियमका पालन कराये तो उसका विरोध येनकेन प्रकारेण किया जा सकता है पर जिस संस्थाके हम स्वयं सदस्य हैं उसको छोड़ देना उचित नहीं है। उसमें रहकर ही सुधार करना श्रेयस्कर है। विदेशी शासकके विरुद्ध हिंसात्मक अथवा अहिंसात्मक असहयोग ठोक है पर स्वदेशी शासनसे यथासम्भव वैध आंदोलन हो करना चाहिये।

अस्तु, राष्ट्रसंघके विरुद्ध जो तर्क उपस्थित किये जाते हैं वह लचर हैं, इसमें सन्देह नहीं। इस बातका उत्तरोत्तर विश्वास ही इस बातका कारण है कि धीरे धीरे संघके पक्षपातियोंकी संख्या बढ़ती गयी है। यदि बड़े राज, जो एक प्रकारसे संघके अभिभावक हैं, निःस्वार्थ बुद्धिसे काम कर सकते और सचमुच स्थायी जग-च्छान्तिके प्रेमी होते तो संघकी अत्यन्त सफलता होती, वस्तुतः निःस्वार्थतासे ही उनके सच्चे हितोंकी भी पूरी पूरी रक्षा होती। पर अपरिष्कृत बुद्धिने अन्धा कर रक्खा है। राजनीतिकी कौन कहे, नैतिक बातोंमें भी क्षुद्र स्वार्थसे काम लिया जाता है। इसका एकही उदाहरण पर्याप्त है। राष्ट्रसंघने अफीमका व्यापार रोकनेके उद्देश्यसे एक उप-परिषद्की बैठक करायी। उसमें यह निश्चय हुआ कि सिवाय औषध-सम्बन्धी कामोंके लोगोंके अन्य कामोंके लिये अफीम न मिला करे। यह बात सभी राज्योंको पसन्द थी पर ब्रिटिश सरकार तो स्वयं अफीम बेचती है, चीनको एक बार लड़ कर अफीम मोल लेनेके लिये विवश कर चुकी है। जिसमें दूसरोंका शारीरिक और नैतिक पतन है उसीमें उसका लाभ है। इस लिये उसे यह नियम भला न लगा। उसने 'औषध-सम्बन्धी' के स्थानमें 'उचित'† शब्द रखवाया। जिसको अफीम खानेका अभ्यास है उसके लिये अफीमका प्रयोग उचित ही है, चाहे इस सेवनका परिणाम विष-सेवनके ही तुल्य क्यों न हो अतः इस शब्दके भीतर अफीम खानेवालों और बेचनेवालों अर्थात् ब्रिटिश सरकार दोनोंके लिये पर्याप्त अवकाश है। इसी प्रकारके धूर्ततामय काम संघकी प्रतिष्ठा गिराते हैं पर यदि छोटे राज्योंका प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता गया और बड़े बड़े साम्राज्योंका विध्वंस होकर राष्ट्रीय राज बनते गये तो सम्भवतः यह दोष आपही दूर हो जायगे।

* Medical (मेडिकल) † Legitimate (लेजिटिमेट)

परन्तु यदि पृथ्वीपर सुख-शान्तिको चिरस्थायी होना है तो इतनेसे ही काम न चलेगा। जैसा कि हमने प्रथम खण्डके तृतीय अध्यायमें दिखलाया है, संघोकी दो ही गति होती है। या तो संघ धीरे धीरे टूट जाता है और उसके अग तितर बितर हो जाते हैं या उसका बल बढ़ता जाता है और वह क्रमशः संयुक्त राज अमेरिकाकी भाँति एक लिङ्गशेष राजका स्वरूप धारण कर लेता है। पृथ्वीका कल्याण इसीमें है कि राष्ट्रसंघ धीरे धीरे एक बृहत् लिङ्गशेष राज बन जाय। राष्ट्रीय सरकारें अपने अपने देशोंका शासन करें परन्तु अन्ताराष्ट्रिय सरकारके अधीन रह कर। भिन्न भिन्न राष्ट्रीय सेनाओंके स्थानमें एक अन्ताराष्ट्रिय सेना या पुलिस हो। पृथ्वीकी खनिज और क्षेत्रज सम्पत्तिसे मनुष्यमात्रकी आवश्यकताओंकी पूर्ति की जाय।

हम नहीं कह सकते कि ऐसा कभी होगा या नहीं पर जिस दिन ऐसा होगा उसी दिन मनुष्य सचमुच मनुष्य होगा। उसी दिन वह जाति, देश, सम्प्रदाय आदिके कृत्रिम बन्धनोंका अतिक्रमण करके

ईशावास्यमिद् २९ सर्वम्, यत्किञ्च जगत्याजगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मागृध. कस्यस्विद्धनम् ॥

की श्रुतिके अनुसार पूर्णरूपेण चलेगा उसी दिन मनुष्य समष्टि-रूपसे अपवर्गका अधिकारी होगा, उसी दिन वसुन्धरा अपना नाम सार्थक करके स्वर्गादि दिव्य लोकोंके लिये आदर्श बनेगी। ईश्वर वह दिन शीघ्र लाये।

इति शम्

परिशिष्ट

परिशिष्ट*—१

[अवतरणोंके सामनेका प्रथम अङ्क अधिकरण, द्वितीय प्रकरणका तथा तृतीय वाक्यका सूचक है—अवतरणोंका पारस्परिक सम्बन्ध दिखलानेके लिये बीच बीचमें ग्रंथकारद्वारा जो नोट दिये गये हैं उनके साथ कोष्ठमें ग्रं लिख दिया है ।]

राजा राज्यमिति प्रकृतिसङ्क्षेप. (८।१२८।१)

प्रकृति शब्दका सक्षिप्त अर्थ राजा तथा राज्य है ।
[हमारी परिभाषाके अनुसार राज्यके स्थानमें राज कहना अधिक सगत होगा-ग्रं:]

राजात्मद्रव्यप्रकृतिसम्पन्नो नयस्याधिष्ठान विजिगीषुः
(६।९७।१६)

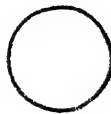
तस्मान्मित्रमरिमित्रं मित्रमित्रमरिमित्रमित्रम् चानन्तर्येण भूमीनां प्रसज्यते पुरस्तात् । पश्चात्पार्ष्णिग्राह आक्रन्द पार्ष्णिग्राहासार आक्रन्दासार इति । भूम्यनन्तर. प्रकृत्यमित्र. तुल्याभिजन. सहज. । विरुद्धो विरोधयिता वा कृत्रिम । भूम्येकान्तर प्रकृतिमित्र मातापितृसबद्धं सहजम् । धनजीवितहेतोराश्रितं कृत्रिममिति । अरिविजिगीष्वोर्भूम्यनन्तरः मंहतासंहतयोरनुग्रहसमर्थो निग्रहे चासंहतयोर्मध्यम । अरिविजिगीषुमध्यानां बहिः प्रकृतिभ्यो बलवत्तर सहतासहतानामरिविजिगीषुमध्यमानामनुग्रहे समर्थो निग्रहे चासहतानामुदासीन । (६।९७।२३-३०)

विजिगीषु (जीतनेकी इच्छावाला) राजा वही है जो कि गुणी, शक्तिसम्पन्न तथा प्रभुत्वशक्तिसयुक्त हो । विजिगीषुके सामने मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र तथा अरि-मित्र-मित्र प्राय होते हैं । उसके पीछे पार्ष्णिग्राह (पीठ-परका दुश्मन), आक्रन्द (पीठपरका दोस्त), पार्ष्णि-ग्राहासार (पार्ष्णिग्राहका मित्र) तथा आक्रन्दासार (आक्रन्दका मित्र) होते हैं । उसके राजसे सटे, समान कुल वाले तथा स्वभावसे ही शत्रुको सहज और जो विरुद्ध हो या दूसरोंको भड़काता हो उसे कृत्रिम कहते हैं । इसी प्रकार सीमासे जुड़े, रिश्तेदार तथा स्वभावसे ही मित्रको सहज तथा जो जीवन धनके हेतु मित्र बन गया हो उसे कृत्रिम समझना चाहिये । शान्ति तथा युद्धमे, निग्रह और अनुग्रहमें समर्थ अरि तथ विजिगीषुके मध्यमे स्थित राजाको मध्यम और जो शक्तिशाली, अनुग्रहमे समर्थ दूर राष्ट्रका राजा हो उसे उदासीन कहते हैं ।

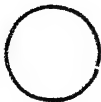
[यह नियम महत्त्वाकांक्षी राजोके लिये है । जो राज अपना साम्राज्य फैलाना चाहता हो उसे विजिगीषु कहते हैं । वह जिसपर विजय प्राप्त करना चाहता हो वह अरि है । उस विजिगीषुके सभी अन्य राज सहायक तो होंगे नहीं, कुछ मित्र होंगे, कुछ सहायक होंगे, कुछ तटस्थ होंगे । अतः उसे अपने चारो ओर १२ राजोका एक मण्डल बनाना चाहिये । इस मण्डलमें यदि शत्रुओकी सख्या कम की जा सके तो ठीक ही है नहीं तो कमसे कम शक्तिसाम्य तो रहेगा ही । मण्डलका संगठन इस चित्रसे समझमें आ जायगा ।



मध्यम



उदासीन



अरि

इसी प्रकारके मण्डल अरि आदिके भी होंगे—प्रः].

षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डल योनि । संधिविग्रहासनयान-
सश्रयद्वैधीभावा. षाड्गुण्यमित्य।चार्या (७।९८-९९।१-२)

प्रकृतिमण्डलपर ही षाड्गुण्य निर्भर है । पुराने
आचार्य्य सधि (शर्तोंके साथ शान्ति), विग्रह (हानिका
रक उपायोको प्रत्यक्ष रूपसे करना), आसन (उपेक्षा
करना), यान (चढ़ाई करना), संश्रय (दूसरेका सहारा
लेना) और द्वैधीभाव (दुतरफी चाल) को ही षाड्गुण्य
(६ प्रकारकी राजनीति) मानते हैं ।

सन्धिविग्रहयोस्तुल्यायां वृद्धौ सन्धिमुपेयात् । विग्रहे हि
क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवाया भवन्ति । तेनासनयानयोरासनं व्या-
ख्यातम् । द्वैधीभावसश्रययोर्द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ (७।१००।१-४)

यदि विजिगीषु सन्धि विग्रहमे एक सहश लाभ देखे तो
सधिको ही करे । विग्रहमे क्षय व्यय प्रवाम तथा विग्र आदि
उपस्थित हो जाते हैं । आसन तथा यानमें आसन ही उत्तम
है । सशय तथा द्वैधी-भावमे द्वैधी-भावका अवलम्बन करे ।

शमः संधि समाधिरित्येकोऽर्थः । राज्ञां विश्वासोपगम-
शम सधि समाधिरिति । सत्यं वा शपथो वा परत्रेह च स्थावर-
संधिः । इहार्थ एव प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा बलापेक्ष । संहिता स्म
इतिसत्यसंधा पूर्वे राजान सत्येन सदधिरे । तस्यातिक्रमे शप-
थेन अग्न्युदकसीताप्राकारलोष्टहस्तिस्कन्धाश्वपृष्ठरथोपस्थ-
शस्त्ररत्न बीजगन्धरससुवर्णहिरण्यान्यालेभिरे । हन्युरेतानि
त्यजेयुश्चैनं यः शपथमतिक्रामेदिति । शपथातिक्रमे महतां तप-
स्विनां मुख्यानां वा प्रातिभाव्यबन्ध प्रतिभू । बन्धुमुख्यप्रग्रहः
प्रतिग्रहः (७।१२२-१२३।१-२, ६-११, १४)

शम, सन्धि तथा समाधि एक दूसरेके पर्याय हैं। नरे-
शोंके विश्वासकी स्थिरता इसीपर निर्भर है। सत्य या
शपथपर आश्रित संधि दोनों लोकोंके लिये स्थिर होती
है। प्रतिभू तथा प्रतिग्रहपर आश्रित संधि तो इसी
लोकके लिये स्थिर होती है और उसकी स्थिरता बलपर निर्भर
है। पुराने जमानेके राजा 'हमारी संधि है' यह कहकर
सत्यपर दृढ़ रहते थे। इसके बाद आग, पानी, खेत, मकान,
धातु, हाथीका कंधा, अश्वपृष्ठ, रथकी गद्दी, शस्त्र, रत्न,
धान्य, गंध, रस, सोना आदि हाथमे लेकर या छूकर
शपथ करने लगे कि जो शपथका उल्लंघन करे उसको
अमुक वस्तुएं नष्ट कर दें तथा सदाके लिये छोड़ दे। शपथके
उल्लंघन करने पर जिसमें बड़े बड़े तपस्वियो तथा मुखियोको
बीचमें रक्खा जाय उसे प्रतिभू सन्धि कहते हैं। बन्धुओ
तथा मुखियोको जिसमें जमानतकी भांति रक्खा जाय
(अर्थात् एक पक्षके बन्धु या मुखिया दूसरेके यहां जमा-
नतकी भांति रख दिये जाय) उसे प्रतिग्रह सन्धि कहते हैं।

परदुर्गमवस्कन्ध स्कन्धावारं वा पतितपराङ्मुखाभि-
पन्नमुक्तकेशशस्त्रभयविरूपेभ्यश्चाभयमयुध्यमानेभ्यश्च दद्युः।

(१३।१७४-१७५।६८)

शत्रुके किलेको जीतकर विजिगीषु उन सैनिकोंको
अभयदान दे जो कि युद्धक्षेत्रमें पड़े हो, जो उसके पक्षमें हो
गये हों, जिनके बाल बिखरे हुए हो, हथियार इधर उधर
पड़े हों, जो डरसे विरूप हो गये हो या जो न लड़े हों।

नवमवाप्य लाभं परदोषान्स्वगुणैश्छादयेत् । गुणान्गुण-
द्वैगुण्येनस्वधर्मकर्मनुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिश्च प्रकृति-
प्रियहितान्यनुवर्तेत । यथा सम्भाषित च कृत्यपक्षमुपग्रा-
हयेत् । तस्मात्समानशीलवेषभाषाचारतामुपगच्छेत् । देश-
दैवतसमाजोत्सवविहारेषु च भक्तिमनुवर्तेत । (१३।१७६।
५-७, १०-११)

नवीन प्रदेशको जीतते ही शत्रुके दोषोको अपने गुणोंसे
ढँक दे । यदि शत्रु गुणी हो तो उससे दुगुने गुणोको
दिखावे । प्रजा तथा प्रकृतिका हित धर्म, कर्म, अनुग्रह,
परिहार, दान तथा मान सम्बन्धी कामोसे करे । कृत्यपक्ष
(शत्रुसे विरुद्ध होकर जिन्होंने साथ दिया हो उन) को जो
वचन दिया हो उसको पूरा करे । विजित देशके समान
कपड़ा पहिने, व्यवहार करे, वैसा ही आचरण रखे । वहां-
के दैवत (मंदिर), समाज, उत्सव विहार सम्बन्धी कामोंमें
श्रद्धा प्रकट करे ।

प्राणादपि प्रत्ययो रक्षितव्यः । शत्रोरपि न पतनीया
वृत्ति (चाणक्य सूत्राणि १६५ तथा ४५०)

प्राण चले जायं पर विश्वासघात न करे । शत्रुसे भी
दुर्व्यवहार न करे । ❀

* जैसा कि प्रथम खण्डके दूसरे अध्यायमें सकेत किया गया है इस
परिशिष्टमें सब अवतरण कौटिलीय अर्थशास्त्रसे लिये गये हैं । मूलके
लिए पञ्जाब संस्कृत बुकडिपो द्वारा प्रकाशित तथा डा. जॉर्जी द्वारा
सम्पादित संस्करण और अनुवादके लिये उसी बुकडिपो द्वारा प्रकाशित
श्री प्राणनाथ विद्यालंकारके अनुवादसे काम लिया गया है ।

परिशिष्ट-२

अन्ताराष्ट्रिय समाजके सदस्योंकी नामावली ।

[इस तालिकामें कनाडा आदि वह ब्रिटिश उपनिवेश भी सम्मिलित है जिन्हे स्वायत्त शासनका अधिकार प्राप्त है और जो राष्ट्रसंघके सदस्य हैं । सदस्य तो भारत भी है पर उसकी जो दशा है वह भारतवासियोंसे छिपी नहीं है इसीलिए उसके नामके सामने प्रश्नका चिह्न कर दिया गया है ।]

एशिया महाद्वीप

| | | | |
|------------|-------|--------------|--------|
| भारत (?) | स्याम | अफ्गानिस्तान | तुर्की |
| नैपाल | चीन | हजाज | |
| फारस | जापान | इराक | |

यूरोप महाद्वीप

| | | | |
|-----------------|------------------|-------------|---------|
| आल्बेनिया | जर्मनी | लिथुएनिया | स्वीडन |
| आस्ट्रिया | ब्रिटेन | हालैण्ड | पोलैण्ड |
| बेल्जियम | यूनान | पुतंगाल | रूस |
| बल्गेरिया | हंगरी | रुमानिया | |
| चेको-स्लोवेकिया | इटली | स्पेन | |
| एस्थोनिया | स्वतंत्रआयरिशराज | स्वीजरलैण्ड | |
| फिनलैण्ड | यूगोस्लेविया | डेन्मार्क | |
| फ्रांस | लैट्विया | नार्वे | |

अफ्रीका महाद्वीप

मिश्र हब्श (अबिसीनिया) लाइबीरिया दक्षिण अफ्रीका

अमेरिका महाद्वीप

| | | |
|-------------|---------------------|-------------|
| आर्जेण्टिना | डोमिनिकन प्रजातंत्र | सैल्वाडोर |
| बोलिविया | ग्वाटिमाला | संयुक्त राज |
| ब्रेज़ील | हायटि | युरुग्वे |
| कनाडा | हॉण्डुरास | वेनेज़्वेला |
| चिली | मेक्सिको | |
| क्रॉलम्बिया | निकारागुआ | |
| कॉस्टारिका | पनामा | |
| क्यूबा | पैराग्वे | |
| ईक्वेडोर | पेरू | |

ओशिआनिया महाद्वीप

आस्ट्रेलिया न्यूज़ीलैण्ड

इनके अतिरिक्त यूरोपमे पोप और पाँच छोटे अशप्रभु राज अर्थात् ऐण्डोरा, लीखेंस्टाइन, लक्सेम्बर्ग, मोनाको और सैन मैरीनो एक प्रकारसे अद्धे-सदस्य हैं। यही दशा कुछ कुछ एशियामे जार्जिया और आर्मीनिया तथा अफ्रीकामें मरक्कोकी है।

परिशिष्ट—३

प्राचीन कालमें सन्धियोंके प्रकार

कामन्दकीय नीतिसारमें १६ प्रकारकी सन्धियोंका वर्णन है। नीचे हमने उनका जो तात्पर्य लिखा है वह श्री शङ्कराचार्यकी जयमङ्गलाटीकाके अनुसार है यद्यपि टीका भी कहीं कहीं स्पष्ट नहीं है। मूलके लिये त्रिवान्द्रम संस्कृत सीरीजकी श्री गणपति शास्त्री सम्पादित प्रतिसे काम लिया गया है।

कपाल उपहारश्च, सन्तान सङ्गतस्तथा ।

उपन्यास प्रतीकार, संयोग पुरुषान्तरः ॥

अद्रष्टुनर आदिष्ट, आत्मामिष उपग्रह ।

परिक्रमस्तथोच्छिन्नस्तथा च परदूषणः ॥

स्कन्धापनेयः सन्धिश्च, षोडशः परिकीर्तितः ।

इति षोडशकं प्राहुः, सन्धि सन्धि-विचक्षणाः ॥

(कामन्दकीय नीतिसार, नवम सर्ग., सन्धिविकल्प प्रकरणम्, श्लोक २-४-५ से २० तक के श्लोकोमें इनकी व्याख्या की गयी है)

(१) कपाल सन्धि—जिसमें लड़ाईके पीछे ऊपरसे मेल हो जाय पर उभयपक्षमेंसे किसोकी भी विजय-पराजय न हो। युद्धके पूर्वकीसी अवस्था रह जाय। जिस प्रकार मिट्टीके घड़ेके चिटख जानेपर उसके दोनों टुकड़े (कपाल) इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि देखनेमें घड़ा पूर्ववत् प्रतीत होता है पर जो रेखा पड़ गयी वह मिट नहीं सकती, उसी प्रकार यह सन्धि होती है।

(२) उपहार सन्धि—जिसमें शत्रुको द्रव्य (क्षति-पूर्ति) देकर मेल किया जाय ।

(३) सन्तान सन्धि—जिसमें शत्रुको लड़की देकर मेल किया जाय ।

(४) सङ्गत सन्धि—जिसमें दोनों पक्ष मैत्रीसे प्रेरित होकर मिलते हैं । यह सन्धि 'यावदायुः प्रमाणं' (जन्म-भरके लिये) या सदा के लिये की जाती है । इसको सुवर्ण या काञ्चन सन्धि भी कहते हैं ।

(५) उपन्यास सन्धि—जो सन्धि किसी विशेष उद्देश्यके लिये, जैसे किसी समान शत्रुके विरुद्ध, की जाती है ।

(६) प्रतीकार सन्धि—मैं इसके साथ इस समय उपकार करूँ, आगे चल कर कभी यह मेरे साथ भी उपकार करेगा अथवा इसने पहिले मेरे साथ उपकार किया है अतः इस समय मुझे इसके साथ भी उपकार करना ही चाहिए, इन भावोंसे प्रेरित होकर जो सन्धि की जाय ।

(७) संयोग सन्धि—इसका लक्षण मूल पुस्तकमें इस प्रकार दिया है ।

एकार्थां सम्यगुद्दिश्य, यात्रां यत्र हि गच्छतः ।

स संहतप्रयाणस्तु, संयोग इति कथ्यते ।

इस लक्षणमें और

भव्यामेकार्थसिद्धिं तु, समुद्दिश्यक्रियेत यः ।

स उपन्यासकुशलैरुपन्यास उदाहृतः ॥

उपन्यास सन्धिका जो यह लक्षण बतलाया गया है उसमें बहुत कम भेद प्रतीत होता है । टीकाकारोंने 'गच्छतः' का अर्थ

‘अरि विजिगीषू’, किया है। तात्पर्य स्यात् यह हुआ कि दोनो शत्रु यदि लड़ाई स्थगित करके किसी उद्देश्य विशेष की सिद्धि के लिये मिल जायं तो उनकी सन्धि संश्लेष सन्धि कहलायगी। जो अन्य-दो राष्ट्रों में इस प्रकार की सन्धि होगी वह उपन्यास सन्धि कहलायगी।

(८) पुरुषान्तर सन्धि—जिसमें किसीसे इस शर्त पर सन्धि की जाय कि तुम अपने प्रधान सैनिकों को मेरी सेना के साथ काम करने के लिये भेज दो ताकि दोनों सेनाएं मिलकर मेरा अमुक कार्य सम्पादित करें।

(९) ग्रहष्टपुरुष सन्धि—जिसमें यह शर्त हो कि तुम अकेली अपनी सेना से मेरा अमुक काम करा दो।

(१०) आदिष्ट सन्धि जिसमें बलवान् शत्रु को अपने राज्य का एक भाग दिया जाय।

(११) आत्मामिष सन्धि - इसका लक्षण मूल में इस प्रकार बतलाया है।

स्वसैन्येन तु सन्धानमात्मामिष इति स्मृतः ।

इसका अर्थ जयमंगला टीकामें यह किया है कि (‘स्वसैन्येन सह स्वयं शत्रुसमीपमुपगम्य’) अपनी सेना के साथ शत्रु के पास ‘या उसकी शरण में’ जाकर जो सन्धि की जाय वह आत्मामिष सन्धि होती है। यही अर्थ उपाध्यायनिरपेक्षसारिणी टीकामें भी दिया गया है। पर इसमें दोष यह है कि इस सन्धिको वक्ष्यमाण उपग्रह सन्धि में अन्तर्भाव हो जाता है। श्री भगवान् दासजी इसका यह अर्थ करते हैं कि आत्मामिष वह सन्धि है जो अपनी सेना के साथ (स्वसैन्येन तु

सन्धानम्) किया जाय वह आत्मामिष (अपने लिये प्राण-धातक) है। यह अर्थ युक्तियुक्त और इतिहास सम्मत प्रतीत होता है। जब कोई राजा अपनी सेनाको बहुत प्रबल हो जाने देता है तो अन्तमे सेना शासनको ही दबा लेती है और उसे प्रसन्न करनेके लिये राजाको भाँति भाँतिकी शर्तें स्वीकार करनी पडती हैं जो अन्तमे उसे नाश करके ही छोड़ती हैं। रोमन साम्राज्यका अन्तकालीन इतिहास तथा सिक्खराजका इतिहास इसके उदाहरण हैं।

(१२) उपग्रह सन्धि—जो सर्वदान द्वारा (अपनेको पूर्णतया शत्रुके हाथमे समर्पित करके) की जाय।

(१३) परिक्रम सन्धि—जो सन्धि प्रबल शत्रुके आक्रमण करनेपर उसको धनादि देकर इसलिये की जाय कि वह लौट जाय।

(१४) उच्छिन्न सन्धि—जिसमे एक पक्ष अपने राज्यकी ऐसी सारवती भूमि (उर्वरा या खनिज सम्पन्न भूमि) देनेपर विवश किया जाय जिससे सत्ता बच रहनेपर भी उसकी समृद्धि नष्टप्राय हो जाय।

(१५) परदूषण सन्धि—जिसमे एक पक्ष अपने राज्यकी वार्षिक आय सदाके लिये शत्रुको देनेकी प्रतिज्ञा करनेपर विवश किया जाय। मूलमें 'सर्व' शब्द आया है। यदि सर्वका अर्थ शब्दशः किया जाय तो सम्पूर्ण आय देनेकी शर्त होगी। यह तो उपग्रहके अन्तर्गत हो गयी। अतः सर्वका अर्थ 'आयका बड़ा भाग' लेना चाहिये।

(१६) स्कन्धोपनेय सन्धि—जिसमे एक पक्ष बँधे समयोपर नियतसंख्यक द्रव्य दूसरे पक्षको देनेके लिये बाध्य किया जाय ।

नोट—कामन्दकीय नीतिसारके इस प्रकरणकी ओर श्री भगवान्दासजीने मेरा ध्यान आकर्षित किया था । इसके लिये मैं उनका ऋणी हूँ ।

परिशिष्ट—४

एक नये प्रकारकी सन्धि

अभी हालमें ब्रिटिश सरकार तथा रूसकी सोवियत सरकारमे जो सन्धि हुई है वह अन्तराष्ट्रिय जगतमे एक विशेष स्थान रखती है। सभी सभ्य देशोमे एक दृष्टप्रभु, चाहे वह नरेश हो चाहे राष्ट्रपति, रहता है। सन्धिपत्रोंमें उसका उल्लेख भी आता है। प्रतिनिधियोंके सम्बन्धमे इसी प्रकार लिखा जाता है कि अमुक अमुक उद्देश्यसे अमुक देशके अमुक श्रीमान् नरेश अथवा अमुक श्रीमान् राष्ट्रपतिने अमुक अमुकको प्रतिनिधि नियुक्त किया था अमुक अमुक नरेश (या राष्ट्रपति) अमुक अमुक शर्तों पर सन्धि करना उचित समझते हैं, इत्यादि। पर रूससरकारका कोई अध्यक्ष नहीं है अतः वह अपनी ओरसे केवल सोवियत सरकारका नाम लिखती है। यदि सन्धिपत्रमे ब्रिटिश नरेशका नाम आता तो उनकी अप्रतिष्ठा होती क्योंकि उधरसे कोई बराबरीका नाम नहीं था अतः इधरसे भी केवल ब्रिटिश सरकारका नाम लिखा गया ताकि पल्ला बराबर रहे। यह एक नये ढंगका सन्धिपत्र है।

परिशिष्ट—५

पारिभाषिक शब्दोंकी सूची ।

[क]

(हिन्दी शब्दोंके अंग्रेजी पर्याय)

| | |
|------------------------------|---|
| अङ्गरी | Angary (Droit d' angarie, jus angariae) |
| अतटस्थाचरण | Unneutral Service |
| अधिकार पत्र | Letter of credence (credentials) |
| „ , प्रतीक्षात्मक | Expectant Power |
| अधिकृति | Occupation |
| अधिपति | Suzerain |
| अनधिकार समर्पणपत्र | Sponson |
| अनुज्ञापत्र | Exequatur |
| अनुसन्धान मण्डल | Commission of Enquiry |
| „ „ , मिश्र | Mixed commission of Enquiry |
| अन्ताराष्ट्रिय विधानके पात्र | Subjects of International Law |
| अन्ताराष्ट्रिय शील | Comity of Nations |
| „ सदाचार | International Morality |

| | |
|-----------------------------------|----------------------------------|
| अपराधि-प्रत्यर्पण | Extradition |
| अपहृतोद्धार | Salvage |
| अभयदान | Quarter, Safe-guard |
| अरि | Belligerent |
| अरिताकी स्वीकृति | Recognition of Belli- gerency |
| अवकाश | Days of grace |
| अवरोध | Blockade |
| ” , अधिकारफलक | Strategic Blockade |
| ” , कागजी | Paper Blockade |
| ” , घोषणात्मक | Blockade by notification |
| ” , तट (= तटवरोध) | Blockade |
| ” , नौ (= नाववरोध) | Embargo |
| ” , वाणिज्य (= वाणि- ज्यावरोध) | Commercial Blockade |
| ” , वास्तविक | Blockade de facto |
| ” , सक्षम | Effective Blockade |
| ” भङ्ग | Violation of Blockade |
| आदेश (शासनादेश) | Mandate |
| आदिष्ट | Mandated |
| आदेश, स— (= सादेश) | Mandatory |
| सद्धारण शुल्क | Salvage money |
| उपभोग | Prescription |
| गारद | Convoy |
| चिकित्सालय | Hospital |
| ” , अचल | Fixed Hospital |
| ” चल | Field (mobile) hospital |

| | |
|------------------------------|--|
| जलमग्न विस्फोटक | Sub-marine Mines |
| जानपद समारोह | Levies en masse |
| तटलग्नजल (तटलग्नसमुद्र) | Marginal waters (Littoral or Jurisdictional or Territorial waters) |
| तटस्थीकरण | Neutralization |
| ताटस्थ्य | Neutrality |
| दूत, डप— | Charged' affairs |
| „ , परिमितार्थ | Resident Minister |
| „ , मितार्थ | Envoy |
| „ , विशिष्ट | Minister Plenipotentiary |
| दौत्य | Diplomacy |
| नजरबन्दी | Internment |
| नागरिकता | Citizenship |
| नावबरोध | Embargo |
| „ , युद्धात्मक | Hostile Embargo |
| „ , शान्तिमय | Pacific Embargo |
| निवास | Domicile |
| निषिद्ध | Contraband |
| „ , गौण | Conditional Contraband |
| „ , पूर्ण | Absolute Contraband |
| परवाना | Letter of Marque |
| पात्र, अन्तराष्ट्रिय विधानके | Subjects of International Law |
| पैरोल | Parole |
| पोत | Ship |
| „ , कुमक | Privateer |

| | |
|---|---|
| पोत . परिचर्या | Cartelships |
| „ , परिणत वणिक् | Converted Merchantman |
| पचायत | Arbitration |
| „ , अनिवार्य | Obligatory Arbitration |
| पचनामा | Compromisd'arbitrage |
| प्रजा | Subject |
| प्रजा, अग्रीकृत | Naturalized Subject |
| „ , अनन्य | Natural-born Subject |
| प्रतिघात | Reprisal |
| प्रतिभू | Hostage |
| प्रभु | Sovereign |
| „ , अल्प— | Part-Sovereign |
| „ , दृष्ट— | Nominal Sovereign |
| „—त्व | Sovereignty |
| बेहरी | Contribution |
| मध्यस्थता | Mediation |
| यात्राधिकार (यात्रानुज्ञा) | Pass-port |
| यादवीय | Civil War |
| युद्ध (समर, सगर) | War |
| युद्धकारी सभ्य समुदाय, राजा- तिरिक्त | Civilized Belligerent Community not being a State |
| रक्षागारद | Safe-guard |
| रक्षाद्रव्य (रक्षाशस्त्र) | Ransom |
| „ -पत्र | Ransom Bill |
| रक्षावचन | Safe-Conduct |

| राज | State |
|-----------------------|-------------------------------------|
| ” , अनुगामी (मुक्किल) | Client State |
| ” , अपूर्ण सयुक्त | Imperfect Union |
| ” , अलिङ्ग सयुक्त | Incorporate Union |
| ” , आकस्मिक सयुक्त | Personal Union |
| ” , औपनिवेशिक सरक्षित | Colonial Protectorate |
| ” , निरवयव | Unitary State |
| ” , पूर्ण सयुक्त | Perfect Union |
| ” , राष्ट्रीय | National State |
| ” , लिङ्गशेष | Federal Union |
| ” , व्यक्तिशेष | Real Union |
| ” , सावयव | Composite State |
| राष्ट्रसंघ = | League of Nations |
| ” , की स्थायी समिति | Council of the League of Nations |
| वस्तु, विहित | Free goods |
| वद्रोहित्वकी स्वीकृति | Recognition of Insur- gency |
| विधान | Law |
| ” —शास्त्र | Jurisprudence |
| ” , आवश्यक | Necessary Law |
| ” , नागरिक | Jus Civile |
| ” , प्राकृतिक | Jus Naturalae (Natural Law) |
| ” , राष्ट्रोंका | Jus Gentium |
| ” , विहित | Instituted Law |
| ” , सिद्ध | Positive |

| | |
|-------------------|---|
| विनष्टि | Devastation |
| विराम, रण | Truce (Armistice) |
| ” —पताका | Flag of Truce |
| विश्वसंस्कृति | Cosmopolitanism |
| वृद्धि, प्राकृतिक | Free goods |
| व्यापाराधिकार | License to trade |
| शक्ति | Power |
| ” , महा— | Great Power |
| ” —गोष्ठी | Concert of Powers |
| ” —सान्ध्य | Balance of Power |
| शासनादेश | Mandate |
| समझौता, सामरिक | Cartel |
| समयपत्र | Covenant |
| समर | War |
| समष्टिवाद | Communism |
| समर्पणपत्र | Capitulation |
| सामरिक क्षेत्र | Military Zone (Zone of war) |
| सेना, अनियमित | Guerilla Troops |
| ” , आपत्कालिक | Reserve Troops (Reserves) |
| ” , नियमित | Regular Troops |
| संगराधार | Base of Operations |
| सन्धि (सन्धिपत्र) | Treaty |
| ” , अर्थबोधक | Treaty declaratory of International Law |
| ” . उप— | Preliminary Treaty |
| ” , पूर्य | Definitive Treaty |

| | |
|-----------------------|------------------------|
| सन्धि , विधायक | Pure Law-making Treaty |
| ” , व्यवस्थापक | Law-making Treaty |
| हस्तान्तर , हस्तक्षेप | Cession , Intervention |

[ख]

(अंग्रेजी शब्दोंके हिन्दी पर्याय)

| | |
|--|--------------------------------------|
| Accretion | प्राकृतिक वृद्धि |
| Ambassador | नि शेषदूत |
| Angary (Droit d' angarie, jus angariae) | अगरी |
| Arbitration | पचायत |
| ” , obligatory | अनिवार्य पचायत |
| Armistice | रणविराम |
| Army of occupation | मुल्कगोरी सेना |
| Auxiliary | सहायक |
| Base of operations | सगराधार |
| Belligerency | अरिता |
| ” , Recognition of | अरिताकी स्वीकृति |
| Belligerent | अरि, शत्रु |
| ” communities not being States, Civilized | राजातिरिक्त युद्धकारी सभ्य समुदाय |
| Blockade | तटवरोध |
| ” , Commercial | वाणिज्यावरोध |
| ” , Effective | सक्षम अवरोध |
| ” , Paper | कागजी अवरोध |
| ” , Strategic | अधिकारफलक अवरोध |

| | |
|------------------------|-----------------------|
| Blockade, Violation of | अवरोधभग |
| „ de facto | वास्तविक अवरोध |
| „ by notification | घोषणात्मक अवरोध |
| Capitulation | समर्पणपत्र |
| Cartel | सामरिक समझौता |
| „ Ships | परिचर्या पोत |
| Cession | हस्तान्तर |
| Charge d' affaires | उपदूत |
| Citizenship | नागरिकता |
| Comity of Nations | अन्ताराष्ट्रिय शील |
| Commission of Enquiry | अनुसन्धान मण्डल |
| „ „ „—, mixed | मिश्र अनुसन्धान मण्डल |
| Communism | समष्टिवाद |
| Compromis d' arbitrage | पञ्चनामा |
| Condominium | सम्मिलित स्वाम्य |
| Confederation | सघ |
| Consul | वकील |
| Contraband | निषिद्ध |
| „ , absolute | पूर्ण निषिद्ध |
| „ , Conditional | गौण निषिद्ध |
| Contribution | बेहरी |
| Convoy | गारद |
| Cosmopolitanism | विश्वसंस्कृति |
| Covenant | समयपत्र |
| Days of Grace | अवकाश |
| Devastation | विनष्टि |
| Doctrine of infection | संसर्गदोष सिद्धांत |

| | |
|----------------------------------|---------------------------|
| Domicile | निवास |
| Emoargo | नावबरोध |
| „ , Pacific | शातिमय नावबरोध |
| „ , Hostile | युद्धात्मक नावबरोध |
| Envoy | मितार्थ दूत |
| Exequatur | अनुज्ञा पत्र |
| Extradition | अपराधिप्रत्यर्पण |
| Goods, free | विहित वस्तु |
| Hospital, field or mobile | चल चिकित्सालय |
| „ , fixed | अचल चिकित्सालय |
| Hostage | प्रतिभू |
| Insurgency, Recognition of | विद्रोहित्वकी स्वीकृति |
| Internment | नजरबन्दी |
| Intervention | हस्तक्षेप |
| Jurisprudence | विधानशास्त्र |
| Jus Civile | नागरिक विधान |
| „ Gentium | राष्ट्रोंका विधान |
| „ Naturalae | प्राकृतिक विधान |
| Law, Instituted | विहित विधान |
| „ , Martial | सैनिक विधान |
| „ , Necessary | आवश्यक विधान |
| „ of Nature | प्राकृतिक विधान |
| „ , Positive | सिद्ध विधान |
| League of Nations | राष्ट्रसंघ |
| „ „ , Council of the | राष्ट्रसंघकी स्थायी समिति |
| Letter of credence (Credentials) | अधिकार पत्र |

| | |
|--------------------------|-------------------------------|
| Letter of Marque | परवाना |
| Levies en Masse | जानपद समारोह |
| License to trade | व्यापाराधिकार |
| Mandate | आदेश, शासनादेश |
| Mandatory | सादेश |
| Mandated | आदिष्ट |
| Mediation | मध्यस्थता |
| Merchantman, Converted | परिणत वणिक्पोत |
| Mines, Submarine | जलमग्न विस्फोटक |
| Minister, Resident | परिमितार्थ दूत |
| " Plenipotentiary | विशिष्ट दूत |
| Morality, International | अन्ताराष्ट्रिय सदाचार |
| Neutralisation | तटस्थीकरण |
| Neutrality | ताटस्थ्य |
| Objects of International | अन्ताराष्ट्रिय विधानके लक्ष्य |
| Law | |
| Occupation | अधिकृति |
| Parole | पैरोल |
| Pass-port | यात्रानुज्ञा, यात्राधिकार |
| Power | शक्ति |
| " , Great | महाशक्ति |
| " , Balance of | शक्तिसाम्य |
| " , Concert of | शक्ति-गोष्ठी |
| " , Expectant | प्रतीक्षात्मक अधिकार |
| Prescription | उपभोग |
| Privateer | कुमक पोत |
| Protectorate, Colonial | औपनिवेशिक संरक्षित राज |
| Quarter | अभयदान |

| | |
|--------------------|--------------------------|
| Ransom | रक्षाशुल्क, रक्षाद्रव्य |
| " Bill | रक्षाद्रव्य-पत्र |
| Ratification | समर्थन |
| Reparation | क्षतिपूर्ति |
| Reprisal | प्रतिघात |
| Requisition | वस्तुमार्ग |
| Safe-conduct | रक्षावचन |
| Safe-guard | अभयदान, रक्षागारद |
| Salvage | अपहृतोद्धार |
| " money | उद्धारण शुक्ल |
| Service, unneutral | अतटस्थाचरण |
| Sovereign,-ty | प्रभु, प्रभुत्व |
| " , part- | अल्प प्रभु |
| " , Nominal | दृष्ट प्रभु |
| Sponsion | अनधिकार समर्पणपत्र |
| State | राज |
| " , Olent | अनुगामी राज, मुवक्किल रा |
| " , Composite | सावयव राज |
| " , National | राष्ट्रीय राज |
| " , Unitary | निरवयव राज |
| Subject | प्रजा |
| " , Natural-born | अनन्य प्रजा |
| " , Naturalized | अङ्गीकृत प्रजा |
| " of International | अन्तराष्ट्रिय विधानका |
| Law | |
| Surrender | आत्मसमर्पण |
| Suzerain | अधिपति |

| | |
|--|----------------------------|
| Treaty | सधि, सन्धिपत्र |
| „ Declaratory of International Law | अर्थद्योतक सधि |
| „ , Definitive | पूर्णसधि |
| „ Law-making | व्यवस्थापक सधि |
| „ Preliminary | उपसधि |
| „ , Pure Law-making | विधायक सधि |
| Troops, Guerilla | अनियमित सेना |
| „ , Regular | नियमित सेना |
| „ , Reserve (Reserves) | आपत्कालिक सेना |
| Truce | रखविराम |
| „ , Flag of Union Federal | विरामपताका |
| „ , Imperfect | लिगशेष राज |
| „ , Incorporate | अपूर्ण संयुक्त राज |
| „ , Perfect | अलिग संयुक्त राज |
| „ , Personal | पूर्ण संयुक्त राज |
| „ , Real | आकस्मिक संयुक्त राज |
| War | व्यक्तिशेषराज |
| „ , Civil | युद्ध, समर, संगर |
| „ , Zone of | यादवीय युद्ध |
| Waters, Littoral (Marginal, Territorial or Jurisdictional) | सामरिक क्षेत्र |
| Zone, Military | तटलग्न जल या तटलग्न समुद्र |
| | सामरिक क्षेत्र |

परिशिष्ट—६

अन्तराष्ट्रिय विधान सम्बन्धी प्रामाणिक पुस्तकोंकी सूची

(विशेष अध्ययनके लिये) .

(क) सामान्य

ओपेनहाइमकृत इण्टर्नेशनल लॉ [International Law by
Oppenheim]

फिलिप्सनकृत स्टडीज इन [Studies in International
इण्टर्नेशनल लॉ Law by Philipson]

(ख) प्रथम तथा द्वितीय खण्ड सम्बन्धी

बार्चर्डकृत ए गाइड टु डिप्लोमै- [Diplomatic Protection
टिक प्रोटेक्शन आव सिटि- of Citizens Abroad by
ज़स एंजॉर्ड Borchard]

सेटोकृत ए गाइड टु डिप्लोमैटिक [A Guide to Diplomatic
प्रेक्टिस Practice by Satow]

डिकिंसनकृत ईकालिटी आव [Equality of States in
स्टेट्स इन इण्टर्नेशनल लॉ International Law by
Dickinson]

मायर्सकृत कण्ट्रोल आव फ़ॉरेन [Control of Foreign Re-
रिलेशंस lations by Myers.]

कैरलकृत टीटीज, देयर मे- [Treaties, Their Making
किङ्ग ऐण्ड एफोर्समेण्ट and Enforcement by
Crandall]

राइटकृत कास्टिट्यूशनैलिटी [Constitutionality of
आव टीटीज Treaties by Wright]

(ग) तृतीय तथा चतुर्थ खण्ड सम्बन्धी

होगनकृत पैसिफिक ब्लोकेड [Pacific Blockade by
Hogan]

पाइककृत दि लॉ आव कॉन्ट्रै- [The Law of Contraband
बैण्ड आव वार of War by Pyke]

ताकाहाशीकृत इण्टर्नेशनल [International Law Ap-
लॉ एप्पाइड टु दि रशो— plied to the Russo-
जैपनीज वार Japanese War by Tak-
ahashi.]

गार्नरकृत इण्टर्नेशनल लॉ एण्ड [International Law and
दि वर्ल्ड वार the World War by
Garner]

बेकर और क्रोकरकृत लैंड [Land Warfare by Baker
वारफेयर and Crocker]

हैजेल्टाइनकृत दि लॉ आव [The Law of the Air by
दि एयर Hazeltine]

स्मिथकृत दि डेस्ट्रक्शन आव [The Destruction of Mer-
मर्चेंट शिप्स अन्डर इण्टर्ने- chantships under In-
शनल लॉ ternational Law by
Smith]

बोल्स गिब्सनकृत सी लॉ [Sea Law and Sea Power
एण्ड सी पावर by Bowles Gibson]

(घ) पञ्चम खण्ड सम्बन्धी

| | |
|--|--|
| हिगिस कृत दि हेग पीस का- फरेंसेज | [The Hague Peace Con- ferences by Higgins.] |
| सिजविककृत डेवेलप्मेण्ट आव यूरोपियन पालिटी | [Development of Europ- ean Polity by Sidg- wick] |
| म्योरकृत नेशनलिज्म एण्ड इण्टर्नेशनलिज्म | [Nationalism and Inter- nationalism by Muir] |
| टेम्पलीकृत हिस्ट्री आव दि पीस काफरेंस आव पैरिस | [History of the Peace Conference of Paris by Temperley] |
| डार्बीकृत इण्टर्नेशनल आर्बि- ट्रेशन | [International Arbitra- tion by Darby.] |
| डिकिंसनकृत प्रॉब्लेम्ज आव दि इण्टर्नेशनल सेटलमेण्ट | [Problems of the Inter- national Settlement by Dickinson] |
| हार्लीकृत लीग आव नेशन्ज एण्ड दि न्यू इण्टर्नेशनल लॉ | [The League of Nations and the New Interna- tional Law by Harley] |
| फोस्डिककृत दि लीग आव नेशन्ज स्टार्ट्स | [The League of Nations Starts by Fosdick] |

वक्तव्य—इस सूचीमें उन पुस्तकोंके नाम नहीं दिये गये हैं जिनका उल्लेख भूमिकामें हो चुका है ।

अनुक्रमसूचिका ।

अनु-सूचिका ।

| अ | | शपथ लेनेका निषेध | |
|------------------------------|----------|---------------------------|--------------|
| अंगरीका प्रयोग, | जर्मनी | | २९६, २९७ |
| | द्वारा | अधिकृतप्रदेशके साथ प्रति- | |
| अंगरी विधान | ३७६ | घातनीति | ३०४ |
| अंगीकृत प्रजा | १८८, १९० | के साथ व्यवहार | २५३, |
| 'अंश प्रभु' का अर्थ | ४१ | | २५६-२५८, २६० |
| अंश प्रभु (अर्द्ध प्रभु) राज | ४१ | पर मुल्कगिरी सेनाका | |
| अकबर | ४२७ | अधिकार | ३४८ |
| अज्ञ पोत | ३०९ | में राजसम्पत्ति | २९३ |
| अज्ञ पोतो परकी सम्पत्ति | ३११ | -वासियों का विद्रोह | ३३१ |
| अतटस्थाचरणका स्वरूप | ४१८ | -वासियोंको दंड | ३०१, ३०२ |
| ,, के लिए दंड | ४१९-४२२ | से प्रतिमुओंका लिया | |
| अतटस्थाचारी नाविकोंको | | जाना | ३०४ |
| दण्ड | ४२१ | से बेहरीकी मांग | ३०० |
| अधिकारप्राप्त पोत | ३०८ | अधिकृतिकी घोषणा | १५२, |
| अधिकृतप्रदेशकी विनष्टिका | | | १५३ |
| निषेध | ३०३, ३२५ | अनन्य प्रजाका अर्थ | १८५ |
| की सम्पत्ति जिसपर क- | | अनन्य प्रजाके स्वत्व | १८७ |
| ब्जा किया जासकता | | अनुगामी राज (मुवक्किल | |
| है | २९३ | राज) | ५३ |
| के निवासियोंसे सैनिक | | अनुसन्धान मंडल | २१० |
| सेवा व राजभक्तिकी | | ,, ,, की नियुक्ति | ४४७ |

| | |
|-------------------------------|----------------------------|
| अनुसन्धान मण्डल द्वारा | स्ट्रिया तथा जर्मनी |
| समझौता २१० | द्वारा ८ |
| अन्ताराष्ट्रिय नियमोंका व्यव- | अन्ताराष्ट्रिय विधान |
| हार, सद्योजात रा- | का कर्त्तव्याकर्त्तव्य शा- |
| जोंके साथ ४५४ | स्त्रसे संबंध ९,१०,११ |
| ,, नियमोंकी उपेक्षा महा- | का क्षेत्र ४,५ |
| समरमें २५९ | का विधानत्व ६,७ |
| ,, नि शस्त्रीकरण सभा ४४१ | का सम्बन्ध, देशके भी- |
| ,, न्यायालय ९०,१९७, | तरी शासनसे ४,१२,१३ |
| २१५,२१६,२२३,३१९ | की उत्पत्ति, |
| , न्यायालयकी स्थापना | १७,२८,२९,६४ |
| ३५,३७ | की उत्पत्ति, यूरोपमें १३९ |
| ,, पंचायत का निर्णय, | की उपयोगिता २७,२८ |
| ब्रिटेनके पक्षमें १२० | की गोल बातें ३३२ |
| , पंचायतोंके निर्णय ९० | की परिभाषा १,२,३,१० |
| , प्रश्नोंका निपटारा, | की पात्रता, अल्पका- |
| राजोंके पत्रव्यवहार | लीन ५६-५८ |
| द्वारा ९१, विधान शा- | की पात्रताकी स्वीकृति, |
| स्त्रियों द्वारा ९०, | विश्रुप्ति द्वारा ७३ |
| सन्धियों द्वारा ९१ | की पात्रताकी स्वीकृति, |
| अन्ताराष्ट्रिय विधान | सन्धि द्वारा ७४,७५ |
| और स्थानीय विधानों- | की पात्रताके लिए आ- |
| में विरोध १२ | वश्यक गुण (नीचे |
| का उल्लंघन ९१ | देखिये) ४२,४३, |
| का उल्लंघन, चीन द्वारा १२४ | ५६,५९,७२,७३ |
| का उल्लंघन, रूस, आ- | की प्रथम पुस्तकें २१ |

अन्ताराष्ट्रिय विधान

| | |
|--|---------------------------------------|
| की प्रधानता, संयुक्त- राजमें, राष्ट्रिय विधा- नोंकी तुलनामें | ३१९ |
| की प्राचीनता | १५ |
| की समानता, व्याक- रणसे | १० |
| के आचार्य | ८३, ८४ |
| के आधार | ८३ |
| के उल्लघन-कारियों को दंड | ९ |
| के पान | ३८, ४४, ४५, ४८, ५६, ५८, ५९, ६१, ७२ |
| —परिषद्, संवत् १९४५ | |
| की | १५६ |
| प्राचीन भारत, यूनान व रोममें | १६, १७, १८ |
| मे पोपकी स्थिति | ६३ |
| मे व्यक्तियोंका स्थान | ५९ |
| में समितियोंका स्थान | ६० |
| वैयक्तिक | ६ |
| -सम्रह | ३० |
| -समिति | १७५, २३३ |

अन्ताराष्ट्रिय—

| | |
|-----------------|-----|
| शान्तिक्रा अर्थ | ४३५ |
|-----------------|-----|

अन्ताराष्ट्रिय—

| | |
|-------------------------------------|-------------|
| शान्तिके साधन | |
| ४२६-४२९, ४३३-४३५ | |
| शील | १२ |
| श्रमजीविपरिषद् | ४४३ |
| संगठनकी आवश्यकता | |
| ४२५, ४२६, ४३० | |
| संगठनके लिए समयकी आवश्यकता | ४३७ |
| संगठनके लिए स्थिर- ताकी आवश्यकता | ४३३ |
| संगठनके सहायक | ४३८- ४४४ |
| संगठनसे लाभ | ४३५ |
| संस्थाएँ, सर्कारी | ४४०, ४४१ |
| सदाचार | ११ |
| समझौता | ९० |
| समाज | ६४, ६५ |
| समितियाँ व सम्मेलन, असर्कारी | ४३८, ४३९ |
| सम्बन्ध, विश्वशान्तिका साधक | ४३४ |
| सम्मेलन, ब्रूसेल्समे | |
| २५४, लन्दनमे | ३१, |
| विएना, पेरिस व | |

| | |
|-------------------------------|---------------------------------|
| लन्दन इत्यादिमें | अपराधियोंके प्रत्यर्पणकी स- |
| ४४१, हेगमें ३१ | न्दिग्ध अवस्थाए २००, २०१ |
| अन्तराष्ट्रिय | अपहृत सम्पत्ति (प्राइज़) ३१८ |
| सम्मेलनोकी तालिका ४४२ | अपहृत सम्पत्ति सम्बन्धी |
| सेना ४५६ | न्यायालय ३१९ |
| स्थिति, औपनिवेशिक | अपहृतोद्धार (जहाजोका |
| संरक्षित राजोकी ६२ | लौटाया जाना) ३१३ |
| अन्तराष्ट्रिय स्थिति, कां- | अपूर्ण सयुक्त राजोंके दो भेद ४७ |
| गोकी ६७, ७३, ७४ | ,, ,, सावयव राज ४५ |
| कोरियाकी ६६ | अफगानिस्तानका स्वाधीन |
| क्रोटकी ६४ | होना १०० |
| नव स्वतंत्र राजोंकी ७०, ७१ | अफीमका व्यापार रोकनेका |
| बेल्जियमकी ६१ | प्रयत्न, राष्ट्रसंघ द्वारा ४५५ |
| राजोत्तराधि हारके का- | ,, के व्यापारके संबन्धमें त्रि- |
| रण ७८, ७९ | टिश सरकारका हस्तक्षेप ४५५ |
| रूमकी ७५ | अभयदान ३४२ |
| विद्रोही राजोका ५७ | ,, की प्रथा, प्राचीन |
| सर्वियाकी ७५ | आर्यों व वर्तमान |
| साइप्रसकी ६३ | यूरोपमें २६५, २६६ |
| स्वाजरलैंडकी ६१ | ,, के पात्र २६६ |
| अन्तराष्ट्रिय स्वरूप, व्यापा- | अम्यमेरिकन भाव १४४ |
| रका ३९४ | अमेरिकाका राष्ट्रसंघसे पृथक् |
| अपराधियोंका लौटाया जाना | रहना ३३ |
| १९४, १९५ | ,, का सिद्धान्त, सशस्त्र |
| अपराधियोंका लौटाया जाना, | व्यापारिक पोतों- |
| भारतके देशी राजोंमें १९७ | के सम्बन्धमें ३९८ |

| | | |
|--------------------------------|----------------------------|----------|
| अमेरिकाका हस्तक्षेप, वेनेज्वी- | अवरोधके नियम | ४१३ |
| लाके सम्बन्धमें १४३ | „ के प्रकार | ४११, ४१२ |
| „ की धमकी, यूरोपियन | „ -भंग | ४१५ |
| राजोंको १३४, १४२ | „ -भंगका दंड | ४१६ |
| „ की मध्यस्थता, रूस- | „ -विधानकी खींचाता- | |
| जापान युद्धमें २१२ | नी, महासमरमें | ४१६ |
| „ की मध्यस्थता, स्पेन- | (तटारोध भी देखिये) | |
| पेरू युद्धमें २१२ | अशोक | ४२७ |
| अमेरिगो वेस्पूजी १५१ | असहयोग, अहिंसात्मक | २२३, |
| अरविन्द घोष १९५ | | २२४, २३८ |
| अरस्तू १७ | असामरिक बलप्रयोगका औ- | |
| अरिताकी स्वीकृति २४० | चित्य और उपयोग | २३४ |
| अर्जेण्टिनासे दोरणपोतोंका ख- | असामरिक बलप्रयोगके उदा- | |
| रीदा जाना, जापानद्वारा ३७९ | हरण | २२९, २३० |
| अर्थद्योतक सन्धियाँ ८७ | अस्पताली जहाज | २७६-२७८ |
| अलास्का प्रान्तका विक्रय १६० | अस्पताली जहाजोंकी तला- | |
| अलैक्जेंडर, सर्बियन नरेश १०० | शीका अधिकार | २७७ |
| अरुण प्रभु-अंश प्रभु देखिये | अस्पताली जहाजोंके प्रति ब- | |
| ४९, ५० | तांव | २७७ |
| अवरोधका क्षेत्र ४१६ | अस्पतालों की रक्षा, सैनिक | |
| „ की अवैधता ४१४ | | २७३-२७५ |
| „ की घोषणा ४१४ | „ के परिचायक चिन्ह | २७५ |
| „ की समाप्ति व पुनः | अहिंसात्मक व्यापार, युद्ध- | |
| स्थापना ४१४ | कालमें | ३३९ |
| „ की सूचना, आगन्तु- | अहिंसात्मक व्यापार, सेना- | |
| कोंको ४१५ | ध्यक्षोंकी आज्ञासे | ३३९, ३४० |

| आ | इ |
|--|---|
| आत्मसमर्पण ३४३ | इटली का पापके ऋणमें भाग लेना ८१ |
| „ की शर्तें ३४३, ३४४ | „ का विद्रोह ३६२ |
| आदिम निवासियोंका अधि-कार १५७, १५८ | „ व तुर्कीका युद्ध २३६ |
| आदिम निवासियोंके सबधमें शासनादेश १५८ | „ का प्रतिघात, यूना-नपर २२९ |
| आन्तरिक शासन की स्वतन्त्रता ७६, ७७, १३२ | इमारतोंकी रक्षा, ऐतिहासिक, धार्मिक इत्यादि ३२३, ३२४ |
| आपेन हाइम ५९ | इरैजमस, युद्धके सम्बन्धमें २२२ |
| „ ऋण-दायित्वके सबधमें ७९ | ई |
| आर्यकालमें दूत-प्रथा ९४ | ईराक, आदिष्ट राज ५३, ५४ |
| आलिम्पिक गेम्स कमिटी ४३९ | „ में शासनादेश १६९ |
| आल्बेरिकस जेण्टाइलिस २२ | ईस्ट इण्डिया कम्पनी १७० |
| आवश्यक विधान (नेसेसरी लाँ) २९ | उ |
| आस्टिनका कथन, विधानके सम्बन्धमें ६, ७ | उजाड़ करना स्वदेशका, हालैण्ड, मास्को, मेवाङ्के उदाहरण ३२६ |
| आस्ट्रियाकी सन्धि, रूस और प्रशाके साथ १३३, १४१ | उद्धरणशुल्क का नियम, ब्रिटेनमें ३१३, ३१४ |
| „ में विद्रोह, हगरीका १३३ | „ जहाजोंके लिए ३१३, ३१४ |
| आस्ट्रेलियामें एशियावासियोंका वासनिषेध १५५ | उपचार, दूतोंके गमनागमनके समयके १०३ |
| आस्ट्रेलियामें ब्रिटिशबस्तियां १५५ | उपचारोंका महत्त्व १४६, १४७ |
| आहतोंकी सेवा २७१-२७५ | |

उपभोगद्वारा स्वाम्यप्राप्ति १६३

उपसन्धिका लिखा जाना ३४७

उपसागरों और खाडियों-

पर अधिकार १७५

उपाधियोंकी स्वीकृति १४९

ऋ

ऋक्षसागर १७२

ऋणके कागज जब्त नहीं

किये जाते २८५

ऋण चुकानेसे इन्कार, रूसका २८५

ऋण-दायित्व, विजेताका ७८,

७९, ८१

„ की अस्वीकृति, भार-

तीय राष्ट्रसभा द्वारा ८०

„ के सम्बन्धमे विवाद,

ब्रिटेन व प्रशामे २८५

„ युद्धारम्भके बाद २४३

ए

एक्स-ला-शेपेलकी कांग्रेस ९९

एलची, एक तरहका दूत ९६

एशियाकी दशा १४०, १४१

एशियाटिक सोसाइटी ४३९

ऐ

ऐण्ड्रू कारनेगीका दान, अन्ता-

राष्ट्र सम्मेलनके लिए ३२

औ

औचित्यानौचित्य, सैनिक

कार्यका ३०३, ३०७

औपनिवेशिक सरक्षण १६५, १६६

„ संरक्षितराज ६२

„ „ की पात्रता ६२

क

कमालपाशाकी विजय १७८

कर्त्तव्याकर्त्तव्यशास्त्र,

अन्ताराष्ट्रिय विधानकी

कसौटो १२

कलम्बिया विश्वविद्यालय ४३९

कश्यपायन सागरमे रूसके

जहाज १७६

कांगोका तटस्थीकरण ६७

„ पर बेल्जियमका सर-

क्षण व अधिकार ६७, ६८

„ -राजसे शर्तनामा १७२

काइली नामक अमेरिकन

दूतका इटली द्वारा

स्वीकृत न होना १०१, १०२

कागजी अवरोध ४११ ४१३

„ „ जर्मनी द्वारा ४१७

काफू और पैक्लोका तटस्थी-

करण ३६२

| | | | |
|-----------------------------|------------|--------------------------------|---------------|
| कार्फू पर कब्जा, इटलीका | २२९ | कोरिया पर जापानका संरक्षण | |
| कार्लमाक्स | ४४४ | | ५२, ६६ |
| कार्लाइल, एकान्त वासके | | कोलम्बियाका पतन | ६९, ७७ |
| संबधमें | ११३ | कौटिलीय अर्थशास्त्र | १६ |
| किरसफोर्डकी हत्याका | | क्यूबा, प्रच्छन्न संरक्षणका उ- | |
| प्रयत्न | १२० | दाहरण | ५२ |
| कियाउच्चाउ का पट्टा | १६७ | „ में विद्रोह | ५२, १२२ |
| „ पर जापानका अधिकार | | „ में संरक्षण, संयुक्त रा- | |
| | १६८ | जका | १२२ |
| कुमक पोत (ग्राहवेटियर) | ३३४ | क्रीटकी अन्तराष्ट्रिय स्थिति | ६४ |
| कुस्तुन्तुनिया | २० | क्रीमियन युद्ध | २०८, ३९५, ४१३ |
| „ कृष्ण सागरकी कुम्भी | | क्लेटन बुल्वर सन्धि | ११७ |
| | १७७ | क्षतिपूर्ति, जलमग्न तार काट- | |
| „ पर कब्जा करने का | | नेपर | ३६९ |
| प्रयत्न | १७८ | „ जहाजोंकी जब्ती के | |
| केनी, जलदस्थुताके संबंधमें | १९८ | बदले | ३१८ |
| केनेडीकी पत्नी व कन्याकी | | „ जहाजोंपर मिथ्या सन्दे- | |
| हत्या | १२० | हके कारण | ३१६ |
| केम्ब्रिज विश्वविद्यालय | ४३९ | „ तटस्थ सम्पत्तिका प्र- | |
| केलिफोर्निया विश्वविद्यालय | | योग करनेपर | ३७६ |
| | ४३९ | „ ताटस्थ भगके लिए | |
| कोरिया, अन्तराष्ट्रिय विधा- | | | ३७४ |
| नका पात्र | ६६ | ख | |
| „ की सम्भुक्त, जापान- | | खाड़ियों और उपसागरों पर | |
| में | ५२, ६६, ७७ | अधिकार | १७५ |
| „ पर चीनका संरक्षण | ५१, ६५ | खुले समुद्रकी रक्षा | ३३८ |

| ग | ग्रोशिभस अवरोधके सम्बन्धमें |
|--|--|
| गटिंगेन विश्वविद्यालय ४३९ | ४१० |
| गस्टेवस एडल्फस, स्वीडन | २४ |
| नरेश, युद्धगत स्वेच्छा- चारिताके सम्बन्धमें २३ | २४, २५ |
| गांधी, महात्मा गांधी देखो | ३५३ |
| गिरजों आदिका विनाश, गत महायुद्धमें २९४ | ३९९ |
| गीबेन और ब्रेस्लाउ नामक जर्मन जहाज १७८ | २८८ |
| गुलामी उठानेकी प्रतिज्ञा ४४१ | घ |
| गुलिस्तां और तुर्कमनशाई- की सन्धियां १७६ | घेरा डालनेका निषेध ३२१ |
| गेरीबाल्डी १९५ | च |
| गोलाबारी, अरक्षित स्थानोंपर २८९ | चगोज खां ४२५ |
| गोलाबारीके पूर्व सूचनाकी आवश्यकता ३२३, ३२४ | चढ़ाईका अर्थ ३७१, ३७३ |
| गोलाबारीके समय चिकि- त्सालय आदिकी रक्षा ३२३ | चतुर्महत् ३३, ३६ |
| गोकी मारना, अतटस्थाचारी नाविकोंको ४२१ | चन्द्रगुप्त ९६ |
| गोले गोलियां, किस तरहकी वर्जित हैं ३२५, ३२६ | ‘चार’ का अर्थ ९४ |
| ग्रोशिभस २८, २९, ८३ | चार्ल्स पचम, स्पेननरेश १५२ |
| ” (हूगो) अन्ताराष्ट्रिय विधानके प्रथम आचार्य २२ | चार्ल्स षष्ठ, (जर्मनीके सम्राट्) ९२ |
| | चिकित्सा-पोत ३०७ |
| | चिकित्सा-पोतोंपर की सा- मग्री ३११ |
| | चित्रादिकोंका अपहरण, नेपो- लियनकी सेना द्वारा २९४ |
| | चिलीमें विद्रोह २४१ |

| | |
|----------------------------------|---------------------------------|
| चीनका पराभव, विदेशियों- | जर्मनों द्वारा फ्रांसके जगली |
| के हाथ १२४ | वृक्षोंका विक्रय २९५ |
| „ की प्रतिज्ञा, ब्रिटेनसे १७२ | जल-डमरू मध्य किसकी |
| चीन-जापान-युद्ध ३९६ | सम्पत्ति है १७७ |
| चीन-जापान-युद्धमें | जलदस्युओंपर अधिकार १९८ |
| जलमग्न तारोंकी रक्षा ३६८ | जलदस्युताकी परिभाषा |
| चीनपर आक्रमण, विदे- | १९८, १९९ |
| शियोंका १२४ | जलपर स्वाम्य १५५, १५६, १७२ |
| „ में आन्दोलन, ईसाइयों- | जलमग्न तार काटनेके निमित्त |
| के विरुद्ध १२३ | क्षतिपूर्ति ३६९ |
| „ में यादवीय १४१ | जलमग्न तारोंका काटना |
| „ में विदेशियोंके पट्टे १६७, १६८ | अवैध कब है ३७० |
| „ में हस्तक्षेप, विदेशियों | जलमग्न तारोंका काटना वैध |
| का १२५ | कब है ३६८ |
| ज | जलमग्न तारोंके साथ छेड़छाड़ ३६७ |
| जज़बारमें ब्रिटेनका सरक्षण १६५ | जलमग्न विस्फोटक ३३६ |
| जगदीशचन्द्र बोसका वैज्ञा- | जलमग्न विस्फोटक फैलाना, |
| निक अन्वेषणालय ४३९ | तटस्थोंका ४२१ |
| जर्मन पनडुब्बियोंका कार्य, | जलयुद्धके नियम २६४ |
| गत महायुद्धमें ३०७ | जलांतस्तलचारी तारपर कब्जा |
| जर्मन सेनाका फ्रांससे बेहरी | २९४ |
| लेना ३०१ | जस जेशियम (राष्ट्रोंका |
| जर्मनी और ब्रिटेनमें सन्धि ११८ | विधान) १९ |
| „ पर दोषारोपण ३२२, ३२३ | जस जेशियम, वर्तमान अन्ता- |
| जर्मनोंका अत्याचार, महा- | राष्ट्रिय विधानका पूर्वरूप |
| युद्धमें २९४ | २०, २४ |

| | |
|-----------------------------|------------------------------|
| जस नेचुरली (प्राकृतिक | जहाजोंके प्रश्नकी जटिलता ३९४ |
| विधान) २०, २४, २५, २८, २९ | „ के रणबन्धियोंके प्रति |
| जस पोस्ट लिमिनिआइ ३१३ | वर्ताव ३७० |
| जस सिविली (नागरिक | „ के लिए उद्धरण शुल्क |
| विधान) १९ | ३१३ |
| जहाजके कागज ३१७ | „ को अवकाश देनेकी |
| जहाज छुड़ानेमें तटस्थकी | प्रथा ३०९, ३१० |
| सहायता ३१४ | „ को झूठा झूठा लगाने |
| „ जो सरक्ष्य मानेजाते हैं | का अधिकार ३०६ |
| ३०७-३०९ | जान क्रेडिट १५१ |
| जहाजोंका कृत्रिम विक्रय २८० | जानपद समारोह, लेवी आन |
| „ का जब्त किया जाना २३२ | मैसे, स्वदेशरक्षाके |
| „ का डुबाया जाना ३१७ | लिए ३३० |
| „ का पीछा करना, | जापानकी गणना, महा- |
| जिनपर सन्देह हो ३१५ | शक्तियोंमें १४१ |
| „ का लौटाया जाना ३१३ | जापान-रूस-युद्ध, रूस-जा- |
| „ का विक्रय-पत्र २८० | पान युद्ध देखिये |
| „ की जब्ती, शत्रुके ३०६ | जासूसोंको दण्ड ३३३ |
| „ की जब्तीके बदले | जेण्टाइलिस ८३ |
| क्षतिपूर्ति ३१८ | जेनीवाका एकरारनामा २७१ |
| „ की तलाशी ३०६, ३१४, | „ की अन्तराष्ट्रिय परि- |
| ३१५ | षद्व २७१ |
| „ की तलाशी की कठि- | „ क्रास २७५ |
| नाइयाँ ३१६ | „ में स्वीकृत निय- |
| „ की तलाशी के बाद | मावली २६० |
| क्षमा-याचना ३१६ | जैक्सनकी हत्या १२० |

| ट | |
|---------------------------|-----|
| देशसकी स्वाधीनता | ६९ |
| ट्राइट्स्क, जर्मन नीतिवि- | |
| शारद | १३८ |
| „ युद्धके सम्बन्धमें | २२२ |
| ट्रासवालकी स्थापना | ६६ |

| ठ | |
|--------------------------|----------|
| ठिकानेका प्रमाण, निषिद्ध | |
| मालके सम्बन्धमें | ४०३, ४०५ |

| ड | |
|--------------------------|---------|
| डचसर्कारकी घोषणा, तटा- | |
| वरोधके सम्बन्धमें | ४१० |
| डाक रोकती नहीं जाती | ३११ |
| डान पन्तेलियन, पुर्तगाली | |
| दूत, को फांसी | १०६ |
| डान मीगेल, डाना मेरि- | |
| याका विरोधी | ३७२ |
| डाना मेरिया, पुर्तगालकी | |
| महारानी | ३७२ |
| डी. ज्यूर बेलिएक पेसिस, | |
| अन्ताराष्ट्रिय विधानकी | |
| प्रसिद्ध पुस्तक | २३ |
| डेनमार्क और रूसमें सन्धि | |
| | ८७, ३५४ |
| डेम्पियर | १५३ |

| त | |
|-----------------------------|----------|
| तटलभ समुद्र, समुद्र देखिये | |
| तटस्थ जहाजोंका रोक जाना | ३१४, |
| | ३१५ |
| „ तटलग्न डमरूमध्यका | |
| द्वारावरोध-निषेध | ३८३ |
| तटस्थता, आंशिक | ३६२ |
| तटस्थ देशीय प्रजाका अधि- | |
| कार, ऋण देने व रणसा- | |
| मग्री बेचनेका | ३७९ |
| „ नगरको सगराघार | |
| बनानेका निषेध | ३७० |
| „ नागरिकोंकी शत्रुसम- | |
| र्पित सम्पत्ति | २८१ |
| „ नौस्थानमे गिरफ्तार ज- | |
| हाजका लाया जाना | ३८६ |
| „ नौस्थानमे गिरफ्तार ज- | |
| हाजका लौटाया | |
| जाना | ३९० |
| „ नौस्थानमे रणपोतोकी | |
| शक्ति न बढ़ने देना | ३८७ |
| „ नौस्थानमे रसद- | |
| समूह | ३८७, ३८८ |
| „ नौस्थानमें विरोधी पक्षों- | |
| के पोत | ३८६ |
| „ भूमिमें प्रवेश-निषेध | ३७३ |

तटस्थ भूमिमें युद्धकी तैयारी-

का निषेध ३७०

„ राजकी सीमामें सामरिक

कार्यका निषेध ३६४, ३७५

„ राजको युद्ध छेड़नेका

अधिकार ३९०

„ राजको रणसामग्री बेच-

नेकी मनाही ३८०

„ राज द्वारा क्षतिपूर्ति ३९१

„ राज द्वारा युद्धकारी

पौतोंको आश्रयदान-

का निषेध ३८५

„ राज द्वारा सैनिक सहायता

व ऋणदानका निषेध ३७८

„ राजोंके कर्तव्य, तटस्थ

विरुद्ध काम रोकनेके

लिये ३८१, आत्म-

निर्यत्रणात्मक ३७७,

क्षतिपूर्त्यात्मक ३९१

पर-नियत्रणात्मक

३८१, प्रत्यर्पणात्मक

३९०, शान्तिस्थाप-

नात्मक ३९१, सहि-

ष्णुतात्मक ३८९

तटस्थराज्यमें समाचारसंग्रहका

स्थान न बनने देना ३८९

तटस्थ वाणिज्यपौतोंकी

तलाशी ३९८

„ व्याक्तियोंका सम्बन्ध,

युद्धकारो राजको साथ ३६३

„ व्यापारकी रक्षा ३५६

„ व्यापारियोंके साथ

रियायत ४०५, ४०६

„ समुद्रके भ्रंश पर आक्रमण ३६५

„ सम्पत्तिका प्रयोग ३७५

„ „ की अग्राह्यता ३९६

तटस्थीकरण, चिरकालीन

३५७, ३५८

„ जलमार्गोंका ३६२

„ भारतके देशी राजोंका ३५८

„ लक्सेम्बर्ग व बेल्जियम-

का ३६०

„ मे अडचने ३६०

„ सेवायका ३६१

„ स्वीजरलैण्डका ३५९

„ स्वेज और पनामाका ३६३

तटस्थीकृत प्रदेश, पूर्ण प्रभु

राजोंके ३६१

„ राज ६१

„ राजोंका युद्ध, आत्म

रक्षाके लिये ३५७

„ राजोंका विरुद्धाचरण ३६०

| | |
|----------------------------------|-------------------------------|
| तटस्थीकृत राजोंकी पात्रता ६१, ६२ | ताटस्थ्य रक्षाके लिये विशेष |
| तटस्थोंके मृदु व घोर अपराध | नियम ३७३ |
| ४२०, ४२१ | „ सम्बन्धी नियमोंमें |
| „ लिये निषिद्ध कार्य | अमेरिकाका अग्रसर |
| ४१८-४२० | होना ३५६ |
| तटावरोध २३२ | तुर्कमनशाई और गुलि- |
| „ की परिभाषा ४१७ | स्तांकी सन्धियाँ १७६ |
| „ की व्याख्या, संयुक्त | तुर्क सरकारकी दुर्बलता ६३, ६४ |
| राजद्वारा ४१२ | „ साम्राज्यकी अवज्ञा, |
| „ के सम्बन्धमें डच | बल्गेरिया इत्यादि द्वारा |
| सरकारकी घोषणा ४१० | ५०, ५१ |
| „ -नियमावली २३३ | तुर्की-इटली युद्ध २३६ |
| „ फ्रांस-ब्रिटेन युद्धमें ४११ | तुर्कीसे छेड़छाड़ २३२ |
| „ यूनानके बन्दरोंका २३२ | „ हस्तक्षेप १२९, १३० |
| तांकिनपर अधिकार करनेका | तैमूरलग २८८, ४२५ |
| प्रयत्न, फ्रांसका २२९ | द |
| ताटस्थ्य का इतिहास ३५२-३५५ | दरेदानियाल और बास्फोरस- |
| „ की अवहेलना ३५४, ३५५ | का विशेष महत्त्व १७७ |
| „ की परिभाषा ३५१ | „ का समझौता १७९ |
| „ की हालतमें युद्धमें | „ पर अन्तराष्ट्रिय शासन |
| भाग लेना ३५४, ३७७ | १७८ |
| „ दुर्बलताका सूचक, | दायमी पट्टा, राज्यका १६७ |
| प्राचीनकालमें ३५२ | दूतप्रथा, आर्यकालमें ९४, ९५ |
| „ पक्षपातमय ३७८ | „ यूरोपमें ९६ |
| „ -भगके लिये क्षति- | दूतप्रेषणका अधिकार १०० |
| पूर्ति ३७४ | दूतोंका पौर्यान्वय ९८, ९९ |

| | |
|--|--|
| दूतों को लौटाने या स्वीकार न करनेका अधिकार १००-१०३ | नपोलियन ३२६ |
| „ की उपयोगिता, राजोंके परस्पर व्यवहारमें ४४५ | „ की सेना द्वारा चित्रादि- कोंका अपहरण २९४ |
| „ के अधिकार १०५-१०९ | „ की सैनिक नीति, प्रशाके साथ ११८ |
| „ के आने जानेके सम- यके उपचार १०३ | „ युद्धके स्वावलम्बी- बनानेके सम्बन्धमें ३०१ |
| „ के भेद ९५, ९७, ९८ | नपोलियन, तृतीय १३१ |
| दृष्टप्रसुका अर्थ ४१ | नव स्वतंत्र राजोंकी अन्तारा- ष्ट्रिय स्थिति ६८-७५ |
| देवास राजका विभक्तीकरण ७७ | नादिरशाह २८८ |
| देशी राजोंमें ब्रिटिश सरक्ष- ण, भारतके १६५ | नारवेका स्वतंत्र होना ७० |
| दौत्य सम्बन्ध (भारतका) बौद्ध कालमें ९६ | नार्मन एंजेल, प्रसिद्ध शान्ति- वादी ४३३ |
| ध धर्म, अन्तराष्ट्रिय शान्तिका साधक ४२८ | नावरोध २३१ |
| „ की असफलता, अन्तरा- ष्ट्रिय शान्तिस्थापनमें ४२९ | निकोलस, द्वितीय, द्वारा हेग सम्मेलनकी योजना ३१ |
| धर्मयुद्ध १६ | निरन्तर यात्राका प्रश्न ४०२, ४०५ |
| धोखेसे मारना ३३८ | „ यात्राके सम्बन्धमें ब्रि- टिश सरकार ४०३ |
| न नदियों का स्नाय १८२, १८३ | निरवयव राज ४५ |
| „ के सम्बन्धमें सम- झौते १८३ | निवास का अर्थ २५० |
| | „ -दोषसे मुक्ति २५० |
| | निषिद्ध वस्तुएं, गौण रूपसे ४०४ |
| | „ „ पूर्णतः ४०१ |

| | | | |
|-------------------------------|----------|-------------------------------|----------|
| निषिद्ध व्यापार | ३९९, ४०० | पताका (श्वेत) आत्म सम्- | |
| „ „ के नियमोंमें सं- | | पण सूचक | ३४१ |
| शोधनकी आ- | | „ विराम सूचक | ३४० |
| वश्यकता | ४०८ | पनामा | ४३२ |
| नेटालमें अग्रेजोंका बस | | पनामा नहरकी व्यवस्था | १८० |
| जाना | १५४ | „ व स्वेजका तटस्थो- | |
| नेशनल एक्डेमी | ४३९ | करण | ३६३ |
| नैपाल की तटस्थता, गत | | परिचर्या पोत | ३०८ |
| महासमरमें | ३८४ | पवित्र मैत्री, आस्ट्रिया, रूस | |
| „ की स्वतन्त्रता | ३४६ | व प्रशाकी | १३३, १४१ |
| „ के सैनिक, अग्रेजी | | पितृराजके विरुद्ध लड़ने | |
| सेनामे | २४६ | वालेको प्राणदण्ड | २४५ |
| न्यू फाउण्डलैंडके तटपर | | पीटरबर्ग और स्मोलेंस्क | |
| मछली मारनका अधिकार | १८१ | नामक रूसी जहाज | ३३५ |
| न्यू ब्रिटेन और न्यू आयरलैंड- | | पुर्तगाल नरेश, अन्ताराष्ट्रिय | |
| का पता लगाया जाना | १५३ | सम्मेलनोंके सम्बन्धमें | ४४१ |
| प | | पुर्तगालमें यादवीय | ३७२ |
| पञ्चायत और मध्यस्थतामे | | पूर्णप्रभु (स्वतंत्र) राज | ४१ |
| अन्तर | २१३ | पूर्ण सयुक्त राजोंके तीन भेद | ४६ |
| „ की प्रथा | ४४८ | पूर्ण सयुक्त सावयव राज | ४५ |
| „ -प्रथाकी लोकप्रियता | ४४८ | पेरिगका खाली किया जाना | १२४ |
| „ के सामने रखे जाने वाले | | पेरिसका अन्ताराष्ट्रिय | |
| व न रखे जाने वाले | | समझौता | ३३४ |
| प्रश्न | ४४९ | „ की सन्धिपत्र, स्वीजर- | |
| „ द्वारा समझौता | २१३ | लैंडकी तटस्थताके | |
| पञ्चायती न्यायालय, सिम्रामें | १९४ | सबधमें | ३५९ |

| | |
|---|---|
| पेरिसकी घोषणा ८९, ३९६, ४११ | प्रजा सम्पत्तिकी अग्राह्यता २९७ |
| „ „ का प्रभाव ३९७ | प्रताप, राणा ३२६ |
| „ की सन्धि सवत् १९१३ ११९ | प्रतिघात २९९ |
| „ „ व सन्धिपरिषद् ३९५ ३९६ | „ और समरमें भेद २३० |
| पैरोल (शस्त्र न ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा) २६८ | „ -नीति, अधिकृत प्रदेशके साथ ३०४ |
| पोतस्थ सम्पत्ति विषयक नियम ३१०, ३११ | प्रतिभुओंका लिया जाना, अधिकृत प्रदेशसे ३०४ |
| पोप, अन्ताराष्ट्रिय शान्ति-का साधक ४२८, ४२९ | प्रतीक्षात्मक अधिकार १७१, १७२ |
| „ का स्थान १४७ | प्रभाव क्षेत्रका अर्थ १६७, १६९ |
| „ की मध्यस्थता, राजोंके परस्पर झगड़ेमें ४५० | प्रभुत्वका अर्थ ४० |
| „ की स्थिति, अन्ताराष्ट्रिय विधानमें ६३ | प्रशाकी सन्धि, आस्ट्रिया व रूसके साथ १३३, १४१ |
| पोर्टरेट १५३ | „ की सन्धि, संयुक्त राजके साथ ८६ |
| पोल जातिपर अत्याचार १३० | प्राइज़, अपहृत सम्पत्ति ३१८ |
| पोलैंड और रूससे सन्धि २०४ | प्राइज़ कोर्ट ३११, ३१९ |
| पोस्टल समिति ४४० | प्राकृतिक विधान (जस ने-चुरली भी देखिये) १८, २९ |
| प्लूफेन्डार्फ २८ | प्राकृतिक विधानपर आक्षेप २५, २६, २७ |
| प्रजाकी राष्ट्रीयता १८१ | फ |
| प्रजागोकरण १८८ | फारमूसापर कब्जा, फ्रांसका २२९ |
| प्रजात्व सम्बन्धी नियम १८८-१९० | फिलिमोर, अमेरिकाके आ-दिम निवासियोंके सम्बन्धमें १५७ |
| „ स्वीकार करनेकी स्वाधी-नता १८९ | |

| | |
|--|--|
| फिलिमोर द्वारा स्वाधीनता- की व्याख्या १३६ | फ्रांस-ब्रिटेन युद्धमे तटाव- रोध ४११ |
| फूचाऊपर गोलाबारी, फ्रांस- की भोरसे २२९ | ,, व मेक्सिकोका युद्ध ३४७ |
| फ्रांस और बेल्जियमका प्रति- घात, रूर प्रान्तपर २३० | फ्रांसिस्को सुआरेज २२ |
| ,, और ब्रिटेनमें युद्ध २३१, २३५ | फ्रेडरिकका ऋण देनेसे इनकार करना ९२ |
| ,, और सयुक्त राजकी सन्धि ३७८ | ब बणिक् पोतोका रणपोत बना दिया जाना ३३५ |
| ,, का प्रतिघात, चीनके साथ २२९ | बम गिरानेका निषेध ३२२-३२४ |
| ,, की प्राचीन वस्तुओं- का अपहरण, इटली द्वारा २९४ | बमवर्षा, अरक्षितस्थानोंपर (गोलाबारी भी देखिये) २८९ |
| ,, की राजक्रान्ति १३२, १३९ | बम्बईकी प्राप्ति, दहेजमें १६० |
| ,, के जगली वृक्षोका विक्रय, जर्मनों द्वारा २९५ | बनहाडी, जनरल, युद्धके सम्बन्धमें २२२ |
| ,, -जर्मन युद्ध ८, २५१, ३९६ | बर्लिनकी सन्धि ८, ८९ |
| ,, " मे अमेरिका का फ्रांसीसियोंके हाथ युद्ध सामग्री बेचना ३८० | बल-प्रयोग, असामरिक, के उदाहरण २२९, २३० |
| ,, -जर्मन युद्धमें लक्सेमबर्ग की गुप्त सहायता ३६१ | ,, का मूल सिद्धान्त ३२० |
| ,, ब्रिटेन व स्पेनमें सधि, संवत् १९६४ ११८ | ,, विजयका साधन ३२० |
| | बाल्यजर अयला २१ |
| | बास्फोरसका विशेष महत्त्व १७७ |
| | बिंकर शोएक ८३ |
| | ,, तटलग्न समुद्रकी सीमा के सम्बन्धमें १७४ |

| | |
|---------------------------|--------------------------------|
| तयम और फ्रांसका प्रति | बेहरीकी माँग, अधिकृत |
| घात, रूर प्रांतपर २३० | प्रदेशसे ३०० |
| और ब्रिटेनका विवाद | बोअर युद्ध १७०, २५१, २६९, |
| १६८, १६९ | ३०० ३०४, ४०२ |
| का तटस्थीकरण | „ „ में भारतीय |
| ६१, १४०, ३६० | सैनिक ३३२ |
| का भगडा, हालैंडसे ३५९ | „ सेनापतिकी घोषणा २९० |
| का पूर्ण प्रभुराज होना ७७ | बोस्निया और हर्जेगोविना- |
| का विद्रोह ३५९ | का दिया जाना, |
| का सरक्षण, कांगो- | आस्ट्रियाको १७१, २०७, |
| पर ६७, ६८ | २०८ |
| की उन्नति १४५ | बोस्निया और हर्जेगोविना |
| की तटस्थताका तोड़ा | पर शासन, आस्ट्रिया |
| जाना, जर्मनी द्वारा ३६० | द्वारा ८ |
| की तटस्थतामें हस्त- | बौक्सर युद्धमें जर्मनों द्वारा |
| क्षेप २०३ | ज्योतियत्रोका अप- |
| के तटस्थकी समाप्ति | हरण २९४ |
| ३६० | „ विद्रोह, चीनमें १२४ |
| के नाम पट्टा, ब्रिटेन | ब्योनस आयर्सका स्वाधीन |
| द्वारा १६८ | होना ६९ |
| पर आक्रमण, जर्मनी, | ब्राइस, आइसलैंडमें विधा- |
| द्वारा ८, २४३ | नोंकी सत्ताके विषय- |
| पर दोषारोपण, | पर ७ |
| जर्मनी द्वारा ३६१ | ब्रिटिश बस्तियाँ, आस्ट्रैल- |
| में हस्तक्षेप, जर्मनी- | यामें १५५ |
| का १२८ | „ „ नेटालमें १५४ |

| | |
|--------------------------------|--------------------------------|
| ब्रिटिश संरक्षण, उदयपुर | ब्रिटेन, ग्रेट, अलिंगशेष राजका |
| इत्यादिमें ५५ | उदाहरण ७८ |
| „ „ भारतके देशी | „ पूर्ण सयुक्त सावयव- |
| राजोंमें १६५ | राजका उदाहरण ४५ |
| „ „ मिश्रमें ५१ | „ -फ्रांस युद्धमें अमेरि- |
| „ साउथअफ्रिका कम्पनी १७० | काका पूर्ण ताट- |
| „ साउथ अफ्रिका कंपनी- | स्थ १५५, ३५६ |
| की पात्रता ६० | „ फ्रांस व स्पेनमें सन्धि |
| ब्रिटेन और जर्मनीमें सन्धि ११८ | संवत् १९६४, ११८ |
| „ और फ्रांसमें युद्ध २३१, २३५ | „ रूस व हालैंडमें सन्धि |
| „ और बेल्जियमका वि- | २०८ |
| वाद १६८, १६९ | „ व प्रशामें विवाद, ऋण |
| „ और सयुक्त राजमें | के सम्बन्धमें २८५ |
| सन्धि १८१ | „ वासियोंका अमेरिकाकी |
| „ का संरक्षण, जंज | प्रजा बन जाना १८९ |
| वारमें १६५ | ब्रैजिलका स्वाधीन होना ७० |
| „ „ „ मिश्रमें १६४ | ब्लाडिमिरोकाको रक्षा, रूसी |
| „ का सिद्धान्त, युद्ध- | कैदियों द्वारा, रूस- |
| कारी पक्षके व्या- | जापान युद्धमें ३३१ |
| पारके सम्बन्धमें ३९७ | भ |
| „ का सिद्धान्त, सशस्त्र | भारतके देशी राज ४१, ५५ |
| व्यापारिक पोतोंके | „ के देशी राजोंका अन- |
| सम्बन्धमें ३९७ | स्तित्व, अन्तरा- |
| „ का हस्तक्षेप, डेन्मार्क- | ष्ट्रिय विधानमें ३५८ |
| में १२७ | „ के देशी राजों की |
| „ का हस्तक्षेप, रूससे १३५ | तटस्थता ३५८ |

| | |
|-----------------------------|---------------------------------|
| भारतमें अन्ताराष्ट्रिय निय- | मध्यस्थता और पचायतमें |
| मोंका पालन १६ | अतर २१३ |
| भारतीय राजोंके ऋगडोंमें | „ तटस्थ राजोंकी ४४६ |
| ब्रिटिश मध्यस्थता | „ द्वारा समझौता २११ |
| २१३ | मनरो, मनरो सिद्धान्त १४३ |
| भूमि की प्राप्ति, अधिकृति | मनु, दूतके सम्बन्धमें ९५ |
| द्वारा १५१ | मनुष्यता और राष्ट्रीयता ३२० |
| „ „ उपभोग द्वारा १६३ | मरकोपर फ्रांस्का सरक्षण ५१ |
| „ „ प्रकृति द्वारा १५९ | महमूद गजनवी १८८ |
| „ „ विक्रय, हस्तान्तर | महात्मा गान्धी २२३, २१८ |
| व भेंट द्वारा १६० | महाभारतके बीरोंमें अहिं- |
| „ „ विजय द्वारा १६१, १६२ | सात्मक व्यापार ३३९ |
| भूमि पर अधिकार १५०-१५३ | महायुद्ध, यूरोपका १४५, १६८, |
| „ पर अधिकार, आदिम- | २३६, ४०७ |
| निवासियोंका १५७ | „ और निषिद्ध व्यापार ४०८ |
| „ पर अधिकारकी सीमा १५५ | „ में अन्ताराष्ट्रिय निय- |
| „ पर स्वाम्य, भोगबन्धक | मोंकी उपेक्षा २५९ |
| द्वारा १६७, १७१ | „ में जर्मनोंका अत्याचार २९४ |
| „ पर स्वाम्य, सरक्षित | महाराष्ट्रसब ४५, ४६, ४७, ४९, ५० |
| राजका १६५, १६६ | „ अपूर्ण संयुक्त साधयव |
| भूमि-विक्रय १६०, १६१ | राजका उदाहरण ४६ |
| म | महाशक्तियोंका प्रभाव, १३९ |
| मक्काका स्वाधीन होना ७० | १४०, १४४ |
| मछली मारनेका अधिकार १८१ | महासमर-महायुद्ध देखिये |
| मछुवाहोंकी नावें ३०८ | मांदिनीग्रोकी सभुक्ति, सर्बि- |
| मत्सिनी १९५ | यामें |

| | | |
|----------------------------------|------------------------------|----------|
| मांटीनीग्रोकी स्वतन्त्रता, | मेगस्थनीज | ९६ |
| तुर्कीसे ८९ | मेहदी विद्रोह | १६८, १७१ |
| मादिन लूथर, प्रोटेस्टैंट सम्प्र- | मैथेमेटिकल सोसाइटी | ४१९ |
| दायका जन्मदाता २१ | य | |
| मिलिशिया और स्वयंसेवक | यशवन्तराव होल्कर | ८६ |
| दल २६२, २६३ | यहूदियोंकी हत्या, रूसमें | १२९ |
| मिश्रमे ब्रिटेनका संरक्षण १६४ | यात्रानुज्ञा | ३४२ |
| मिसिसिपीके सम्बन्धमें विवाद | „ रक्षावचन व अभ- | |
| १८२ | यदान | ३४२ |
| मुल्कगीरी सेनाओंको रक्षाशुल्क | यादवीय, पुर्तगालमें | ३७२ |
| मांगनेका अधिकार ३०२ | युद्धका तात्कालिक परिणाम २४२ | |
| मुल्कगीरी सेना का अधिकार | „ का प्रभाव, सन्धियोंपर २४३ | |
| २९३, २९५, २९६, २९८, ३०३ | युद्धकारी पक्षका व्यापार, | |
| „ का अधिकार, | तदस्थके सिपुर्द ३९७ | |
| अधिकृत प्रदेशपर ३४८ | „ राजोंका सम्बन्ध, | |
| „ की वस्तुमांग २९९ | तदस्थ व्यक्तियोंके | |
| मुल्कगीरी सेनापतिके अधि- | साथ ३९३ | |
| कार २९८ | युद्धकी भीषणता, आधुनिक | |
| मुसलमानोंकी सहानुभूति, | समयमें ४२५ | |
| तुर्कीके साथ ३८४ | „ के उपकरण ३२७ | |
| मूर, जे बी, गौण निषिद्ध | „ के उपकरण जिनका | |
| वस्तुओंके सम्बन्धमें ४०८ | प्रयोग अवैध है ३३३ | |
| मेकियावेली, कूटनीतिका | ३३५-३३८ | |
| आचार्य २०३ | „ के कुपरिणाम ४२५, ४२६ | |
| मेक्सिकोमें हस्तक्षेप, ब्रिटेन | „ के दिनोंमें नदियोंका | |
| इत्यादिका १५ | स्वाम्य १८२, १८३ | |

| | |
|----------------------------------|---------------------------------------|
| युद्ध के निषिद्ध साधन ३२१ | यूनानका स्वाधीन होना १३०, १४० |
| , के सम्बन्धमें मित्र मित्र | , के बन्दरोंका तटावरोध २३२ |
| विद्वानोंके मत २२२ | में अन्तराष्ट्रिय नियमों- |
| (समर भी देखिये) | का पालन १७ |
| , के सम्बन्धमें मतपरि- | यूरोपके राजोंका स्वार्थ १२९ |
| वर्तन २२४ | यूरोपियनोंकी दण्डव्यवस्था, |
| , -प्रथाकी प्राचीनता २२१, २२२ | एशिया व अफ्रिकामें १९४ |
| , में लूट व उच्छृङ्खलता २५४ | यूरोपीय इतिहासका तमोयुग २० |
| , रोकनेका प्रयत्न, सत्से- | र |
| वा व मध्यस्थता द्वारा ४४५, ४४६ | रक्षागारद ३४२ |
| , -समाप्तिके तीन प्रकार ३४७ | रक्षा-द्रव्य का निषेध, ब्रिटेन |
| युद्ध नियमावली, प्राचीन | द्वारा ३१३ |
| कालमें २२५ | , की प्रथा जलयुद्धमें ३१२ |
| , २६२, २६४, २६७, | , के लिये न्यायालयमें |
| ३०२, ३२१, ३२२, ३२६ | अभियोग ३१२ |
| , , की सफलता २७८ | रक्षा-वचन ३४२ |
| , , हेग सम्मेलनकी | , व अभयदान ३४२ |
| २५४, २५६, २५८ | रक्षाशुल्क माँगनेका अधि- |
| युद्धस्थलमें भाईचारा ३३९ | कार, मुल्कगीरी |
| युद्ध, स्वराजप्राप्ति के लिए २३८ | सेनाको ३०२ |
| युद्धावसान के तात्कालिक | रक्षाक्षेत्रकी जाँच, युद्धके पीछे २७२ |
| परिणाम ३४८ | रणघोषणा २३४, २३५ |
| , पर जनसाधारणके स्वत्व ३४८ | , के सम्बन्धमें हालें- |
| यूनानका राजनीतिक | इका प्रस्ताव ३३६ |
| परिवर्तन ७६ | |

| | |
|--------------------------------|------------------------------|
| रणबन्धियोंकी मुक्ति, द्रव्य या | राजक्रान्तिके समय लूट व |
| विनिमय द्वारा २६६ | हत्या १९५ |
| „ के प्रति दुर्व्यवहार, | राजजीवनका अन्त ७७ |
| जर्मनों द्वारा २७१ | राजदूतों का झगडा, लन्दन |
| „ के प्रति बर्ताव २६६- | वाले जुलूसमें ९८ |
| २७० | „ के विशेषाधिकार १०५-१०९ |
| „ के प्रति बर्ताव, | राजनीतिक अपराध २०० |
| बांझोंका २७० | „ अपराधियोंका लौटाया |
| „ के प्रति बर्ताव, बि- | जाना १९५ |
| टेन व जापानका २६६ | „ संधियोंका लोप, राज- |
| „ के प्रति बर्ताव, | सत्ताकी समाप्तिपर ७९ |
| विविध सुविधायें २७० | राजपरिवर्तनका प्रभाव, |
| „ से काम लेने व | नागरिकोंके स्वत्वपर ७८ |
| वेतन देनेका दायि- | राजभक्तिकी शपथका निषेध २९७ |
| त्व २६९ | राज शब्दका अर्थ ३९ |
| राजविराम ३४४, ३४५ | राजसत्ताको दैवी मानना ११६ |
| राजसामग्री बेचनेका निषेध, | राज समता सिद्धान्त ७१, |
| तटस्थ राजको ३८० | १३८, १४१, १४५ |
| रावौन्द्रनाथ ठाकुर ४३९ | राजातिरिक्त युद्धकारी सम्भ्य |
| रसद शब्दके दो अर्थ ३८८ | समुदाय ५८, ५९ |
| राज और दण्डकी सृष्टि ११५ | राजोंका पत्र व्यवहार ९१ |
| राजकर उगाहनेका अधिकार, | „ के निर्देश, अन्तारा- |
| सुल्कगीरी सेनाका २९८ | ष्ट्रिय विधाबके |
| राजका अधिकाराभाव, दूसरे- | आधार ९२, ९३ |
| के राज्यमें ११९, १२० | राज्यका अर्थ ४० |
| राजकी समझौता १५० | „ का दायमी पहा १६७ |

| | | |
|-------------------------------|----------------------------------|----------|
| राष्ट्रवृद्धि, अधिकृति द्वारा | राष्ट्रसंघसे लाभकी भाशा | ४५६ |
| १५०-१५३ | राष्ट्रीयता, अवयस्क बच्चों व | |
| „ प्राकृतिक | स्त्रियोंकी | ८१ |
| १५९, १६० | „ विजित देशके नागरि- | |
| रामचन्द्रजी, शत्रुताके सम्ब- | कोंकी | ८० |
| न्धमें | २६१ | |
| रायल सोसाइटी | ४३९ | |
| राष्ट्रसंघ ७२, ९०, ११६, १४५, | „ सम्बन्धी विधान, ब्रिटेन | |
| १५८, १६९, १९७, २१५, | अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी | |
| २२३, २३७, २३८, ३१९, | इत्यादिका | १८६ |
| ४४३, ४५१ | राष्ट्रीय राज (स्वतंत्र), अन्ता- | |
| „ और अफीमका व्यापार | राष्ट्रिय शान्तिका | |
| ४५५ | साधक | ४३१ |
| „ का पतन | ३३, ३६ | |
| „ की उत्पत्ति | ३३ | |
| „ की सदस्यता, स्वतन्त्रता | „ „ की परिभाषा | ४३१ |
| की बाधक नहीं | ४५३ | |
| „ की सफलताका बाधक, | राष्ट्रोंका वैषम्य, पारस्परिक | |
| बड़े राजोंकी धूर्तता | अविश्वासका कारण | ४३२ |
| ४५५ | „ का हितसाम्य, विश्व | |
| „ की स्थापनाका विचार, | शान्तिका स्थापक | ४३३ |
| पूर्वकालमें | ४५२ | |
| „ के उद्देश्य | रुजवेस्ट, अमेरिकन राष्ट्र | |
| ३४, ३५ | पति | १२३, १४३ |
| „ के विरुद्ध आक्षेप | ४५३, ४५४ | |
| ४५३, ४५४ | रूम (तुर्क साम्राज्य) की | |
| „ के समर्थकोंकी सल्या- | अन्ताराष्ट्रिय पात्रता | ७५ |
| वृद्धि | ४५५ | |
| ४५५ | रूमनियोंकी स्वतन्त्रता | ८९ |
| „ बुढरो विल्सनके विचा | रूमिलियाका मिलाया जाना, | |
| रोंका परिणाम | बल्गेरिया द्वारा | ५१ |
| ३३ | रूर और राइनलैंडपर कब्जा, | |
| | फ्रांसका | २३० |
| | „ प्रान्तका प्रश्न | २२९, २३० |

रूस और डेन्मार्कमें सन्धि ८७
 ,, और पोलैंडमें सन्धि २०४
 ,, का प्रयत्न, उपनिवेश
 स्थापनका १४२
 ,, का सन्धिपत्र, सवत् १९१३
 का, कृष्णसागर
 सम्बन्धी ८
 ,, की सन्धि, आस्ट्रिया
 व प्रशाके साथ १३३, १४१
 ,, को प्रलोभन, ब्रिटेन व
 फ्रांस द्वारा १७८
 रूस-जापान-युद्ध ५२, १६८,
 २३५ २४७, २६९,
 २८६, ३३०, ३३५
 ,, में अमेरिकाकी मध्य-
 स्थिता २९२
 ,, में जहाजोंको अवकाश
 दिया जाना ३१०
 ,, में जापानियोंकी व्यव-
 स्था, मूल्य चुकानेकी ३००
 ,, में रेशितेलनी नामक
 रूसी जहाजपर आक्र-
 मण, जापान द्वारा ३६६
 रूस, ब्रिटेन और हालैंडमें
 सन्धि २०८
 रूसमें ब्रिटेनका हस्तक्षेप १३५

रूस-स्वीडन युद्धमें डेन्मा-
 र्कका विचित्र ताटस्थ्य ३५४
 रेडक्रॉस २७५
 रेशितेलनी नामक रूसी जहा-
 जपर आक्रमण, जापान
 द्वारा ३६६
 रोगियोंऔं आहतोंकी रक्षा,
 बोभर सेना द्वारा ३२३
 ,, और आहतोंकी सेवा
 ३७१-३७५
 रोमका नागरिक विधान १९
 ,, का प्राकृतिक विधान १०
 रोमन सम्राट्, जर्मनीके
 सम्राट्की उगधि २०
 रोममें अन्तराष्ट्रिय नियमोंका
 पालन १७, १८
 ,, में राष्ट्रोंका विधान १९
 ल
 लक्सेम्बर्गका तटस्थीकरण ३६०
 ,, पर दोषारोपण ३६१
 लन्दनकी कांफ्रेंस ४०१,
 ४०४, ४१५, ४१९, ४२१,
 ,, की घोषणा ८, ३९८, ४०१,
 ४०२ ४०३, ४१३, ४१९
 ,, की घोषणामें परिवर्तन
 ४०८

| | |
|------------------------------------|-----------------------------------|
| ललित कला सम्बन्धी वस्तुओं | लोसानमें अन्ताराष्ट्रिय वि- |
| और पुस्तकोंका रक्षा ३११ | धान परिषद्, संवत् |
| लाइब्ररिया ४३२ | १९४५ की १५६ |
| „ का स्वतंत्र होना ६७ | व |
| लॉग बुक ४१५ | वकील एक तरहका दूत, ९६, १०८ |
| लार्ड्स क्लब तटस्थोंके कर्तव्य- | वर्मेहजकी सन्धि २०६, ४३७, ४४३ |
| का श्रेणि विभाग ३७७ | वाट्सन साहब, युद्ध के |
| „ , जलमग्न तारोंके | सम्बन्धमें २२४ |
| सम्बन्धमें ३६७ | वाणिज्य पोतोंकी तलाशी, |
| „ , तटस्थ राजों की प्रयत्न- | तटस्थ देशीय ३९८ |
| शैलता के सम्बन्धमें | वाणिज्य, साधारण, के दो |
| ३८२ | सिद्धान्त ३९४ |
| „ , तटवरोधके सम्बन्धमें २३४ | वाणिज्य-सामग्रीके तीन वि- |
| „ , पैरिसकी घोषणाके | भाग ३९९ |
| सबघमें ३९८ | वाणिज्यावरोध ४१३ |
| „ , सुवर्द्धित राजके सबघमें ५३ | वायुपर अधिकार १८३ |
| „ , युद्धके सम्बन्धमें २४५ | वाल्टर स्काट, सर, अतटस्था- |
| लीयोलिन जेन्कन्स, समुद्र- | चरणके सम्बन्धमें ४९८ |
| के सबघमें १७३ | „ , निषिद्ध व्यापारके संबधमें ४०१ |
| लूइजियानाका प्राप्ति, भेंट | विप्लवाकी कांग्रेस २८ |
| द्वारा १६० | विग्रहशोधक सन्धियां ८५ |
| लूई, ग्यारहवें द्वारा दूतप्रेषण ९६ | विजय, सैनिक विजय देखिये |
| लूटका माल २८६, २८७ | विजयिनी सेनाका स्वत्व २९० |
| „ की प्रथा प्राचीन कालमें २८८ | विजयी सेनापतिकी घोषणा २९० |
| लेवी ऑन मैरं २६३ | विजित दुर्ग-रक्षकोंके साथ |
| लोकमान्यको सजा १२० | बर्ताव २६६ |

| | | |
|-----------------------------|---------------------------------|----------|
| विजित देशके नागरिकोंकी | विधायक सन्धियाँ | ८८,५९ |
| राष्ट्रीयता | विभीषण, रावणकी अन्त्ये. | |
| „ नागरिकोंके प्रति | ष्टिके संबन्धमें | २६१ |
| वर्ताव २५३, २५४, २५६ | विरामपताका | ३४० ३४१ |
| विजेताका कर्तव्य | „ -वाहकके प्रति | |
| २९० | वर्ताव | ३४० |
| „ के वैधावैध कार्य | विरामपत्रकी शर्तोंका उल्लंघन | |
| १६२ | | ३४५ |
| विज्ञान इत्यादि सम्बन्धी | विश्वभारती विश्व० | ४३६ |
| संस्थाएँ, अग्राह्य | विश्व संस्कृति, अन्ताराष्ट्रिय | |
| २९५ | शान्तिकी साधन | ४३०, |
| „ स्वार्थ सिद्धिका साधन | | ४३५ |
| ४२५, ४२६ | विषाक्त शस्त्रोंका प्रयोग | ३२६ |
| विदेशी नरेशों व राजदूतोंके | विषैले वाष्पोंका प्रयोग, गत | |
| लिए नियम | महासमरमें | ३२६ |
| १९२ | बिस्फोटक फैलानेका निषेध | ३३७ |
| „ निरीक्षण, शासनादिष्ट | „ फैलानेकी प्रथा | ३३५, ३३६ |
| देश में | बिस्फोटकोंका प्रयोग, गत | |
| १६९ | महासमरमें | ३३७ |
| „ यात्रियोंके लिए नियम | विहित वस्तुएँ | ४०६, ४०७ |
| १९१ | विहित विधान (इंस्टिट्यूट) | |
| „ सेना व सैनिक जहा | लाँ) | २९ |
| जोंके लिए नियम | बुडरो विल्सन, राष्ट्रपति के पद- | |
| १९३, | वर्ताव | ३३ |
| १९७ | „ के हस्ताक्षर व सिल | |
| विद्रोहित्वकी स्वीकृति | सन्धि | २०६ |
| २४१ | | |
| विद्रोहियोंके साथ व्यवहार, | | |
| परराजोंका | | |
| २३९, २४० | | |
| विद्रोही राजके साथ व्यवहार, | | |
| परराजोंका | | |
| ५७ | | |
| विधान और धर्म | | |
| १५८ | | |
| „ और नियममें भेद | | |
| २, ३ | | |

| | | | |
|------------------------------|------------|-----------------------------|----------|
| वेनिस | १७२ | व्यापारकी क्षति, १७ वीं | |
| वेनेज्वीला का झगडा | १४३ | शताब्दीमें | ३९५ |
| ,, पर बलप्रयोग, हालैंड | | व्यापार, निषिद्ध वस्तुओंका | |
| द्वारा | २३० | | ३९९,४०० |
| वेब्सटर, हस्तक्षेपके सम्बन्ध | | व्यापाराधिकार, युद्धकालमें | ३४१ |
| में | १२७ | व्यापारिक जहाजको सैनिक | |
| वेलिंगटन ड्यूक आफ, द्वारा | | जहाज बना देनेका | |
| लूटके अपराधियोंको | | अधिकार | २६४ |
| दंड | २८९ | ,, जहाजोंकी जब्तो | ३०७ |
| सैनिक विधानके सम्बन्ध | | ,, जहाजोंपर शासन | १९८ |
| में | २९६ | , नावें, छोटी छोटी | ३०८ |
| वेसेक्स (बोअर सेनापति) | | ,, (सशस्त्र) पोतोंका | |
| की घोषणा | २९० | प्रश्न | ३९७ |
| वेस्टलेक, सैनिक कार्यके | | ,, पोतोंके साथ छेड़छाड़, | |
| औचित्य या अनौचित्य | | प्राचीनकालमें | ३५३ |
| पर | ३०३ | ,, सन्धियोंका पालन, | |
| वैटेल | २८, २९, ८३ | पराजयके बाद भी | ७९ |
| वैलपोल, ब्रिटिश कप्तान | ३७२ | व्यापारिमंडल, अन्तराष्ट्रिय | |
| वैश्य युगकी प्रधानता | ४२५, ४२६ | विधानका पात्र नहीं | १७० |
| व्यक्ति और समाजमें भेद | ११६ | ,, द्वारा शासन | १७० |
| व्यक्तियोंका स्थान, अन्ता- | | व्हीटन, सामरिक आवश्यक- | |
| राष्ट्रिय विधानमें | ५९ | कताके सबधमें | ३०४ |
| व्यवस्थापक सन्धियाँ | ८५ | शक्तिगोष्ठी, अमेरिकाको | १४४ |
| व्यापारका तटस्थोंके सिपुर्द | | ,, एशियाकी | ४१ |
| किया जाना, युद्धकारी | | ,, यूरोपकी | १३९, १४० |
| पक्ष द्वारा | ३९७ | ,, संसारकी | १४४ |

| | | |
|---------------------------------|--------------------------------|-------------|
| शक्तिसाम्यका सिद्धान्त १३०, १३१ | शत्रुराज के जहाज | २५२ |
| शत्रुओंके साथ बर्ताव भारत | ” के नागरिकोंकी सम्प- | |
| व यूरोपमें | त्ति | २७९ |
| शत्रु की डाक | ” के नागरिकोंके साथ | |
| ” की सम्पत्ति जिसपर | बर्ताव २४८ २९१, २९२ | |
| कब्जा किया जा | ” के नाविकोंके साथ | |
| सकता है | बर्ताव | २४६ |
| ” के असैनिकोंके साथ | ” के निवासियोंके प्रति | |
| बर्ताव | शत्रु राज्यमें बर्ताव | २५१ |
| ” के राज्यांश पर अधि | ” के शुश्रूषकोंके साथ | |
| कार | रियायत | २६० |
| ” के साधारण नाग | ” के सैनिकोंके साथ व्यव- | |
| रिकोंके साथ बर्ताव | वहार | २४५ |
| २५५-२५७ | शत्रुरूपका निवासपर निर्भर | |
| ” के स्थायी कब्जेमें | रहना | २५० |
| आये हुए निवासियों | शत्रुवर्गीय उत्तमर्णोंके स्टाक | |
| के प्रति बर्ताव | व हुडियाँ जब्त नहीं | |
| शत्रुप्रजाकी चल व अचल | होतीं | २८४, २८५ |
| सम्पत्ति | शत्रुसमर्पित सम्पत्ति, तदस्थ | |
| ” को प्राणदण्ड २९१, २९२ | नागरिकोंकी | २८१ |
| ” को युद्ध—कालमें | शत्रुसम्पत्ति जो जब्त नहीं की | |
| बसने व व्यापार | जाती २८२, २८५, ३१०, ३११ | |
| करनेकी अनुज्ञा २८४ | ” जो नष्ट नहीं की जाती २८३ | |
| शत्रुराजकी सम्पत्ति | शत्रुमेवा, तदस्थोंकी | ४१९ |
| ” की सम्पत्ति, दूसरे | शत्रुसैनिकोंके साथ बर्ताव | |
| शत्रुराजके राज्यमें | | २६१, २६३-६६ |

| | | |
|------------------------------|--------------------------------|----------|
| शान्तिकी इच्छा, विश्व शा- | संरक्ष्य जहाज | ३०७, ३०८ |
| न्तिकी साधक | संसर्ग दोष सिद्धान्त, वाणि- | |
| शाम, आदिष्ट राज | ज्यका | ३९५ |
| शासनादेश | सक्षम अवरोध | ४११, ४१२ |
| „ आदिमनिवासियों- | सत्सेवा और मध्यस्थता द्वारा | |
| के सम्बन्धमें | समझौता | २११ |
| „ की आलोचना | „ का प्रयत्न, तटस्थ राजों | |
| शासनाधिकारके सिद्धान्त | द्वारा | ४४५ |
| शासनाधिकार, राज्य के बाहर | की परिणति, मध्य- | |
| | स्थितामें | २१२ |
| शिमोनोसेकी की सन्धि | सनदी राज | ५५ |
| शुश्रूषा की सामग्री, निषिद्ध | सन्दिग्ध जहाज | ३१५-३१८ |
| नहीं है | सन्धि और एकरारनामेमें | |
| श्यामजी कृष्ण वर्मा | भेद | २०२, २०३ |
| श्रमजीवनकी अन्ताराष्ट्रि- | „ का समर्थन | २०५, २०६ |
| यता | „ कैसे लिखी जाती है | |
| श्रमजीवियोंका प्रभाव | | २०३, २०४ |
| श्रीकृष्णकी सहायता, कौरवों | सन्धिपत्र या समयपत्र | |
| और पांडवोंको | (कावेनैट) | ३० |
| संयुक्त राज अर ब्रिटेनमें | सन्धिपर विचार करनेका | |
| सन्धि | अधिकार भिन्न भिन्न | |
| संरक्षण (राजनीतिक) | देशोंमें | २०५ |
| „ औपनिवेशिक | सन्धि, पूर्ण, का किया | |
| „ के तीन प्रकार | जाना | ३४७ |
| „ मिश्र, मरहो, कोरिया | सन्धियाँ, अन्ताराष्ट्रिय विधा- | |
| इत्यादिमें | नकी आधार | ८५-८९ |

| | | | |
|---|---------------------------|---|--------|
| सन्धियोंका उल्लंघन, रूस व तुर्की द्वारा | ११९ | समाज, प्राचीन | १६ |
| „ का परिणाम, उदा- सीन राजोंके लिए | २०६ | समितियोंका स्थान, अंता- राष्ट्रीय विधानमें | ६० |
| „ की समाप्ति | २०७, २४३ | समुद्र (खुला) किसी राजकी संपत्ति नहीं | १७२ |
| „ के महत्त्वकी विषमता | ३० | „ की रक्षाका भार | १७३ |
| „ पर युद्धका प्रभाव | २०८ | „ तटलग्न | १७४ |
| सम्यक्ताका अर्थ | ४०, ५८, ६५ | „ तटलग्न, तटवर्ती राज- की सम्पत्ति | १७४ |
| समझौता, अनुसन्धान मंडल द्वारा | २१० | सम्पत्ति जन्त करनेकी प्रथा | २८४ |
| „ पचायत द्वारा | २१३ | सर्बिया की क्रान्ति और दूसों का हटाया जाना | १०० |
| „ सत्सेवा और मध्य- स्थता द्वारा | २११ | „ की स्वतन्त्रता | ७५, ८९ |
| „ स्थायी न्यायालय द्वारा | २१५, २१६ | सलामीके नियम | १४८ |
| समता सिद्धांत | ३२५ | सशस्त्र तटस्थता | ८८ |
| समन्वयका सिद्धांत | ७१, १३८, १४१, १४५, ४३२ | सशस्त्र व्यापारिक पोतोंका प्रश्न | ३९७ |
| समय पत्र | ८५, ८६ | सहायक राज | ५३ |
| समय पत्रोंका अन्तराष्ट्रीय महत्त्व | ८६ | सांख्यिकदर्शन | ४३१ |
| समाजकी परिभाषा | २२७ | साइप्रस का पट्टा, ब्रिटेनके नाम | ६३ |
| समष्टिवाद | ४४४ | „ की अन्तराष्ट्रीय स्थिति | ६३ |
| समाचार विभागका कार्य | २६७ | „ की प्राप्ति, ब्रिटेनके | १७१ |
| समाज और व्यक्तिमें भेद | ११६ | साइलीशियन ऋणका प्रश्न | ६२ |
| | | साण्टो डोमिंगोमें अमेरिका का हस्तक्षेप | १७३ |

| | | | |
|-------------------------------|----------|------------------------------|-----|
| सादेश राज | ५३ | सेंट पीटर | ४२८ |
| सामरिक आवश्यकताका | | सेंट पीटर्सबर्गकी घोषणा ३०, | |
| अर्थ ३०३, ३०४, ३२२, | | | ३२० |
| | ३७६ | सेटो, समुद्रपथकी रक्षाके | |
| सामरिक समझौता | ३४१ | सम्बन्धमें | ३३८ |
| सामरिक न्यायालय | ९१ | सेनाओंके सद्वर्तियोंके प्रति | |
| साम्राज्यके दोष | ४२७ | वर्ताव | २४७ |
| साम्राज्योंका अस्तित्व, अ- | | सेनाके तीन भेद | ३२७ |
| न्ताराष्ट्रिय शान्तिका | | " के लिए आवश्यक | |
| साधक | ४२६ | वस्तुओंकी प्राप्ति | २६६ |
| साम्राज्योंका अस्तित्व, प्रा- | | सेवरकी सन्धि | ४४३ |
| चीन कालमें | ४२६ | सेवापताका | २७५ |
| सावयव राज | ४५ | सेवाय का तटस्थीकरण | ३६१ |
| सावरकर, विनायक, के | | " का दिया जाना, | |
| संबन्धमें फ्रांसका | | फ्रांसको | ३६२ |
| हस्तक्षेप | १२० | सेवासमितियोंका आयोजन, | |
| सिकन्दर, द्वितीय, का प्रयत्न | | रणबन्धियोंके लिए | २७० |
| क़ूरता कम करनेका | २६१ | सेवासमितियोंका आयोजन, | |
| सिकन्दर, षष्ठ, पोप | १५२ | शुभ्रषाके लिए | २७३ |
| सिद्ध विधान (पॉजिटिव्ह लॉ) २९ | | सेवासमितियोंकी संपत्तिका | |
| सिपाही विद्रोह | १६५, १७० | बहुत होना | २७४ |
| सुनयत सेन | १९५ | सैकिल, ब्रिटिश राजदूतका | |
| सूदान पर शासन, मिश्र व | | झोटाया जाना | १०२ |
| ब्रिटेनका | ४४० | सैनिक, अभियमित | ३२९ |
| „ पर सर्म्मिलित स्वाम्य | १७१ | सैनिक आवश्यकता | ३२२ |
| „ में अराजकता | १७१ | „ कब्जेका क्षेत्र | २८९ |

| | |
|--|---|
| सैनिक क्षेत्रकी घोषणा, ब्रिटेन | सोवियत सरकारकी स्थापना १३५ |
| व जर्मनी द्वारा ४१६, ४१७ | सोशल डिमोक्रेट्स ४४४ |
| „ जहाजों पर शासन १९७ | स्ट्रासबर्गपर जर्मनोंका आक्रमण व स्त्रियों तथा असैनिकोंकी रक्षा ३२३ |
| सैनिक, रंगोन जातियोंके ३३२ | स्थिरताकी आवश्यकता, अन्ताराष्ट्रिय संगठनके लिए ४३३ |
| सैनिक वस्तुओंके बदले रसीद देनेकी प्रथा ३०० | स्पेन-अमेरिका-युद्धमें तारोंकी रक्षा ३६७, ३६९ |
| सैनिकविजय और हस्तान्तरमें भेद १६२ | „ व अमेरिकामें-युद्ध ३९६ |
| „ द्वारा राज्यवृद्धि १६३ | स्पेन, ब्रिटेन व फ्रांसमें सन्धि, सवन् १९६४ ११८ |
| „ बेल्जियम व फ्रांसकी, जर्मनी द्वारा १६१ | स्मिथसोनियन इन्स्टिट्यूट ४३९ |
| „ ही भूमिका स्वामित्व नहीं १६१ | स्मृतिकारोंके ग्रन्थ, अन्ताराष्ट्रिय विधानके आधार ८३, ८४ |
| सैनिक विधान २९१ २९५ | स्वतंत्र पोर्तोंपरकी सम्पत्ति ३१० |
| „ „ शान्तिकालीन व युद्ध-कालीन २९६ | स्वयंसेवक दल और मिलिशिया २६२, २६३ |
| सैनिक शिक्षा, अनिवार्य, २५१ | स्वातन्त्र्यका अर्थ ४०, ४१, ११३-११६, ११९, १२६ |
| सैनिक शब्दका अर्थ २६२ | „ अर्थ मनमानापनसे भिन्न ११६ |
| सैनिक सेवा, अनिवार्य, ब्रिटेनमें १८९ | स्वाधीनताका प्रत्यय, इटलीका ३६१ |
| सैनिकों का निवास, नागरिकोंके घरमें २९७ | |
| „ को प्राणदण्ड, देशद्रोहके अपराधमें ३२८ | |
| „ का सुकर जाना, स्वदेशके विरुद्ध लड़नेसे २५८ | |

| | | | |
|--------------------------------|--------|-------------------------------|-----|
| स्वाधीनताका प्रयत्न | | स्वेज नहरकी व्यवस्था १७९, १८० | |
| कांगोका | ३७, ७३ | „ व पनामाका तटस्थी- | |
| चिलीका | २४१ | करण | ३६३ |
| ट्रांसवालका | ६६ | ह | |
| बेल्जियमका | ३५९ | हङ्गरीका विद्रोह | १३३ |
| व्योनस आयर्स व पना- | | हताहतोंकी निजी सम्पत्ति | २७२ |
| माका | ६९ | इनोवरका इलेक्टर | ४७ |
| ब्राजिल, स्कैंडिनेविया, | | हडिथियोंपर अत्याचार, अमे- | |
| मक्का व भारतका ७८ | | रिकामें | १३० |
| यूनान द्वारा १३०, १४०, | | हर्जेगोविना और बोस्नि- | |
| ३८४ | | आका दिया जाना, | |
| लाइबीरियाका | ६७ | आस्ट्रियाको १७१, २०७, २०८ | |
| हंगरीका | १३३ | हर्षवर्धन | ४२७ |
| स्वाधीनता-बधन-स्वनिर्मित ११७ | | हस्तक्षेप | १२१ |
| „ परनिर्मित ११८ | | „ अनुचित | १३२ |
| स्वाम्य और प्रभुत्वमें भेद १६४ | | „ अमेरिकाका क्यूबामें १२३ | |
| „ सम्मिलित १७१ | | „ आत्मरक्षाके लिए १२६ | |
| स्वीडनका स्वतन्त्र होना ७० | | „ कान्यादय अवसर १२२-१३१ | |
| स्वीजरलैंडका तटस्थीकरण ६१, | | „ चीनमें, विदेशियोंका १२५ | |
| ३५९ | | „ डेनमार्कमें, ब्रिटेनका १२७ | |
| „ की तटस्थताका तोडा | | „ तुर्कीसे १२९, १३० | |
| जाना, नपोलियन | | „ बेल्जियममें, जर्मनी | |
| द्वारा ३५९ | | द्वारा १२८ | |
| „ का लिंग शेष प्रजातन्त्र | | „ मनुष्यताके नाते १२९ | |
| होना ७८ | | „ मेक्सिकोमें, ब्रिटेन | |
| स्वेच्छा मौलेना ३३४ | | इत्यादि द्वारा १२५ | |

| | | | |
|---------------------------|--------|------------------------------|----------|
| हस्तक्षेप यादवीयमे | १३४ | हाल, संगराधारके सम्बन्धमे | ३७१ |
| „ रूससे, ब्रिटेनका | १३५ | हालैंड, रूस और ब्रिटेनमें | |
| „ विद्रोह-शमनके | | सन्धि | २०८ |
| लिये | १३२ | हेगका अन्तराष्ट्रिय न्याया- | |
| „ वेनेज्वीलामें | १४३ | लय | ४५१ |
| „ शक्ति-साम्यके नि | | „ का स्थायी न्यायालय | |
| मित्त | १३० | | २१४, २१५ |
| „ साण्टोडोमिंगोमे, | | हेगनियमावली (युद्ध संबंधी | |
| अमेरिकाका | १४३ | नियमावली भी देखिये) | |
| „ से भारतकी क्षति | १३७ | ३२६, ३२९, ३३६, ३३८, ३८९ | |
| हस्ताक्षर करनेके नियम, | | हेग-सम्मेलन, | २१४, |
| सन्धि पर | १४७ | २१५, २३२, २३३, | |
| हस्तान्तर और सैनिक विज- | | २३५, २४७, २५३. | |
| यमें भेद | १६२ | २७१, २८६, २८९ | |
| „ , भूमिका | १६० | ४४३ | |
| हाजि, युद्धके सम्बन्धमें | २२२ | „ की त्रुटियाँ | ३२ |
| हार्वर्ड विश्वविद्यालय | ४३९ | „ की युद्ध सम्बन्धी निय- | |
| हॉल अन्तराष्ट्रिय विधानकी | | मावली २५४-२५६, २५८ | |
| पाजताके सम्बन्धमें | ४३, ७० | „ प्रथम, संवत् १९५६ का ३१ | |
| „ औपनिवेशिक सरक्षण | | „ द्वितीय, संवत् १९६४ का | |
| के सम्बन्धमें | १६६ | | ३१ |
| „ निषिद्धसम व्यापारके | | होस्कर (यशवन्तराव) की | |
| सम्बन्धमें | ४१९ | सन्धि, अग्रेजोंके साथ | |
| „ प्रभुत्वके दो हकदारों | | | ८५, ८६ |
| के सम्बन्धमें | २८२ | झूगवान, मूट, प्रोशिअस देखिये | |

अन्तराष्ट्रिय विधान ।

लागत-व्ययका व्योरा ।

| | | | | |
|------------------------------|-----|-----|-----|-------------|
| छपाई | ... | ... | ... | ५२०) |
| कागज | ... | ... | ... | ६५५) |
| भँजाई, जिल्द बँधाई | ... | ... | ... | ३७५ |
| लेखकका पुरस्कार, सम्पादन, इ० | ... | ... | ... | ६५०) |
| | | | | <hr/> २५००) |
| विज्ञापन ५%, हानि ५%, | } | | ... | १२२०) |
| भेंट या समालोचना ५%, | | | | |
| विक्री—व्यय ५%, व्याज, ५% | | | | |
| कमीशन | ... | ... | ... | ११५५) |
| | | | | <hr/> ४८७५) |

.. एक प्रतिका मूल्य ३।)